कूर्म पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल हिन्दी भाष्य सहित)

सम्पादकः
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन,
२० स्मृतियों और १८ पुराणों
के भाष्यकार

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, बरेली (उ०प्र०)

कूर्म पुराण

द्वितीय खण्ड

(सरल भाषानुवाद सहित)

*

सम्पादकः

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,

२० स्मृतियाँ और १८ पुराणों के

प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशकः

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :
डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

❋

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

❋

❋

प्रथम संस्करण
१९७०

❋

मुद्रक :
बनवारीलाल गुप्त
विश्व भारती प्रेस
मथुरा

❋

मूल्य सात रुपये पचास पैसे

दो शब्द

'कूर्म पुराण' द्वितीय खण्ड में दो गीताओं—ईश्वर गीता और व्यास गीता का समावेश किया गया है। ईश्वर गीता में आध्यात्मिक ज्ञान का विवेचन किया गया है और व्यास गीता में संसारिक कर्मों को धर्म पूर्वक पालन करने का विध-विधान बताया गया है। भारतीय समाज का संगठन 'वर्णाश्रम' के आधार पर हुआ था। समाज के लिये आवश्यक कार्यों को चार मुख्य विभागों—(१) बौद्धिक (२) रक्षात्मक (३) आर्थिक (४) सेवात्मक में बाँट दिया गया था, और यह निर्देश दिया गया था कि सब लोग यथा संभव अपने नियत कामों में ही संलग्न रहें। जिससे शान्ति और सुव्यवस्था बनी रहे। इसी प्रकार मानव जीवन को चार भागों में बाँटा गया था—(१) ब्रह्मचर्य (२) गृहस्थ (३) वान प्रस्थ (४) संन्यस्त। इसका उद्देश्य यही था कि मनुष्य अपना कार्य क्रम बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार निश्चित करे, जिससे उसके परिवार वालों तथा सगे सम्बन्धियों को आन्तरिक उलझनों का सामना न करना पड़े।

'व्यास गीता' में उन चारों आश्रमों के धर्मों का अच्छी प्रकार वर्णन किया गया है। उससे विदित होता है कि 'सनातन धर्म' के एक अनुयायी का समस्त जीवन 'धर्ममय' होना चाहिए। 'धर्म' का अर्थ केवल पूजा-पाठ कर लेना अथवा तिलक-छापा लगा लेना नहीं है। पुराणकार ने इस धर्म का नाम 'सनातन कर्म-योग' लिखा है। इसका आशय यही है कि मनुष्य को प्रत्येक स्थिति और अवस्था में अपने कर्तव्य-पालन का ध्यान रखना चाहिए और उस पर पूर्ण रूप से आरूढ़ रहना चाहिए।

'व्यास गीता' में ब्रह्मचारी के लिये जो नियम और कर्तव्य बतलाये हैं उनका आशय यही है कि मनुष्यों को बाल्यावस्था से स्वावलम्बन और कष्ट सहिष्णुता का जीवन व्यतीत करना चाहिए। जिससे वह आगामी जीवन में सब प्रकार की परिस्थितयों का सामना करते हुए अपना निर्वाह

अच्छी तरह कर सके। ब्रह्मचारी अवस्था में मनुष्य का जीवन अधिक से अधिक साज-सज्जा और आडम्बर शून्य होना चाहिये और गुरुजनों के प्रति इसे पूर्णतः विनीत रहना चाहिए। इन नियमों को देखते हुये जब आज की शिक्षा-संस्थाओं की गति विधियों पर विचार करते हैं तो जमीन् आसमान का अन्तर जान पड़ता है। इस प्रकार जब समाज का मूल ब्रह्मचर्य-आश्रम अस्त-व्यस्त हो गया तो आगामी दर्जों (आश्रमों) का भी विकृत हो जाना निश्चित ही था।

गृहस्थ के जो नियम बतलाये गये हैं वे भी ऐसे हैं जिनमें व्यक्तिगत सुखोपभोग के बजाय सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति का ही अधिक ध्यान रखा गया है। ब्राह्मण के लिये तो विशेष रूप से यह विधान किया गया है कि वह समाज से कम से कम ग्रहण करे और अधिक से अधिक प्रदान करे। वर्तमान समय में जिस प्रकार अधिकांश ब्राह्मणों ने केवल जन्म के आधार पर दान लेना अपना अधिकार मान लिया है, उसको 'व्यास गीता' में सर्वथा गर्हित बतलाया है। उसमें कहा गया है—

वृत्तिसंकोचमन्विच्छेत् नेहेत धन विस्तरम् ।
धन लोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्या देवहीयते ।।
वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः ।
नतां गति मवाप्नोति सङ्कोचाद्यामवाप्नुयात् ।।

अर्थात् "ब्राह्मण को सदैव वृत्ति-संकोच (त्याग) की ही चेष्टा करते रहना चाहिए, धन को बढ़ाने की नहीं क्योंकि जो ब्राह्मण धन का लोभी हो जाता है इसका पतन होने लग जाता है चाहे समस्त वेदों का अध्ययन करले और चाहे बहुत से यज्ञ-याग कर डाले, पर ब्राह्मणत्व का जो उत्थान त्याग और अपरिग्रह से होता है वह और किसी तरह प्राप्त नहीं हो सकता।"

इसलिये पुराणकार ने जीविका और अन्न के शुद्ध होने पर बहुत अधिक बल दिया है, और किसी से किसी प्रकार का प्रतिग्रह (दान) लेने में अत्यन्त सावधानी वर्तन का आदेश दिया है। उसने स्पष्ट कह दिया है:-

"यो यस्यान्न समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्"

अर्थात् "जो जिसके अन्न को खाता है वह उसके पापों को भी खा लिया करता है।" अगर मनुष्यों ने इस शिक्षा पर ध्यान दिया होता तो आज हमारे समाज के समस्त अंगों में जो भ्रष्टाचार और दुराचार परिलक्षित हो रहा है, उसके स्थान पर भिन्न ही स्थिति दिखाई पड़ रही होती।

'वानप्रस्थ आश्रम' भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, यद्यपि आज उसके स्वरूप और कर्तव्यों को लोग बिल्कुल भूल गये हैं। उसका उद्देश्य है अपने परिवार की संकीर्ण परिधि को छोड़ कर विस्तृत समाज को ही अपना परिवार बना लेना। आज यद्यपि पुराने जमाने के जैसे वन और जंगल नहीं रहे हैं, जहाँ वन्य-फलों और कन्द मूल आदि से अपना निर्वाह किया जा सके, तो भी यदि वानप्रस्थ के अनुयायी समाज से कम से कम लेकर उसकी अधिक से अधिक सेवा करते रहें, तो वे बहुत बड़े सम्मान के अधिकारी माने जायेंगे। यद्यपि जप, तप, ध्यान, उपासना भी उनका कर्तव्य बतलाया गया है, पर उसका मुख्य आधार समाज सेवा ही है—

शरण्यःसर्व भूतानां सम्विभागरसः सदा।
परिवादं मृषावादं निद्रालस्यं विवर्जयेत्॥

"वानप्रस्थ का कर्तव्य है कि समस्त प्राणियों की रक्षा का ध्यान रखें और सब के प्रति समदृष्टि रखता हुआ उनके हित साधन में प्रवृत्त रहे। उसको अन्य लोगों की निन्दा, चुगली, झूँठी गप शप से बचना और अपना समय निद्रा अथवा आलस्य में भी व्यतीत नहीं करना चाहिये।"

'खेद है कि आज कल के 'त्यागीजी, और 'महात्माजी' नामधारियों की स्थिति इससे उल्टी ही दिखाई पड़ती है। 'निन्दा, गप शप, निद्रा और आलस ही उनके मुख्य कार्य बन गये हैं। वे दूसरों की सेवा और हित साधन क्या करेंगे जब कि उनको स्वयम् ही इतने व्यसन लगे रहते हैं कि उनकी पूर्ति के लिये भले-बुरे सब तरह के उपाय अपनाने पड़ते हैं।

संन्यास-आश्रम की तो जो दुर्गति हुई है, उस सब को अपनी आँखों से देख ही रहे हैं। जिस 'संन्यास' का आदर्श समाज के छोटे से क्षेत्र से निकल कर 'विश्व-मानव' की भूमिका में पदार्पण करना था, उसका उद्देश्य अब केवल हराम की कमाई खाना रह गया है। कहने को इस समय भी देश में संन्यासियों की कमी नहीं है। सभी तीर्थ उनसे भरे रहते हैं। और प्रत्येक कसबे में भी दो-चार दस महात्मा लोग अड्डा जमाये बैठे ही रहते हैं, पर उनमें से अधिकांश गो० तुलसीदास जी के कथनानुसार "नारी मुई घर सम्पति नासी—मूड़ मुड़ाइ भये संन्यासी" की उक्ति को चरितार्थ करने वाले ही हैं। 'व्यास गीता' में दस आश्रम वालों को "निर्मम, निर्भय, शान्त, निर्द्वन्द, निष्परिग्रह, मितग्रासी, जीर्ण कौपीन वासा" रहने का उपदेश दिया है, पर आज कल के संन्यासी नामधारियों में सब लक्षण प्रायः इनके विपरीत ही दिखाई पड़ते हैं, और यह हिन्दू-समाज के पतन का एक बहुत बड़ा कारण है।

इस प्रकार 'कूर्म पुराण' का यह खण्ड समाज और व्यक्ति के कल्याणों का उचित मार्ग-दर्शन करने वाला है। यद्यपि देश काल के बदल जाने से आज कल उसके विधि-विधान ज्यों के त्यों पालन नहीं किये जा सकते, पर यदि हम उनकी मूल भावना को ध्यान में रख कर आचरण करें तो अपना और दूसरों का बहुत कुछ हित साधन कर सकते हैं।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय सूची

कूर्म--पुराण

द्वितीय खण्ड

४९—प्लक्षादिद्वीपानाम्वर्णन

जम्बूद्वीपस्यविस्तराद्द्विगुणेनसमन्ततः ।
संवेष्टयित्वाक्षीरोदंप्लक्षद्वीपोव्यवस्थितः ॥१
प्लक्षद्वीपेचत्रिपेन्द्राःसप्ताऽऽसन्कुलपर्वताः ।
सिद्धायुताःसुपर्वाणःसिद्धसङ्घनिषेविताः ॥२
गोमेदः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्चन्द्रउच्यते ।
नारदो दुन्दुभिश्चैव मणिमान्मेघनिस्वनः ॥३
वैभ्राजः सप्तमस्तेषां ब्रह्मणोऽत्यन्तबल्लभः ।
तत्र देवर्षिगन्धर्वैः सिद्धैश्च भगवानजः ।
उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वदृक् ।
तेषु पुण्या जनपदा आधयो व्याधयो न च ॥५
न तत्र पापकर्त्तारः पुरुषा वै कथञ्चन ।
तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणां तु समुद्रगाः ॥६
तासु ब्रह्मर्षयो नित्यं पितामहमुपासते ।
अनुतप्ताशिखे चैव विपापा त्रिदिवा कृता ॥७
अमृता सुकृताचैवनामतः परकीर्त्तिताः ।
क्षुद्रनद्यस्तु विख्याताः सरांसिचबहून्यपि ॥८

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—जम्बूद्वीप के विस्तार से द्विगुण विस्तार से चारों ओर युक्त क्षीर सागर का संवेष्ट न करके यह प्लक्षद्वीप व्यवस्थित है ॥१॥ हे विप्रेन्द्रो ! इस प्लक्ष द्वीप में सात ही कुल पर्वत हैं जो सिद्धों से युक्त—सुपर्वा और सिद्धों के संघ से सेवित होते हैं ॥२॥ उन सातों

कुल पर्वतों में गोमेद पहिला पर्वत है और दूसरा चन्द्र कहा जाता है। नारद—दुन्दुभि—मणिमान्—मेघनिस्वन—वैभ्राज—और उनमें सातवां है। जो ब्रह्माजी का अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पर देवर्षि—गन्धर्व और सिद्धों के सहित भगवान् अज विराजमान रहते हैं। सबके साक्षी—विश्व के द्रष्टा—विश्वात्मा वह सबके द्वारा उपास्यमान होते हैं। इससे वे जन पद परम पवित्र हैं वहाँ पर कोई भी मानसिक व्यथा तथा रोग नहीं है ॥३-५॥ वहाँ पर कोई भी पाप कर्मों के करने वाले पुरुष किसी भी प्रकार के नहीं हैं। उनकी नदियाँ भी सात हो हैं। वे वर्षों की नदियाँ सब समुद्र गामिनी हैं ॥६॥ उनमें नित्य ही ब्रह्मर्षिगण पितामह की उपासना किया करते हैं। उन नदियों के नाम ये हैं—अनुतप्ता—शिखा—विपापा—त्रिदिवा—कृता—अमृता और सुकृता ये नाम हैं जो परिकीर्त्तित किये गये हैं। छोटी-छोटी नदियाँ और सरोवर तो वहाँ पर बहुत-से हैं जो विख्यात हैं ॥७-८॥

न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुषः।
आर्य्यकाः कुरराश्चैव विदेहा भाविनस्तथा ॥९

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन्द्वीपे प्रकीर्त्तिताः।
इज्यते भगवानीशो वर्णैस्तत्र निवासिभिः ॥१०

तेषाञ्च सोमसाम्राज्यं सारूप्यं मुनिपुङ्गवाः।
सर्वे धर्म्मरतानित्यंसर्वे मुदितमानसाः ॥११
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः।
प्लक्षद्वीपप्रमाणं तु द्विगुणेन समन्ततः ॥१२

संवेष्टयेक्षुरसाम्भोधिं शाल्मलिः संव्यवस्थितः।
सप्त वर्षाणि तत्राऽपि सप्तैव कुलपर्व्वताः ॥१३
ऋज्वायताः सुपर्वाणः सप्त नद्यश्च सुव्रताः।
कुमुदश्चान्नदश्चैव तीयश्च बलाहकः ॥१४
द्रोणः कंसस्तु महिषः ककुद्मान् सप्तमस्तथा।
योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचिनी ॥१५

निवृत्तिश्चेतितानद्यः स्मृताःपापहरानृणाम् ।
नतेषुविद्यतेलोभः क्रोधोवाद्विजसत्तमा ॥१६

उनमें युग को कोई भी अवस्था नहीं होती है और वे चिरायु हुआ करते हैं। आर्थक–कुरर तथा विदेह भावी हैं ॥६॥ उस द्वीप में ब्राह्मण–क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र ये ही प्रकीर्त्तित होते हैं। वहाँ के निवास करने वाले वर्णों वर्णों के द्वारा भगवान् ईश का ही यजन किया जाता है ॥१०॥ हे मुनिपुङ्गवो ! उनका सोम साम्राज्य और सारूप्य होता है। वे सभी नित्य ही धर्म में निरत रहने वाले और प्रसन्न मान वाले हैं ॥११॥ ये लोग पाँच सहस्र वर्ष तक निरामय होकर जीवन धारण किया करते हैं। प्लक्ष द्वीप का प्रमाण सभी ओर से दुगुना है। शाल्मलि द्वीप ईख के रस वाले सागर को सवेष्टि न करके भली भाँति व्यवस्थित रहता है। वहाँ पर भी सात वर्ष होते हैं सात ही वहाँ पर कुल पर्वत हैं ॥१२-१३॥ ऋतु और आयत सुपर्वा नदियाँ भी वहाँ पर हे सुव्रतो ! सात ही हैं। उनके नाम पर्वतों के ये हैं—कुमुद—अन्नद—वताहक—द्रोण—कंस—महिष और ककुद्मान् है। नदियों के नाम ये हैं—योनी–तोया–वितृष्णा–चन्द्रा—शुक्ला—विमोचनी और निवृत्ति ये समस्त मनुष्यों के हरण करने वाली नदियाँ कही गयी हैं। हे द्विजश्रेष्ठो ! उनमें न तो कोई लोभ ही होता है और न क्रोध होता है ॥१४-१६॥

नचैवास्तियुगावस्थाजना जीवन्त्यनामयाः ।
यजन्तिसततंतत्र वर्णावायुं सनातनम् ॥१७
तेषांतत्साधनंयुक्तं सारूप्यञ्च सलोकता ।
कपिलाब्राह्मणाःप्रोक्ताराजानश्चारुणास्तथा ॥१८
पीता वैश्याः स्मृताः कृष्णा द्वीपेऽस्तिन् वृषला द्विजाः ।
शाल्मस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ॥१९
संवेष्ट्य तु सुरोदाब्धि कुशद्वीपो व्यवष्थितः ।
विद्रुमश्चैव होमश्च द्युतिमान् पुष्पावांस्तथा ॥२०
कुशेशयो हरिश्चैव मन्दरः सप्तपर्वताः ।
धुतपापा शिवाचैव पवित्रा सम्मिता तथा ॥२१

तथा विद्युत्प्रभा राम(महानद्यश्चसप्तवै।
अन्याश्चशतशो विप्रा नद्योमणिजला:शुभाः ॥२२

वहाँ के निवासी जनों में कोई भी युग की अवस्था नहीं हुआ करती हैं। वे सब परम स्वस्थ रहते हुए ही जीवन यापन किया करते हैं। ये लोग वहाँ पर निरन्तर सनातन वर्गा वायु का यजन किया करते हैं ॥१७॥ उनका वह साधन परम युक्त है—उनमें सारूप्य है तथा सलोकता है। वहाँ के ब्राह्मण कपिल वरण वाले होते हैं और क्षत्रिय अरुण होते हैं। वैश्य पीत वर्ण वाले हैं। हे द्विजगण ! जो शूद्र होते हैं वे इस द्वीप में कृष्ण वर्ण वाले हुआ करते हैं। शाल्मलि के विस्तार से सभी ओर दुगुने विस्तार वाला सुरा के सागर को संवेष्टित करके कुशद्वीप व्यवस्थित होता है। वहाँ पर भी सात पर्वत हैं उनके नाम ये हैं—विद्रुम—होम—द्युतिमान्—पुष्पवान् कुशेशय—हरि और मन्दर ये उन सातों पर्वतों के नाम हैं ॥२०॥ द्युतपापा—शिवा—पवित्रा—सम्मिता—विद्युत्प्रभा और रामा ये सात महा नदियाँ हैं। अन्य तो हे विप्रगण ! सैकड़ों ही मणि के समान जल वाली शुभ नदियाँ हैं ॥२१-२२॥

तास्तु ब्राह्मणमीशानं देवाद्याः पर्युपासते।
ब्राह्मणा द्रविणो विप्राः क्षत्रियाः शुष्मिणस्तथा ॥२३
वैश्यास्तोभास्तुमन्देहा:शूद्रास्तत्रप्रकीर्तिता:।
नरोंपज्ञानसम्पन्नामैत्रादिगुणसंयुताः ॥२४
यथोक्तकारिण:सर्वे सर्वे भूतहिते रताः।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्ब्रह्माणां परमेष्ठिनम् ॥२५
तेषाञ्च ब्रह्मसायुज्यं सारूप्यञ्चसलोकता।
कुशद्वीपस्यविस्तारादद्विगुणेनसयन्ततः ॥२६
क्रौञ्चद्वीपः स्थितो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम्।
क्रौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चाधिकारिकः ॥२७
देवाब्धश्च विवेदश्चपुण्डरीकस्तथैव च।
नाम्ना च सप्तमःप्रोक्तः पर्वतो दुन्दुभिस्वनः ॥२८

वे सब ईशान ब्रह्मा का देवादि उपासना किया करते हैं। हे विप्रो! ब्राह्मण द्रविण हैं और क्षत्रिय शुष्मिण होते हैं ॥२३॥ वैश्य तोभ और शूद्र मन्देहा कीर्त्तित किये गये हैं। वहाँ के मनुष्य सभी ज्ञान से सम्पन्न हैं और मैत्रादि गुण—गणों से संयुत होते हैं ॥२४॥ जैसा भी कहा जाता है उसी के अनुसार करने वाले सब लोग हैं और समस्त प्राणियों के हित में रति रखने वाले है। अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा परमेष्ठी ब्रह्मा का यजन किया करते हैं ॥२५॥ उन सबको ब्रह्म का सायुज्य होता है। सारूप्य और सालोक्य भी होता है। इस कुशद्वीप के विस्तार से सभी ओर दुगुना विस्तार रखने वाला क्रौञ्ज द्वीप है। हे विप्रगण! यह क्रौञ्ज द्वीप घृत के सागर का संवेष्ट न करके ही स्थित रहा करता है। ॥२६॥ इस द्वीप में सात पर्वत हैं। उनके नाम क्रौञ्ज—वामनक—आधिकारिक—देवाढ्व—विवेद—पुण्डरीक ओर सातवाँ दुन्दुभिस्वन ये हैं ॥२७-२८॥

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्यारात्रिर्मनोजवा।
कोभिश्च पुण्डरीकाक्षा नद्यः प्राधान्यतः स्मृताः ॥२९

पुष्कलाः पुष्करा धन्यास्तिष्या वर्णाः क्रमेण वै।
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चैव द्विजोत्तमाः ॥३०

अर्च्चयन्ति महादेवं यज्ञदानशमादिभिः।
व्रतोपवासैर्विविधैर्होमैश्च पितृतर्पणैः ॥३१

तेषां वै रुद्रसायुज्यंसारूप्यंचातिदुर्लभम्।
सलोकताचसामीप्यं जायतेतत्प्रसादतः ॥३२

क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः।
शाकद्वीपः स्थितो विप्रा आवेष्टच दधिसागरम् ॥३३

उदयो रैवतश्चैव श्यामकाष्ठगिरिस्तथा।
आम्बिकेयस्तथारम्य केसरीचेति पर्वताः ॥३४

सुकुमारी कुमारी च नलिनीवेणुकातथा।
इक्षुकाधेनुका चैव गभस्तिश्चेतिनिम्नगाः ॥३५

वहाँ पर प्रधानतया सात नदियाँ बताई गई हैं—उनके नाम गौरी—कुमुद्वती—सन्ध्या रात्रि—मनोजवा—कोपि—पुण्डरीकाक्षा ये होते हैं ।।२६।। हे द्विजोत्तमो ! पुष्कल—पुष्कर—धन्य और तिष्य ये वहाँ पर क्रम से वर्ण होते हैं जो ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य तथा शूद्र के समान ही माने जाते हैं ।।३०।। ये लोग सब यज्ञ—दान और शम आदि के द्वारा महादेव का अर्चन किया करते हैं। अनेक व्रत—उपवास—होम और पितृ तर्पण के द्वारा आराधन किया करते हैं। उन सबको भगवान् रुद्र का सायुज्य तथा सारूप्य होता है जो अत्यन्त ही दुर्लभ है। महादेव के प्रसाद से उनको सलोकता और सामीप्य भी हो जाया करता है ।।३१-३२।। क्रौञ्ज द्वीप का जितना विस्तार है उससे दुगुना सभी ओर विस्तार वाला शाकद्वीप स्थित है जो दधि के समुद्र को वेष्ठित करके ही संस्थित रहा करता है ।।३३।। वहाँ पर उदय, रैवत, श्यामकाष्ठ, आम्बिकेय, आरम्य, केसरी ये पर्वत हैं। सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, वेणुका, इक्षुका, धेनुका, गभस्ति—ये नदियाँ हैं ।।३४-३५।।

आसांपिबन्तः सलिलंजीवन्तितत्रमानवाः ।
अनामयाश्चाशोकाश्चरागद्वेषविवर्ज्जिताः ।।३६
मृगाश्चमगधाश्चैव मानसामन्दगास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्चात्रक्रमेणतु ।।३७
यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम् ।
व्रतोपवासैर्विविधैर्द्देवदेवं दिवाकरम् ।।३८
तेषां वैसूर्य्यसायुज्यंसामीप्यञ्चसरूपता ।
सलोकता च विप्रेन्द्राजायतेतत्प्रसादतः ।।३९
शाकद्वीपंसमावृत्य क्षीरोदः सागरः स्थितः ।
श्वेतद्वीपञ्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः ।।४०
तत्र पुण्याजनपदानानाश्चर्यसमन्विताः ।
श्वेतास्तत्रनरानित्यंजायन्ते विष्णुतत्पराः ।।४१
नाधयोव्याधयस्तत्रजरामृत्युभयं न च ।
क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्ज्जिताः ।।४२

वहाँ के निवासी मानव इन नदियों का जल पीया करते हैं और जीवित रहते हैं। वे परम स्वस्थ—शोक से रहित तथा सब प्रकार के राग-द्वेष से से भी रहित होते हैं। मृग—मगध—मानस और मन्दग—ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र यहाँ पर क्रम से समस्त लोकों के एक साक्षो देव का व्रत और उपवासों के द्वारा देवों के देव दिवाकर का विविध साधनों से निरन्तर यजन किया करते हैं ॥३७-३८॥ उनको सूर्य देव के प्रसाद से सूर्य का सायुज्य—सामीप्य—सारूप्य तथा सलाकता हे विप्रेन्द्रगण ! उत्पन्न हो जाया करती है ॥३९॥ शाकद्वीप को समावृत करके क्षीर सागर स्थित रहा करता है। उसके मध्य में श्वेत द्वीप है। वहाँ पर मनुष्य भगवान् नारायण में परायण होते हैं ॥४०॥ वहाँ पर जनपदों के परम पुण्यशाली—आश्चर्य से समन्वित श्वेत नर विष्णु में तत्पर होते हैं। वहाँ पर आधि और व्याधि तथा वृद्धावस्था कुछ भी नहीं होती है और किसी को भी वहाँ मृत्यु का भय नहीं रहा करता है। वहाँ के मनुष्य क्रोध तथा लोभ से विमुक्त होते हैं और माया एवं मात्सर्य से विवर्जित होते हैं ॥४१-४२॥

नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिनः।
नारायणसमाः सर्वे नारायणपरायणाः ॥४३
केचिद्ध्यानपरा नित्यंयोगिनःसंयतेन्द्रियाः।
केचिज्जपन्ति तप्यन्ति केचिद्विज्ञानिनोऽपरे ॥४४
अन्ये निर्बीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविताः।
ध्यायन्ति तत्परं ब्रह्म वासुदेवं सनातनम् ॥४५
एकान्तिनोनिरालम्बामहाभागवताःपरे।
पश्यन्तितत्परंब्रह्म विष्ण्वाख्यंतमसःपरम् ॥४६
सर्वे चतुर्भुजाकाण शङ्खचक्रगदाधराः।
सुपीतवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः ॥४७
अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः।
सुयोगाद्भूतिकरणा महागरुडवाहनाः ॥४८
सर्वे शक्तिसमायुक्तानित्यानन्दाश्चनिर्मलाः।

वसन्तितत्रपुरुषा विष्णोरन्तरचारिणः ।।४९

नित्य ही पुष्ट—आतङ्क से रहित—नित्य आनन्द वाले—भोगी सब नारायण के समान और नारायण में ही परायण होते हैं ।।४३।। कुछ लोग ध्यान में परायण नित्य ही योगी और संयत इन्द्रियों वाले होते हैं। कुच जाप किया करते हैं—कुछ तपश्चर्या करते हैं और कुछ दूसरे विज्ञानी होते हैं ।।४४।। अन्य लोग निर्वाजि योग से ब्रह्म के भाव से भावित रहा करते हैं। उससे भी पर सतातन वासुदेव ब्रह्म का ध्यान किया करते हैं। अन्य लोग एकान्त वासी—अवलम्ब से रहित महा भागवत होते हैं। ये लोग तमोगुण से परे तत्पर विष्णु नाम वाले ब्रह्म को ही देखा करते हैं ।।४५-४६।। सभी चार भुजाओं के आकार वाले—शंख चक्र गदा के धारक—सुन्दर पीतवस्त्र पहिनने वाले और श्री वत्स से अंकित वक्षः स्थल वाले होते हैं ।।४७।। अन्य लोग महेश्वर में परायण रहने वाले हैं। इनका मस्तक त्रिपुण्ड्र से अंकित रहता है। सुयोग से भूति करण और महागरुड के वाहन वाले हैं ।।४८।। सभो लोग शक्ति में समायुक्त नित्य ही आनन्द पूर्ण और निमल होते हैं। वहाँ पर विष्णु भगवान् के अन्तर-चारी पुरुष ही वास किया करते है ।।४६।।

तत्र नारायणस्यान्यद्दुर्गमं दुरतिक्रमम् ।
नारायणं नाम पुरं प्रासादैरुपशोभितम् ।।५०
हेमप्राकारसंयुक्तं स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम् ।
प्रभासहस्रकलिल दुराधर्षं सुशोभनम् ।।५१
हर्म्यप्रासादसंयुक्तं महाट्टालसमाकुलम् ।
हेमगोपुरसाहस्रैर्नाना रत्नोपशोभितैः ।।५२
शुभ्रास्तरणसयुक्तैर्विचित्रैः समलङ्कृतम् ।
नन्दनैर्विविधाकारैः स्रवन्तीभिश्च शोभितम् ।।५३
सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणावेणुनिनादितम् ।
पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम् ।।५४
वाथीभिः सर्वतो युक्तं सोपानैरत्नभूषितैः ।
नदीशतसहस्राढ्यं दिव्यगाननिनादितम् ।।५५

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
चतुर्द्वारमनौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम् ॥५६

वहाँ पर नारायण का नाम और पुर अन्य के लिये बहुत ही दुर्गम और दुरतिक्रम है। यह पुर विशाल प्रासादों से उपशोभित है। इसका आकार (चहार दीवारी) हेम की निर्मित हुई है और स्फटिक मणि के निर्मित मण्डपों से युक्त है। यह सहस्रों भाँति की प्रभाओं से कलिल—दुराधर्ष और परम सुशोभन है ॥५०-५१॥ धनियों के निवास स्थान और प्रासादों से यह पुर सुसम्पन्न है तथा महा अट्टालिकाओं से समाकुल है। अनेक प्रकार के रत्नों से उपशोभित सहस्रों हेम के गोपुरों से युक्त है ॥५२॥ शुभ्र आस्तरणों से संयुक्त विचित्र पदार्थों से समलंकृत है। विविध भाँति के नन्दन वनों तथा निर्झरों से शोभा वाला है ॥५३॥ सभी ओर सरोवरों से युक्त है तथा वीणा और वेणु की ध्वनि से शब्दायमान है। इस पुर में अनेक विचित्र पताकाऐं हैं। इन अनेक पताकाओं से यह पुर शोभा समन्वित है ॥५४॥ इसमें सभी ओर वीथियाँ हैं और रत्नों से भूषित सोपानों से यह पुर प्रासाद युक्त है। इसमें सहस्रों सैकड़ों नदियाँ हैं तथा परम दिव्य गायन से यह ध्वनि मय रहता है। हंस और करण्डवों समाकीर्ण तथा चक्रवाकों से उपशोभित है। इसमें चार द्वार हैं जो अतीव अनुपम हैं और देवों से विद्वेष रखने वालों के लिये वे अगम्य होती हैं ॥५५-५६॥

तत्र तत्राप्सरः सङ्घैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम् ।
नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्ल्लभैः ॥५७
नानाविलाससम्पन्नैः कामुकैरतिकोमलैः ।
प्रभूतचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसंयुतैः ॥५८
ईषत्स्मितैः सुबिम्बोष्ठैर्बालमुग्धमृगेक्षणैः ।
अशेषविभवोपेतैस्तनुमध्यविभूषितैः ॥५९
सुराजहंसचलनैः सुवेषैर्मधुरध्वनैः ।
संलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितैः ॥६०

स्तनभारविनम्रैश्च मधुघूर्णितलोचनैः ।
नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियः ।।६१
उत्फुल्लकुसुमोद्यानैतद्भूतशतशोभितम् ।
असंख्येयगुणं शुद्धमसंख्यैस्त्रिदशैरपि ।।६२
श्रीमत्पवित्रं देवस्य श्रीपतेरमितौजसः ।
तस्यमध्येऽतितेजस्कमुच्चत्प्राकारतोरणम् ।।६३

वहाँ पर अप्सराओं के संघ नृत्य किया करती है इस शोभा से वह युक्त है। वहाँ पर नाना प्रकार के गीतों के विधान के ज्ञाताओं का समुदाय रहता है जो देवगण को भी दुर्लभ हैं ।।५७।। नाना भाँति के विलासों सुसम्पन्न अतीव कोमल—प्रभूत चन्द्र के समान मुखों वाले—नूपुरों की ध्वनि से पूर्वा कामुकों से वह समन्वित हैं ।।५८।। ईषत् स्थित वाले—सुन्दर विम्व के तुल्य ओष्ठों से युक्त—वाले एवं मुग्ध मृग के समान नेत्र वाले—अशेष विभव से परिपूर्ण—शरीर के मध्य भाग की तनुता से विभूषित—सुन्दर राजहंस के समान गतियों से—सुन्दर वेषों से—मधुर स्वनों से—संलाप और आलाप में परम प्रवीण—दिव्य आभरणों से भूषित—स्तनों के भय से विशेष नम्र—मद से घूर्णित लोचनों—अनेक वर्ण के विचित्र अङ्गों से—नाना भोगों की रति पर प्यार करने वालों से यह प्रासाद शोभा सम्पन्न है ।।५९-६१।। खिले हुए कुसुमों वाले उद्यानों से जो इस प्रकार के सैकड़ों हैं वह शोभित है। यह परम शुद्ध है तथा असंख्य देवों के द्वारा भी असंख्येय गुणों वाला है ।।६२।। अमित ओज वाले देवश्री पति का श्री सम्पन्न पवित्र पुर एवं प्रासाद है। उसके मध्य में अत्यन्त तेज युक्त उच्चत्प्रकार तोरणों वाला है ।।६३।।

स्थानं तद्वैष्णवं दिव्यं योगिनां सिद्धिदायकम् ।
तन्मध्ये भगवानेकः पुण्डरीकदलद्युतिः ।।६४
शेतेऽशेषजत्सूतिः शेषाहिशयनेहरिः ।
विचिन्त्यमानो योगीन्द्रैः सनन्दनपुरोगमैः ।।६५
स्वात्मानन्दाऽमृतंपीत्वापुरस्तात्तमसः परः ।
पीतवासात्रिशालाक्षोमहामायोमहाभुजः ।।६६

क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः ।
सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया ।।६७
समास्ते तन्मना नित्यं पीत्वा नारायणामृतम् ।
न तत्राऽधार्म्मिका यान्ति न च देवान्तरालयाः ।।६८
वैकुण्ठंनाम तत्स्थानं त्रिदशैरपि वन्दितम् ।
न मेप्रभवतिप्रज्ञा कृत्स्नशास्त्रनिरूपणे ।।६९
एतावच्छक्यते वक्तुं नारायणपुरं हितत् ।
स एवपरमंब्रह्मवासुदेवःसनातनः ।।७०
शेते नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत् ।।७१
नारायणादिदं जातं तस्मिन्नेवव्यवस्थितम् ।
तमाश्रयतिकालान्तेसएवपरमागतिः ।।७२

वह परम दिव्य वैष्णव स्थान वैष्णवों के लिये तथा योगियों के लिये सिद्धि का दायक है । उसके मध्य में एक ही पुण्डरीक दलों की द्युति से संयुत भगवान् हैं ।।६४।। शेष नाग की शय्या पर सम्पूर्ण जगत का प्रसव करने वाले हरि शयन किया करते हैं । योगीन्द्रों के द्वारा जिनमें सनन्दन पुरोगामी हैं विशेष रूप से चिन्तन किये जाने वाले हैं ।।६५।। स्वात्मानन्द रूपी अमृत का पान करके तमोगुण से परे पुरस्तात् है । पीत वस्त्र वाले, विशाल नेत्रों से युक्त—महामाया सम्पन्न तथा महान् भुजाओं वाले हैं क्षीर सागर कन्या लक्ष्मी के द्वारा नित्य ही दोनों चरण उनके ग्रहण किये जाते हैं । वह देवी समस्त जगत की वन्दना के योग्य हैं और वह हरि की प्रिया भगवान् के पाद मूल में स्थित रहती हैं । वह उन्हीं में मन लगाने वाली नित्य ही नारायण रूपी अमृत का पान किया करती हैं । वहाँ पर कोई भी अधार्मिक पुरुष तथा अन्य देवों में लीन होने वाले पुरुष नहीं जाया करते हैं ।।६५-६८।। वह बैकुण्ठ नाम वाला स्थान है जो देवों के द्वारा भी वन्दित है । सम्पूर्ण शास्त्रों के निरूपण में मेरी प्रज्ञा समर्थन नहीं होती है ।।६९।। यह नारायण का पुर इतना ही कहा जा सकता है । वह ही परम ब्रह्म वासुदेव एवं सनातन है ।।७०।। वही श्रीमान् नारायण प्रभु अपनी माया से समस्त जगत् को मोहित करते हुए वहाँ

पर शयन किया करते हैं ।।७१।। उन्हीं नारायण से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है और उसी प्रभु में यह व्यवस्थित भी रहा करता है कालान्त में यह उसी प्रभु का आश्रय ग्रहण किया करता है क्योंकि वहीं प्रभु परम गति है ।।७२।।

———

५०—पुष्करद्वीपवर्णन

शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन व्यवस्थितः ।
क्षीरार्णवं समाश्रित्य द्वीप पुष्करसंज्ञितम् ।।१
एक एवात्र विप्रेन्द्राः पर्वतोमानसोत्तरः ।
योजनानांसहस्राणिचोर्द्धंपञ्चाशदुच्छ्रितः ।।२
तावदेव च विस्तीर्णःसर्व्वतःपारिमण्डलः ।
सएवद्वीपश्चार्द्धेन मानसोत्तरसंस्थितः ।।३
एकएव महाभागःसन्निवेशोद्विधाकृतः ।
तस्मिन्द्वीपेस्मृतौद्वौतुपुण्यौजनपदौशुभौ ।।४
अपरौ मानसस्याथ पर्व्वतस्यानुमण्डलौ ।
महावीतं स्मृतंवर्षं धातकीखण्डमेव च ।।५
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः ।
तस्मिन्द्वीपेमहावृक्षोन्यग्रोधोऽमरपूजितः ।।६
तस्मिन्निवसति ब्रह्माविश्वात्माविश्वभावनः ।
तत्रैवमुनिशार्दूलशिवनारायणालयः ।।७

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—शाक द्वीप का जितना विस्तार है उससे दुगुने विस्तार से व्यवस्थित क्षीर सागर का समाश्रय ग्रहण करके पुष्कर द्वीप संज्ञा वाला द्वीप है ।।१।। हे विप्रेन्द्र गण ! यहाँ पर मान सरोवर के उत्तर में एक ही पर्वत है। यह एक सहस्र योजनों के आयाम वाला है तथा पचास योजन की ऊँचाई से युक्त है। उतना ही सब ओर से पारिमण्डल विस्तीर्ण है। वह ही द्वीप आधे भाग से मानस के उत्तर में संस्थित है ।।२-३।। यह एक ही महाभाग है जिसका सन्निवेश दो भागों में

किया हुआ है। उस द्वीप में दो परम शुभ और पुण्यशाली जनपद कहे गये हैं ॥४॥ दूसरे मानस के और इसके अनन्तर पर्वत के अनुमण्डल वाले हैं। एक महावीत वर्ष कहा गया है और धातकी खण्ड है ॥५॥ यह पुष्कर द्वीप स्वादिष्ट उदक से युक्त उदधि के द्वारा परिवारित होता है। उस द्वीप में अमरों के द्वारा पूजित एक अत्यन्त महान् न्यग्रोध का वृक्ष है ॥६॥ उसमें विश्व की आत्मा और विश्व पर कृपा करने वाले ब्रह्माजी निवास किया करते हैं। वहीं पर मुनियों में शार्दूल के सदृश शिव तथा नारायण का आलय है ॥७॥

वसत्यत्र महादेवो हरोर्द्धं हरिरव्ययः।
सम्पूज्यमानोब्रह्माद्यैः कुमाराद्यैश्च योगिभिः ॥८
गन्धर्व्वैः किन्नरैर्यक्षै रीश्वरः कृष्णपिङ्गलः।
स्वस्थास्तत्र प्रजाः सर्व्वा ब्राह्मणाः शतशस्त्विषः ॥९
निरामया विशोकाश्चरागद्वेषविवर्ज्जिताः।
सत्यानृतेनतत्रास्तांनोत्तमावममध्यमाः ॥१०
नवर्णाश्रमधर्म्माश्च न नद्यो न चपर्व्वताः।
परेणपुष्करेणाथसमावृत्य स्थितोमहान् ॥११
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद् द्विजसत्तमाः।
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः ॥१२
काञ्चनी द्विगुणा भूमिःसर्वत्रैकशिलोपमा।
तस्याःपरेणशैलस्तुमर्यादाभानुमण्डलः ॥१३
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते।
योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः ॥१४

यहाँ पर महादेव निवास किया करते हैं और हर के ऊपर अव्यय हरि हैं जो ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा तथा कुमारादि योगियों के द्वारा सम्पूज्य मान हैं ॥८॥ गन्धर्व—किन्नर और यक्षों के द्वारा कृष्ण पिङ्गल ईश्वर पूजित हुआ करते हैं। वहाँ पर समस्त—प्रजा स्वस्थ है और ब्राह्मण सैकड़ों कान्ति युक्त हैं ॥९॥ वहाँ पर सभी रोग रहित—शोक से शून्य—राग—द्वेष से हीन होते हैं। वहाँ सत्य और अनृत से उत्तम—

मध्यम और अधम नहीं हैं ॥१०॥ वहाँ वर्णों तथा आश्रमों के धर्म भी नहीं है—न वहाँ नदियाँ हैं और न पर्वत ही हैं। यह पर पुष्कर से समावृत होकर महान् स्थित है ॥११॥ हे द्विज श्रेष्ठो! स्वादिष्ट जल वाले समुद्र इसके सभी ओर है। पर के द्वारा उसकी महती लोक संस्थिति दिखलाई दिया करती है ॥१२॥ वहाँ पर काञ्चन वाली दुगुनी भूमि है और सर्वत्र एक शिला के ही समान है। उसका पर शैल तो मर्यादा का भानुमण्डल है ॥१३॥ प्रकाश से युक्त और विना प्रकाश वाला वह लोकालोक नाम से ही कहा जाता है। सहस्र योजनों के विस्तार वाला है और उसका उच्छ्रय दश योजन होता है ऐसा ही कहा गया है ॥१४॥

तावानेव च विस्तारो लोकालोकमहागिरेः।
समावृत्यतुतंशैलंसर्वतोवैसमस्थितम् ॥१५
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम्।
एतेसप्तमहालोकाःपातालाःसम्प्रकीत्तिताः ॥१६
ब्रह्माण्डाशेषविस्तारः संक्षेपेण मयोदितः।
अण्डानामीदृशानां तु कोटयो ज्ञेयाः सहस्रशः ॥१७
सर्वगत्वात्प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मनः।
अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश ॥१८
तत्रतत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रानारायणादयः।
दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम् ॥१९
समन्तात्संस्थितं विप्रास्तत्र यान्ति मनीषिणः।
अनन्तमेवमव्यक्तमनादिनिधनं महत् ॥२०

लोका लोक महा गिरि का उतना ही विस्तार है उस शैल को समावृत करके ही भी ओर से वह समवस्थित है ॥१५॥ तम अण्ड कटाह से सब ओर में यदि वेष्टित है। ये सात महालोक पाताल नाम से ही कीर्त्तित किये गये हैं ॥१६॥ यह ब्रह्मण्ड का सम्पूर्ण विस्तार मैंने संक्षेप से वर्णन कर दिया है। इस प्रकार के अण्डों की संख्या भी सहस्रों करोड़ है ॥१७॥ अव्ययात्मा कारण प्रधान का सर्वगत होने से इन सब अण्डों में चौदह भुवन हैं ॥१८॥ वहीं-वहीं पर चार मुखों वाले रुद्र और नारायण आदि

होते हैं। दशोत्तर एक-एक मण्डल के आवरण का सप्तक है ॥१६॥ हे विप्रो ! वह सभी ओर संस्थित है। वहाँ पर मनीषोगण जाया करते हैं। वह अनन्त—अव्यक्त—अनादि निधन और महत् है ॥२०॥

अतीत्य वर्त्तते सर्वं जगत्प्रकृतिरक्षरम्।
अनन्तत्वमनन्तस्य यतः सङ्ख्यान विद्यते ॥२१

तदव्यक्तमिदंज्ञेयं तद्ब्रह्म परमं ध्रुवम्।
अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते ॥२२

तस्यपूर्वं मयाप्युक्तं यत्तन्माहात्म्यमुत्तमम्।
गतः स एष सर्वत्रसर्वस्थानेषु पूज्यते ॥२३

भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले।
अर्वणेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः ॥२४
तथातमसि तत्त्वे वाप्येष एव महाद्युतिः।
अनेकधा विभक्ताङ्गः क्रीडतेपुरुषोत्तमः ॥२५
महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।
अण्डाद् ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिदं जगत् ॥२६

वह जगत् की प्रकृति सब अक्षर को अतिक्रमण करके वर्त्तमान है। अनन्त का अनन्तत्व है इसी से उसकी संख्या नहीं होती है ॥२१॥ वह अव्यक्त है—ऐसा ही जानना चाहिए। वह परम ध्रुव ब्रह्म है। यह सर्वत्र अनन्त है। सभी स्थानों में पढ़ा जाता है ॥२२॥ मैंने भी उसका पूर्व कह दिया है जो भी उसका उत्तम माहात्म्य है। वह यह गत सर्वत्र सभी स्थानों में पूजा जाता है ॥२३॥ भूमि में—रसातल में—आकाश में—पवन में—अनल में—सब अर्णवों में और दिव लोक में है–इसमें संशय नहीं है ॥२४॥ तथा तत्त्व में—तम में यह ही महान् द्युति वाला है। अनेक प्रकार से विभक्त अङ्गों वाला पुरुषोत्तम क्रीड़ा किया करते हैं ॥२५॥ महेश्वर पर है। अव्यक्त से अव्यक्त से समुत्पन्न अण्ड है। उस अण्ड से ब्रह्मा समुत्पन्न हुआ है उसने ही इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है ॥२६॥

५०—मन्वन्तरकीर्तने विष्णुमाहात्म्यवर्णन

अतीतानागतानीह यानिमन्वन्तराणि वै ।
तानित्वंकथयास्मभ्यंव्यासञ्चद्वापरेयुगे ॥१
वेदशाखाप्रणयिनो देवदेवस्य धीमतः ।
धर्मार्थानांप्रवक्तारो हीशानस्य कलौ युगे ॥२
कियन्तो देवदेवस्य शिष्याःकलियुगेऽपि वै ।
एतत्सर्वंसमासेनसूतवक्तुमिहार्हसि ॥३
मनुः स्वायम्भुवः पूर्वं ततःस्वारोचिषो मतः ।
उत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥४
षडेते मनवोतीताः सम्प्रतन्तु रवेः सुतः ।
वैवस्वतोऽयं सप्तैतत्सप्तमंवर्त्तते परम् ॥५
स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया ।
अत ऊद्र्ध्वं निवोधध्वं मनोः स्वारोचिषस्य तु ॥६
पारावताश्चतुषिता देवाःस्वारोचिषेऽन्तरे ।
विपश्चिन्नामदेवेन्द्रोवभूवासुरमर्द्दनः ॥७

ऋषियों ने कहा—यहाँ पर अतीत और अनागत जो भी मन्वन्तर हैं उनको आप हमको बतलाइये और द्वापर युग में व्यास को भी बतलाइये ॥१॥ वेदों की शाखाओं का प्रणयन करने वाले—देवों के देव—धीमान् ईशान के कलियुग में धर्मार्थों के प्रवक्ता उस देव देव के कितने शिष्य इस कलियुग में भी विद्यमान हैं। हे सूतजी ! यह सब आप अति संक्षेप से वर्णन करने के योग्य हैं ॥२-३॥ सूतजी ने कहा—सब से पहिले तो स्वायम्भुव मनु हुए थे। उनके बाद स्वारोचिष मनु हुए हैं। फिर उत्तम, तामस—रैवत और चाक्षुष मनु हुए हैं ॥४॥ इस तरह ये छै मनु अतीत हो चुके हैं और इस समय में रवि का पुत्र यह वैवस्वत मनु विद्यमान है। ये सात हैं और सातवाँ परम है ॥५॥ स्वायम्भुव अन्तर को मैंने कल्प के आदि में कह दिया है। इसके आगे स्वारोचिष मनु के विषय में अब समझ लो ॥६॥ स्वारोचिषमनु के अन्तर में पारावत और तुषिता देवगण

हैं। एक विपश्चित् नाम वाला देवेन्द्र असुरों का मर्दन करने वाला हुआ था ॥७॥

ऊर्ज्जस्तम्भस्तथाप्राणो दान्तोऽथ ऋषभस्तथा।
तिमिरश्चार्वरीवांश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥८
चैत्रकिम्पुरुषाद्यास्तु सुताः स्वारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं श्रृणु चोत्ततम् ॥९
तृतीयेऽप्यन्तरे चैव उत्तमोनाम वै मनुः।
सुशान्तिस्तत्रदेवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः ॥१०
सुधामानस्तथा सत्यः शिवश्चाथप्रतर्द्दन।
वशवर्त्तिनःपञ्चैते गणाद्वादशकाःस्मृताः ॥११
रजोगात्रोर्द्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा।
सुतपाः शक्रइत्येते सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥१२
तामसस्यान्तरे देवाःसुरायासहरास्तथा।
सत्याश्च सुधियश्चैवसप्तविंशतिकागणाः ॥१३
शिबिरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः।
बभूव शङ्करे भक्तो महादेवार्च्चने रतः ॥१४

ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, दान्त, ऋषभ, तिमिर, अर्वरीवान् ये सात सप्तर्षि हुए थे ॥८॥ उस स्वारोचिष मनु के चैत्र किम्पुरुष आदि पुत्र हुए थे। यह द्वितीय अन्तर आख्यात कर दिया है। अब उत्तम का श्रवण करिये ॥९॥ तीसरे अन्तर में भी उत्तम नाम वाला मनु था। उसमें सुशान्ति नाम वाला देवेन्द्र था जो शत्रुओं के कर्षण करने वाला था ॥१०॥ सुधामान—सत्य—शिव-प्रतर्दन ये पाँच वशवर्ती थे और द्वादश गण कहे गये हैं ॥११॥ रजोगात्र—ऊर्ध्वबाहु—सवन—अनघ—सुतपा—शक्र ये सात उस समय में सप्तर्षि हुए थे ॥१२॥ तामस मनु के अन्तर में देव सुराया सहर थे। सत्य और सुधी एकाविंशति गण थे ॥१३॥ शतयज्ञोपलक्षण शिवि इन्द्र हुआ था। यह भगवान् शङ्कर का परम भक्त था और महादेव की अर्चना में ही अपनी रति रखता था ॥१४॥

ज्योतिर्द्धाम पृथक्कल्पश्चैत्रोऽग्निवसनस्तथा ।
पीवरस्त्वृषयोह्येतेसप्त तत्रापिचान्तरे ॥१५
पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः ।
मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्द्दनः ॥१६
अमिता भूतयस्तत्र वैकुण्ठाश्च सुरोत्तमाः ।
एते देवगणास्तत्र चतुर्द्दश चतुर्द्दश ॥१७
हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्द्ध्ववाहुस्तथैव च ।
वेदवाहुः सुबाहुश्च स पर्ज्जन्यो महामुनिः ॥१८
एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन्रैवतेऽन्तरे ।
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा ॥१९
प्रियव्रतान्विताह्येतेचत्वारोमनवःस्मृतः ।
षष्ठे मन्वन्तरे चापिचाक्षुषस्तुमनुर्द्विजाः ॥२०
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवांश्चैवनिबोधतः ।
आद्याःप्रभूतभाव्याश्च प्रथनाश्च दिवौकसः ॥२१

ज्योतिर्धाम पृथक् कल्प है । चैत्र, अग्नि, वसन, पीवर, ऋषि ये सात उस अन्तर में हुए थे ॥१५॥ हे विप्रेन्द्रो ! पाँचवे मन्वन्तर में जिसका रैवत यह नाम था । उसमें विभुमन देवेन्द्र था जो असुरों का मर्दन करने वाला था ॥१६॥ उसमें अमित भूति श्री और बैकुण्ठ सुरोत्तम थे । ये चौदह देवगण हुए हैं ॥१७॥ हिरण्य सोम, वेद श्री—ऊर्ध्वबाहु, वेदवाहु, सुबाहु, महामुनि पर्जन्य, ये सप्तर्षि थे । विप्रगण ! ये सब उस रैवत मन्वन्तर में हुए थे । स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत ये सब प्रियव्रत से अन्वित हुए हैं जो चार ये मनु बतलाये गये हैं । षष्ठ मन्वन्तर में भी हे द्विजगण ! चाक्षुष मनु हुए हैं ॥१८-२०॥ उसमें मनोजव इन्द्र हुए थे और अब देवों की भी बात समझ लो । आद्या, प्रभूत भाव्या और प्रथना ये देवगण थे ॥२१॥

महानुभावा लेख्याश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ।
विरजाश्च हविष्मांश्च सोमो मनुसमः स्मृतः ॥२२

अविनामा सविष्णुश्च सप्ताहन्नृषसः शुभाः ।
विवस्वतः सुतो विप्रोः श्राद्धदेवो महाद्युतिः ॥२३
मनुः सम्वर्त्तना विप्राःसाम्प्रतंसप्तमेऽन्तरे ।
आदित्यावसवो रुद्रा देवास्तत्रमरुद्गणाः ॥२४
पुरन्दरस्तथ वेन्द्रो बभूवपरवीरहा ।
वसिष्ठः कश्यपश्चात्रिजमदग्निश्च गौतमः ॥२५
विश्वामित्रा भरद्वाजः सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ।
विष्णुशक्तिरनोपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ ॥२६
तदंशभूता राजानः सर्वे च त्रिदिवौकसः ।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं प्रकृत्यां मानसः सुतः ॥२७

महानुभाव और लेख्य ये भी उस समय में देवगण थे । विरजा और हविष्मान् तथा सोम मनु के समान थे ऐसा ही कहा गया है ॥२२॥ अविनामा और सहिष्णु ये सात शुभ ऋषिगण थे । हे विप्रो ! विवस्वत का पुत्र महान् द्युति वाला श्राद्धदेव था ॥२३॥ हे विप्रगण ! इस समय में सप्तम मन्वन्तर में सम्वर्त्तन मनु है । आदित्य, वसु और रुद्रगण वहाँ पर मरुद्गण देव हैं ॥२४॥ पुरन्दर तथा इन्द्र परवीरदा हुआ था । वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र, भरद्वाज ये सात सप्तर्षि हुए हैं । भगवान् विष्णु की शक्ति अनुपम है जोकि सत्त्व से उद्रिक्त है और स्थिति में स्थित है ॥२५-२६॥ उसके अंशभूत ही समस्त राजा लोग हैं और देवगण हैं । स्वायम्भुव अन्तर में पहिले प्रकृति में मानस सुत हुआ था ॥२७॥

रुचेः प्रजापतेर्जज्ञे तदंशेनाभवद्द्विजाः ।
ततः पुनरसौ देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे ॥२८
तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितैःसहदैवतैः ।
उत्तमेत्वन्तरे विष्णुः सत्यैः सह सुरोत्तमः ॥२९
सत्यायामभवत्सत्यः सत्यरूपो जनार्द्दनः ।
तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि ॥३०

हर्य्यायां हरिभिर्द्देवैर्हरिरेवाभवद्धरिः ।
रैवतेऽप्यन्तरे चैव सङ्कल्पान्मानसो हरिः ॥३१

सम्भूतो मानसैः सार्द्धं देवैःसह महाद्युतिः ।
चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैववैकुण्ठः पुरुषोत्तमः ॥३२

विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्देवतैःसह ।
मन्वन्तरेच सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे ॥३३

वामनःकश्यपाद्विष्णुरदित्यांसम्बभूवह ।
त्रिभिःक्रमैरिमांल्लोकाञ्जित्वायेनमहात्मना ॥३४

पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ।
इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै ॥३५

हे द्विजगण ! प्रजापति ने रुचि को जन्म दिया जो कि उसी के अंश से हुआ था । इसके पश्चात् स्वारोचिष अन्तर के प्राप्त होने पर यह देव हुए ॥२८॥ तुषित देवों के साथ तुषिता में समुत्पन्न हुआ था । उत्तम अन्तर में सत्यों के साथ सुरोत्तम विष्णु हुए थे ॥२९॥ सत्या में सत्य हुआ था जो सत्यरूप वाला जनार्दन है । फिर तामस अन्तर के प्राप्त होने पर पुनः हर्या में हरि देवों के साथ हरि ही हरि हुए थे । रैवत अन्तर में भी संकल्प से मानस हरि हुए थे ॥३०-३१॥ मानस देवों के साथ वह महान् द्युति वाला हुआ था । चाक्षुष अन्तर में भी वैकुण्ठ पुरुषोत्तम थे ॥३२॥ यह वैकुण्ठ देवों के साथ विकुण्ठा में जात हुआ था । वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर कश्यप से विष्णु वामन अदिति में उत्पन्न हुए थे जिस महात्मा ने अपने तीन यह क्रमों के द्वारा इन सब लोकों को जीत लिया था । फिर पुरन्दर को यह निष्कण्टक त्रैलोक्य दे दिया था । सात मन्वन्तरों में यह सब उसके तनु थे ॥३३-३५॥

सप्त चैवाभवन्विप्राः याभिः सम्वर्द्धिताः प्रजाः ।
यस्माद्विश्वमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना ॥३६

तस्मात्सर्वैःस्मृतोनूनं देवैःसर्वेषु दैत्यहा ।
एष सर्वं सृजत्यादौ पातिहन्तिचकेशवः ॥३७

भूतान्तरात्माभगवान्नारायणइति श्रुतिः।
एकांशेनजगत्सर्वं व्याप्यनारायणःस्थितः ॥३८

चतुर्द्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च।
एका भगवतो मूर्त्तिर्ज्ञानरूपा शिवामला ॥३९

वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला।
द्वितीया कालसञ्ज्ञाऽन्या तामसी शिवसञ्ज्ञिता ॥४०

निहन्त्रीसकलस्यान्तेवैष्णवीपरमातनुः।
सत्त्वोद्रिक्तातृतीयान्याप्रद्युम्नेतिचसंज्ञिता ॥४१

जगत्संस्थापयेद्विश्वंसाविष्णोःप्रकृतिर्ध्रुवा।
चतुर्थीवासुदेवस्यमूर्त्तिर्ब्रह्मेतिसञ्ज्ञिता ॥४२

हे विप्रगण! ये सात ही हुए हैं जिनके द्वारा यह प्रजा संकर्षित है। जिससे यह विश्व पूर्ण महात्मा वामन ने ले लिया था ॥३६॥ इसी कारण से वह सबके द्वारा निश्चय स्मृत हैं और देवगण उनका स्मरण करते हैं। सबमें यह दैत्यों के हनन करने वाले हैं। यही आदि काल में सबका सृजन करते हैं—पालन करते हैं और यही केशव अन्त में हनन किया करते हैं ॥३७॥ यह भगवान् भूतों के अन्तरात्मा नारायण हैं—ऐसी श्रुति (वेद वचन) है। नारायण अपने एक अंश से सबमें व्याप्त होकर स्थित रहा करते हैं। यह सगुण हो अथवा निर्गुण भी क्यों न हो चार प्रकार से व्याप्त होकर समस्थित है। एक तो भगवान् की मूर्त्ति है जो ज्ञान के रूप वाली हैं—शिवा है और अमला है ॥३८-३९॥ वही वासुदेव के अभिधान (नाम) वाली है। यह गुणों से अतीत है और सुनिष्कला है। दूसरी काल संज्ञा वाली है जो तामसी है और शिव की संज्ञा से संयुक्त है ॥४०॥ अन्त में वैष्णवी परम तनु ही सबका निहनन करती है। सत्त्व से उद्रिक्त जो अन्यातृत है वह प्रद्युम्न इस नाम से संज्ञा वाली है ॥४१॥ विष्णु की वह ध्रुव प्रकृति इस जगत् विश्व का संस्थापन किया करती है। चौथी वासुदेव की मूर्त्ति ब्रह्म इस संज्ञा से युक्त होती है ॥४२॥

राजसी साऽनिरुद्धस्यपुरुषसृष्टिकारिता ।
यः स्वपित्यखिलंहत्वाप्रद्युम्नेन सहप्रभुः ॥ ३
नारायणाख्योब्रह्मासौप्रजासर्गंकरोतिसः ।
यासौनारायणतनुःप्रद्युम्नाख्याशुभास्मृता ॥४४
तया सम्मोहयेद्विश्व सदेवासुरमानुषम् ।
ततःसैव जगन्मूर्त्तिः प्रकृतिःपरिकीर्त्तिता ॥४५
वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणोहरिः ।
प्रधानं पुरुषंकालः सत्त्वत्रयमनुत्तमम् ॥४६
वासुदेवात्मकं नित्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते ।
एकञ्चेदं चतुष्पादं चतुर्द्धा पुनरच्युतः ॥ ७
विभेदवासुदेवोऽसौ प्रद्यम्नो भगवान् हरिः ।
कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम् ॥८
अवतरत्स सम्पूर्णंस्वेच्छयाभगवान् हरिः ।
अनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा ऋषयोविदुः ॥४९
एकोऽयं वेद भगवान् व्यासो नारायणः प्रभुः ।
इत्येतद्विष्णुमाहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमाः ॥
एतत्सत्यं पुनः सत्यमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति ॥५०

वह अनिरुद्ध की राजसी पुरुष सृष्टि कारिता है। जो सबका हनन करके प्रभु प्रद्युम्न के साथ ही शयन किया करता है यही नारायण नाम ब्रह्म है। वही इस युग का सर्ग किया करता है। जो यह नारायण की तनु प्रद्युम्न के नाम वाली शुभ कही गयी है उसी से इस विश्व को सम्मोहित किया करती है जिसमें देव—असुर और मनुष्य सभी हैं। इसके पश्चात् वही जगत् की मूर्त्ति प्रकृति—इस नाम से कीर्त्तित हुई है ॥४३-४५॥ वासुदेव अनन्त आत्मा वाला केवल निर्गुण हरि है। प्रधान पुरुष–काल यह उत्तम सत्त्वत्रय है। यह नित्य वासुदेव स्वरूप वाला है—यही जानकर मुक्ति प्राप्त किया करता है। यही एक अच्युत है जो चार पाद वाला चार भागों में विभक्त है ॥४६-४७॥ यह वासुदेव हरि विभेद वाला होकर प्रद्युम्न हुआ था। कृष्ण द्वैपायन व्यास स्वयं विष्णु नारायण

ही हैं ।।४८।। भगवान् हरि अपनी इच्छा से सम्पूर्णतया अवतरित हुए थे। यह अनाद्यन्त परमब्रह्म है जिसको देवगण और ऋषि वृन्द भी नहीं जानते हैं ।।४९।। यह एक ही वेद भगवान् प्रभु नारायण व्यास हैं। हे मुनिश्रेष्ठो ! यह इतना सा भगवान् विष्णु का माहात्म्य हमने वर्णित कर दिया है। यह सत्य है और पुनः सत्य है—इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त मनुष्य मोह को प्राप्त नहीं होता है ।।५०।।

———

५२—वेदशाखाप्रणयन

अस्मिन्मन्वन्तरेपूर्वं वर्त्तमानेमहान् प्रभुः ।
द्वापरेप्रथमेव्यासो मनुःस्वायम्भुवो मतः ।।१
विभेद वहुधा वेदं नियोगाद्ब्रह्मणः प्रभोः ।
द्वितीयेद्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।।२
तृतीयेचोशनाव्यासश्चतुर्थेस्याद्वृहस्पतिः ।
सवितापञ्चमेव्यासःषष्ठे मृत्यु प्रकीर्त्तितः ।।३
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मतः ।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मतः ।।४
एकादशे तु ऋषभः सुतेजा द्वादशे स्मृतः ।
त्रयोदशे तथा धर्म्मः सुचक्षुस्तु चतुर्द्दशे ।।५
त्र्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः ।
कृतञ्जयः सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतञ्जयः ।।६
ततोव्यासोभरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वन्तुगौतमः ।
वाचश्रवाश्चैकविंशेतस्मान्नारायणःपरः ।।७

महर्षि सूतजी ने कहा—इस वर्त्तमान मन्वन्तर में पहिले महान् प्रभु व्यास देव प्रथम द्वापर के आने पर स्वायम्भुव मनु माने गये हैं। इन्होंने प्रभु ब्रह्माजी के नियोग से वेद के बहुत प्रकार से विभेद कर डाले थे। द्वितीय द्वापर में वेद व्यास प्रजापति थे ।।१-२।। तीसरे द्वापर में व्यास ही उशना थे और चौथे में वृहस्पति हुए थे। पाँचवें में सविता और षष्ठ में

व्यास मृत्यु बताये गये हैं। सातवें में इन्द्र थे और आठवें में वसिष्ठ हुए। नवम में सारस्वत और दशवें में त्रिधामा हुए थे। एकादशम में ऋषभ थे और बारहवें में सुतेजा हुए थे। त्रयोदश में धर्म तथा चौदहवें में सुचक्षु हुए थे ।।३-५।। पन्द्रहवें में त्रय्यारुणि–षोडश में धनञ्जय हुए। सत्रहवें में कृतञ्जय हुए और अठारहवें में ऋतञ्जय हुए थे ।।६।। इसके पश्चात् व्यास भरद्वाज और उसके ऊपर गौतम थे। एकविंश में वाचश्रवा थे। उससे पर नारायण हुए थे ।।७।।

तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्परः स्मृतः।
पञ्चविंशे तथा प्राप्ते यस्मिन्वै द्वापरे द्विजाः ।।८
(सप्तविंशेतथाव्यासोजातूकर्णोमहामुनिः)।
पराशरसुतोव्यासःकृष्णद्वैपायनोऽभवत् ।।९
स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः ।।१०
पाराशर्य्योमहायोगीकृष्णद्वैपायनोहरिः।
आराध्यदेवमीशानंदृष्ट्वास्तुत्वात्रिलोचनम्।
तत्प्रसादादसौ व्यास वेदानामकरोत्प्रभुः ।।११
अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान्।
जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेवच ।।१२
पैलं तेषां चतुर्थञ्च पञ्चमं मां महामुनिः।
ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।।१३
यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च।
जैमिनिं सामवेदस्य पाठकं सोऽन्वपद्यत ।।१४

त्रयोविंश में तृणबिन्दु थे इसके आगे फिर वाल्मीकि हुए थे। पञ्च-विंश के प्राप्त होने पर हे द्विजगण! जिस द्वापर में सप्तविंश में व्यास जातुकर्णि महामुनि थे। फिर पराशर का पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास हुए थे ।।८-९।। वह ही कृष्ण द्वैपायन व्यास समस्त वेदों और पुराण के प्रदर्शक हुए थे ।।१०।। पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन हरि महान् योगी थे। इन्होंने ईशान देव की समाराधना की थी। इनका दर्शन करके स्तवन त्रिलोचन प्रभु का किया था। उनके पूर्ण प्रसाद से ही इन व्यासदेव ने

वेदों का विस्तार किया था ॥११॥ इसके अनन्तर उन्होंने अपने चार वेदों के पारगामी विद्वान् शिष्यों को इनका ग्रहण कराया था। उनके नाम ये हैं—जैमिनी—सुमन्तु—वैशम्पायन और उनमें चतुर्थ शिष्य पैल था। उन महामुनि पाँचवाँ मुझको भी ग्रहण कराया था। उस महा मुनीन्द्र ने पैल को ऋग्वेद का पाठक कहकर ही ऋग्वेद का ग्रहण कराया था ॥१२-१३॥ वैशम्पायन को यजुर्वेद का प्रवक्ता बना दिया था। जैमिनि को सामवेद का पाठ करने वाला व्यास देव ने बताया था ॥१४॥

तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत् ॥१५
एकआसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा प्रकल्पयत्।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥१६
आध्वर्यवं यजुर्भिः स्यादग्निहोत्रं द्विजोत्तमाः!।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाऽप्यथर्वभिः ॥१७
ततः सत्रे च उद्धत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजूंषि तु यजुर्वेदं सामवेदन्तु सामभिः ॥१८
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखानान्तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत् ॥१९
सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रविभेद सः।
अथर्वाणमथो वेदं विभेद कुशकेतनः ॥२०
भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः।
सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनः ॥२१

उसी भाँति अथर्ववेद का प्रवक्ता परमश्रेष्ठ ऋषि सुमन्तु को बनाया था। मुझे इतिहास पुराणों का प्रवचन करने के लिये ही नियोजित किया था ॥१५॥ यजुर्वेद एक ही था किन्तु उसको चार प्रकार का प्रकल्पित किया है। उसमें धातुर्होत्र हुआ था उसी से यज्ञ किया था ॥१६॥ हे द्विजोत्तमो! आध्वर्यव यजु से हुआ था और हे द्विजोत्तमो! अग्नि होत्र—औद्गात्र साम से किया था और ब्रह्मत्व अथर्व से किया था

।।१७।। वहाँ पर सत्र में उद्धरण करके भगवान् प्रभु ने ऋग्वेद को किया था। यजू से यजुर्वेद और सामों से सामवेद इस प्रकार से एक विंशति भेदों से पहिले समय में ऋग्वेद को किया था। और सौ शाखाओं से युक्त यजुर्वेद को किया था।।१८-१९।। उन प्रभु ने एक सहस्र शाखाओं से सामवेद का विभेद किया था। इसके अनन्तर कुश के तन ने अथर्ववेद का विभेद किया था।।२०।। प्रभु व्यास देव ने पुराणों को अठारह भेदों से युक्त किया था। सो यह एक ही वेद चार पादों वाला पूर्व पुरातन है।।२१।।

ओङ्कारो ब्रह्मणो जातः सर्वदोषविशोधनः।
वेदविद्योऽथ भगवान्वासुदेवः सनातनः।।२२
स गीयते परो वेदैर्यो वेदैनं स वेदवित्।
एतत्परतरं ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम्।।२३
वेदवाक्योदितन्तत्त्वं वासुदेवः परम्पदम्।
वेदविद्यमिम वेत्ति वेदं वेदपरो मुनिः।।२४
अवेदं परमं वेत्ति वेदनिःश्वासकृत्परः।
स वेदवेद्यो भगवान्वेदमूर्त्तिमहेश्वरः।।२५
स एव वेद्यो वेदश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते।
इत्येतदक्षरं वेदमोङ्कारं वेदमव्ययम्।।
अवेदञ्च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः।।२६

ओङ्कार ब्रह्म से ही समुत्पन्न हुआ है जो सभी दोषों का विशेष रूप शोधन करने वाला होता है। यह वेद की विद्या वाला भगवान् वासुदेव सनातन है।।२२।। वह वेदों के द्वारा पर गाया जाता है। जो इसको जानता है वही वेदो का वेत्ता अर्थात् ज्ञाता है। इससे पर तर ब्रह्म है जो उत्तम—आनन्द स्वरूप ज्योति है।।२३।। वे दवा क्यों से कथित तत्व है कि वासुदेव भगवान् ही परम पद है। वेद में पर मुनि वेदों के द्वारा जानने के योग्य इनको जानता है वही वेद को भी समझता है। जो अवेद को ही परम समझता है वह तो पर वेद निःश्वास कृत है। वह भगवान् वेद मूर्त्ति महेश्वर वेदों के द्वारा ही वेद्य हैं।।२४-२५।। वह ही वेद्य

अर्थात् ज्ञान के प्राप्त करने के योग्य है और वही वेद भी है। इसी का आश्रय ग्रहण करके छुटकारा होता है। इस तरह यह अक्षर वेद ओंकार अव्यय वेद है। पाराशर्य महामुनि ऋग्वेद को जानते हैं ॥२६॥

५३—वैवस्वत मन्वन्तर में शिवावतार वर्णन

वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु ।
महादेवावताराणि कलौ शृणुत सुव्रताः ॥१
आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युतिः ।
नाम्ना हिताय विप्राणामभूद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥२
हिमवच्छिखरे रम्ये सकले पर्वतोत्तमे ।
तस्य शिष्याः प्रशिष्याश्च बभूवुरमितप्रभाः ॥३
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः ।
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥४
सुतारोमदनश्चैव सुहोत्रः कङ्कणस्तथा ।
लोकाक्षिस्त्वथयोगीन्द्रोजैगीषव्योऽथसप्तमे ॥५
अष्टमे दधिवाहः स्यान्नवमे ऋषभःप्रभुः ।
भृगुस्तुदशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्रः पुरःस्मृतः ॥६
द्वादशेतिसमाख्यातो बाली वाथ त्रयोदशे ।
चतुर्द्दशे गौतमस्तु वेददर्शी ततः परः ॥७

महामहर्षि सूतजी ने कहा—हे सुव्रतो ! द्वापर में वेद व्यास के अवतारों को वर्णित कर दिया है अब इस कलियुग में महादेव के अवतारों का श्रवण करिये ॥१॥ आद्य कलियुग में महान् द्युति वाले देवों के भी देव श्वेत नाम विप्रों के हित सम्पादन के लिये वैवस्वत अन्तर में हुए थे ॥२॥ हिमवान् पर्वतराज के सकल पर्वतों में उत्तम और परम रम्य शिखर में उसके शिष्य एव प्रशिष्य अपरिमित प्रभा से सम्पन्न हुए थे ॥३॥ श्वेत—श्वेतशिख—श्वेतास्य और श्वेत लोहित ये चार महान् आत्मा वाले वेदों के पारगामी मनीषी ब्राह्मण थे ॥४॥ सुतर—मदन—

वसुहोत्र—कङ्कण—लोकाक्षि—योगीन्द्र—जैगीषव्य सप्तम में—अष्टम में दधिवाह—नवम में ऋषभ प्रभु—दशम में भृगु कहे गये हैं। इससे उग्र पुर कहा गया है। ये द्वादश कहे गये हैं। त्रयोदश में वाली—चतुर्दश में गौतम और इसके आगे वेददर्शी हुए थे ॥५-७॥

गोकर्णश्चाभवत्तस्माद्गुहावासः शिखण्डधृक्।
यजमाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली तथा ॥८
महायामो मुनिः शूली डिण्डमुण्डीश्वरः स्वयम्।
सहिष्णुः सोमशर्म्मा च नकुलीश्वर एव च ॥९
(वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिशूलिनः।
अष्टाविंशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभोः ॥
तीर्थकार्यावतारे स्याद्देवेशो नकुलीश्वरः ॥)
तत्रदेवाधिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः।
शिष्या बभूवुश्चान्येषां प्रत्येकंमुनिपुङ्गवाः ॥१०
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरी भक्तिमास्थिताः।
क्रमेण तान्प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान् ॥११
(श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः ॥)
दुन्दुभिः शतरूपश्चऋचीकःकेतुमांस्तथा।
विशोकाश्च विकेशश्चविशाखःशापनाशनः ॥१२
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्द्दमो दुरतिक्रमः।
सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः ॥१३
दालभ्यश्च महायोगी धर्म्मात्मानो महौजसः।
सुधामा विरजाश्चैवशङ्खवाण्यज एव च ॥१४

इससे गोकर्ण हुए थे जो गुहा में आवास करने वाले और शिखण्ड के धारी थे। यजमाल्य—अट्टहास–दारुक—लाङ्गली–महायाम–मुनि–शूली–स्वयं डिण्डमुनीश्वर—सहिष्णु—सोमशर्म्मा—नकुलीश्वर ये वैवस्वत मन्वन्तर में भगवान् शम्भु शूली के अवतार हुए हैं। अन्त कलियुग में ये अट्ठाईश प्रभु के अवतार कहे गये हैं। तीर्थ कार्यावतार में देवेश नकुलीश्वर हुए हैं। वहाँ पर देवाधि देव के चार तपोधन शिष्य हुए थे।

हे मुनि पुङ्गवो ! अन्यों के प्रत्येक हुआ था ।।८-१०।। ये सब प्रसन्न मन वाले—दमनशील—ईश्वरीय भक्ति भाव में समास्थित हुए थे । अब मैं क्रम से उन योग के परम वेत्ता योगियों को बतलाता हूँ ।।११।। श्वेत—श्वेतशिख—श्वेतास्य—श्वेत लोहित—दुन्दुभि—शतरूप—ऋचीक तथा केतुमान्—विशोक—विकेश—विक्षाख—शापनाशन—सुमुख—दुर्मुख—दुर्दम—दुरतिक्रम—सनक—सनातन—सनन्दन—दालभ्य और महायोगी ये सब महान् आत्मा वाले तथा महान् ओज से सुसम्पन्न हुए हैं । सुधामा–विरजा–शंखण–अज हुए ।।१२-१४।।

सारस्वतस्तथा मोघोधनवाहः सुवाहनः ।
कपिलश्चासुरिश्चैवबोढुः पञ्चाशखोमुनिः ।।१५
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा ।
चलबन्धुर्निरामित्रः केतुश्रृङ्गस्तपोधनाः ।।१६
लम्बोदरश्च लम्बश्च विक्रोशो लम्बकः शुकः ।
सर्वज्ञःसमबुद्धिश्च साध्यासाध्यस्तथैव च ।।१७
सुधामा काश्यपश्चाथ वसिष्ठोवरिजास्तथा ।
अत्रिरुग्रस्तथा चैवश्रवणोऽथसुवैद्यकः ।।१८
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशशीरः कुनेत्रकः ।
कश्यपो ह्युशनाचैवच्यवनोऽथबृहस्पतिः ।।१९
खच्चास्यो वामदेवश्च महाकालो महानिलिः ।
वाजश्रवाः सुकेशश्च श्यावाश्वः सुपरथीश्वरः ।।२०
हिरण्यनाभः कौशल्योऽकाक्षुः कुथुभिघस्तथा ।
सुमन्तवर्च्चसो विद्वान्कबन्धः कुशिकन्धरः ।।२१

सारस्वत—मोघ—धनवाह—सुवाहन—कपिल—आसुरि—वोढु—पञ्चशिख मुनि—पराशर—गर्ग—भार्गव–अङ्गिरा–चलबन्धु- निरामित्र–केतुश्रृङ्ग ये तपोधन हुए हैं ।।१५-१६।। लम्बोदर—लम्ब—विक्रोश—लम्बक—शुक—सर्वज्ञ—समबुद्धि—साध्यासाध्य हुए हैं ।।१७।। सुधामा–काश्यप—वसिष्ठ—वरिजा—अत्रि—उग्र–श्रवण–सुवैद्यक—कुणि—कुणि बाहु—कुशक्षीर—कुनेत्रक—कश्यप—उशना—च्यवन—वृहस्पति हुए थे

॥१८-१९॥ उच्चास्य—वामदेव—महाकाल—महानिलि—वाजश्रवा—सुकेश—श्यावाश्व—सुपरथीश्वर—हिरण्यनाम—कौशल्य—अकाक्षु—कुक्षुमिथ—सुमन्त-वर्चस—विद्वान्—कवन्ध—और कुशिकन्धर हुए हैं ॥२०-२१॥

प्लक्षो दर्वायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा ।
भल्लाची मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोधनः ॥२२
उषिधा बृहद्रक्षश्च देवलः कविरेव च ।
शालहोत्राग्निवेश्यस्तु युवनाश्वः शरद्वसुः ॥२३
छगलः कुण्डकर्णश्च कुन्तश्चैव प्रवाहकः ।
उलूको विद्युतश्चैव शाद्रको ह्याश्वलायनः ॥२४
अक्षवादः कुमारश्च ह्युलूको वसुवाहनः ।
कुणिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुरुरेव च ॥२५
शिष्या एते महात्मानः सर्वावर्त्तेषु योगिनाम् ।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणाः ॥२६
कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां हिताय च ।
योगेश्वराणामादेशाद्वेदसंस्थापनाय वै ॥२७
ये ब्राह्मणाः संस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा ।
तर्पयन्त्यर्च्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयुः ॥२८

प्लक्ष—दर्वायणि—केतुमान्—गौतम—भल्लाची—मधुपिङ्ग—श्वेतकेतु—तपोधन—उषिधा—वृहद्रक्ष—देवल—कवि—शालहोत्राग्निवेश्य—युवनाश्व—शरद्वसु—छगल—कुण्डकर्ण—कुन्त—प्रवाहक—उलूक—वैद्युत—गर्ग—मित्रक—कुरु ये इतने महात्मा शिष्य योगियों के सर्वावर्त्तों में हुए थे। ये सब मल रहित—अधिक ज्ञान सम्पन्न और ज्ञान योग में परायण थे। ॥२२-२६॥ ब्राह्मणों के हित का सम्पादन करने के लिये ही अवतारों को धारण किया करते हैं तथा योगेश्वरों के समादेश से वेदों की संस्थापना करने के लिये अवतार लिया करते हैं ॥२७॥ जो ब्राह्मण इनका भली भाँति स्मरण किया करते हैं और सर्वदा नमस्कार किया करते हैं—इनका तर्पण करते हैं तथा इनका अर्चन करते हैं वे ब्रह्म विद्या को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥२८॥

इदं वैवस्वतं प्रोक्तमन्तरं विस्तरेण तु ।
भविष्यन्ति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च ।।२९
दशमो ब्रह्मसावर्णोधर्म्मं एकादशःस्मृतः ।
द्वादशो रुद्रसावर्णो रौच्यनामा त्रयोदशः ।।३०
भौत्यश्चतुर्द्दशः प्रोक्तोभविष्यामनवःक्रमात् ।
अयंवःकथितोह्यंशःपूर्वो नारायणेरितः ।।३१
भूतंर्भव्यैर्वर्त्तमानैराख्यानैरुपवृंहितः ।
यः पठेच्छ्रुणुयाद्वापि श्रावयेद्वाःद्विजोत्तमान् ।।३२
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।
पठेद्देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि ।।३३
नारायणं नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम् ।
नमो देवाधिदेवाय देवानां परमात्मने ।।
पुरुषाय पुराणाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।।३४

यह हमने वैवस्व मन्वन्तर विस्तार के साथ वर्णित कर दिया है। इसके बाद सावर्ण और दक्षसावर्ण होगा ।।२९।। दशम ब्रह्म सावर्ण तथा धर्म एकादश कहा गया है। द्वादश रुद्र सावर्ण और रौच्यनाम वाला तेरहवाँ है ।।३०।। भौत्य चतुर्दश कहा गया है। इस प्रकार से ये मनुगण क्रम से होने वाले हैं। हमने यह आप लोगों को नारायण से ईरित पूर्व अंश कह दिया है। जो भूत-भव्य और वर्त्तमान आख्यानों से उपवृंहित है। जो कोई भी इसका पाठ करता है तथा श्रवण करता है अथवा द्विजोत्तमों को श्रवण कराता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है। देवालय में स्नान करके अथवा नदी तीरों में स्नान करके भगवान् नारायण को नमस्कार करे और भाव पूर्वक पुरुषोत्तम को प्रणाम करे। देवों के अधिदेव-देवों के परमात्मा-पुराण पुरुष विष्णु और प्रभाविष्णु के लिये नमस्कार है ।।३१३४।।

———

कूर्म पुराण (उत्तरार्द्ध)

(ईश्वर गीता प्रारभ्यते)

१—ऋषिव्याससम्वादवर्णन

भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायम्भुवःप्रभो ! ।
ब्रह्माण्डस्याऽऽदिविस्तारो मन्वन्तरविनिश्चयः ॥१
तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्म्मतत्परैः ।
ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्त्वया ॥२
तत्त्वञ्चाशेषसंसारदुःखनाशमनुत्तमम् ।
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं तेन पश्येम तत्परम् ॥३
त्वं हि नारायणः साक्षात्कृष्णद्वैपायनात्प्रभो !।
अवाप्ताखिलविज्ञानंस्तत्त्वां पृच्छामहे पुनः ॥४
श्रुत्वामुनीनांतद्वाक्यं कृष्णद्वैपायनात्प्रभुः ।
सूतःपौराणिकःश्रुत्वाभाषितुं ह्युपचक्रमे ॥५
तथास्मिन्नन्तरेव्यासःकृष्णद्वैपायनःस्वयम् ।
आजगाममुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रंसमासते ॥६
तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसंकालमेघसमद्युतिम् ।
व्यासंकमलपत्राक्षं प्रणेमुर्द्विजपुङ्गवाः ॥७

ऋषिगण ने कहा—हे प्रभो ! श्रीमान् आपने स्वायम्भुव सर्ग का वर्णन बहुत ही अच्छी रीति से कर दिया है। आपने इस ब्रह्माण्ड का आदि विस्तार तथा मन्वन्तर का विनिश्चय भी कह सुनाया है ॥१॥ वहाँ पर ईश्वरेश्वर देव का वर्णी एवं धर्म में तत्पर रहने वाले—ज्ञान योग में निरत पुरुषों के द्वारा नित्य ही समाराधन करना चाहिए—यह भी आपने बतला दिया है ॥२॥ अशेष संसार में होने वाले दुःखों के नाश करने वाला उत्तम तत्त्व ब्रह्म के विषय वाला एक ज्ञान ही है। इस लिये हम लोग उसको ही परम देखते हैं। अर्थात् वही सर्वोपरि है—ऐसा

समझते हैं ॥३॥ हे प्रभो ! आप तो स्वयं साक्षात् नारायण है । आपने श्रीकृष्ण द्वैपायन से सम्पूर्ण विज्ञान की प्राप्ति की है । हम आप से ही पुनः पूछते हैं ॥४॥ मुनिवृन्द के इस वाक्य का श्रवण करके सूतजी ने जो परम पौराणिक थे श्रीकृष्ण द्वैपायन से श्रवण करके भाषण करने का उपक्रम किया था ॥५॥ तथा इस मन्वन्तर में कृष्ण द्वैपायन व्यासजी स्वयं ही हे मुनि श्रेष्ठो ! वहाँ पर समागत हो गये थे जहाँ पर यह सत्र हो रहा था ॥६॥ उस समय में वहाँ पर कालमेघ के समान द्युति वाले वेदों के महामनीषो प्रभु कमल के तुल्य नेत्रों वाले व्यास देव का दर्शन करके सबने हे द्विजों में श्रेष्ठ वृन्द ! उनको प्रणाम किया था ॥७॥

पपात दण्डवद्भूमौदृष्ट्वाऽऽपौलोमहर्षणः ।
प्रणम्य शिरसाभूमौप्राञ्जलिर्वशगोऽभवत् ॥८
पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम् ।
समासृत्याऽऽसनं(समाश्वास्यासनं)तस्मैतद्योग्यंसमकल्पयन् ॥९
अथैतानब्रवीद्वाक्यं पराशरसुतः प्रभुः ।
कच्चिन्नहानिस्तपसःस्वाध्यायस्यश्रुतस्यच ॥१०
ततश्च सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम् ।
ज्ञानं तद्ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि ॥११
इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्म्मतत्पराः ।
शुश्रूषाजायतेचैषांवक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥१२
ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात्त्वयोदितम् ।
मुनीनां व्याहृतं पूर्व्वं विष्णुना कूर्म्मरूपिणा ॥१३
श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवतीसुतः ।
प्रणम्यशिरसारुद्रं वचःप्राहसुखावहम् ॥१४

यह लोम हर्षण सूतजी तो उनके चरणों में एक दण्ड की भाँति ही नियतित हो गये थे । जिस समय में उन्होंने वहाँ पर व्यास देव का दर्शन प्राप्त किया था । शिर केवल उनके चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़ कर उनके वंशगत हो गये थे ॥८॥ उन महामुनीन्द्र से शौनकादि समस्त विप्रों ने उनका कुशल समाचार पूछा था और फिर समाश्वासित होकर उनको

एक परमोचित आसन निवेदित किया था ॥९॥ इसके अनन्तर पराशर मुनि के पुत्र ने इन लोगों से यह वाक्य बोला था—आप लोग मुझे यह तो बतलाइये कि यहाँ पर कोई आपकी तपश्चर्या में—स्वाध्याय में और श्रुत में हानि तो नहीं है। इसके उपरान्त सूतजी ने अपने गुरु देव को पुनः प्रणाम करके कहा—हे भगवन् ! आप स्वयं यहाँ पधार आये हैं तो इन समस्त मुनिगण को ब्रह्म के विषय का ज्ञान बताने की कृपा कोजिएगा ॥१०-११॥ ये सब मुनिगण परम शान्त स्वभाव वाले हैं—तपश्चर्या में अहर्निश निरत रहा करते हैं और धर्म में परायण हैं। इन की शुश्रूषा होती है अतएव इनको यह तत्त्व पूर्वक आप बतलाने के योग्य हैं ॥१२॥ जो ज्ञान विमुक्ति के प्रदान करने वाला है और आपने साक्षात् मुझ से कहा था। पहिले कूर्म के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु ने मुनियों को कहा था ॥१३॥ इस प्रकार के सूतजी के वचन का श्रवण करके सत्यवती के सुत मुनि ने शिर से भगवान् रुद्र को प्रणाम करके इस सुख के देने वाले वचन को कहा था ॥१४॥

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैःपुरा।
सनत्कुमारप्रमुखैः सस्वयं समभाषत ॥१५
सनत्कुमारःसनकस्तथैव वसनन्दनः।
अङ्गिराारुद्रसहितोभृगुः परमधर्म्मवित् ॥१६
कणादः कपिलो गर्गोवामदेवोमहामुनिः।
शुक्रोवशिष्ठोभगवान्सर्व्वेसंयतमानसाः ॥१७
परस्परं विचार्य्यैते संयमाविष्टचेतसः।
तप्तवन्तस्तपो घोरंपुण्येबदरिकाश्रमे ॥१८
अपश्यंस्ते महायोगमृषिधर्म्मसुतं मुनिम्।
नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा ॥१९
सस्तूय विवधैः स्तोत्रैःसर्व्ववेदसमुद्भवैः।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्तायोगिनोयोगवित्तमम् ॥२०
विज्ञाय वाञ्छितं तेषांभगवानविसर्व्ववित्।
प्राहगम्भीरयावाचाकिमर्थंतप्यतेतपः ॥२१

व्यास देव ने कहा—पहिले समय में योगीश्वरों ने देवाधि देव महादेव जी से पूछा था जिनमें सनत्कुमार आदि प्रमुख पूछने वाले थे। उस समय में भगवान् रुद्र ने स्वयं ही श्रीमुख से कहा था ॥१५॥ वहाँ पर सनत्कुमार—सनक—सनन्दन—अङ्गिरा—रुद्र सहित भृगु जो परम धर्म के वेत्ता थे—कणाद—कपिल—गर्ग—महामुनि वामदेव—शुक्र—वसिष्ठ भगवान् ये सभी परम संयत मन वाले उपस्थित थे ॥१६-१७॥ इन सब ने परस्पर में भली-भाँति विचार करके सभी सयम में आविष्ट चित्त वाले होकर तप का तपन कर रहे थे जो परम घोर था और वदरिकाश्रम में किया जा रहा था। उन्होंने ऋषि धर्म सुत महायोग मुनि को देखा था उस समय में नर के सहित अनाद्यन्त नारायण थे ॥१८-१९॥ समस्त वेदों से समुद्भूत विविध स्तोत्रों से उनका स्तवन करके भक्तिभाव से संयुक्त होकर योगियों ने योग के परम वेत्ता प्रभु को प्रणाम किया था ॥२०॥ सर्व वेत्ता भगवान् ने उनके हार्दिक वाञ्छित को जान कर उन्होंने गम्भीर वाणी से कहा था कि आप लोग यह तपश्चर्या किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये कर रहे हैं ॥२१॥

अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानंसनातनम् ।
साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम् ॥२२

वयंसंयममापन्नाः सर्वेवैब्रह्मवादिनः ।
भवन्तमेकं शरणं प्रपन्नापुरुषोत्तमम् ॥२३

त्वंवेत्सि परमं गुह्यं सर्वन्तुभवानृषिः ।
नारायणःस्वयंसाक्षात्पुराणोऽव्यक्तपूरषः ॥२४

नह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वरम् ।
सत्वमस्माकमचलं संशयं छेत्तुमर्हसि ॥२५

किं कारणमिदं कृत्स्नं को नु संसरते सदा ।
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किन्निमित्तकः ॥२६

कः संसार इतीशानः को वा सर्वंप्रपश्यति ।
किं तत्परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि ॥२७

एवमुक्त्वातुमुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम् ।
विहायतापसंवेषं संस्थितंस्वेन तेजसा ।।२८

उन समस्त मुनियों ने परम प्रहृष्ट मन वाले होकर उन सनातन विश्वात्मा साक्षात् नारायण जो सिद्धि के पूर्ण सूचक थे वहाँ पर समागत देव से कहा था ।।२२।। हम सभी लोग परम संयम में समापन्न हो गये हैं और सभी लोग ब्रह्मवादी हैं । अब पुरुषोत्तम एक आपकी हो शरण में प्रपन्न हुए हैं ।।२३।। आप तो भगवान् ऋषि हैं और सभी परम गोपनीय विषय को जानते हैं । आप तो स्वयं साक्षात् अव्यक्त पुरुष पुराण और नारायण हैं ।।२४।। आप परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई भी इसका जानकार नहीं है । सो वही आप अब हमारे इस संशय का छेदन कर देने की कृपा करें क्योंकि आप ही इसके योग्य हैं ।।२५।। इस सब का क्या कारण है—कौन सदा इस तरह से संसरण किया करता है ? आत्मा कौन है ? मुक्ति किसको कहा जाता है ? यह संसार किस निमित्त से होता है ।।२६।। कौन संसार है और कौन सा ईशान सब को देखा करता है ? उस सब से परतर जो ब्रह्म कहा जाता है वह कौन-कैसा और क्या है—यह सभी कुछ आप हम सब को बताने के योग्य हैं । इस प्रकार से मुनिगण ने कहकर पुरुषोत्तम की ओर वे सब देखने लगे थे । जो तापस वेष का त्याग करके अपने ही तेज से वहाँ पर संस्थित थे ।।२७-२८।।

विभ्राजमानं विमलं प्रभामण्डलमण्डितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं देवं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ।।२९
शङ्खचक्रगदापाणिं शार्ङ्गहस्तं श्रियावृतम् ।
न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैवतेजसा ।।३०
तदन्तरेमहादेवःशशाङ्काङ्कितशेखरः ।
प्रसादाभिमुखोरुद्रःप्रादुरासीन्महेश्वरः ।।३१
निरीक्ष्य ते जगन्नाथं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम् ।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या तं परमेश्वरम् ।।३२
जयेश्वर! महादेव! जय भूतपते! शिव !।
जयाशेषमुनीशान! तपसाऽभिप्रपूजित !।।३३

सहस्रमूर्त्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्त्तक ! ।
जयानन्त! जगज्जन्मत्राणसंहारकारक !।।२४

सहस्रचरणेशान शम्भो योगीन्द्रवन्दित !।
जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर ।।३५

वे विभ्राजमान, विमल, प्रभा के मण्डल से मण्डित, श्रीवत्स का चिह्न वक्षःस्थल में रखने वाले, तपे हुए सुवर्ण के समान प्रभा से युक्त, हाथों में शंख चक्र और गदा को धारण करने वाले तथा शार्ङ्ग धनुष-धारी, श्री से समावृत थे। उसी क्षण में कोई भी मनुष्य उनके तेज से दिखलाई नहीं दिया था ।।२९-३०।। उसी अन्तर में शशाङ्क से अङ्कित मस्तक वाले महादेव महेश्वर रुद्र प्रसादाभिमुख होते हुए प्रादुर्भूत हुए थे ।।३१।। जगत् के नाथ, तीन नेत्रों वाले, चन्द्र के भूषण से युक्त उन परमेश्वर का दर्शन करके परम प्रसन्न मन वाले होते हुए भक्ति से उनकी स्तुति की थी ।।३२।। हे ईश्वर ! हे महादेव ! हे भूतपते ! हे शिव ! आपकी जय हो। हे अशेष मुनीशान ! हे तप से अभिपूजित ! आपकी जय हो ।।३३।। हे सहस्र मूर्त्ते ! हे विश्वात्मन् ! हे जगत् के यन्त्र के प्रवर्त्तक ! हे अनन्त ! हे जगत् के जन्म-त्राण और संहार के करने वाले ! आपकी जय हो ।।३४।। हे सहस्र चरणों वाले ईशान ! हे शम्भो ! आप तो योगीन्द्रों के द्वारा वन्दित हैं। हे अम्बिका पते ! हे देव ! हे परमेश्वर ! आपको हमारा नमस्कार है ।।३५।।

संस्तुतो भगवानीशस्त्रयम्बको भक्तवत्सलः ।
समालिङ्ग्य हृषीकेशं प्राह गम्भीरया गिरा ।।३६

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः ।
इमं समागता देशं किन्नु कार्य्यं मयाच्युत ।।३७

आकर्ण्य तस्य तद्वाक्यं देवदेवो जनार्दनः ।
प्राह देवो महादेवं प्रसादाभिमुखं स्थितम् ।।३८
इमे हि मुनयो देवतापसाः क्षीणकल्मषाः ।
अभ्यागतानां शरणं सम्यग्दर्शनकांक्षिणाम् ।।३९

यदि प्रसन्नो भगवान्मुनीनां भावितात्मनाम् ।
सन्निधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि ।।४०

त्वं हि वेत्सि स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव !।
वद त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्यः प्रदर्शय ।।४१

त्र्यम्बक भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान् ईश इस प्रकार से संस्तुत हुए थे और फिर उनने हृषीकेश का समालिङ्गन करके गम्भीर वाणी से कहा ।।३६।। हे पुण्डरीकाक्ष ! हे ब्रह्मवादी मुनीन्द्र गणो ! आप लोग इस देश में किस लिये समागत हुए हैं ? हे अच्युत ! मुझ से आपका क्या कार्य है ? ।।३७।। देवों के देव जनार्दन ने उनके इस वचन का श्रवण करके देव ने प्रसाद के अभिमुख सामने सवस्थित महादेव से कहा था ।।३८।। हे देव ! ये मुनिगण तपस्वी हैं और क्षीण कल्मष वाले हैं । आप भली-भाँति दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा वाले अभ्यागतों के रक्षक हैं ।।३६।। यदि इन भावित आत्मा वाले मुनियों पर आप प्रसन्न हैं तो मेरी सन्निधि में आप उस दिव्य ज्ञान को बताने के योग्य होते हैं ।।४०।। हे शिव ! आप ही अपनी आत्मा को जानते हैं अन्य कोई भी ज्ञाता विद्यमान नहीं हैं । आप वर्णन कीजिए और आत्मा से आत्मा को इन मुनीन्द्रों को दिखलाइये ।।४१।।

एवमुक्त्वा हृषीकेशः प्रोवाचमुनिपुङ्गवान् ।
प्रदर्शयन्योगसिद्धिनिरीक्ष्य वृषभध्वजम् ।।४२

सन्दर्शनान्महेशस्य शङ्करस्याथ शूलिनः ।
कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्त्वतः ।।४३
द्रष्टुमर्हथ देवेशं प्रत्यक्षं पुरतः स्थितम् ।
ममैव सन्निधाने स यथावद्वक्तुमीश्वरः ।।४४
निशम्य विष्णोर्वचनंप्रणम्यवृषभध्वजम् ।
सनत्कुमारप्रमुखाःपृच्छन्तिस्ममहेश्वरम् ।।४५
अथास्मिन्नन्तरेदिव्यमासनंविमलशिवम् ।
किमप्यचिन्त्यंगगनादीश्वरार्थेसमुद्बभौ ।।४६

तत्राऽऽससादयोगात्माविष्णुनासहविश्वकृत् ।
तेजसापूरयन्विश्वंभातिदेवोमहेश्वरः ॥४७
ततो देवाधिदेवेशं शङ्करं ब्रह्मबादिनः ।
विभ्राजमानं विमले तस्मिन्ददृशुरासने ॥४८
तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरेकिल ।
यदन्तरा सर्वमेतद्यतोऽभिन्नमिदं जगत् ॥४९
स वासुदेवमीशानमीशं ददृशिरे परम् ।
प्रोवाच पृष्टो भगवान्मुनीनां परमेश्वरः ॥५०
निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम् ।
तच्छ्रणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयाऽनघाः ।
प्रशान्तमनसः सर्व्वे विशुद्धं ज्ञानमैश्वरम् ॥५१

हृषीकेश भगवान् ने इस प्रकार से कह कर फिर उन श्रेष्ठ मुनियों से कहा था और योग की सिद्धि का प्रदर्शन करते हुए वृषभध्वज का निरीक्षण किया था ॥४२॥ हे मुनिगण ! शूली महेश शङ्कर प्रभु के दर्शन से तात्त्विक रूप से अपने आपको स्वयं कृतार्थ जानने के योग्य हो ॥४३॥ अब आप लोग सब सामने में स्थित प्रत्यक्ष देवेश के दर्शन करने के योग्य हो गये हो । वह ईश्वर मेरी ही सन्निधि में यथावत् कहने के योग्य हैं ॥४४॥ सनत्कुमार जिनमें प्रमुख थे वे मुनिगण भगवान् विष्णु के वचन का श्रवण करके और प्रभु वृषभध्वज को प्रणाम करके महेश्वर से पूछने लगे थे ॥४५॥ इनके अनन्तर इसी अन्तर में दिव्य आसन अति विमल शिव—कुछ अचिन्तनीय ईश्वर के लिये गगन से समुद्भासित हुआ था ॥४६॥ वहाँ पर योगात्मा विश्व का रचयिता विष्णु के ही साथ सम्प्राप्त हुए थे तेज से समस्त विश्व को पूरित करते हुए महेश्वर देव भासित हो रहे थे ॥४७॥ इसके उपरान्त ब्रह्मवादी गण ने देवों के अधिदेवेश शङ्कर को उस विमल आसन पर विभ्राजमान देखा था ॥४८॥ भूतों के ईश उनको आसन पर स्थित सबने देखा । इसके बीच में यह सम्पूर्ण जगत जिससे अभिन्न था ॥४९॥ उनने ईशान ईश परम श्री वासुदेव को देखा था पूछे जाने पर परमेश्वर भगवान् ने मुनियों से कहा था ॥५०॥ हे

अनघो ! स्वात्म योग सर्वोत्तम पुण्डरीकाक्ष का दर्शन कर मेरे द्वारा वर्णित यथा न्याय आप लोग सब श्रवण कीजिए। आप सब प्रशान्त मन वाले हो जाइये और इस विशुद्ध ईश्वरीय ज्ञान को सुनें ॥५१॥

२—शुद्ध परमात्म स्वरूप और योग वर्णन

अवाच्यमेतद्विज्ञानं ममगुह्यं सनातनम्।
यन्न देवाविजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः ॥१
इदं ज्ञानं समाश्रित्यब्राह्मीभूता द्विजोत्तमाः।
न संसारं प्रपद्यन्तेपूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः ॥२
गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद्गोपनीयं प्रयत्नतः।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम् ॥३
आत्माय केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः ॥४
सोऽन्तर्य्यामीसपुरुषः स प्राणःसमहेश्वरः।
स कालोऽत्रतदव्यक्तंसचवेदइतिश्रुतिः ॥५
अस्माद्विजायतेविश्वमत्रैवप्रविलीयते।
स मायीमाययाबद्धः करोतिविविधास्तनूः ॥६
न चाप्ययं संसरति न संसारमयःप्रभुः।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः ॥७

ईश्वर ने कहा—यह विज्ञान वस्तुतः न कहने के योग्य है। यह मेरा अतीव गोपनीय और सनातन है। जिसको हे द्विजाति गण ! देव-वृन्द बहुत यत्न करते हुए भी नहीं जानते हैं ॥१॥ हे द्विजोत्तमो ! इस ज्ञान का समाश्रय करके पहिले होने वाले ब्रह्मवादी गण भी इस संसार में ब्राह्मीभूत होकर नहीं आया करते हैं ॥२॥ यह विषय गुह्य से भी अत्यन्त गुह्य है और प्रयत्न पूर्वक साक्षात् गोप न करने के योग्य है। क्योंकि आप सब लोग ब्रह्मवादी और भक्ति वाले हैं इसी लिये आज मैं आपके सामने इसे कहूंगा ॥३॥ यह आत्मा तो केवल है, स्वच्छ है, शुद्ध

है, सूक्ष्म है और सनातन है। यह सबके अन्तर में है और साक्षात् चिन्मात्र (ज्ञान स्वरूप) है तथा यह तम से परे है ।।४।। वह अन्तर्यामी, पुरुष, प्राण, महेश्वर, काल और अव्यक्त है वह वेद है—ऐसी श्रुति है ।।५।। यह विश्व इसी से समुत्पन्न होता है और अन्त में इसी में विलीन हो जाया करता है। वह मायी माया से बद्ध होकर विविध प्रकार के शरीरों को धारण किया करता है ।।६।। यह कभी भी संसरण नहीं किया करता है और प्रभु यह संसार मय भी नहीं होता है। यह पृथ्वी, जल, तेज, पवन और नभ भी नहीं है ।।७।।

न प्राणो न मानोऽव्यक्तं न शब्दःस्पर्शएवच ।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्त्ता न वागपि ।।८
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः ।
नचकर्त्तानभोक्तावानचप्रकृतिपूरुषौ ।।९
न माया नैव च प्राणा न चैव परमार्थतः ।
यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते ।।१०
तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः ।
छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ ।।११
तद्वत्प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौपरमार्थतः ।
तथात्मामलिनःसृष्टो विकारीस्यात्स्वरूपतः ।।१२
न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि ।
पश्यन्ति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः ।।१३
विकारहीनं निर्द्वन्द्वमानन्दात्मानमव्ययम् ।
अहं कर्त्ता सुखी दुःखीकृशः स्थूलेति या मतिः ।।१४

यह आत्मा न प्राण हैं और न मन, अव्यक्त, शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ही है। न मैं कर्त्ता हूं और न वाणी ही हैं। यह हाथ और चरण, पायु और उपस्थ भी हे द्विजोतमो ! नहीं है। न किसी कर्म का करने वाला है और न कर्मों के बुरे-भले फलों का भोगने वाला ही है। यह न प्रकृति है और न पुरुष ही है। न यह माया है और परमाथ स्वरूप से यह प्राण भी नहीं होता है जिस तरह से प्रकाश और तम का एकत्र कभी

भी सम्बन्ध उपपन्न नहीं हुआ करता है। उसी भाँति इस प्रपञ्च का और परमात्मा का ऐसा ऐक्य सम्बन्ध नहीं होता है। यह इसी भाँति है और सब से भिन्न ही है लोक में छाया और आतप परस्पर में एक दूसरे से विलक्षण ही होते हैं और कभी भी दोनों एकत्र नहीं रह सकते हैं ।।८-११।। उसी तरह यह समस्त प्रपञ्च और पुरुष परमार्थ से विभिन्न ही होते हैं। यही आत्मा जब मलिन हो जाता है तो संसार में सृष्ट होकर स्वरूप से विकारी हो जाया करता है। उसकी फिर सैंकड़ों दूसरे-दूसरे जन्मों में भी कभी मुक्ति नहीं हुआ करती है। मुनिगण ही परमार्थ स्वरूप से अपने आपको अर्थात् अपनी आत्मा को मुक्त देखा करते हैं ।।१२-१३।। वास्तव में विकारों से हीन, निर्द्वन्द्व, आनन्द रूप, अव्यय इस आत्मा को मैं करने वाला हूँ सुखी, दुखी, कृश, स्थूल हूँ—ऐसी जो मति रखते हैं अर्थात् जो ऐसी बुद्धि आत्मा के विषय में किया करते हैं ।।१४।।

सा चाहङ्कारकर्तृत्वादात्मन्यारोपिताजनैः ।
वदन्तिवेदविद्वांसः साक्षिणप्रकृतेःपरम् ।।१५

भोक्तारमक्षरं बुद्धं सर्वत्र समवस्थितम् ।
तस्मादज्ञानमूलोहि संसारः सर्वदेहिनाम् ।।१६

अज्ञानादन्यथाज्ञानात्तत्त्वं प्रकृतिसङ्गतम् ।
नित्योदितंस्वयंज्योतिः सर्वगःपुरुषःपरः ।।१७

अहङ्काराविवेकेन कर्त्ताहमिति मन्यते ।
पश्यन्तिऋषयोऽव्यक्तंनित्यं सदसदात्मकम् ।।१८

प्रधानं पुरुषं बुद्ध्वाकारणंब्रह्मवादिनः ।
तेनायंसङ्गतःस्वात्मा कूटस्थोऽपिनिरञ्जनः ।।१९
स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्येत तत्त्वतः ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद्दुःखं तथेतरत् ।।२०
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः ।
कर्म्माण्यस्य महान्दोषः पुण्यापुण्यमिति स्थिति. ।।२१

वह ऐसी मति अहंकार के कर्त्ता होने से ही हुआ करती है अर्थात् ऐसी बुद्धि के होने का कारण केवल अहङ्कार ही होता है। मनुष्य उसे आत्मा में आरोपित कर लिया करते हैं अर्थात् अहंकार को वस्तु को आत्मा की वस्तु मान लेते हैं। वेद के विद्वान् लोग तो उस आत्मा को प्रकृति से भी परे मानते या समझते हैं। अक्षर, वुद्ध और सर्वत्र संभव-स्थित आत्मा को भोक्ता मानना अनुचित है। समस्त देह धारियों का यह सम्पूर्ण संसार ही अज्ञान के मूल वाला है। अर्थात् इस संसार का मूल ही पूर्ण अज्ञान होता है ॥१५-१६॥ अज्ञान से तथा अन्यथा ज्ञान से यह तत्त्व जव प्रकृति से सङ्गत होता है जो नित्योदित, स्वयं ज्योति, सर्वत्र गमन शील और पर पुरुष है अहंकार के कारण अविवेक से अपने आपको मैं सवके करने वाला कर्त्ता हूँ—ऐसा माना करता है। यह तो अहंकारा-विवेक से मानी हुई बात है वास्तविक नहीं है। ऋषि लोग इस अव्यक्त, नित्य और सदसदात्मक को देखते हैं अर्थात् वास्तविक स्वरूप इसका वे लोग जानते हैं ॥१७-१८॥ प्रधान, पुरुष को भली भाँति समझकर जोकि कारण है ब्रह्मवादी जन उससे सङ्गत यह आत्मा कूटस्थ भी निरञ्जन है। स्वात्मा को जो अक्षर ब्रह्म है इसे जो तात्विक रूप से नहीं जानता है और आत्मा में आत्म विज्ञान जिसको नहीं है इससे इतर दुःख होता है ॥१९-२०॥ राग और द्वेष ये दोष सब भ्रान्ति करने के निबन्धन ही होते हैं। इसके कर्म्म महान् दोष है और फिर पुण्य तथा अपुण्य (पाप) की स्थिति बना करती है ॥२१॥

तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः।
नित्यं सर्वत्र गुह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः ।।२२
एकः सन्तिष्ठते शक्तया मायया न स्वभावतः।
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः ।।२३
भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया।
यथा च धूमसम्पर्क्कान्नाऽऽकाशो मलिनो भवेत् ।।२४
अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्नलिप्यते।
यथा स्वप्रभयाभाति केवलः स्फटिकोपलः ।।२५

उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते ।
ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः ।।२६

अर्थं स्वरूपमेवाऽन्ये पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टयः ।
कूटस्थो निर्गुणोव्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः ।।२७

दृश्यते ह्यर्थ रूपेण पुरुषंर्ज्ञानदृष्टिभिः ।
यथा स लक्ष्यते रक्तः केवलं स्फाटिको जनैः ।।२८

इन्हीं के वश में होने से सबको सब प्रकार के देहों का समुद्भव हुग्रा करता है । वस्तुतः यह ग्रात्मा तो नित्य, सर्वत्र गुह्य स्वरूप वाला, कूटस्थ ग्रौर सभी दोषों से रहित होता है ।।२२।। यह एक ही शक्ति माया से संस्थित रहा करता है स्वभाव से इसकी संस्थिति नहीं होती है । इसी लिये मुनीन्द्रगरण परमार्थं रूप से इसको अद्वैत ही कहा करते हैं ।।२३।। ग्रव्यक्त स्वभाव से ही यह भेद होता है ग्रौर वह माया ग्रात्मा में संश्रय करने वाली है जिस तरह से निर्मल स्वभाव वाला भी ग्राकाश धूम्र के सम्पर्क को प्राप्त कर मलिन हो जाया करता है । उसी भाँति ग्रात्मा की भी मलिनता होती है ।।२४।। अन्तःकरण से सजात भावों से ग्रात्मा भी उसी की भाँति लिप्त नहीं होता है क्योंकि यह तो ग्रपनी प्रभा से ही केवल स्फटिक मरिण की भाँति भासित हुआ करता है ।।२५।। उपाधियों से जब यह रहित होता है तो विमल स्वरूप वाला यह ग्रात्मा भी उसी भाँति प्रकाशमान हुग्रा करता है । विचक्षण लोग इस जगत् को भी ज्ञान स्वरूप वाला ही कहा करते हैं ।।२६।। ग्रन्य लोग इसको अर्थ स्वरूप वाला कहते हैं जिनकी कुदृष्टि होती है वे ही ऐसा इसे समझा करते हैं । स्वभाव से यह निर्गुण, कूटस्थ ग्रौर व्यापी तथा चैतन्य स्वरूप वाला है ।।२७।। ज्ञान की दृष्टि वाले पुरुषों के द्वारा यह अर्थ रूप से दिखलाई दिया करता है जिस तरह से केवल स्फटिक मरिण भी जिसका परम शुभ्र श्वेत वर्ण स्वाभाविक है मनुष्यों को रक्त लक्षित हुग्रा करता है ।।२८।।

रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत्परमपूरुषः ।
तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वत्रगोऽव्ययः ।। ९

उपासितव्यो मन्तव्यःश्रोतव्यश्चमुमुक्षुभिः ।
यदा मनसि चैतन्यं भातिसर्वत्रसर्वदा ।।३०
योगिनः श्रद्दधानस्य तदा सम्पद्यते स्वयम् ।
यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति ।।३१
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।
यदासर्वाणिभूतानि समाधिस्थोनपश्यति ।।३२
एकीभूतःपरेणासौतदाभवतिकेवलम् ।
यदासर्वेप्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिस्थिताः ।।३३
तदासावमृतीभूतः क्षेमंगच्छतिपण्डितः ।
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।।३४
तत एवच विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते सदा ।
यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः ।।३५
मायामात्रं तदा सर्वं जगन्वतिः निर्वृतः ।।३६

यदि उस स्फटिक के साथ रक्तिका जिसका रक्त वर्ण होता है उपधान होने से वह लाल प्रतीत होती है उसी भाँति यह परम पुरुष भी रक्त दिखलाई दिया करता है । इससे यही सिद्ध है कि यह आत्मा तो स्वभाव से अक्षर, शुद्ध, नित्य, अव्यय और सर्वत्र गमन करने के स्वभाव वाला है ।।२९।। मुमुक्षु जनों के द्वारा यह उपासना करने के योग्य, मन्तव्य और सुनने के योग्य है । जिस समय में मन में सर्वत्र और सर्वदा चैतन्य भासित होता है ।।३०।। उस समय में श्रद्धा करने वाले योगी जन स्वयं सम्पद्यमान होता हैं । जिस समय में समस्त प्राणी अपनी आत्मा में ही देखा करता है ।।३१।। समस्त भूतों में उस समय आत्मा ब्रह्म सम्पन्न होता है । जब समाधि में स्थित हुआ भी सब भूतों को नहीं देखता है ।।३२।। उस समय में पर के साथ एकीभूत होकर केवल रहता है । जिस समय में इसके हृदय में स्थित समस्त काम प्रमुक्त हो जाया करते हैं । उसी समय में यह अमृती भूत होकर पण्डित क्षेम को प्राप्त किया करता है । जब यह भूतों के पृथग्भाव को एक में हीं स्थित देखा करता है । इसी से ही सदा ब्रह्म विस्तार को प्राप्त हो जाता है । जिस समय में परमार्थ

स्वरूप से केवल आत्मा को ही देखता है। उस समय में समस्त जगत् माया मात्र होता है। यह निवृंत तभी होता है ॥३३-३६॥

यदा जन्मजरादुःख व्याधीनामेकभेषजम्।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदाशिवः ॥३७
तथा नदीनदालोके सागरेणेकतांययुः।
तद्वादात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत् ॥३८

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः।
अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति ॥३९
विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मंनिर्विकल्पंतदव्ययम्।
अज्ञानमितरत्सर्वं विज्ञानमिति तन्मतम् ॥४०

एतद्वः कथितं साङ्ख्यं भावितंज्ञानमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तसारं हियोगस्तत्रैकचित्तता ॥४१

योगात्सञ्जायते ज्ञानंज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्यनावाप्यंविद्यतेक्वचित् ॥४२

जिस समय में जन्म—जरा—दुःख और व्याधियों की एक मात्र औषध केवल ब्रह्म का ही विज्ञान होता है उसी समय में यह शिव होते हैं। ॥३७॥ जिस प्रकार से लोक में नदी और नद सागर के साथ मिलकर एकता को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी भाँति यह आत्मा भी उस अक्षर निष्कल के साथ मिलकर एकता को प्राप्त हुआ करता है ॥३८॥ इसी लिये केवल विज्ञान ही है न तो प्रपञ्च है और न कोई भी संस्थिति ही है। लोक में अज्ञान से यह विज्ञान आवृत रहा करता है इसी कारण मोह को प्राप्त हुआ करता है ॥३९॥ विज्ञान निर्मल—सूक्ष्म—निर्विकल्प और अव्यय होता है। इसके अतिरिक्त सभी अज्ञान ही होता है। ऐसा मेरा समस्त विज्ञान है ॥४०॥ यह उत्तम सांख्य ज्ञान हमने आप सबके समक्ष में कह सुनाया है। यह सभी वेदान्त का साररूप है। उसमें जो योग है वह चित्त की एकाग्रता ही होता है। योग से ही ज्ञान की उत्पत्ति हुआ करती है। और ज्ञान से ही यांग प्रवृत्त होता है। जो योग ज्ञान

से अभियुक्त होता है उसको कहीं पर भी अप्राप्य नहीं हुआ करता है ।।४१-४२।।

यदेव योगिनो यान्ति साङ्ख्यैस्तदति गम्यते ।
एकं सांख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति स तत्त्ववित् ।।४३
अन्ये हि योगिनोविप्राह्यैश्वर्य्यासक्तचेतसः ।
मज्जन्तितत्रतत्रैव येचान्ये कुण्ठबुद्धयः ।।४४
यत्तत्सर्वमतं दिव्यमैश्वर्यममलं महत् ।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात् ।।४५
एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः ।
कीर्त्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः ।।४६
सर्वरूपः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः ।
सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः ।।४७
अपाणिपादो जवगो (जवनो) ग्रहीता हृदि संस्थितः ।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्णः शृणोम्यहम् ।।४८
वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन ।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः ।।४९

जिसको योगी लोग प्राप्त किया करते हैं उसी को सांख्य वाले प्राप्त करते हैं । यह सांख्य और योग दोनों एक ही हैं । इस तरह से जो सांख्य और योग को एक ही देखा करते हैं वही तत्त्व वेत्ता वस्तुतः देखा करता है ।।४३।। हे विप्रो ! अन्य योगी जन जो ऐश्वर्य से आसक्त चित्त वाले हैं वे वहीं-वहीं पर मग्न होते रहते हैं और जो कुण्ठित बुद्धि वाले हैं वे भी निमज्जित होते रहते हैं ।।४४।। यह सर्व के द्वारा सम्मत मत है जो दिव्य, ऐश्वर्य, महत् और अमल है । जो ज्ञान योग का अभियुक्त होता है वही इस देह के अन्त में उसको प्राप्त किया करता है । यह आत्मा में अव्यक्त, मायावी, परमेश्वर कीर्त्तित किया गया हूँ जो सब वेदों में सर्वात्मा और सर्वमुख बताया गया है । यह सर्वरूप, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर सभी ओर पाणि और पादों वाला मैं अन्तर्यामी और सनातन हूँ । बिना पाणि तथा पादों वाला—जवग, ग्रहोता, हृदय में संस्थित बिना चक्षुओं

वाला भी मैं देखता हूँ तथा कर्णों से रहित होता हुआ भी मैं श्रवण किया करता हूँ ।।४५-४८।। मैं ही वेद हूँ और यह सब भी हूँ। मुझे कोई भी नहीं जानता है। तत्त्वदर्शी लोग एक मुझको महान् पुरुष कहा करते हैं ।।४६।।

पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मनः सूक्ष्मदर्शिनः ।
निर्गुणामलरूपस्य यदैश्वर्य्यमनुत्तमम् ।।५०
यन्न देवा विजानन्ति मोहितामममायया ।
वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वंब्रह्मवादिनः ।।५१
नाहं प्रशस्तः सर्वस्य मायातीतःस्वभावतः ।
प्रेरयामितथापीदं कारणं सरयोविदुः ।।५२
यतो गुह्यतमं देहं सर्वगंतत्त्वदर्शिनः ।
प्रविष्टा मम सायुज्यंलभन्ते योगिनोऽव्ययम् ।।५३
ये हि मायामतिक्रान्ता मम याविश्वीरूपिणी ।
लभन्तेपरमंशुद्धं निर्वाणन्ते मयासह ।।५४
न तेषां परमा वृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद्वेदानुशासनम् ।।५५
तत्पुत्रशिष्योगिभ्योदातव्यंब्रह्मवादिभिः ।
मदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्यं योगसमाश्रयम् ।।५६

सूक्ष्म दर्शी ऋषि लोग आत्मा का हेतु देखते हैं। निर्गुण और अमल रूप वाले का जो उत्तम ऐश्वर्य है उसे ऋषिगण ही देखते हैं ।।५०।। मेरी माया से मोहित हुए देवगण भी जिसको नहीं जानते हैं। हे ब्रह्मवादियो ! आप लोग समाहित होकर श्रवण कीजिए मैं उसको आप लोगों को बतलाता हूँ ।।५१।। मैं भी स्वभाव से सबमें प्रशस्त तथा माया से अतीत नहीं हूँ तो भी मैं इसकी प्रेरणा करता हूँ—इसके कारण को सूरि जन ही जानते हैं ।।५२।। जिससे तत्त्वदर्शी लोग इस सर्वत्र गमनशील गुह्य तम देह में प्रविष्ट होते हुए मेरे सायुज्य की प्राप्ति किया करते हैं वे इस अव्यय को प्राप्त करने वाले योगी जन ही होते हैं ।।५३।। जो लोग मेरी माया का अतिक्रमण करते हैं जो यह विश्व के मोहन करने वाली है वे ही

लोग मेरे ही साथ परम और शुद्ध निर्वाण का लाभ लिया करते हैं ॥५४॥ सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी उनकी परमा वृत्ति नहीं होती है। हे योगीन्द्रगण ! यह मेरे ही प्रसाद का कारण है और यही वेद का अनुशासन है ॥५५॥ सो यह मेरे द्वारा वर्णित विज्ञान जो सांख्य और योग के समाश्रय वाला है ब्रह्मवादियों के द्वारा पुत्र शिष्य और योगियों को ही देना चाहिए ॥५६॥

३—प्रकृति और पुरुष का उद्भव

अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः ।
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्माद्ब्रह्ममयञ्जगत् ॥१
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्ज्जितम् ।
सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम् ॥३
सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम् ।
निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम् ॥४
अभिन्नं भिन्नसंस्थानंशाश्वतंध्रुवमव्ययम् ।
निर्गुणं परमं ज्योतितज्ज्ञानंसूरयोविदुः ॥५
स आत्मासर्वभूतानांसबाह्याभ्यन्तरः परः ।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तोज्ञानात्मापरमेश्वरः ॥६
मयाततमिदंविश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तंवेदविदोविदुः ॥७

ईश्वर ने कहा—अव्यक्त से काल हुआ था—प्रधान और परपुरुष हुए। उन्हीं से यह सभी कुछ हुआ है। इसीलिये यह जगत् ब्रह्ममय है ॥१॥ वही ब्रह्म जिसके सभी ओर हाथ और चरण हैं—सब ही तरफ आखें, शिर और मुख है—सब तरफ श्रुति वाला है वही लोक में सबको समावृत करके स्थित रहता है ॥२॥ समस्त इन्द्रियों से रहित भी है।

वह सबका आधार है—सदा आनन्द स्वरूप वाला है-अव्यक्त है और द्वैत से रहित है ।।३।। सभी उपमानों से रहित है अर्थात् उसकी समता रखने वाला अन्य कोई है ही नहीं । प्रमाणों से भी परे और गोचर भी है । निर्विकल्प, निराभास, सब में आवास बनाने वाला और वह पराभृत है । वह अभिन्न है और भिन्न संस्थान वाला भी वह शाश्वत, ध्रुव और अव्यय है । उसमें कोई भी गुण नहीं है—वह परम ज्योति स्वरूप है । उसके यथार्थ ज्ञान को सूरि जन ही जानते हैं ।।४-५।। वह सभी प्राणियों की आत्मा है । बाह्य, आभ्यन्तर और पर है । वही मैं सर्वत्र गमन करने वाला—परमशान्त, ज्ञानात्मा और परमेश्वर हूँ ।।६।। मैंने ही इस स्थावर और जङ्गम स्वरूप विश्व जगत् का विस्तार किया है । मेरे ही अन्दर में स्थित ये समस्त भूत हैं—ऐसा जो हूँ उसको वेदों के वेत्ता विद्वान् जन ही जानते हैं ।।७।।

प्रधानं पुरुषञ्चैव तद्वस्तु समुदाहृतम् ।
तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोगजः परः ।।८
त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्तं समवस्थितम् ।
तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः ।।९
महदाद्यंविशेषान्तंसम्प्रसूतेऽखिलञ्जगत् ।
या सा प्रकृतिरुद्दिष्टामोहिनीसर्वदेहिनाम् ।।१०
पुरुषः प्रकृतिस्थो वै भुङ्क्ते यः प्राकृतान् गुणान् ।
अहङ्कारविमुक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः ।।११
आद्यो विकारः प्रकृतेमहानितिचकथ्यते ।
विज्ञातृशक्तिविज्ञानात्ह्यहङ्कारस्तदुस्थितः ।।१२
एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते ।
स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः ।।१३
तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्चजन्मसु ।
स विज्ञानात्मकस्तस्य मनःस्यादुपकारकम् ।।१४
तेनाऽपि तन्मयस्तस्मात् संसारः पुरुषस्य तु ।
स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात्कालेन सोऽभवत् ।।१५

उसकी वस्तु प्रधान को और पुरुष को कहा गया है। उन दोनों का यह पर संयोगज काल उद्दिष्ट किया गया है ॥८॥ ये तीनों अनाद्यन्त हैं अर्थात् आदि और अन्त से रहित हैं और ये अव्यक्त में समवस्थित हैं। उसी स्वरूप वाला उससे अन्य मेरा रूप है—ऐसा जान लो ॥९॥ महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त इस सम्पूर्ण जगत् की प्रसूति किया करता है। वही यह प्रकृति है ऐसा कहा कहा गया है। यही प्रकृति समस्त देह धारियों का मोहन करने वाली है ॥१०॥ प्रकृति में स्थित यह पुरुष जो है वह प्राकृत गुणों का उपभोग किया करता है। अहङ्कार से विमुक्त होने से यह पञ्चविंशक कहा जाया करता है ॥११॥ प्रकृति का सबसे प्रथम जो विकार होता है—वही महान् (महत्तत्व) इस नाम से कहा जाता है। विज्ञाता की शक्ति के विज्ञान से वह अहङ्कार के नाम से कहा गया है ॥१२॥ वह महान् के स्वरूप वाला अहङ्कार एक ही कहा जाता है। तत्त्वों के चिन्तन करने वालों के द्वारा वह जीव ही अन्तरात्मा इस नाम से गाया जाता है ॥१३॥ उसके द्वारा जन्मों में सुख और दुःख का ज्ञान किया जाता है। वह तो विज्ञान के स्वरूप वाला है। मन ही उसका उपकार करने वाला हुआ करता है अर्थात् मन के योग से ही सुख दुःखादि का अनुभव किया जाता है ॥१४॥ इससे उसके द्वारा भी पुरुष का यह संसार तन्मय होता है। और वही अविवेक है। वह प्रकृति में काल के साथ सङ्ग से होता है ॥१५॥

कालःसृजति भूतानि कालः संहरतेप्रजाः।
सर्वेकालस्यवशगानकालःकस्याचद्वशे ॥१६

सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः।
प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञःपुरुषोत्तमः ॥१७

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः।
मनसश्चाप्यहंकारमहंकारान्महान्परः ॥१८

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषाद्भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदञ्जगत् ॥१९

प्राणात्परतरं व्योम व्योमतीतोऽग्निरीश्वरः।
सोऽहं ब्रह्माऽव्ययः शान्तो मायातीतमिदञ्जगत् ।।२०
नास्तिमत्तः परंभूतंमाञ्चविज्ञायमुच्यते ।
नित्यं नास्तीतिजगतिभूतंस्थावरजङ्गमम् ।।२१
ऋते मामेवमव्यक्तं व्योरूपं महेश्वरम् ।
सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदाजगत् ।।२२
मायी मायामयोदेवः कालेन सह सङ्गतः ।
मत्सन्निधावेषकालः करोति सकलञ्जगत् ।।
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ।।२३

यह काल ही भूतों का सृजन किया करता है और यही संहार भी कर देता है जिसमें समस्त प्रजा नष्ट हो जाती है। सभी जो बुद्ध भी हैं एक इसी काल के वश में रहने वाले होते हैं। और यह काल किसी के भी वंशगत नहीं होता है ।।१६।। वह अन्तरा सनातन इस सब को दिया करता है। वह प्राण—सर्वज्ञ—पुरुषोत्तम और भगवान् इस नाम से कहा जाता है ।।१७।। अन्य समस्त इन्द्रियों मे परम प्रधान मन को ही महा मनीषीगण कहा करते हैं। मन से भी पर अहंकार है और उस अहङ्कार पर महान् है ।।१८।। महत् से पर अव्यक्त है और उस अव्यक्त से परपुरुष होता है। पुरुष से भगवान् प्राण है और उसका ही यह समस्त जगत् है ।।१६।। प्राण से भी पर तर व्योम है। व्योम से भी अतीत ईश्वर अग्नि है। वह मैं परम शान्त—अव्यय—ब्रह्मा हूँ। यह जगत् माया से अतीत है ।।२०।। मुझसे पर कोई भूत नहीं है। मुझको यथातथा रूप से जान कर यह मुक्त हो जाता है। इस जगत् में स्थावर और जङ्गम भूत नित्य नहीं है ।।२१।। केवल एक मुझको छोड़कर जो अव्यक्त व्योमरूप वाला और महेश्वर है अन्य सदा रहने वाला नहीं है। वही मैं इस सबका सृजन करता हूँ और सदा ही सम्पूर्ण जगत् का संहार भी किया करता हूँ ।।२२।। यह अनन्तात्मा ही नियोजन किया करता है—यही वेद का अनुशासन है ।।२३।।

———

४—शिवमाहात्म्यवर्णन

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः।
माहात्म्यं देवदेवस्य येन सर्वं प्रवर्त्तते ॥१
नाहं तपोभिर्विविधैर्नदानेन चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥२
अहंहिसर्वभूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वतः।
मांसर्वसाक्षिणंलोकोनजानातिमुनीश्वराः ॥३
यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तकः परः।
सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वोतोमुखः ॥४
न मांपश्यन्ति मुनयः सर्वे पितृदिवौकसः।
ब्रह्माचमनवःशक्रो येचान्येप्रथितौजसः ॥५
गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम्।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ॥६
सर्वे लोका न पश्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामहः।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ॥७

ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मवादी जनो ! अब परम सावधान होकर श्रवण करिये मैं अब देवों के भी देव का माहात्म्य आप लोगों को बतलाता हूं जिससे ही यह सब प्रवृत्त होता है ॥१॥ मैं तपश्चर्या से जो अनेक प्रकार की होती है—दान से—इज्या से पुरुषों के द्वारा जाना नहीं जा सकता हूं केवल भक्ति से ही मेरा ज्ञान होता है इसके बिना अन्य सभी साधन व्यर्थ होते हैं ॥२॥ मैं सभी प्राणियों के मध्य में सभी ओर से स्थित रहता हूं। हे मुनीश्वरो ! मुझ को सबका साक्षी (द्रष्टा) यह लोक सर्वथा नहीं जाना करता है ॥३॥ जिसको अन्तरा में यह सभी कुछ है और जो पर तथा सबका अन्त करने वाला है वह मैं ही धाता–विधाता –काल–अग्नि और विश्वतोमुख हूं ॥४॥ मुझ को मुनिगण—पितर और देवगण सभी नहीं देखते हैं। चाहे कोई भी ब्रह्मा हो—मनुगण हो या इन्द्र हो और जो कोई भी प्रथित ओज वाले अन्य हों मुझको नहीं देखते

हैं ।।५।। वेद ही सतत मुझ एक परमेश्वर का ग्रहण किया करते हैं। ब्राह्मण लोग नाना प्रकार के यज्ञों के द्वारा तथा वैदिक मखों के द्वारा मेरा यजन किया करते हैं ।।६।। सब लोक नहीं देखते हैं कि ब्रह्मा लोकों का पितामह है। योगीजन भूतों के अधिपति ईश्वर का ध्यान किया करते हैं ।।७।।

अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः ।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मासर्वसंप्लुतः ॥८
मांपश्यन्तीहविद्वांसोधार्म्मिकावेदवादिनः ।
तेषांसन्निहितोनित्यंयेमांनित्यमुपासते ॥९
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याधार्मिकामामुपासते ।
तेषां ददामितत्स्थानमानन्दंपरमम्पदम् ॥१०
अन्येऽपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः ।
भक्तिमन्तःप्रमुच्यन्ते कालेनापि हि सङ्गताः ॥११
मद्भक्ता न विनश्यन्तिमद्भक्ता वीतकल्मषाः ।
आदावेव प्रतिज्ञातं न मे भक्तःप्रणश्यति ॥१२
योवैनिन्दतितंमूढोदेवदेवं स निन्दति ।
यो हि पूजयते भक्त्या स पूजयतिमांसदा ॥१३
पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् ।
यो मे ददातिनियतं स मे भक्तप्रियोमम ॥१४

मैं ही सब प्रकार के हवियों का भोक्ता हूँ और फलों के भी प्रदान करने वाला हूँ। मैं सब देवों का शरीर होकर सर्वात्मा और सर्व संप्लुत होता हूँ ।।८।। मुझ को वेद वादी धार्मिक विद्वान् ही देखते हैं। मैं भी उनके नित्य ही सन्निहित रहा करता हूँ क्योंकि वे मुझ को नित्य ही उपासना के द्वारा स्मरण किया करते हैं ।।९।। ब्राह्मण क्षत्रिय—वैश्य जो भी धार्मिक होते हैं वे मेरी उपासना किया करते हैं। उनको मैं भी परम-पद आनन्द मय स्थान प्रदान किया करता हूँ ।।१०।। अन्य भी जो अपने धर्म में स्थित रहने वाले शूद्र आदि नीची जाति वाले हैं यदि वे भी भक्ति वाले होते हैं तो प्रमुक्त अवश्य ही हो जाया करते हैं और वे काल के साथ

सङ्गत होते हैं ॥११॥ यहाँ पर भक्ति का महत्त्व और इसके करने का अधिकार सब को बताया गया मेरे भक्त कभी विनष्ट नहीं होते हैं। मेरे भक्त सदा कल्मषों से रहित रहते हैं। मैंने यह सबके आदि में ही प्रतिज्ञा की थी कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं हुआ करता है ॥१२॥ जो भी कोई मूढ़ मेरे भक्त की निन्दा किया करता है वह साक्षात् देवों के देव की निन्दा करने वाला होता है और जो मेरे सच्चे साधु भक्त की पूजा या सत्कार किया करता है वह सदा मेरी ही अर्चना किया करता है। मेरी पूजा से भी अधिक मेरे भक्त की पूजा है ॥१३॥ पत्र-पुष्प-फल और जल जो मेरी समाराधना के कारण वश होकर मुझे समर्पित किया करता है और नियत रूप से देता है वह मेरा परम प्रिय भक्त है ॥१४॥

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
विदधौ दत्तवान्वेदानशेषामात्मनिःसृतान् ॥१५
अहमेवहिसर्वेषांयोगिनां गुरुरव्ययः ।
धार्मिकाणाञ्च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम् ॥१६
अहं हि सर्वं संसारान्मचको योगिनामिह ।
संसारहेतुरेवाहं सर्वससारवर्जितः ॥१७
अहमेव हि संहर्त्ता संस्रष्टा परिपालकः ।
माया वैमामिकाशक्तिर्मायालोकविमोहनी ॥१८
ममैव च परा शक्तिर्या स विद्येति गीयते ।
नाशयामि च तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥१९
अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ।
आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च ॥२०
एका सर्वान्तिरा शक्तिः करोति विविधञ्जगत् ।
(नाऽहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमाश्रिताः ॥)
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता ॥२१

मैंने ही इन समस्त जगतों का आदि स्वरूप परमेष्ठी ब्रह्मा की रचना की थी और मेरी आत्मा से निःसृत समस्त वेदों को उसको मैंने दिया था

॥१५॥ मैं ही समस्त योगिजनों का अव्यय गुरु हूँ। मैं जो धार्मिक जन हैं उनका गोप्ता हूँ और वेदों के विद्वेषियों का मैं निहन्ता हूँ ॥१६॥ मैं हो यहाँ पर योगियों का इस समस्त संसार से मोचन करने वाला हूँ। मैं इस सम्पूर्ण संसार से वर्जित होता हुआ भी इस संसार का हेतु हूँ ॥१७॥ मैं ही संस्रष्टा पालक और संहर्त्ता हूँ। यह जो माया के नाम से प्रख्यात है यह भी मेरी ही एक शक्ति है जो यह माया समस्त लोकों के विमोहन करने वाली है ॥१८॥ मेरी ही पराशक्ति वह है जो विद्या इस नाम से गाई या पुकारी जाया करती है। मैं योगियों के हृदय में स्थित रह कर उस अपनी माया का नाश करा दिया करता हूँ ॥१९॥ मैं ही सभी प्रकार की शक्तियों का प्रवर्त्तक और निवर्त्तक हूँ। मैं इन सब का आधार भूत हूँ और मैं अमृत का निधान हूँ ॥२०॥ एक सबके अन्तर में रहने वाली शक्ति इस विविध जगत् की रचना किया करती है। हे विप्र-गण ! मैं प्रेरणा करने वाला नहीं हूँ। मैं तो परम योग में आश्रित हूँ। वह मन्मयी और मुझ में ही अधिष्ठित रहने वाली ब्रह्म का रूप में समा-स्थित होती है ॥२१॥

अन्याचशक्तिर्विपुलासंस्थापयतिमेजगत् ।
भूत्वानारायणोऽनन्तोजगन्नाथोजगन्मयः ॥२२

तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलञ्जगत् ।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी ॥२३

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे ।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२४

सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतमो मम ।
यो हि ज्ञानेन मान्नित्यमाराधयति नान्यथा ॥२५

अन्ये च हरये भक्ता मदाराधनकारिणः ।
तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येवनावर्त्तन्ते च वैपुनः ॥२६

मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानपुरुषात्मकम् ।
मय्येव संस्थितं चित्तं मया सम्प्रेर्यते जगत् ॥२७

अन्य भी एक विपुला शक्ति है जो मेरे इस जगत् की संस्थापना किया करती है। जो कि शक्ति अनन्त—जगन्मय—जगन्नाथ नारायण होकर ही करती है ॥२२॥ तीसरी भी एक मेरी महती शक्ति है जो इस समस्त जगत् का निहनन किया करती है। वह मेरी शक्ति तामसी शक्ति के नाम से ही प्रख्यात है जो काल नाम वाली और रुद्र के स्वरूप से सम्पन्न होती है ॥२३॥ कुछ लोग मुझ को ध्यान के द्वारा देखा करते हैं और दूसरे कुछ ज्ञान के द्वारा मेरा दर्शन किया करते हैं। कुछ केवल भक्ति योग के ही द्वारा मुझको देख लेते हैं तथा अन्य कुछ कर्मयोग के द्वारा मुझे देखते हैं ॥२४॥ सब ही भक्तों का मैं परम प्रियतम इष्ट हूँ। जो ज्ञान के द्वारा मेरी नित्य ही आराधना करता है अन्यथा नहीं करता है ॥२५॥ अन्य लोग हरि के लिये भक्त होते हैं जो भी मेरे ही समाराधन के कारण से हुआ करते हैं। ये भी मेरी प्राप्ति अवश्य ही कर लिया करते हैं और वे फिर इस ससार में जन्म ग्रहण करके नहीं आया करते हैं ॥२६॥ मैंने ही यह सम्पूर्ण विस्तृत किया है जो प्रधान और पुरुषात्मक जगत् है। मुझ में चित्त संस्थित है मेरे द्वारा ही जगत् प्रेरित होता है ॥२७॥

नाहं प्रेरयिताविप्राः परमं योगमास्थितः।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्योवेद सोऽमृतः ॥२८
पश्याम्यशेषमेवेदं वर्त्तमानं स्वभावतः।
करोति कालो भगवान्महायोगेश्वरःस्वयम् ॥२९
योऽहं सम्प्रोच्यते योगी माया शास्त्रेषु सूरिभिः।
योगीश्वरोऽसौ भगवान्महायोगेश्वरः स्वयम् ॥३०
महत्त्वं सर्वसत्वानां वरत्वात् परमेष्ठिनः।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मामहाब्रह्ममयोऽमलः ॥३१
यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम्।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यतेनात्र संशयः ॥३२
सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रितः।
नृत्यामि योगी सततं यस्तद्वेद स योगवित् ॥३३

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम् ।
प्रसन्नचेतसेदेयं धार्मिकायाऽऽहिताग्नये ।।३४

हे विप्रगण ! मैं वैसे प्रेरणा करने वाला नहीं हूँ क्योंकि मैं तो सदा परम योग में समास्थित रहा करता हूँ । मैं इस सम्पूर्ण जगत् के प्रेरित किया करता हूँ—ऐसा जो भी कोई जानता है वह अमृत ही होता है ।।२८।। मैं इस सब को जो वर्त्तमान है स्वभाव से ही देखा करता हूँ । भगवान् महायोगेश्वर काल स्वयं ही सब कुछ करता रहता है ।।२९।। जो मैं शास्त्रों में सूरियों के द्वारा शास्त्रों में योगी और मायी कहा जाता हूँ । सो यह योगेश्वर भगवान् महा योगेश्वर स्वयं ही है ।।३०।। परमेष्ठी का समस्त सत्त्वों में श्रेष्ठ होने से ही इतना अधिक महत्त्व है । भगवान् ब्रह्म महान् ब्रह्ममय और अमल हैं—ऐसा ही कहा जाता है ।।३१।। जो मुझको इस प्रकार से जानता है कि मैं महायोगेश्वरों का भी ईश्वर हूँ वह अविकल्पक योग से युक्त हो जाया करता है—इसमें यहाँ पर कुछ भी संशय नहीं है ।।३२।। वह मैं प्रेरयिता देव परमानन्द में समाश्रित हूँ । मैं योगी निरन्तर ही नृत्य किया करता हूँ जो उसको जानता है वह योग का वेत्ता है ।।३३।। यह परम गुह्य तम ज्ञान है जो समस्त वेदों में निश्चित किया गया है । इस परम गोपनीय ज्ञान को उसी व्यक्तियों को देना चाहिए जो परम प्रसन्न चित्त वाला हो—परम धार्मिक हो और अहित अग्नि वाला हो ।।३४।।

———

५—शिवनृत्यवर्णनपूर्वकशिवस्तुतिवर्णन

एतावदुक्त्वा भगवान्योगिनां परमेश्वरः ।
ननर्त्त परमं भावमैश्वरं सम्प्रदर्शयन् ।।१

तं ते ददृशुरीशानं तेजसां परमं निधिम् ।
नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले ।।२
यं विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः ।
तमीशं सर्वभूतानामाकाशे ददृशुः किल ।।३

यस्य मायामयं सर्वं येनेदं प्रेर्यते जगत् ।
नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशःखलुदृश्यते ॥४
यत्पादपंकजं स्मृत्वा पुरुषो ज्ञानजम्भयम् ।
जहाति नृत्यमानन्तं भूतेशं ददृशुः किल ॥५
केचिन्निद्राजितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः ।
ज्योतिर्म्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल ॥६
योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्रं प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।
तमेवं मोचनं रुद्रमाकाशे ददृशुः परम् ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—योगियों के परमेश्वर भगवान् इतना कहकर परम ईश्वरीय भाव को भली-भाँति प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे थे ॥१॥ तेज के परम निधि उन ईशान को उन्होंने देखा था और निर्मल गगन में नृत्य करते हुए महादेव को भगवान् विष्णु ने भी देखा था ॥२॥ जिसको यत मानस वाले योग के तत्त्व के ज्ञाता योगी लोग ही जानते हैं उस समस्त प्राणियों के स्वामी को आकाश में देखा था ॥३॥ जिसके द्वारा माया से परिपूर्ण यह जिसका जगत् सम्पूर्ण प्रेरित किया जाता है वही विश्वेश स्वयं नृत्यमान होता हुआ विप्रों के द्वारा निश्चित रूप से देखा जाता है ॥४॥ जिनके चरण कमल का स्मरण करके पुरुष ज्ञान-जम्भय का त्याग कर दिया करता है उस भूतों के ईश को नृत्य करते हुए देखा था ॥५॥ कुछ लोग निद्रा से श्वेत के जीतने वाले—परम शान्त और भक्तिभाव से समन्वित थे वे भी ज्योतिर्मय को देखते हैं । वह योगी दिखलाई दे रहा था ॥६॥ जो अपने भक्तों पर अत्यन्त ही प्यार करने वाला वत्सल है और प्रसन्न होकर जो अज्ञान से मोचन कर देने वाला है उसी इस प्रकार के मोचन करने वाले परम रुद्र देव को आकाश में देखा था ॥७॥

सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणाकृतिम् ।
सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥८
वसानं चर्मवैयाघ्रं शूलासक्तमहाकरम् ।
दण्डपाणि त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम् ॥९

ब्रह्माण्डं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य धिष्ठितम् ।
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं सूर्य्यकोटिसमप्रभम् ॥१०
सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलञ्जगत् ।
नृत्यन्तन्ददृशुर्देवं विश्वकर्माणमीश्वरम् ॥११
महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम् ।
पशूनां पतिमीशानं आनन्दं ज्योतिरव्ययम् ॥१२
पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजंभवरोगिणाम् ।
कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम् ॥१३
उमापतिं विशालाक्षं योगानन्दमयं परम् ।
ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम् ॥१४

सहस्र शिरों से युक्त—सहस्र चरणों की आकृति से सम्पन्न—सहस्र-बाहुओं से शोभित—जटाधारी और अर्द्धचन्द्र से शेखर को भूषित करने वाले—व्याघ्र के चर्म को धारण किये हुए—हाथ में शूल को धारण करने वाले–दण्ड पाणि तीन नेत्रों से संयुत—सूर्य–सोम और अग्नि के लोचनों वाले शिव को देखा था ॥८-९॥ जो अपने तेज से सम्पूर्ण इस ब्रह्माण्ड को समावृत करके अधिष्ठित है—जिसके अतीव कराल दंष्ट्राऐं हैं—जो अत्यन्त दुर्धर्ष और करोड़ों सूर्यों की प्रभाओं के समान प्रभा वाला है उसी महेश्वर को देखा था ॥१०॥ अनल की ज्वालाओं का सृजन करने वाले—समस्त जगत् को दग्ध करते हुए उस विश्व कर्मा ईश्वर को वहाँ पर नृत्य करते हुए देखा था ॥११॥ महायोग वाले–महान् देव–देवों के भी दैवत–पशुओं के पति–आनन्द स्वरूप—ईशान–अव्यय–ज्योति स्वरूप–पिनाकधारी—बिशाल नेत्रों वाले–संसार के महा रोगियों के औषध रूप, कालात्मा, काल के भी काल, देवों के देव महेश्वर को वहाँ पर नृत्य करते हुए देखा था ॥१२-१३॥ उमा के स्वामी, विशाल नेत्रों वाले, परम योग के आनन्द से परिपूर्ण, ज्ञान और वैराग्य के सदन, ज्ञान योग वाले—सनातन प्रभु को नृत्य मान होते हुए देखा था ॥१४॥

शाश्वतैश्वर्यविभवं धर्माधारं दुरासदम् ।
महेन्द्रोपेन्द्रनमितं महर्षिगणवन्दितम् ॥१५

योगिनांहृदि तिष्ठन्तंयोगमायासमावृतम् ।
क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम् ॥१६
ईश्वरेणैक्यमापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः ।
दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रं नारायणात्मकम् ।
कृतार्थंम्मेनिरे सन्तः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः ॥१७
सनत्कुमारः सनको भृगुश्च सनातनश्चैव सनन्दनश्च ।
रैभ्योऽङ्गिरावामदेवोऽथशुक्रोमहर्षिरत्रिःकपिलोमरीचिः ॥१८
दृष्ट्वाऽथ रुद्रं जगदीशितारं तं पद्मनाभाश्रितवामभागम् ।
ध्यात्वाहृदिस्थंप्रणिपत्यमूर्ध्नाकृताञ्जलिस्वेषुशिरःसुभूयः॥१९
ओंकारमुच्चार्य विलोक्य देवमन्तःशरीरं निहितं गुहायाम् ।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभिरानन्दपूर्णाहितमानसा वै ॥२०

परम शाश्वत ऐश्वर्य और विभव वाले—धर्म के आधार—दुरासद—महेन्द्र और उपेन्द्र के द्वारा प्रणमित—महर्षिगण के द्वारा वन्द्यमान—योगियों के हृदय में संस्थित—योगमाया से समावृत—क्षणमात्र में इस जगत् की रचना करने वाले योनि—अनामय—नारायण को उस ईश्वर के साथ ऐक्यभाव को प्राप्त हुए ब्रह्मवादियों ने देखा था। उस समय में उस ईश्वरीय रुद्र रूप को नारायणात्मक देख कर ब्रह्मवादियों ने अपने आपको परम कृतार्थ मान लिया था ॥१५-१७॥ सनत्कुमार—सनक—भृगु—सनातन—सनन्दन—रैभ्य—अङ्गिरा—वामदेव—शुक्र—महर्षि अत्रि—कपिल—मरीचि—इन सबने जगतों के ईश—पद्म नाम से समाश्रित भाम भाग वाले उन रुद्र देव का दर्शन करके—हृदय में स्थित का ध्यान करके और मस्तक से प्रणिपात करके दोनों हाथों को जोड़कर मस्तकों पर लगा लिया था। उन्होंने ओङ्कार का उच्चारण किया था और गुहा में निहित शरीर के अन्तर में स्थित देव का ध्यान किया था। सब आनन्द से पूर्ण समाहित मन वालों ने ब्रह्ममय वचनों के द्वारा उन देवेश्वर का स्तवन किया था ॥१८-२०॥

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगन् ।
नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम् ॥२१

पश्यन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं दान्ताःशान्ता विमलं रुक्मवर्णम्।
ध्यात्वाऽऽत्मस्वप्रचलं स्वे शरीरे कविं परेभ्यः परमं परञ्च ॥२२
त्वत्तः प्रसूता जगतः प्रसूतिः सर्वानुभूस्त्वं परमाणुर्भूतः।
अणोरणीयान्महतो महीयांस्त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः ॥२३
हिरण्यगर्भोजगदन्तरात्मा त्वत्तोऽस्ति जातः पुरुषः पुराणः।
सञ्जायमानो भवता निसृष्टो यथाविधानं सकलं स सद्यः॥२४
त्वत्तो वेदाः सकलाः सम्प्रसूतास्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते।
पश्यामस्त्वाञ्जगतो हेतुभूतं नृत्यन्तं स्वेहृदये सन्निविष्टम् ॥२५
त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रं मायावी त्वं जगताशेकनाथः।
नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्ना योगात्मानं नृत्यन्तंदिव्यनृत्यम् ॥२६
पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये नृत्यन्तं ने महिमानं स्मरामः।
सर्वात्मानं बहुधा सन्निविष्टं ब्रह्मानन्दमनुभूयानुभूय ॥२७
ओङ्कारस्ते वाचको मुक्तिबीजं त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम्।
तत्त्वां सत्य प्रवदन्तीह सन्तः स्वयंम्प्रभं भवतो यत्प्रभावम् ॥२८

मुनिगण ने कहा—एक ईश—पुराण पुरुष—अनन्त योग वाले—प्राणेश्वर रुद्र आपको हम सब नमन करते हैं जो आप हृदय में सन्निविष्ट—प्रचेतस ब्रह्ममय और परम पवित्र हैं ॥२१॥ जो परम दमनशील शान्त मुनिगण हैं वे ही विमल सुवर्ण के तुल्य कान्ति वाले आपका दर्शन किया करते हैं। अपने शरीर में आस्वप्रचल—कवि परों से भी परतर एवं परम आपका ध्यान करके ही आपको देखते हैं ॥२२॥ इस जगत् की यह प्रसूति आप ही से प्रसूत हुई है। आप सबके अनुभू हैं और परमाणु भूत हैं। आप अणु से भी छोटे एक अणु के समान हैं तथा महान् से भी आप महान् हैं। सब सन्तजन आपको ही इस प्रकार के कहा करते हैं ॥२३॥ यह हिरण्य गर्भ जगत् का अन्तरात्मा पुराण पुरुष भी आप से ही समुत्पन्न हुआ है। जब यह संजात हो गया तो आपने ही उसे तुरन्त सबका यथाविधान सृजन करने के लिये निसृष्ट किया था ॥२४॥ आप से ही ये समस्त वेद सम्प्रसूत हुए हैं और अन्त समय में ये सब आप में ही प्राप्त होकर संस्थिति पाया करते हैं। हम सभी इस जगत् के कारण स्वरूप

आपको ही जानते हैं और इस समय में अपने हृदय में सन्निविष्ट आपको नृत्य करते हुए देखा है ।।२५।। आपके द्वारा ही यह ब्रह्मचक्र भ्रमित किया जाता है आप परम मायावी हैं और जगतों के आप नाथ हैं । हम सवं आपकी शरणागति में प्रपन्न हुए दिव्य नृत्य को करके नाचने वाले योगात्मा आपको नमस्कार करते हैं ।।२६।। हम सब लोग परम आकाश के मध्य में नृत्य करते हुए आपका दर्शन कर रहे हैं और आपकी महिमा का भी स्मरण करते हैं । हे ब्रह्मानन्द का अनुभव करके अनुभव किये जाने वाले देव ! आपको सबकी आत्मा बहुध सबमें सन्निविष्ट देखते हैं । ।।२७।। आपका वाचक और मुक्तिका बीज ओङ्कार है । आप अक्षर हैं और प्रकृति में ही गूढ़ रूप वाले हैं । इन ऐसे आपको यहाँ पर सन्त लोग सत्य स्वरूप कहा करते हैं । आपका ऐसा ही प्रभाव है कि आप स्वयं प्रभु हैं । अर्थात् अपनी प्रभा से परिपूर्ण हैं ।।२८।।

स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः ।
शान्तात्मानःसत्यसन्धंवरिष्ठंविशन्तित्वांयतयोब्रह्मनिष्ठाः ।।२९
(भुत्रोनाशोऽनादिमान्विश्वरूपो ब्रह्मा विष्णुः मरमेष्ठी वरिष्ठः ।
स्वात्मानन्दमनुभूय विशन्ते स्वयंज्योतिरचला नित्यमुक्ताः) ।।३०
एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपम् ।
त्वमेवान्ते निलयं विन्दतीदं नमामस्त्वां शरणं सम्प्रपन्नाः ।।३१
एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्तस्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम् ।
वन्द्यं त्वां ये शरण सम्प्रपन्ना मायामेतां ते तारन्तीह विप्राः ।।३२
त्वामेकमाहुः कविमेकरुद्रं ब्रह्म गृणन्तं हरिमग्निमीशम् ।
रुद्रं नित्यमनिलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम् ।।३३
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्यपरं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातमस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि ।।३४
त्वमेवविष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः।
त्वं विश्वनाथः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि ।।३५

आपका समस्त वेद निरन्तर स्तवन किया करते हैं । ऋषिगण क्षीण दोष वाले होते हुए आपका नमन किया करते हैं । ब्रह्म में निष्ठा रखने

वाले यति लोग जिनकी आत्माऐं परम शान्त हैं सत्य सन्धा वाले और वरिष्ठ आपके अन्दर ही प्रवेश कर जाया करते हैं ॥२६॥ भू के नाश करने वाले—अनादिमान् विश्वरूप ब्रह्मा—विष्णु—वरिष्ठ परमेष्ठी स्वात्मानन्द का अनुभव करके ही अचल और नित्य युक्त ज्योति में स्वयं ही प्रवेश कर जाया करते हैं ॥३०॥ आप एक ही रुद्र हैं जो इस विश्व को किया करते हैं। आप ही इस सम्पूण विश्वरूप का पालन भी किया करते हैं। इसका निलय भी अन्त में आप में ही होता है ऐसा सब जानते हैं। ऐसे आपकी शरणागति में प्रपन्न हुए हम सब आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करते हैं ॥३१॥ एक ही वेद बहुत-सी शाखाओं वाला है और वह अनन्त है किन्तु वह आपको एक ही स्वरूप वाला एक ही बोधित किया करता है। हे विप्रगण ! ऐसे वन्द्यमान आपकी शरण में प्रपन्न होने वाले लोग यहाँ पर माया से तर जाया करते हैं ॥३२॥ आपको एक—कवि—रुद्र—ब्रह्म को गृण न करने वाले—हरि—अग्नि—ईश—नित्य—अनिल—केकितान—धाता—आदित्य और एक रूप कहते हैं ॥३३॥ आप अक्षर—परम वेदितव्य हैं। आप ही इस विश्व के परम निधान हैं। आप अव्यय हैं—आप शाश्वत धर्म की रक्षा करने वाले हैं। आप सनातन हैं और पुरुषोत्तम भी आप ही हैं ॥३४॥ आप ही विष्णु हैं और चतुरानन भी आप हैं। आप ही रुद्र हैं तथा भगवान् ईश भी आप हैं। आप इस विश्व के नाथ हैं—आप ही प्रकृति—प्रतिष्ठा—सर्वेश्वर और परमेश्वर हैं ॥३५॥

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात ।
चिन्मात्रमव्यक्तमनन्तरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिर्गुणाश्च ॥३६
यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तवरूपमेतत्तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम् ॥३७
योगेश्वरं भद्रमनन्तशक्ति परायणं ब्रह्मतनुं पुराणम् ।
नमामसर्वे शरणार्थिनस्त्वां प्रसीद भूताधिपते! महेश !॥३८
त्वत्पादपद्मस्मरणादशेषसंसारबीजं निलयं प्रयाति ।
मनोनियम्य प्रणिधायकायं प्रसादयामो वयमेकमीशम् ॥३९

नमो भवायाथ भवोद्भवाय कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्द्दिने ते नमोऽग्नये देव नमः शिवाय ।।४०
ततः स भगवान्प्रीतः कपर्द्दीवृषवाहनः ।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद्भवः ।।४१
ते भवं भूतभव्येशं पूर्ववत्समवस्थितम् ।
दृष्ट्वानारायणं देवं विस्मितं वाक्यमब्रुवन् ।।४२

आपको पुराण पुरुष—आदित्य के तुल्य वर्ण वाला और तम से परे कहते हैं। आपको ही एक को चिन्मात्र—अव्यक्त—अनन्त रूप वाला—आकाश—ब्रह्म—शून्य—प्रकृति और गुण कहा जाता है ।।३६।। जिसके अन्तरा में यह सब भासित होता है—जो अव्यय और निर्मल रूप वाला है। जो एक रूप है। आपका यह रूप कुछ अचिन्त्य सा है। यह तत्व उस उसके अन्तरा में ही प्रतिमान होता है ।।३७।। परम योगेश्वर—भद्र—अनन्त शक्ति संयुत—परायण—ब्रह्मतनु—पुराण आप हैं। ऐसे आपको हम सब प्रणाम करते हैं। हम आपकी शरण के अर्थी हैं। हे भूतों के अधिपति ! हे महेश ! आप हमारे सबके ऊपर प्रसन्न होइये ।।३८।। आपके पाद पद्मों के स्मरण करने से यह सम्पूर्ण संसार का बीज निलय को प्राप्त हो जाया करता है मन को नियमित करके और काया का प्रणिधान करके हम एक ही ईश आपको प्रसन्न कर रहे हैं ।।३९।। भव—भव के उद्भव—काल—सर्व हर आपके लिये हमारा नमस्कार है। रुद्र—कपर्द्दी आपकी सन्निधि में प्रणाम समर्पित है। हे देव ! अग्नि और शिव को हमारा नमस्कार अर्पित किया जाता है ।।४०।। इसके उपरान्त वह भगवान् कपर्द्दी वृष वाहन परम प्रसन्न हो गये थे और उन्होंने उस परम स्वरूप का संहार करके फिर वह भव अपनी प्रकृति में स्थित हो गये थे ।।४१।। उन सबने भूत भव्य के ईश भव प्रभु को पूर्व की ही भाँति संभवस्थित देखकर विस्मित देव नारायण से वे यह वाक्य बोले थे ।।४२।।

भगवान् ! भूतभव्येश ! गोवृषाङ्कितशासन ! ।
दृष्ट्वा ते परमं रूपं निवृत्ताः स्मः सनातन ।।४३

भवत्प्रसादादमले परस्मिन्परमेश्वरे ।
अस्माकंजायतेभक्तिस्त्वय्येवाऽव्यभिचारिणी ।।४४
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शङ्कर ! ।
भूयोऽपि चैवं यन्नित्यं याथात्म्यं परमेष्ठिनः ।।४५
स तेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिनां योगसिद्धिदः ।
प्राह गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम् ।।४६

हे भगवन् ! हे भूतभव्येश ! हे गोवृष से अङ्कित शासन वाले ! हे सनातन ! आपके इस परम रूप को देखकर हम सब निवृत्त हो गये हैं । आपके ही प्रसाद से अमल पद परमेश्वर में हमारी भक्ति उत्पन्न हो गई और आप में भी अव्यभिचारिणी भक्ति समुत्पन्न हो गई है ।।४३-४४।। हे शङ्कर ! अब इस समय में हम सब आपका माहात्म्य श्रवण करने की इच्छा वाले हैं । और पुनरपि परमेष्ठी का नित्य याथात्म्य श्रवण करना चाहते हैं ।।४५।। वह योगियों को योग की सिद्धि प्रदान करने वाले प्रभु ने उनके इस वाक्य को सुनकर माधव की ओर देखकर परम गम्भीर वाणी से यह कहा था ।।४६।।

———

६—सर्वत्र शिव शासन वर्णन

शृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत्परमेष्ठिनः ।
वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यंयत्तद्वेदविदो विदुः ।।१
सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता ।
सर्वलोकैकसंहर्त्ता सर्वात्माऽहं सनातनम् ।।२
सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी महेश्वरः ।
मध्येचान्तः स्थितं सर्वंनाहंसर्वत्रसंस्थितः ।।३
भवद्भिरद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपञ्च मामकम् ।
ममैषा ह्युपमा विप्रा माया वै दर्शिता मया ।।४
सर्वेषामेव भावानामन्तरं समवस्थितः ।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नं क्रियाशक्तिरियं मम ।।५

मयेदं चेष्टते विश्वं तद्वै भावानुवर्त्तिमे ।
सोऽहंकालोजगत्कृत्स्नंप्रेरयामिकलात्मकम् ॥६
एकांशेन जगत्कृत्स्नं करोमि मुनिपुङ्गवाः ।
संहराम्येकरूपेणस्थितावस्था ममैव तु ॥७

ईश्वर ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! आप सब लोग श्रवण करिये । मैं यथावत् परमेष्ठी ईश का माहात्म्य कहता हूँ जिसको वेदों के वेत्ता लोग ही जानते हैं ॥१॥ मैं समस्त लोकों का एक ही निर्माण करने वाला हूँ । सब लोकों की रक्षा के करने वाला भी मैं ही एक हूँ तथा सम्पूर्ण लोकों का संहार भी मैं किया करता हूँ । मैं सर्वात्मा और सनातन हूँ ॥२॥ सभी वस्तुओं का मैं महेश्वर अन्तर्यामी हूँ । मध्य में अन्त में सबमें मैं स्थित रहता हूँ और मैं सर्वत्र संस्थित नहीं रहता हूँ ॥३॥ आप लोगों ने जो यह मेरा परम अद्भुत स्वरूप देखा है हे विप्रगण ! यह भी मेरी ही उपमा माया है जिसको मैंने आप लोगों को दिखला दिया है ॥४॥ सब भावों के अन्तर में संभव स्थित हूँ और मैं सम्पूर्ण जगत् प्रेरित किया करता हूँ—यही मेरी क्रिया की शक्ति है ॥५॥ मेरे द्वारा ही यह विश्व चेष्टा वाला होता है और मेरे भाव का अनुवर्त्ती है । वही मैं काल इस कलात्मक समस्त जगत् को प्रेरणा दिया करता हूँ ॥६॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत् को किया करता हूँ और एक दूसरे ही स्वरूप से इस सबका संहार किया करता हूँ । मेरे ही एक रूप से इसकी स्थिति की अवस्था हुआ करती है ॥७॥

आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्त्तकः ।
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ ॥८
ताभ्यां सञ्जायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम् ।
महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते ॥९
यो हि सर्वजगत्साक्षीकालचक्र प्रवर्त्तकः ।
हिरण्यगर्भोमार्त्तण्डःसोऽपिमद्देहसम्भवः ॥१०
तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम् ।
दत्तवानात्मवान्वेदान् कल्पादौचतुरो द्विजाः ॥११

समन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावितः ।
दिव्यंतन्मामकैश्वर्यं सर्वदावगतःस्वयम् ।।१२
ससर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेनसर्ववित् ।
भूत्वा चतुर्मुखःसर्गं सृजत्येवात्मसम्भवः ।।१३
योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवोऽव्ययः ।
ममैव च परा मूर्त्तिः करोति परिपालनम् ।।१४

मैं आदि और मध्य से निर्मुक्त हूँ तथा माया तत्त्व का प्रवर्त्तक हूँ । मैं ही सर्ग के आदि में इन प्रधान पुरुष दोनों को क्षोभित किया करता हूँ ।।८।। उन दोनों के संयुक्त होने पर उनसे ही परस्पर में संयोग प्राप्त हो जाने से यह विश्व समुत्पन्न हुआ करता है । महत् तत्त्व आदि के क्रम से मेरा ही तेज विजृम्भित हुआ करता है ।।९।। जो इस समस्त जगत् का साक्षी और काल चक्र का प्रवर्त्तक है । जो यह हिरण्य गर्भ मार्त्तण्ड है वह भी मेरे ही देह से सम्भूत होने वाला है ।।१०।। उसके लिये मैंने अपना दिव्य ऐश्वर्य सनातन ज्ञान योग और आत्मवान् चार वेदों को कल्प के आदि में दे दिया था ।।११।। मेरे वियोग से देव ब्रह्मा मेरे भाव से भावित होकर मेरे दिव्य ऐश्वर्य का वह सर्वदा स्वयं अवगत हो गया था ।।१२।। वह सब लोकों का निर्माता मेरे नियोग से सबका ज्ञाता होकर रुद्र आत्म सम्भव चतुर्मुख इस सर्ग का सृजन किया ही करता है ।।१३।। जो यह अनन्त नारायण हैं जो लोकों का प्रभाव है और अव्यय है । यह भी मेरी ही परामूर्त्ति है जो परिपालन किया करते हैं ।।१४।।

योऽन्तकः सर्वभूतानांरुद्रःकालात्मकः प्रभुः ।
मदाज्ञयाऽसौसततंसंहरिष्यतिमेतनुः ।।१५
हव्यंवहतिदेवानांकव्यंकव्याशिनामपि ।
पाकञ्चकुरुतेवह्निःसोऽपि मच्छक्तिनोदितः ।।१६
भुक्तमाहारजातञ्च पचते तदहर्निशम् ।
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः ।।१७
योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुङ्गवः ।
सोऽपि सञ्जीवयेत्कृत्स्नमीश्वरस्य नियोगतः ।।१८

योऽन्तस्तिष्ठतिभूतानांबहिर्देवःप्रभञ्जनः ।
मदाज्ञयाऽसौभूतानांशरीराणिबिभर्त्तिहि ॥१९
योऽपि सञ्जीवनोन्नृणां देवानाममृताकरः ।
सोमः समन्नियोगेन नोदितःकिलवर्त्तत्त ॥२०
यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रभासयति सर्वशः ।
सूर्य्यो वृष्टि वितनुते स्वोस्रेणैव स्वयम्भुवः ॥२१

जो समस्त प्राणियों का अन्तक है वह कलात्मक प्रभु रुद्र हैं । वह भी मेरी आज्ञा से निरन्तर संहार करेगा क्योंकि यह भी मेरा ही एक शरीर होता है ॥१५॥ देवों के लिये समर्पित हव्य का वहन किया करता है और कव्य के अशन करने वालों के कव्य का जो वहन करता है तथा पाक की क्रिया भी करता है वह वह्नि भी मेरी ही शक्ति से प्रेरित हुआ करता है ॥१६॥ मुक्त आहार मात्र को जो अर्द्ध निश पाचन किया करता है वह वैश्वनर अग्नि है जो ईश्वर के ही नियोग से पाचन की क्रिया को करता है ॥१७॥ जो सम्पूर्ण जलों को उत्पत्ति का स्थान देवों में श्रेष्ठ वरुण है वह भी ईश्वर के हो नियोग से सबको सज्जीवित किया करता है ॥१८॥ जो प्राणियों के अन्दर स्थित रहता है और जो बाहिर प्रभुञ्जन देव है वह भी मेरी ही आज्ञा से भूतों के शरीरों का भरण किया करता है ॥१९॥ जो नरों का और देवों का सञ्जीवन एवं अमृत का का आकर है वह सोम भी मेरे ही नियोग से प्रेरित होकर ही किया करता है ॥२०॥ जो अपनी दीप्ति से सम्पूर्ण जगत् को पूर्ण रूप से सभी ओर प्रभासित कर देता है वह सूर्य अपने उस्रवण से ही स्वम्भुव वृष्टि का विस्तार किया करता है ॥२१॥

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः ।
यज्वनां फलदो देवो वर्त्ततेसमदाज्ञया ॥२२
यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्त्तते नियमादिह ।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः ॥२३
योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः ।
सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्त्तितसदा ॥२४

यःसर्वरक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रदः ।
मन्नियोगादसौ देवोवर्त्तते निर्ऋ'तिःसदा ।।२५
वेतालगणभूतानांस्वामा भीगफलप्रदः ।
ईशानः किलभक्तानांसोऽपितिष्ठेन्मदाज्ञया ।।२६
यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः ।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्त्ततेऽसौ मदाज्ञया ।।२७
यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्त्तते विघ्नायकः ।
विनायको धर्मरतः सोपि मद्वचनात्किल ।।२८

जो सम्पूर्ण जगत् का शास्त्र इन्द्र देव सब देवों का स्वामी है । वह यज्वाओं को फलों का दाता भी देव मेरी ही आज्ञा से दिया करता है ।।२२।। जो असत्कर्मकारी असाधुओं का प्रशासन करने वाला है और यहाँ पर नियम से वैवस्वत देव यमराज हैं वह भी देवों के देव के नियोग से ही प्रशास्ता होता है ।।२३।। जो भी समस्त धनों का स्वामी और धनों का प्रदायक है वह भी कुवेर सदा ईश्वर के नियोग से ही ऐसा किया करता है ।।२४।। जो समस्त राक्षसों का नाथ है और तामस जनों को फल देने वाला है वह निर्ऋ'ति देव भी मेरे ही नियोग से सदा अपने कर्म में वर्त्तमान रहा करता है ।।२५।। वेतालों के गण और भूतों का स्वामी जो भोगों के फलों का प्रदान करने वाला है वह भक्तों का ईशान मेरी ही आज्ञा से उपस्थित रहा करता है ।।२६।। जो वाम देव अङ्गिरा का शिष्य और रुद्र गणों का अग्रणी है वह भी मेरी आज्ञा से नित्य ही योगियों का रक्षा करने वाला होता है ।।२७।। जो सम्पूर्ण जगत् का पूज्य विघ्नों का नायक भगवान् विनायक हैं वह भी मेरे ही वचन से धर्म में रत रहा करते हैं ।।२८।।

योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः ।
स्कन्दोऽसौ वर्त्तते नित्यं स्वयम्भूर्विधिनोदितः ।।२९
ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्यामहर्षयः ।
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैवनियोगतः ।।३०

याचश्रीःसर्वभूतानां ददातिविपुलां श्रियम् ।
पत्नीनारायणस्यासौवर्त्ततिमदनुग्रहात् ॥३१
वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती ।
सापीश्वरनियोगेन नोदितासप्रवर्त्तते ॥३२
याशेषपुरुषान् घोरान्नरकत्तारयिष्यति ।
सावित्रीसंस्मृताच्चापिमदाज्ञानुविधायिनी ॥३३
पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी ।
यापि ध्याता विशेषेण सापिमद्वचनानुगा ॥३४
योऽनन्तमहिमानन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः ।
दधाति शिरसालोकंसोऽपिदेवनियोगतः ॥३५
योग्निःसम्वर्त्तकोनित्यंवडवारूसंस्थितः ।
पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्यनियोगतः ॥३६

जो ब्रह्म वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ देव सेना के अधिपति प्रभु हैं जिनका नाम स्कन्द है यह भी स्ययंभू नित्य ही विधि के द्वारा उदित होकर ही स्थित रहते हैं ॥२६॥ और जो प्रजाओं के स्वामी मरीचि आदि महर्षि-गण हैं जो अनेक प्रकार के लोक का सृजन किया करते हैं वे सब भी परात्पर देव के ही नियोग को पाकर सब कुछ करते हैं ॥३२॥ और जो सब भूतों की श्री है जो विपुल श्री का प्रदान किया करती है। यह नारा-यण भगवान् की पत्नी भी मेरे ही अनुग्रह से वर्त्तमान रहती है ॥३१॥ जो देवी सरस्वती विपुल वाणी को प्रदान किया करती है वह भी ईश्वर के ही नियोग से प्रेरित होकर ही संप्रवृत्त हुआ करती है ॥३२॥ जो यज्ञेश पुरुषों को घोर नरक से तार देती है जबकि इसका संस्मरण किया जाता है वह सावित्री देवी भी मेरी ही आज्ञा की अनु विधायिनी है ॥३३॥ पार्वती देवी परमा है जो ब्रह्मविद्या के प्रदान करने वाली है जब कि विशेष रूप से इसका ध्यान किया जाता है तो वह देवी मेरे ही वचनों की अनुगामिनी है ॥३४॥ जो समस्त अमरों का प्रभु—अनन्त महिमा से अनन्त नामधारी भगवान् शेष हैं जो शिर से सम्पूर्ण लोक को धारण किया करते हैं वह भी देव के ही नियोग से करता है ॥३५॥ जो अग्नि

नित्य सम्वर्त्तक है और वड़वा के रूप से संस्थित है और सम्पूर्ण सागर का पान कर जाती है यह कर्म भी ईश्वर के ही नियोग से उसके जल का पान किया करता है ॥३६॥

ये चतुर्द्दश लोकेऽस्मिन्मनवः प्रथितौजसः ।
पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः ॥३७
आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाऽश्विनौ ।
अन्याश्च देवताः सर्वाः शास्त्रेणैवविनिर्म्मिताः ॥३८
गन्धर्वा गरुडाद्याश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।
यक्षरक्षः पिशाचाश्च स्थिताः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥३९
कलाकाष्ठानिमेषाश्चमुहूर्त्तादिवसाःक्षपाः ।
ऋतवःपक्षमासाश्चस्थिताःशास्त्रे प्रजापतेः ॥४०
युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने ।
पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे ॥४१
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणिचराणिच ।
नियोगादेव वर्त्तन्ते देवस्यपरमात्मनः ॥४२

जो चौदह लोकों में मनुगण प्रथित ओज वाले हैं और जो समस्त प्रजाओं का पालन किया करते हैं वे भी इस पालन के कर्म को उसी ईश्वर के आदेश को प्राप्त करके किया करते हैं ॥३७॥ आदित्य—वसुगण —रुद्रगण—मरुद्गण तथा अश्विनी कुमार और अन्य समस्त देवगण जो शास्त्र से ही विनिर्मित हैं ॥३८॥ गन्धर्व—गरुड़ आदि—सिद्ध—साध्य—चारण—यक्ष—राक्षस—पिशाच ये सब स्वयम्भू के द्वारा निःसृष्ट होकर ही स्थित रहा करते हैं ॥३९॥ कला—काष्ठा—निमेष—मुहूर्त—दिवस क्षमा—ऋतु—पक्ष—मास ये सब प्रजापति के शास्त्र में स्थित हैं ॥४०॥ युग और मन्वन्तर भी मेरे ही शासन में स्थित रहा करते हैं । परा—परार्द्ध तथा दूसरे काल के भेद भी मेरे शासन में स्थित होते हैं ॥४१॥ स्थावर और चर ये प्राणी चार प्रकार के होते हैं जो सची परमात्मा देव के ही नियोग से ही वर्तमान रहा करते हैं ॥४२॥

पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात् ।
ब्रह्माण्डानि च वर्त्तन्ते सर्वाण्येव स्वयम्भुवः ॥४३
अतीतान्यप्यसंख्यानिब्रह्माण्डानिममाज्ञया ।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैःसहितानिसमन्ततः ॥४४
ब्रह्माण्डनिभविष्यन्तिसहच्यात्मभिरात्मगैः ।
करिष्यन्तिसदैवाज्ञांपरस्यपरमात्मनः ॥४५
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च ।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्त्तते ॥४६
याशेषजगतां योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम् ।
मायाविवर्त्तते नित्यंसापीश्वरनियोगतः ॥४७
यो वै देहभृतांदेवः पुरुषः पठ्यतेपरः ।
आत्मासौ वर्त्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः ॥४८
विधूय मोहकलिलं यया पश्यति तत्पदम् ।
सापि बुद्धिर्महेशस्य नियोगवशवर्त्तिनी ॥४९

समस्त पाताल लोक और सम्पूर्ण भुवन तथा ब्रह्माण्ड सभी स्वयम्भुव के शासन से ही वर्त्तमान रहा करते हैं ॥४३॥ असंख्य अतीत ब्रह्माण्ड भी मेरी ही आज्ञा से प्रवृत्त हुए थे जो सभी ओर में अनेक पदार्थों के समूहों के सहित हैं ॥४४॥ अन्य भी बहुत-से ब्रह्माण्ड आत्मगों के द्वारा आत्माओं के साथ भविष्य में भी होंगे । वे सभी परात्पर परमात्मा की आज्ञा का ही सदैव पालन किया करेंगे ॥४५॥ भूमि—जल—वायु—आकाश—अनल—मन—बुद्धि—भूतादि और प्रकृति मेरे ही नियोग में वर्त्तमान रहा करते हैं ॥४६॥ जो सम्पूर्ण जगतों की योनि अर्थात् उद्भव स्थल है और सब देहधारियों का मोहन करने वाली है वह माया है वह भी नित्य ही ईश्वर के नियोग से ही अपना कर्म किया करती है ॥४७॥ जो यह देहधारियों का देव है और पर पुरुष के नाम से ही पढ़ा जाया करता है वह यह आत्मा नित्य ही ईश्वर के नियोग से ही वर्त्तमान् रहा करता है बिना उसके नियोगात्मक प्रेरणा के यह भी कुछ नहीं कर सकता है ॥४८॥ मोह के कलिल का विधूनन करके जिसके द्वारा उसके पद को

देखा करता है वह बुद्धि भी महेश के नियोग के ही वश में वर्त्तन करने वाली होती है ॥४९॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत् ।
मयैव प्रेर्य्यते कृत्स्नं मय्येव प्रलयं व्रजेत् ॥५०

अहंहि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः ।
परमात्मापरं ब्रह्ममत्तो ह्यन्योनविद्यते ॥५१

इत्येतत्परमं ज्ञानं युष्माकं कथितंमया ।
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥५२

यहाँ पर अति अधिक कथन करने का कोई भी विशेष प्रयोजन नहीं होता है । बस यही इससे समझ लेना चाहिए कि यह सम्पूर्ण जगत् मेरी ही शक्ति के स्वरूप वाला है । मेरे ही द्वारा यह प्रेरित किया जाता है और यह सम्पूर्ण मुझ में ही प्रलय को प्राप्त होता है ॥५०॥ मैं ही भगवान्—ईश—स्वयं ज्योति—सनातन—परमात्मा और अपर ब्रह्म हूँ । मुझ से अन्य कोई भी दूसरा नहीं है ॥५१॥ यही इतना सब से परम प्रमुख ज्ञान है जिसे मैंने आप लोगों को वर्णन करके सुना दिया है । इस ज्ञान प्राप्त करके जन्तु जन्म ग्रहण करने के सांसारिक बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है ॥५२॥

७—शिवविभूतियोगवर्णन

शृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः ।
यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत्पुनः ॥१

परात्परतरं ब्रह्म शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं तद्धाम परमं मम ॥२

अहं ब्रह्मविदां ब्रह्मा स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ।
मायाविनामहदेवः पुराणो हारिरव्ययः ॥३

योगिनामस्म्यहं शम्भुः स्त्रीणां देवी गिरीन्द्रजा ।
आदित्यानामहं विष्णुर्वसूनामस्मि पावकः ॥४

रुद्राणां शङ्करश्चाऽहं गरुडः पततामहम् ।
ऐरावतो गजेन्द्राणां रामः शस्त्रभृतामहम् ॥५

ऋषीणाञ्च वशिष्ठोऽहं देवानाञ्च शतक्रतुः ।
शिल्पिनां विश्वकर्म्माऽहं प्रह्लादः सुरविद्विषाम् ॥६

मुनीनामप्यहं व्यासो गणानाञ्च विनायकः ।
वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥७

ईश्वर ने कहा—हे ऋषिगण ! आप सब लोग परमेष्ठी के प्रभाव का श्रवण करिये जिसका ज्ञान प्राप्त करके पुरुष मुक्त हो जाया करता है और फिर वह इस संसार में नहीं पतन किया करता है ॥१॥ पर से भी परतर ब्रह्म—शाश्वत—ध्रुव—अव्यय—नित्य ही आनन्द वाला—निर्विकल्प है और उसका धाम ही मेरा परम धाम होता है ॥२॥ मैं ब्रह्म वेत्ताओं में ब्रह्मा हूँ—स्वयम्भू—विश्वतोमुख—बिना माया वाला मैं देव हूँ—पुराण—हरि और अव्यय हूँ ॥३॥ योगियों में मैं ही शम्भु हूँ और स्त्रियों में मैं ही गिरीन्द्रजा देवी हूँ। आदित्यों में मैं विष्णु हूँ और वसुगण में मैं पावक हूँ ॥४॥ रुद्रों में शङ्कर मेरा ही स्वरूप है। पक्षियों में गरुड़ मैं ही हूँ। गजेन्द्रों में ऐरावत मेरा ही रूप समझना चाहिए तथा जो शस्त्रधारी हैं उनमें राम मैं ही हूँ ॥५॥ ऋषियों में मैं वसिष्ठ हूँ। देवों में शत क्रतु मेरा ही स्वरूप है। शिल्पियों में मैं विश्व कर्मा हूँ। जो सुरों के शत्रु असुर हैं उनमें प्रह्लाद मेरा ही स्वरूप होता है ॥६॥ मुनिगण में व्यास मैं ही हूँ। तथा गणों में विनायक मेरा रूप है। वीरों में मैं वीरभद्र हूँ और सिद्धों में मैं कपिल मुनि हूँ ॥७॥

पर्व्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमाः ।
वज्रम्प्रहरणानाञ्च व्रतानां सत्यमस्म्यहम् ॥८

अनन्तो भोगिनां देवः सेनानीनाञ्च पावकिः ।
आश्रमाणां गृहस्थोऽहमीश्वराणां महेश्वरः ॥९

महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम् ।
कुबेरः सर्वयक्षाणां गणानाञ्चैववीरुधः ॥१०

प्रजापतीनान्दक्षोऽहं निर्ऋतिः सवरक्षसाम् ।
वायुर्बलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम् ।।११
मृगेन्द्राणाञ्चसिंहोऽहं यन्त्राणांधनुरेव च ।
वेदानां सामवेदोऽहं यजुषांशतरुद्रियम् ।।१२
सावित्रीसर्वजप्यानांगुह्यानांप्रणवोऽस्म्यहम् ।
सूक्तानांपौरुषंसूक्तं ज्येष्ठसामचसामसु ।।१३
सववेदाथविदुषां मनुः स्वायम्भुवोऽस्म्यहम् ।
ब्रह्मावर्त्तस्तु देशानां क्षेत्राणांमविमुक्तकम् ।।१४

पर्वतों में मैं मेरु हूँ—नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ—प्रहरणों में वज्र—व्रतों में मैं सत्य हूँ ।।८।। योगियों में अनन्त सेनानियों में देव पावाकि—आश्रमों में गृहस्थ—ईश्वरों में महेश्वर—कल्पों में महाकल्प—युगों में कृतयुग मैं ही हूँ। समस्त यक्षों में कुवेर—तृणों में वीरुध—प्रजापतियों में दक्ष तथा समस्त राक्षसों में तिर्ऋति मैं ही हूँ । बलवानों में वायु और समस्त द्वीपों में मैं पुष्कर हूँ ।।९-११।। मृगेन्द्रों में मैं सिंह हूँ—यन्त्रों में धनु—वेदों में सामवेद और यजाओं शत रुद्रि मेरा ही स्वरूप है ।।१२।। समस्त जापों में मैं सावित्री हूँ । गुह्यों में प्रणव मेरा ही स्वरूप होता है । सूक्तों में पौरुष सूक्त मेरा स्वरूप है तथा सामों में ज्येष्ठ साम मैं ही हूं ।।१२-१३।। समस्त वेदार्थ के विद्वानों में स्वायम्भुव मनु मेरा स्वरूप है। देशों में ब्रह्मावर्त्त देश मैं ही हूँ । क्षेत्रों में अविमुक्त क्षेत्र मैं हूँ ।।१४।।

विद्यानामात्मविद्याऽहंज्ञानानामैश्वरं परम् ।
भूतानामस्म्यहंव्योमतत्त्वानामृत्युरेवच ।।१५
पाशानामस्म्यहं मायाकालः कलयतामहम् ।
गतीनां मुक्तिरेवाहंपरेषां परमेश्वरः ।।१६
यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोबलाधिकम् ।
तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम् ।।१७
आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्त्तिनः ।
तेषांपतिरहं देवः स्मृतःपशुपतिर्बुधैः ।।१८

मायापाशेनवध्नामिपशूनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशूनांवेदवादिनः ।।१९
मायापाशेन वद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते ।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम् ।२०
चतुर्विंशतितत्वानि माया कर्मगुणाइति ।
एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्चपशुबन्धनाः ।।२१

विद्याओं में आत्म विद्या—ज्ञानों में ईश्वरीय परम ज्ञान भूतों में व्योम और तत्त्वों में मृत्यु मेरा ही रूप है ।।१५।। पाशों में मैं माया हूँ और काल का स्वरूप कलम करने वालों में मेरा ही होता है । गतियों में मैं ही मुक्त हूँ और परों में परमेश्वर मेरा ही स्वरूप है ।।१६।। और जो भी अन्य इस लोक में सत्त्व तथा तेज बल से अधिक है उस सभी मेरा ही तेज विजृम्भित समझना चाहिए ।।१७।। संसार वर्त्ती सभी आत्माऐं हैं वे सब पशु कहे गये हैं । उन सब का पति मैं हूँ और बुधों के द्वारा मैं देव पशुपति कहा गया हूँ ।।१८।। अपनी लीला से माया रूपी पाश के द्वारा मैं इन समस्त पशुओं का बन्धन किया करता हूँ । वेदवादी लोग मुझको ही इन पशुओं का मोचन करन वाला कहा करते हैं ।।१९।। जो माया के पाश से बद्ध जीव होते हैं उनके मोचन करने वाला मुझसे अन्य कोई भी नही हैं । मेरे सिवाय अन्य कोई नहीं है मैं जोकि मैं परमात्मा—भूताधि पति और स्वाव्यय हूँ वहीं मैं मोचन करने वाला हूँ ।।२०।। चौवीस तत्त्व जो हैं वे माया के कर्म गुण हैं । ये ही पशुपति के पाश हैं जो पशुओं के बन्धन करने वाले क्लेशदायक होते हैं ।।२१।।

मनो बुद्धिरहंकारः खाऽनिलाग्निजलानि भूः ।
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे ।।२२
श्रोत्रन्त्वक् चक्षुषीजिह्वाघ्राणञ्चैवतुपञ्चमम् ।
पायूपस्थं करौपादौवाक्चंवदशमीमता ।।२३
शब्दः स्पर्शश्चरूपञ्च रसोगन्धस्तथैव च ।
त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानिप्राकृतानि च ।।२४

चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानंगुणलक्षणम् ।
अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतःपरम् ।।२५
सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम् ।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तां प्रकृति विदुः ।।२६
सत्त्वं ज्ञानं तमो ज्ञानं राजसंसमुदाहृतम् ।
गुणानां बुद्धिवैषम्याद्वैषम्यं कवयोविदुः ।।२७
धर्माधर्मावितिप्रोक्तौ पाशौद्वौकर्मसंज्ञितौ ।
मय्यार्पितानिकर्माणिनबन्धायविमुक्तये ।।२८

मन—बुद्धि—अहङ्कार—आकाश—अनिल—अग्नि—जल—भूमि—ये आठ प्रकृतियाँ हैं और अन्य सब विकृति अर्थात् विकार हैं ।।२२।। श्रोत्र–त्वचा—चक्षु–जिह्वा–घ्राण–ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । पायु—उपस्थ, दोनों हाथ, दो चरण, वाक् ये पाँच कर्मेन्द्रिया हैं—इस तरह कुल दश हैं ।।२३।। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये कुल तेईस तत्त्व हैं जो प्राकृत हैं । चौबीसवाँ अव्यक्त है जो प्रधान है और गुणों के लक्षण वाला है । आदि-मध्य और अन्त से रहित इस जगत् का परम कारण है ।।२४-२५।। रजो-गुण, तमोगुण और सत्त्वगुण ये तीन गुण कहे गये हैं । इन तीनों की जो साम्वावस्था है उसी को प्रकृति कहा जाता है ।।२६।। सत्त्व ज्ञान और तमोज्ञान इसी को राजस कहा गया है । गुणों के वुद्धि की विषमता को ही कविगण वैषम्य कहते हैं ।।२७।। धर्म और अधर्म ये दो कर्म की संज्ञा वाले पाश हैं । मेरे लिये ही किये हुए समस्त कर्म जब समर्पित कर दिये जाते हैं तो वे फिर जीवात्मा के बन्धन करने वाले नहीं होकर विमुक्ति के लिये ही होते हैं ।।२८।।

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषञ्चाभिनिवेशनम् ।
क्लेशाख्यांस्तान् स्वयं प्राह पाशानात्मनिबन्धनात् ।।२९
एतेषामेव पाशानां माया कारणमुच्यते ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति ।।३०
सएव मूलप्रकृतिःप्रधानंपुरुषोऽपि च ।
विकारामहदादीनिदेवदेवःसनातनः ।।३१

सएव वन्धः स च बन्धकर्त्ता स एव पाशः पशुभृत्स एव ।
स वेद सर्वंन्नि च तस्य वेत्ता तमाहुराद्यं पुरुष पुराणम् ॥३२

अविद्या–अस्मिता (अहङ्कार)–राग–द्वेष और अभिनिवेश ये क्लेश नाम वाले आत्मा के निवन्धन हैं जिनको स्वयं ही कहा जाता है ॥२९॥ इन्हीं पाशों का कारण जो होता है उसी को माया कहा जाता है। वह मूल प्रकृति अव्यक्ता है और वह शक्ति मुझमें ही स्थित रहा करती है ॥३०॥ वह ही मूल प्रकृति–प्रधान और पुरुष भी महादादिक सब विकार हैं केवल देवदेव ही सनातन होता है ॥३१॥ वह ही बन्ध है और वह ही उस वन्धन का कर्त्ता है—वह ही पाश है और वही पशुभृत है। वही सबको जानता है और उसको जानने वाला कोई भी नहीं है। उसी को सबका आद्य पुराण पुरुष कहते हैं ॥३२॥

८—संसारतरणोपायकथन

अन्यद्‌गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम् ॥१
अयं ब्रह्मा तमः शान्तः शाश्वतोनिर्मलोऽव्ययः ।
एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वरः ॥२
मम योनिर्महद्‌ब्रह्म तत्र गर्भंदधाम्यहम् ।
मूलमायाभिधानन्तं ततो जातमिदंजगत् ॥३
प्रधानं पुरुषोह्यात्मामहद्‌भूतादिरेव च ।
तन्मात्राणिमनोभूतानीन्द्रियाणिचजज्ञिरे ॥४
ततोऽण्डमभवद्धैममर्ककोटिसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्याचोपबृंहितः ॥५
ये चान्ये बहवोजीवास्तन्मयाः सर्वएवते ।
न मांपश्यन्तिपितरंमाययाममोहिताः ॥६
यासु योनिषु ताः सर्वा सम्भवन्तीहमूर्त्तयः ।
तांमातरंपरांयोनिंमामेवपितरंविदुः ॥७

एश्वर ने कहा—हे ब्राह्मण श्रेष्ठगण ! अब हम एक अन्य परम गोपनीय ज्ञान की चर्चा करेंगे जिससे यह जन्तु इस परम घोर संसार के सागर से पार हो जाया करता है ॥१॥ यह ब्रह्मा तम—शान्त—निर्मल—शाश्वत—अव्यय और एकाकी केवल परमेश्वर भगवान् कहे गये हैं ॥२॥ मेरी योनि महान् ब्रह्म है। उसी में मैं गर्भ को धारण किया करता हूँ जो मूल माया भिधा अनन्त है उसी से यह सम्पूर्ण जगत् समुत्पन्न हुआ है ॥३॥ प्रधान—पुरुष आत्मा—महत्—भूतादि—पंचतन्मात्राएँ—मन भूत और इन्द्रियाँ सब उत्पन्न हुए हैं ॥४॥ इसके पश्चात् एक अण्ड समुत्पन्न हुआ था। जिसकी प्रभा सुवर्ण के समान तथा करोड़ों सूर्यों के तुल्य थी। उसी अण्ड में ब्रह्मा ने जन्म ग्रहण किया था जो मेरी शक्ति से उपबृंहित था ॥५॥ जो अन्य बहुत-से जीव हैं वे सब भी तन्मय हो हैं। मेरी माया से मोहित हुए वे मुझ जन्मदाता परम पिता को नहीं देखते हैं ॥६॥ जिन योनियों में वे सब यहाँ मूर्त्तिमान् होकर समुत्पन्न होते हैं उस परा योनि माता को और पिता मुझको ही जानते हैं ॥७॥

योमामेवंविजानाति बीजनं पितरं प्रभुम् ।
सत्रीरः सर्वलोकेषु नमोहमधिगच्छति ॥८
ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः ।
ओङ्कारमूर्त्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः ॥९
समं सर्वेषु भूतेषुतिष्ठन्तंपरमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥१०
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परांगतिम् ॥११
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गञ्च महेश्वरम् ।
प्रधानविनियोगगज्ञःपरंब्रह्माधिगच्छति ॥१२
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वच्छन्दता नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥१३
तन्मात्राणिमनआत्माचतानिसूक्ष्माण्याहुःसप्त तत्त्वात्मकानि ।
यासाहेतुःप्रकृतिःसाप्रधानंबन्धः प्रोक्तो विनयेनापि तेन ॥१४

जो कोई इस प्रकार से बीज वाला मुझको पिता प्रभु जानता है वही सब लोकों में वीर है और वह फिर मोह को प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥८॥ समस्त विद्याओं का ईशान और सब भूतों का परमेश्वर ओंकार की मूर्त्ति वाला मैं ही भगवान् प्रजापति ब्रह्मा हूँ ॥९॥ समस्त भूतों में समान रूप से स्थित रहने वाले परमेश्वर को विनाश होने पर अपने को भी विनाश वाला जो देखता है वही वास्तव में देखने वाला है ॥१०॥ जो सर्वत्र समान भाव से स्थित ईश्वर को देखा करता है वह कभी भी आत्मा से आत्मा का हनन नहीं किया करता है और फिर वह परागति को प्राप्त हो जाता है ॥११॥ सात सूक्ष्मों का ज्ञान प्राप्त करके और षडङ्ग महेश्वर को जानकर प्रधान के विनियोग का ज्ञाता परब्रह्म को प्राप्त किया करता है ॥१२॥ सभी कुछ का ज्ञान रखना—सदा तृप्ति रखना—अनादि बोध—स्वच्छन्दता-नित्यता-शक्ति का कभी भी लोप न होना और अनन्त शक्ति का रहना इन्हीं छै विभु के अङ्गों का ज्ञान होना चाहिए जो महेश्वर के ये छै अङ्ग हैं ॥१३॥ पाँच तन्मात्रा—मन और आत्मा ये ही परम सूक्ष्म सात तत्त्व कहे जाते हैं। इन सबका जो हेतु है वही प्रकृति है और उसने इसी को विनय से प्रधान बन्ध कहा है ॥१४॥

या सा शक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोर्निः।
तस्या एकः परमेष्ठी पुरस्तान्माहेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः ॥१५
ब्रह्मायोगी परमात्मा महीयान् व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः।
एको रुद्रो मृत्युमव्यक्तमेकं बीजं विश्वं देव एकः स एव ॥१६
तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं त्वामेवाऽऽत्मा केचिदन्यं तमाहुः।
अणोरणीयान्महतो महीयान्महादेवः प्रोच्यते विश्वरूपः ॥१७
एवं हि यो वेद गुहाशयं परं प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम्।
हिरण्मयंबुद्धिमतांपराङ्गतिसबुद्धिमान्बुद्धिमतीत्यतिष्ठति ॥१८

जो शक्ति वह है वह प्रकृति में ही लीन रूप वाली है वेदों में उसी को कारण ब्रह्म योनि कहा गया। उसका एक परमेष्ठी पुरस्तात् महेश्वर सत्य रूप वाला पुरुष है ॥१५॥ ब्रह्म योगी—महीयान् परमात्मा व्योम में

व्यापक, वेदों के द्वारा ही जानने के योग्य पुरण है, वह एक ही रुद्र है। अव्यक्त मृत्यु एक बीज है जो कि विश्व है किन्तु देव यह एक ही है ॥१६॥ उसी एक को अन्य लोग अनेक कहा करते हैं—तुमको ही आत्मा और अन्य लोग उसे अन्य कहते हैं। वही अणु से भी बहुत ही छोटा अणु है और महान् से भी परम महान् वह महादेव इस विश्व के रूप वाले कहे जाते हैं ॥१७॥ इस प्रकार से गुहा में आशय वाले उस परम प्रभु—पुराण पुरुष—विश्वरूप—हिरण्यमय तथा बुद्धिपानों की परागति के स्वरूप वाले को जो जानता है वही वस्तुतः बुद्धिमान है और वह बुद्धि का अतिक्रमण करके ही स्थित रहा करता है ॥१८॥

९—निष्कलस्वरूपवर्णन

निष्कलोनिर्मलोनित्योनिष्क्रयः परमेश्वरः।
ततोवदमहादेवविश्वरुपः कथं भवान् ॥१
नाहं विश्वो न विश्वञ्च मामृते विद्यते द्विजाः !।
माया निमित्तमात्राऽस्ति सा चाऽऽत्मनि मयाश्रिता ॥२
अनादिनिधना शक्तिर्मायाव्यक्तिसमाश्रया।
तन्निमित्तःप्रपञ्चोऽयमव्यक्ताज्जायतेखलु ॥३
अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दंज्योतिरक्षरम्।
अहमेव परं ब्रह्म मत्तोह्यन्यन्न विद्यते ॥४
तस्मान्मे विश्वरूपत्वंनिश्चितंब्रह्मवादिभिः।
एकत्वे च पृथक्त्वेच प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥५
अहंतत्परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः।
अकारणं द्विजाः प्रोक्ता न दोषो ह्यात्मनस्तथा ॥६
अनन्ताः शक्तयोऽव्यक्ता मायया संस्थिता ध्रुवाः।
तस्मिन्दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम् ॥७

ऋषिगण ने कहा—निष्कल—निर्मल—नित्य—निष्क्रिय और परमेश्वर हे महादेव ! यही बतलाइये कि आप विश्वरूप कैसे हो गये है ?

॥१॥ ईश्वर ने कहा—हे द्विज वृन्द ! मैं स्वयं ही विश्व नहीं हूँ और यह विश्व मेरे बिना भी कुछ विद्यमान नहीं रहा करता है। इसका निमित्त मात्र माया ही है और वह माया आत्मा में मेरे द्वारा ही आश्रित रहती है ॥२॥ यह माया आदि—अन्त से रहित है. ऐसी ही शक्ति यह व्यक्ति के समाश्रय वाली है। उसी के निमित्त वाला यह प्रपञ्च है जो उस अव्यक्त से समुत्पन्न हुआ करता है ॥३॥ इस सबका कारण एक अव्यक्त ही होता है—ऐसा ही कहा जाता है और आनन्द स्वरूप—प्रकाशमय मैं ही परब्रह्म हूँ—मुझ से अन्य कोई भी नहीं है ॥४॥ इसी कारण से मेरा विश्वरूपत्व होना ब्रह्मवादियों ने निश्चित किया है। मेरे एकत्व होने में और मेरे पृथक्त्व के होने में यही एक निदर्शन है ॥५॥ मैं ही वह परम ब्रह्म और सनातन परमात्मा हूँ। हे द्विज गण ! बिना कारण वाला जो कहा गया है उसमें आत्मा का कोई भी दोष नहीं है ॥६॥ अनन्त शक्तियाँ हैं जो अव्यक्त है और माया के द्वारा संस्थित हैं तथा ध्रुव हैं। उस दिव लोक में स्थित नित्य अव्यक्त ही केवल विभासित होता है ॥७॥

अभिन्नं वक्ष्यते भिन्नं ब्रह्माव्यक्तं सनातनम्।
एकया मायया युक्तमनादिनिधनं ध्रुवम् ॥८

पुंसोऽन्याभूद्यथा भूतिरन्ययानतिरोहितम् ।
अनादिमध्यन्तिष्ठन्तंचेष्टतेविद्ययाकिल ॥९

तदेतत्परमव्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम् ।
तदक्षरं परं ज्योतिस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥१०

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत् ।
तदेवेदं जगत्कृत्स्नं तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥११

यतो वाचो निवर्त्तन्तेअप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्विभेतिनकुतश्चन ॥१२
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं पुरुषं पुरस्तात् ।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥१३

अस्मात्परंनाऽपरमस्तिकिञ्चिद्यज्ज्योतिषांज्योतिरेकंदिविस्थम्
तदेवात्मानंमन्यमानोऽथविद्वानात्मानन्दीभवतिब्रह्मभूतः ॥१४

जो अभिन्न है उसको भिन्न कहा जाता है। ब्रह्म अव्यक्त और सनातन है। वह एक माया से युक्त है और आदि तथा अन्त से रहित ध्रुव है ॥८॥ पुरुष की जिस तरह अन्या भूति है और अन्य से तिरोहित नहीं है वह अनादि मध्य में स्थित विद्या के द्वारा चेष्टा किया करता है ॥९॥ सो यह परम व्यक्त प्रभामण्डल से मण्डित है। वह अक्षर पर ज्योति है और वही विष्णु का परम पद है ॥१०॥ वहाँ पर उसमें यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है अर्थात् बाहिर भीतर सर्वत्र ही विद्यमान है। वह ही यह समस्त जगत् है। इसका ज्ञान भली भाँति करके मनुष्य विमुक्त हो जाया करता है ॥११॥ जहाँ पर वाणी निवृत्त हो जाती है और मन की भी वहाँ पहुँच नहीं होती है ऐसा ही ब्रह्म का आनन्दमय स्वरूप होता है। विद्वान् पुरुष कहीं भी भीत नहीं करता है ॥१२॥ मैं ही वेद हूँ—महान् पुरुष हूँ तथा सूर्य के समान वर्ण वाला पुरस्तात् पुरुष हूँ उस मुझ को विद्वान् भली-भाँति जानकर परियुक्त हो जाता है और नित्य ही आनन्द वाला ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप वाला हो जाया करता है ॥१३॥ इससे परे दूसरा कोई भी नहीं है जो ज्योतियों का भी ज्योति एक ही दिवलोक में स्थित है। उसी को आत्मा को मानने वाला विद्वान् आनन्द से युक्त और ब्रह्म भूत हो जाया करता है ॥१४॥

तदप्यहं कलिलं गूढ़देहं ब्रह्मानन्दममृतं विश्वधामा।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा यत्र गत्वा न निवर्तेत भूयः ॥१५

हिरण्मये परमाकाशतत्त्वे यद्वै दिवि प्रतिभातीव तेजः।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति धीरा विभ्राजमानं विमलं व्योमधाम ॥१६

ततः परम्परिपश्यन्ति धीरा आत्मन्यात्मानमनुभूय साक्षात्।
स्वयं प्रभुः परमेष्ठी महीयान् ब्रह्मानन्दी भगवातीश एषः ॥१७

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१८

सर्वायनशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मादन्यन्न विद्यते ॥१९
इत्येतदीश्वरज्ञानमुक्तं वो मुनिपुङ्गवाः ।
गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम् ॥२०

वही मैं कलिल—गूढ़ देह वाला—अमृत—विश्व का धाम ब्रह्मानन्द हूँ—ब्रह्म में निष्ठा रखने वाले ब्राह्मण इस प्रकार से कहा करते हैं कि वह ऐसा स्थान है जहाँ पर एक बार पहुँच कर यह जीवात्मा पुनः इस संसार में लौट कर नहीं आता है अर्थात् जन्म नहीं लेता है और मुक्त हो जाया करता है ॥१५॥ हिरण्मय परमाकाश तत्त्व में जो दिवलोक में तेजमान होता है उसके विज्ञान में धीर पुरुष विभ्राजमान–विमल व्योम के धाम को देखा करते हैं ॥१६॥ इसके आगे धीर पुरुष साक्षात् आत्मा में आत्मा का अनुभव करके पर को देखा करते हैं । प्रभु तो स्वयं परमेष्ठी—महीयान् ब्रह्मानन्दी—भगवान् यह ईश हैं ॥१७॥ वह एक ही देव समस्त भूतों में व्यापी है और सब प्राणियों में गूढ़ हैं । तथा समस्त भूतोंका अन्तरात्मा है । उसी एक को जो भली-भाँति देख लेते हैं अर्थात् उसका ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं वे धीर हैं और उनको निरन्तर रहने वाली शान्ति हो जाती है अन्य जनों को नहीं हुआ करती है ॥१८॥ सभी ओर अयन, शिर ग्रीवा वाला–समस्त भूतों की गुहा में निवास करने वाला सर्वत्र व्यापक रहने वाला वह भगवान् है । इससे अन्य कोई नहीं है ॥१९॥ हे मुनियों में श्रेष्ठो ! यह हमने आपको ईश्वर का ज्ञान बतला दिया है । इसको विशेष रूप से गोपनीय रखना चाहिए क्योंकि यह ऐसा ज्ञान है जो योगिजनों को भी महान् दुर्लभ होता है ॥२०॥

१०—शिव का परब्रह्मस्वरूप वर्णन

अलिङ्गमेकमव्यक्तलिङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम् ।
स्वयञ्ज्योतिः परन्तत्त्वंपूर्वं व्योम्नि व्यवस्थिम् ॥१
अव्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम् ।
निर्गुणं सिद्धिविज्ञानं तद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥२

तन्नष्टस्त्रान्तसङ्कल्पा नित्यंतद्भावभाविताः ।
पश्यन्तितत्परंब्रह्मयत्तल्लिङ्गमिति श्रुतिः ॥३
अन्यथान हि मां द्रष्टुं शक्यंवैमुनिपुङ्गवाः ।
न हि तद्विद्यतेज्ञानं येन तज्ज्ञायतेपरम् ॥४
एतत्तत्परमं स्थानं केवलं कवयो विदुः ।
अज्ञानतिमिरं ज्ञानं यस्मान्मायामयं जगत् ॥५
यज्ज्ञानं निर्म्मलं शुद्धं निर्विकल्पन्निरञ्जनम् ।
ममात्मासौ तदैवनमितिप्राहुर्विपश्चितः ॥६
येऽप्यनेकंप्रपश्यन्तितत्परं परमं पदम् ।
आश्रिताःपरमान्निष्ठांबुद्ध्वैक्यं तत्त्वमव्ययम् ॥७

ईश्वर ने कहा—अलिङ्ग—एक—अव्यक्त लिङ्ग—ब्रह्म इस नाम से निश्चित—स्वयं ज्योति—परम तत्त्व और पूर्व में व्योम में व्यवस्थित—जो अव्यक्त कारण है वह अक्षर और पर यह है, वह गुणों से रहित है इस सिद्धि के विज्ञान को सूरिगण ही देखा करते हैं अर्थात् जानते हैं ॥१-२॥ जिनके अन्तःकरण में संकल्प नष्ट हो गये हैं और जो नित्य ही उसी की भावना से भावित रहा करते हैं वे ही उस परंब्रह्म को देखते हैं क्योंकि यही उसका लिङ्ग है—ऐसा श्रुति ने प्रतिपादन किया है ॥३॥ हे मुनि पुङ्गवो ! अन्यथा मुझको नहीं देखा जा सकता है अर्थात् अन्य कोई भी साधन नहीं है जिसके द्वारा मुझे कोई जान सके। ऐसा और कोई भी ज्ञान नहीं है जिसके द्वारा वह पर जाना जा सकता है ॥४॥ कविगण इसी को केवल वह परम स्थान जाना करते हैं। अज्ञान रूपी तिमिर से पूर्ण ही ज्ञान है जिनसे यह माया मय जगत् होता है ॥५॥ जो ज्ञान निर्मल है—शुद्ध है—निर्विकल्प और निरञ्जन है वही मेरी आत्मा है उसी को विद्वान् लोग इसे बताया करते हैं ॥६॥ जो भी अनेक को देखते हैं वह भी पर परम पद है। परम निष्ठा का आश्रय ग्रहण किये हुए हैं क्योंकि उन्होंने अव्यय ऐक्य तत्त्व का ज्ञान जानलिया है ॥७॥

ये पुनःपरमन्तत्त्त्वमेकं वानेकमीश्वरम् ।
भक्त्यासंसम्प्रपश्यन्तिविज्ञेयास्ते तदात्मकाः ॥८

साक्षाद्देवं प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम् ।
नित्यानन्दं निर्विकल्प सत्यरूपमिति स्थितिः ॥९
भजन्ते परमानन्दंसर्वगं जगदात्मकम् ।
स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताःपरेव्यक्तापरस्यतु ॥१०
एषा विमुक्तिः परमा मम सायुज्यमुत्तमम् ।
निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदुः ॥११
तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमंशिवम् ।
स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञायप्रमुच्यते ॥१२
न तत्र सूर्यः प्रतिभातीह चन्द्रो नक्षत्राणां गणो नीत विद्युत् ।
तद्भासितंह्यखिलम्भातिविश्वमतीवभासममलंतद्विभाति॥१३
विश्वोदितंनिष्कलं निर्विकल्पं शुद्धं बृहत्परमं यद्विभाति ।
अत्रान्तरेब्रह्मविदोऽथनित्यंपश्यन्ति तत्त्वमचलं यत्स ईशः॥१४

जो उस परम तत्त्व को एक अथवा अनेक ईश्वर को मुझको भक्त लोग देखा करते हैं वे तत्स्वरूप वाले ही जानने चाहिए ॥८॥ अपनी आत्मा परमेश्वर को ही साक्षात् देव को नित्यानन्द वाला—निर्विकल्प और सत्य रूप वाला देखते हैं यही स्थिति है ॥९॥ अपनी ही आत्मा में अवस्थित परम शान्त भाव वाले परमानन्द स्वरूप—सर्वत्र गमनशील और इस जगत् के आत्मरूप का सेवन किया करते हैं और दूसरे लोग अव्यक्त अपर का भजन करते हैं ॥१०॥ यह परम विमुक्ति होती है और मेरा उत्तम सायुज्य है । ब्रह्म के साथ एकता ही निर्वाण है जिसको कविगण कैवल्य नाम से कहा करते हैं ॥११॥ इसलिये आदि मध्य और अन्त से रहित परम शिव एक ही वस्तु हैं । वही ईश्वर महादेव हैं जिनका विशेष ज्ञान प्राप्त करके जीव प्रमुक्त हो जाया करता है ॥१२॥ वहाँ पर सूर्य प्रकाश नहीं करता है न चन्द्रमा ही है । वहाँ नक्षत्रों का समुदाय भी नहीं है और न विद्युत् का ही प्रकाश है । वह तो इस सम्पूर्ण विश्व को अपनी ही या (दीप्ति) से भासित करके विभासित होता है और उसकी भासमानता अतीव अमल है इसी तरह वह दीप्ति युक्त भासित हुआ करता है ॥१३॥ विश्व में उदित या जिससे यह विश्व उदित हुआ है—निष्कल

-निर्विकल्प—शुद्ध—वृहत् और परम विभासित होता है। इस बीच में ब्रह्म वेत्ता लोग उस अचल नित्य तत्त्व को देखते हैं वही ईश है ।।१४।।

नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं शुद्धं वदन्ति पुरुषं सर्ववेदाः ।
प्राणानिति प्रणनेवेशितारंध्यायन्तिवेदैरितिनिश्चितार्थाः ।।१५
न भूमिरापो न मनो न वह्निः प्रणोऽनिलो गगनं नोत बुद्धिः ।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाशमध्येविभातिदेवःशिवएवकेवलः ।।१६
इत्येतदुक्तं परमं रहस्यं ज्ञानञ्चेदं सर्ववेदेषु गीतम् ।
जानाति योगी विजनेऽथदेशेयुञ्जीतयोगंप्रयतोह्यजस्रम् ।।१७

नित्य ही आनन्द स्वरूप—अमृत—सत्यरूप वाला—शुद्ध पुरुष को सब वेद कहा करते हैं। प्रणव में विशिता को प्राणान्—इस तरह ध्यान किया करते हैं। वेदों के द्वारा इसी प्रकार से निश्चित अर्थ वाले हैं ।।१५।। भूमि—जल—मन—वह्नि—प्राण-अनिल—गगन—बुद्धि और चेतन अन्य कोई भी इस परमाकाश के मध्य में प्रकाशमान नहीं होता है केवल एक शिव देव ही विभासित हुआ करते हैं ।।१६।। हमने यह परम रहस्य ज्ञान आपके समक्ष में बतला दिया है जोकि समस्त वेदों में गाया गया है। जो कोई योगी होता है वही विजन देश में इसका ज्ञान प्राप्त किया करता है जो निरन्तर प्रयत होकर योग में युक्त रहा करता है ।।१७।।

११—पशुपाशविमोक्षणयोगवर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम् ।
येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम् ।।१
योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम् ।
प्रसन्नं जायतेज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम् ।।२
योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रवर्त्तते ।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वरः ।।३

एककालं द्विकालंवा त्रिकालं नित्यमेव च ।
ये युञ्जन्ति महायोगंते विज्ञेयामहेश्वराः ॥४
योगस्तु द्विविधोज्ञेयो ह्यभावःप्रथमोमतः ।
अपरस्तु महायोगः सर्वयोगोत्तमोत्तमः ॥५
शून्यं सर्वनिराभासं स्वरूपंयत्र चिन्त्यते ।
अभावयोगःसप्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति ॥६
यत्र पश्यति चाऽऽत्मानं नित्यानन्द निरञ्जनम् ।
मयैक्यं स मया योगो भाषितः परमः स्वयम् ॥७

ईश्वर ने कहा—इसके आगे हम परम दुर्लभ योग का वर्णन करते हैं जिसके द्वारा ईश्वर आत्मा को भानुमान् की भाँति देखा करते हैं ॥१॥ योग की अग्नि अशेष पाप के पञ्जर को शीघ्र ही दग्ध कर दिया करती है। साक्षात् निर्वाण की सिद्धि को प्रदान करने वाला प्रसन्न ज्ञान उत्पन्न हो जाता है ॥२॥ योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान से ही योग प्रवृत्त हुआ करता है। योग और ज्ञान से अभियुक्त पुरुष से महेश्वर प्रसन्न होते हैं। एक काल में—दो कालों में अथवा तीनों कालों में जो महायोग का अभ्यास किया करते हैं उनको महेश्वर ही जानना चाहिए ॥३-४॥ यह योग दो प्रकार का जानना चाहिए। प्रथम योग तो अभाव माना गया है और दूसरा समस्त योगों में उत्तमोत्तम महायोग है ॥५॥ जिसमें शून्य और निराभास स्वरूप का चिन्तन किया जाता है। अभाव योग वह कहा गया है जिसके द्वारा आत्मा को देख लेता है ॥६॥ जिसमें नित्यानन्द—निरञ्जन आत्मा को देखता है। मेरे साथ जो ऐक्य है वह मैंने परम योग स्वयं भाषित किया है ॥७॥

ये चान्ये योगिनां योगाः श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे ।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥८
यत्रसाक्षात्प्रपश्यन्ति विमुक्ताविश्वमीश्वरम् ।
सर्वेषामेव योगानांस योगःपरमोमतः ॥९
ससस्रशोऽथ बहुशो ये चेश्वरबहिष्कृताः ।
नते पश्यन्ति मामेकंयोगिनो यतमानसाः ॥१०

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।
समाधिश्चमुनिश्रेष्ठायमश्चनियमासने ॥११
मय्येकचित्ततायोग:प्रत्यन्तरनियोगतः ।
तत्साधनानिचान्यानियुष्माकंकथितानितु ॥१२
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
यमाःसङ्क्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदानृणाम् ॥१३
कर्म्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः ॥१४

जो अन्य योग योगियों के ग्रन्थों के विस्तार में सुने जाते हैं वे सब ब्रह्म योगकी सोलहवीं कला की भी योग्यता प्राप्त नहीं किया करते हैं ।।८।। जिसमें विमुक्त लोग विश्व ईश्वर को साक्षात् देखा करते हैं । सभी योगों में वह योग परम श्रेष्ठ माना गया है । सहस्रों और बहुत-से जो ईश्वर के द्वारा बहिष्कृत हैं वे मुझ को नहीं देखते हैं । मुझको यत मन वाले योगिजन ही देखा करते हैं ।।९-१०।। प्राणायाम—ध्यान—प्रत्याहार–धारणा और समाधि—यम—नियम और आसन हे मुनिश्रेष्ठो ! ये योग के आठ अङ्ग होते हैं ।।११।। प्रत्यन्तर नियोग से मुझ में जो एक चित्रता है वही योग होता है । उसके अन्य साधन होते हैं जो सब आपको बतला दिये गये हैं ।।१२।। अहिंसा–सत्य–अस्तेय–ब्रह्मचर्य–परिग्रह और यम इन सब को संक्षेप से बताया गया है जो मनुष्यों के चित्त की शुद्धि प्रदान करने वाले हैं ।।१३।। समस्त प्राणियों में सर्वदा कर्म-मन और वचन से क्लेश का उत्पन्न न करना अहिंसा कही गयी है जिसको परमर्षियों ने बताया है ।।१४।।

अहिंसायाः परो धर्म्मो नास्त्यहिंसापरं सुखम् ।
विधिना या भवेद्धिंसा त्वहिंसैव प्रकीर्त्तिता ॥१५
सत्येनसर्वमाप्नोतिसत्येसर्वंप्रतिष्ठितम् ।
यथार्थकथनाचारः सत्यम्प्रोक्तं द्विजातिभिः ॥१६
परद्रव्यापहरणं चौर्यादथ बलेन वा ।
स्पेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम् ॥१७

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यम्प्रचक्षते ॥१८
द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि तथेच्छाया ।
अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत् ॥१९
तपः स्वाध्यायसन्तोषौ शौचमीश्वरपूजनम् ।
समासान्नियमाः प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनः ॥२०
उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणम्प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम् ॥२१

अहिंसा से परम अन्य कोई भी धर्म नहीं है और अहिंसा से अधिक कोई सुख भी नहीं है। विधिपूर्वक यज्ञादि में जो हिंसा शास्त्रोक्त होती है उसे अहिंसा ही कहा गया है ॥१५॥ सत्य से सभी कुछ की प्राप्ति हुआ करती है क्योंकि सत्य में सभी कुछ प्रतिष्ठित है। यथार्थ कथन का जो आधार है उसी को द्विजातियों के द्वारा सत्य कहा गया है ॥१६॥ पराये द्रव्य का हरण करना चाहे वह चोरी से किया गया हो अथवा बलपूर्वक किया गया हो उसी को स्तेय कहा जाता है। उसका आचरण न करना ही अस्तेय है जो धर्म का साधन होता है ॥१७॥ कर्म—मन और वचन से सर्वदा सभी अवस्थाओं में सर्वत्र मैथुन का त्याग करना ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥१८॥ आपत्ति के समय में भी तथा इच्छा से द्रव्यों का जो ग्रहण नहीं करता है उसे ही अपरिग्रह कहा जाता है। उसका प्रयत्न पूर्वक पालन करना चाहिए ॥१९॥ तप—स्वाध्याय—सन्तोष—शौच—ईश्वर का अर्चन ये ही सक्षेप से नियम कहे गये हैं जो योग की सिद्धि के प्रदान करने वाले होते हैं ॥२०॥ उपवास पराक आदि तथा कृच्छ्र चान्द्रायण आदि के द्वारा जो शरीर का शोषण किया जाता है उसी को तापस लोग उत्तम तप कहते हैं ॥२१॥

वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपम्बुधाः ।
सत्त्वसिद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥२२
स्वाध्यायस्यत्रयोभेदावाचिकोपांशुमानसाः ।
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः ॥२३

य: शब्दबोधजननः परेषां शृण्वतां स्फुटम् ।
स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम् ॥२४
ओष्ठयोः स्पन्दमात्रेण परस्याऽशब्दबोधकम् ।
उपांशुरेष निर्द्दिष्टः साध्वसौ वाचिकाज्जपात् ॥२५
यत्पदाक्षरसङ्गत्या परिस्पन्दनवर्ज्जितम् ।
चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तज्जपं विदुः ॥२६
यदृच्छालाभतोवित्तं अलंपुंसोभवेदिति ।
प्राशस्त्यमृषयःप्राहुःसन्तोषंसुखलक्षणम् ॥२७
बाह्यमाभ्यन्तरं शौचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः ।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिरथान्तरम् ॥२८

वेदान्त—शत रुद्रिय और प्रणव आदि के जप को बुध लोग जप कहते हैं। स्वाध्याय पुरुषों को सत्व सिद्धि का करने वाला कहा जाता है ॥२२॥ स्वाध्याय के भी तीन भेद हैं—वाचिक—पांशु और मानस ये उनके नाम हैं। इन तीनों की उत्तरोत्तर विशेषता मानी गयी है। ऐसा ही त्रेदार्थ के वादी जन कहते हैं ॥२३॥ जो दूसरे सुनने वालों को शब्द का वोध उत्पन्न करने वाला अत्यन्त ही स्पष्ट होता है उसी स्वाध्याय को वाचिक स्वाध्याय कहा गया है। अव उपांशु का लक्षण बतलाते हैं ॥२४॥ दोनों होटों के स्पन्दन मात्र से दूसरे का अशब्द बोधक होता है यही उपांशु जप कहा गया है। यह वाचिक जप से साधु जप होता है ॥२५॥ जो पद के अक्षरों की सङ्गति से परिस्पन्दन रहित होता है तथा मन्त्र के सब शब्दों का चिन्तन ही केबल होता है उसी जप को मानस जप कहते हैं ॥२६॥ यदृच्छा लाभ से जो वित्त पुरुषों को पर्याप्त होता है ऋषि-वृन्द इसी की सन्तोष का प्रशस्त लक्षण कहते हैं ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! शौच—बाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार का कहा गया है। बाहिरी शौच तो मिट्टी और जल से बताया गया है और आन्तरिक शौच मन की शुद्धि से ही हुआ करता है ॥२८॥

स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
सुनिश्चलाशिवेभक्तिरेतदीशस्यपूजनम् ॥२९

यमाश्चनियमाःप्रोक्ताःप्राणायामन्निबोधत ।
प्राणः स्वदेहजोवायुरायामस्तन्निरोधनम् ।।३०
उत्तमाधममध्यत्वात्त्रिधायं प्रतिपादितः ।
य एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भएव च ।।३१
मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः ।
मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽन्तकः ।।३२
यः स्वेदकम्पनोच्छ्वासजनकत्वं यथाक्रमम् ।
संयोगश्च मनुष्याणामानन्दाच्चोत्तमोत्तमः ।।३३
सुनफाख्यं हितंयोगं सगर्भंविजयम्बुधाः ।
एतद्वैयोगिनांप्राहुः प्राणायामस्यलक्षणम् ।।३४
सव्याहृतिं सप्रणवांगायत्रींशिरसा सह ।
त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामोऽथ नामतः ।।३५

वाणी—मन और शरीर के कर्मों से स्तवन—स्मरण और पूजा के द्वारा जो सुनिश्चल शिव में भक्ति की भावना होती है इसी को ईश का पूजन कहा जाता है ।।२९।। यम और नियम पहिले ही बतला दिये गये हैं । अब प्राणायाम को समझ लो । प्राण अपनी देह में उत्पन्न वायु का नाम है उसका आयाम अर्थात् निरोध जिसमें किया जाता है वही प्राणायाम उत्तम—मध्यम और अधम तीन प्रकार का प्रतिपादित किया गया है । वह भी फिर दो प्रकार का कहा गया है—एक सगर्भ होता है और दूसरा अगर्भ है ।।३०-३१।। अदश मात्राओं वाला मन्द होता है—चौबीस मात्राओं वाला मध्यम है और छत्तीस मात्राओं वाला उत्तम प्राणायाम होता है ।।३२।। जो स्वेद, कम्पन, उच्छ्वास का क्रम से जनन करने वाला होता है तथा मनुष्यों का आनन्द से संयोग होता है वह उत्तमोत्तम होता है ।।३३।। सुनफ नाम वाला—हित योग को ही बुध लोग सगर्भ विजय कहते हैं । यह योगियों का ही कहा गया है । प्राणायाम का यही लक्षण है ।।३४।। व्याहृतियों के सहित प्रणव से युक्त तथा सिर से समन्वित गायत्री मन्त्र का आयत प्राण होकर तीन बार जाप करे । इसी को नाम से प्राणायाम कहा गया है ।।३५।।

रेचकः पूरकश्चैवप्राणायामोऽथ कुम्भकः ।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः ।।३६
रेचकोबाह्यनिश्वासः पूरकस्तन्निरोधनः ।
साम्येनसंस्थितिर्यासाकुम्भः परिगीयते ।।३७
इन्द्रियाणां विचरतांविषयेषु स्वभावतः ।
निग्रहःप्रोच्यतेसद्भिः प्रत्याहारस्तुसत्तमाः ।।३८
हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्निपर्वमु मस्तके ।
एवमादिषु देशेषुधारणाचित्तबन्धनम् ।।३९
देशावस्थितिमालम्ब्यऊर्द्ध्वंयावृत्तिसन्ततिः ।
प्रत्यन्तरैरसृष्टायातद्ध्यानसूरयोविदुः ।।४०
एकाकारः समाधिः स्याद्देशालम्बनवर्जितः ।
प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगशासनमुत्तमम् ।।४१
धारणा द्वाशायामा ध्यानं द्वादश धारणाः ।
ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ।।४२

रेचक—पूरक और कुम्भक ये तीन प्रकार से प्राणायाम कहा जाता है जिसको यत मन वाले योगियों ने समस्त शास्त्रों में कहा है ।।३६।। बाह्य निश्वास को ही रेचक कहते हैं और उसका निरोध कर लेना ही पूरक होता है । साम्य से जो संस्थिति होती है उसे ही कुम्भक कहा जाता है ।।३७।। विषयों में स्वभाव से ही विचरण करने वाली इन्द्रियों का जो निग्रह होता है उसी को श्रेष्ठतम सत्पुरुषों के द्वारा प्रत्याहार कहा गया है ।।३८।। हृदय कमल में अथवा नाभि में—मूर्द्धा पर्वों में—मस्तक में एवमादि स्थलों में चित्त के बन्धन को धारणा कहते हैं । देश की स्थिति का अवलम्ब ग्रहण करके ऊपर की ओर जो वृत्ति की सन्तति है जोकि प्रत्यन्तरों में सृष्ट न हो वही ध्यान होता है जिसको सूरिगण जानते हैं ।।३९-४०।। एकाकार समाधि होती है जोकि देश के अवलम्बन से वर्जित होती है । अर्थ मात्र से प्रत्यय उत्तम योग का शासन है । द्वादश यामा धारणा होती है और द्वादश धारणा वाला ध्यान होता है । द्वादश ध्यान जब तक हो उसे ही समाधि कहा जाता है ।।४१-४२।।

आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा ।
साधनाञ्च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम् ॥४३
ऊर्व्वोरुपरि विप्रेन्द्राः कृत्वा पादतले उभे ।
समासीनात्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम् ॥४४

उभे कृत्वापादतले जानूर्वोरन्तरेण हि ।
समासीनात्मनः प्रोक्तमासनंस्वस्तिकं परम् ॥४५
एकपादमथैकस्मिन्विष्टभ्योरसि सत्तमाः ।
असीनार्द्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम् ॥४६

अदेशकाले योगस्य दर्शनं न हि विद्यते ।
अग्न्यभ्यासे जले वाऽपि शुष्कपर्णचये तथा ॥४७

जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।
सशब्देसञ्चये वापिचैत्यवल्मीकसञ्चये ॥४८

अशुभेदुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते ।
नाचरेद्देहबाधेवादौर्मनस्यादिसम्भवे ॥४९

आसन तीन प्रकार के कहे हैं—स्वस्तिक—पद्म और अर्द्धासन । समस्त साधनों में यह अति उत्तम साधन होता है ॥४३॥ हे विप्रेन्द्रो ! दोनों पादतल ऊरुओं के ऊपर कर लेवे और समासीन स्वरूप में हो तो इसी को पद्मासन उत्तम आसन कहा गया है ॥४४॥ दोनों पादतलों को जानु और ऊरु के अन्तर में रक्खे । ऐसे समासीनात्मा पुरुष का आसन परम स्वस्तिक कहा गया है । एक पाद को एक विष्टम्य करके उर में रखे—ऐसे स्थित के आसन को अर्द्धासन कहते हैं । यह योग साधन के लिये उत्तम आसन है ॥४५-४६॥ अदेश काल में योग का दर्शन नहीं होता है । अग्नि के समीप में—जल में तथा शुष्क पत्तों के समूह में—जन्तु व्याप्त में—श्मशान में—जीर्ण गोष्ठ में—चतुष्पथ में—सशब्द में—सञ्चय में—चैत्य और वल्मीक सञ्चय में—अशुभ, दुर्जना क्रान्त और मशक आदि समन्वित स्थल में नहीं करना चाहिए । देह की बाधा में दौर्मत्य आदि के होने पर भी योग का साधन नहीं करना चाहिए ॥४७-४९॥

सुगुप्ते सुशुभेदेशेगुहायांपर्वतस्य च ।
नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा ॥५०
गृहे वा सुशुभे देशे निर्ज्जने जन्तुवर्जिते ।
युञ्जीत योगं सततमात्मानं तत्परायणः ॥५१
नमस्कृत्याऽथ योगीन्द्राञ्छिष्यांश्चैव विनायकम् ।
गुरुञ्चैव च मां योगी युञ्जीत सुसमाहितः ॥५२
आसनंस्वस्तिकंबद्ध्वापद्ममर्द्धमथापिवा ।
नासिकाग्रे समांदृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः ॥५३
कृत्वाथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत् ।
स्वात्मन्यवस्थितन्देवं चिन्तयेत्परमेश्वरम् ॥५४
शिखाग्रे द्वादशाङ्गुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम् ।
धर्मकन्दसमुद्भूतंज्ञाननालंसुशोभनम् ॥५५
ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम् ।
चिन्तयेत्परमंकोशंकर्णिकायांहिरण्मयम् ॥५६

किसी भी भली भाँति गुप्त—सुशुभ—निर्जन—पर्वत की गुहा—नदी का तट—पुण्य स्थल—देवायतन—गृह—जन्तु वर्जित देश में योग का अभ्यास करना चाहिए और आत्मा को निरन्तर उसी में परायण करके करना चाहिए ॥५०-५१॥ योगीन्द्रों को नमस्कार करके—शिष्यगण—विनायक—गुरु और मुझको नमन करके योगी को सुसमाहित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए ॥५२॥ स्वस्तिक—पद्म या अर्द्धासन को बाँध कर नासा के अग्रभाग में समा दृष्टि करे नेत्र थोड़े उन्मीलित होने चाहिए ॥५३॥ निर्भय और परम शान्त होकर अभ्यास करे तथा इस मायामय जगत् का त्याग कर देवे । अपनी आत्मा में अवस्थित देव परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए ॥५४॥ शिखा के अग्रभाग में द्वादश अंगुल वाले एक पङ्कज की कल्पना करे जोकि धर्म के केन्द्र से समुद्भूत हुआ है और ज्ञान की नाल से परम शोभा वाला है ॥५५॥ ऐश्वर्य के आठ दल उसमें है वैराग्य की ही परमोत्तर कर्णिका है । उस कर्णिका में हिरण्मय परम कोश का चिन्तन करना चाहिए ॥५६॥

सर्वशक्तिमयं साक्षाद्यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम् ।
ओङ्कारवाच्यमव्यक्तं रश्मिज्वालासमाकुलम् ॥५७
चिन्तयेत्तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम् ।
तस्मिञ्ज्तोतिषि विन्यस्य स्वानन्दं मम भेदतः ॥५८
ध्यायीत कोशमध्यस्थमीशं परमकारणम् ।
तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥५९
एतद्गुह्यतमं ज्ञानं ध्यानान्तरमथोच्यते ।
चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तंहृदयेपद्ममुत्तमम् ॥६०
आत्मानमथ कान्तारं तत्रानलसमत्विषम् ।
मध्ये वह्निशिखाकारं पुरुषंपञ्चविंशकम् ॥६१
चिन्तयेत्परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम् ।
ओंकारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमुच्यते ॥६२
अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम् ।
तदन्तः परमं तत्त्वमात्माधारंनिरञ्जनम् ॥६३

वह सर्व शक्तियों से परिपूर्ण—आद्य साक्षात् है जिसको दिव्य और अव्यय कहते हैं। वह ओङ्कार से वाच्य–अव्यक्त तथा रश्मियों की ज्वाला से समाकुल है ॥५७॥ वहीं पर जो अक्षर—विमल–पर ज्योति है उसका ही चिन्तन करना चाहिए। उस ज्योति में मेरे भेद से स्वानन्द का विन्यास करे। कोश के मध्य में स्थित परम कारण ईश का ध्यान करे। तदात्मा और सर्वगामी होकर अन्य कुछ भी नहीं चिन्तन करना चाहिए ॥५८-५९॥ यह परम गोपनीय ज्ञान है अब ध्यानान्तर कहा जाता है। पूर्वोक्त हृदय में उत्तम पद्म का चिन्तन करके आत्मा को—अनल के तुल्य कान्ति वाले वन को—मध्य में वह्नि की शिखा के आकार वाले पंच विशंक पुरुष को परमात्मा को चिन्तन करे। उसके मध्य में परम गगन है। वहाँ पर ओङ्कार से वोधित शाश्वत तत्त्व शिव कहे जाते हैं। प्रकृति में अव्यक्तलीन है जो परम ज्योति उत्तम है। उसके मध्य में आत्मा का आधार—निरञ्जन परम तत्त्व विद्यमान है ॥६०-६३॥

ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम् ।
विशोध्यसर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः ।।६४
संस्थाप्यमपि चात्मानं निर्मले परमे पदे ।
पावयित्वात्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा ।।६५
मद्रात्मा मन्मना भस्म गृहीत्वा त्वाग्निहोत्रिकम् ।
तेनोद्धूलितसर्वाङ्गमग्निरादित्यमन्त्रतः ।।६६
चिन्तयेत्स्वात्मनीशानं परं ज्योतिःस्वरूपिणम् ।
एष पाशुपतो योगः पशुपाशविमुक्तये ।।६७
सर्ववेदान्तमार्गोऽयमत्याश्रममितिश्रुतिः ।
एतत्परतरं गुह्यं मत्सायुज्यप्रदायकम् ।।६८
द्विजातीनान्तु कथितं भक्तानांब्रह्मचारिणाम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसाचक्षमाशौचं तपोदमः ।।६९
सन्तोषः सत्यमास्तिक्यंव्रताङ्गानि विशेषतः ।
एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमम्यनलुप्यते ।।७०

इस प्रकार से तन्मय होकर नित्य ही एक रूप वाले महेश्वर का ध्यान करना चाहिए । समस्त तत्वों का विशेष शोधन करके अथवा पुनः प्रणव के द्वारा निर्मल परम पद में अपनी आत्मा को संस्थापित करके आत्मा के देह को उसी ज्ञान के वारि से पवित्र कराकर मेरे में मन लगाने वाला होकर—महात्मा वनकर अग्निहोत्र की भस्म को ग्रहण करे ।।६४-६६।। उस भस्म से अपने सब अङ्गों को धूलित करे और यह भी अग्नि या आदित्य मन्त्र से करना चाहिए । फिर स्वातमा में परज्योति स्वरूपी ईशान का चिन्तन करे । यह पाशुपत योग है जो पशु पाश की विमुक्ति के ही लिये है ।।६७।। यह समस्त वेदान्त का मार्ग है यह अत्याश्रम है—ऐसाश्रुति का वचन है । यह परतर और परम गोपनोय है जो मेरे सायुज्य के प्रदान करने वाला है । जो द्विजाति ब्रह्मचारी एवं भक्त हैं उनके लिये कहा गया है । ब्रह्मचर्य अहिंसा—क्षमा—शौच—दम-तप सन्तोष-सत्य-आस्तिका—ये विशेष रूप व्रत के अङ्ग होते हैं । इनमें एक के भी हीन होने से इसका व्रत लुप्त नहीं होता है ।।६८-७०।।

तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति ।
वीतरागभयक्रोधामन्मया मामुपाश्रिताः ॥७१
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावयोगतः ।
येयथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम् ॥७२
ज्ञानयोगेन मां तस्माद्यजेत परमेश्वरम् ।
अथवाभक्तियोगेनवैराग्येणपरेण तु ॥७३
चेतसा बोधयुक्तेन पूजयेन्मांसदाशुचिः ।
सर्वकर्माणिसंन्यस्यभिक्षाशीनिष्परिग्रहः ॥७४
प्राप्नाति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम् ।
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रीकरण एव च ॥७५
निर्ममो निरहङ्कारो यो मद्भक्तःसमेप्रियः ।
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्माद्दृढनिश्चयः ॥७६
मर्यपितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः ।
यस्मान्नोद्विजतेल्लोकोलोकान्नोद्विजतेचयः ॥७७

इसीलिये आत्म गुणों से युक्त मनुष्य ही मेरे व्रत का वहन करने के योग्य होता है । राग-मय और क्रोध को छोड़ देने वाले मुझ में ही मन लगाने वाले मेरा उपाश्रय ग्रहण करके इस योग से बहुत से मेरे भाव योग से पवित्र हो गये हैं । मुझको जो भी जिस भावना से प्रपन्न होकर प्राप्त करता है मैं भी उसको उसी भाव से भजता हूँ ॥७१-७२॥ इस लिये परमेश्वर मुझको ज्ञान योग से ही समर्चित करे अथवा भक्तियोग से तथा परम वैराग्य से मेरा यजन करे ॥७३॥ सदा पवित्र होकर बोध से संयुत चित्त से ही मेरा पूजन करना चाहिए अन्य समस्त कर्मों का त्याग करके भिक्षाटन से निर्वाह करे और परिग्रह से रहित रहे ॥७४॥ वह व्यक्ति मेरा सायुज्य प्राप्त करता है—यह परम गुह्य विषय है जो हमने आपको बतला दिया है । समस्त भूतों से कभी भी किसी भी प्रकार का द्वेष न करने वाला तथा मैत्री भाव रखने वाला हो ॥७५॥ ममता से हीन—अहङ्कार से रहित जो मेरा भक्त होता है वही मेरा परम प्रिय होता है । योगी निरन्तर सन्तुष्ट—यत आत्मा वाला और दृढ़ निश्चय वाला होवे

॥७६॥ जो मुझमें ही अपनी बुद्धि को अर्पित करा देता है वही मेरा प्रिय भक्त होता है जिससे कोई भी लोक उद्विग्न न हो और जो स्वयं भी लोक से उद्वेग वाला न हो—ऐसा ही मेरा भक्त होना चाहिए ॥७७॥

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयः सहिमेप्रियः ।
अनपेक्षः शुचिदक्ष उदासीनो गतव्यथः ॥७८
सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो ये नकेनचित् ॥७९
अनिकेतः स्थिरमतिर्मद्भक्तोमामुपैष्यति ।
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणोमत्परायणः ॥८०
मत्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वतं परमंपदम् ।
चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्यमत्परः ॥८१
निराशीर्निर्ममो भूत्वामामेकंशरणंव्रजेत् ।
त्यक्त्वाकर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥८२
कर्मण्यपि प्रवृत्तोऽपि कर्मणा तेन बुध्यते ।
निराशीयतचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥८३
शारीरं केवलंकर्मकुर्वन्नाप्नोति तत्पदम् ।
यदृच्छालाभतृप्तस्य द्वन्द्वातीतस्यचैव हि ॥८४

हर्ष—अमर्ष—भय और उद्वेग से जो मुक्त होता है वही मेरा भक्त मेरा प्यारा होता है। जो किसी भी पदार्थ या व्यक्ति की अपेक्षा न करे —शुचि—दक्ष—उदासीन और समस्त प्रकार की व्यथाओं का त्याग करने वाला हो एवं सब तरह के आरम्भों का त्याग करने वाला हो और मेरी भक्ति से युक्त हो वही मेरा परम प्रिय हुआ करता है जिसके मन में अपनी निन्दा और स्तुति दोनों ही समान हों—मौन व्रत का धारण करने वाला तथा जो कुछ भी प्राप्त हो उसी में सन्तोष करने वाला हो वह मेरा प्रिय भक्त है ॥७८-७९॥ बिना कोई अपना निज का निकेत रखने वाला, स्थिर मति से युक्त जो मेरा भक्त है वह मुझ को प्राप्त करता है। सभी कर्मों को भी करता हुआ जो मुझ में ही परायण रहता है और निराशी-निर्मम होकर एक मेरी ही शरण ग्रहण किया करता है। सब कर्मों के

फलों में सङ्ग न करके नित्य ही तृप्त रहता है तथा चित्त से सब कर्मों को मुझ को ही समर्पित करके मेरे ही में तत्पर रहता हैं वह मेरे प्रसाद से परम शाश्वत मेरे पद को प्राप्त कर लेता है। कर्म में प्रवृत्त रह कर भी उस कर्म से बोध युक्त रहता है और निराशी—चित्त और आत्मा को यत रखने वाला—समस्त परिग्रह का त्याग करनें वाला मेरा भक्त होता है। यदृच्छा लाभ से तृप्ति प्राप्त करने वाला—द्वन्द्वों से परे अर्थात् सुख-दु:खादि को समभाव से समझने वालों के केवल शरीर सम्वन्धी कर्म करने पर वह मेरा पद उसे प्राप्त हो जाया करता है ॥८०-८४॥

कुर्वंतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसारनाशनम् ।
मन्मनामन्नमस्कारो मद्याजीमत्परायणः ॥८५
मामुपास्यति योगीशो ज्ञात्वा मां परमेश्वरम् ।
मामेवाहुः परं ज्योतिर्बोधयन्तः परस्परम् ॥८६
कथयन्तश्च मां नित्यंममसायुज्यमाप्नुयुः ।
एवंनित्याभियुक्तनांमायेयंकर्मसात्स्वगम् ॥८७
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन भास्वता ।
मद्बुद्धयो मां सततंपूजयन्तीहयेजनाः ॥८८
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमंवहाम्यहम् ।
येचान्येभोगकर्मार्थितजन्तेह्यन्यदेवताः ॥८९
तेषां तदन्तंविज्ञेयं देवतानुगतं फलम् ।
ये चान्ये देवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः ॥९०
मद्भवनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि मानवाः ।
तस्माद्विनश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः ॥९१

केवल मेरी प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये ही कर्मों को संसार के नाश करने के लिये करता हुआ—मुझ को ही नमन करने वाला—मेरा ही यजन करने वाला और मुझ में ही परायण रहने वाला योगीश मुझ को परमेश्वर जानकर मेरी ही उपासना करता है—परस्पर में वोधन करते हुए मुझ को परम ज्योति कहते हैं ॥८५-८६॥ नित्य ही मेरे गुण-गणों का कथन करते हुए मेरे सायुज्य को प्राप्त किया करते हैं। इस प्रकार से

जो मुझ में ही नित्य अभियुक्त होते हैं उनको यह मेरी माया कुछ भी प्रभाव नहीं करती है ।।८७।। मैं भासमान कर्मदीप के द्वारा समस्त तम का नाश कर देता हूँ । मेरे ही अन्दर बुद्धि रखने वाले जो मनुष्य यहाँ पर मेरी पूजा निरन्तर किया करते हैं उन नित्य अभियुक्त मेरे भक्तों का योग क्षेम मैं वहन किया करता हूँ । जो अन्य लोग भोग के कर्मों के प्रयोजन वाले हैं और अन्य देवों का यजन किया करते हैं उनका वैसा ही अन्त समझना चाहिए । उनको देवता के ही अनुगत फल मिलता है । जो अन्य लोग अन्य देवों के भक्त होते हैं और यहाँ पर देवताओं का पूजन किया करते हैं किन्तु मेरी भावना मे समायुक्त होते हैं वे मनुष्य भी युक्त हो जाया करते है । इसीलिये विनश्वर अन्य देवों का सब का त्याग करके मेरा ही आश्रय लेवे ।।८८ ९१।।

मामेव संश्रयेदीशं सयाति परमं पदम् ।
त्यक्त्वापुत्रादिषुस्नेहंनिःशोकोनिष्परिग्रहः ।।९२
यजेच्चामरणाल्लिङ्ग विरक्तःपरमेश्वरम् ।
येऽर्च्चयन्तिसदालिङ्गं त्यक्त्वाभोगानशेषतः ।।९३
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमम्पदम् ।
परात्मनः सदा लिङ्गं केवलं रजतप्रभम् ।।९४
ज्ञानात्मकंसर्वगतंयोगिनांहृदिसंस्थितम् ।
येचान्येनियताभक्ताभावयित्वा विधानतः ।।९५
यत्र क्वचन तल्लिङ्गमर्च्चयन्तिमहेश्वरम् ।
जलेवावह्निमध्येवाव्योम्निसूर्येऽप्यथान्यतः ।।९६
रत्नादौ भावयित्वेशमर्च्चयेल्लिङ्गमैश्वरम् ।
सर्वलिङ्गमयंह्येतत्सर्वंलिङ्गे प्रतिष्ठितम् ।।९७
तस्माल्लिङ्गेऽर्च्चयेदीशं यत्र क्वचन शाश्वतम् ।
अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम् ।।९८

जो केवल ईश मेरा ही संश्रय ग्रहण किया करता है वह परम पद को प्राप्त होता है । अपने पुत्रादि में स्नेह का त्याग करके—शोक से रहित होकर बिना परिग्रह वाला रह कर मरण पर्यन्त परम विरक्त हो परमे-

श्वर के लिङ्ग का यजन करे। जो सदा समस्त भोगों का त्याग करके मेरे लिङ्ग का अर्चन किया करते हैं उनको मैं एक जन्म में परम पद प्रदान कर देता हूँ। परमात्मा लिङ्ग सदा रजत की प्रभा से युक्त केवल ज्ञानात्मक—सर्वगत और योगियों के हृदय में समवस्थित है। जो अन्य भक्त नियत है और विधान से भावना करके महेश्वर के उस लिङ्ग का जहाँ—कहीं भी यजन किया करते हैं। जल में—अग्नि के मध्य में—वायु—व्योम—सूर्य में तथा अन्य भी किसी में रत्नादि में ईश्वरीय लिङ्ग की भावना करके उसका अर्चन करते हैं। यह सर्व लिङ्ग मय है और सर्व लिङ्ग में प्रतिष्ठित है। इसलिये ईश अर्चन लिङ्ग में ही करना चाहिए जहाँ कहीं भी हो यह शाश्वत है। क्रिया वालों का अग्नि में और मनीषियों का जल—व्योम और सूर्य में विद्यमान् है ॥९२-९८॥

काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गं तु योगिनाम् ।
यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः ॥९९
यावज्जीवं जपेद्युक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः ।
अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद् द्विजः ॥१००
एकाकी यतचित्ताऽऽत्मा स याति परमम्पदम् ।
वसेच्चामरणाद्विप्रा वाराणस्यां समाहितः ॥१०१
सोऽपीश्वरप्रसादेन यातितत्परमम्पदम् ।
तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामेव देहिनाम् ॥१०२
ददाति परमं ज्ञानं येनमुच्येत वन्धनात् ।
वर्णाश्रमविधिकृस्नं कुर्वाणो मत्परायणः ॥१०३
तेनैवः जन्मना ज्ञानंलब्ध्वा यातिशिवम्पदम् ।
येऽपितत्रवसन्तीहनीचावैपापयोनयः ॥१०४
सर्वेतरन्तिसंसारमीश्वरानुग्रहाद्द्विजाः ।
किन्तुविघ्नाभविष्यन्तिपापोपहतचेतसाम् ॥१०५

मूर्खों का लिङ्ग काष्ठ आदि में होता है और जो योगी हैं उनके हृदय में ही लिङ्ग रहता है। यदि विज्ञान के उत्पन्न न होने वाला विरक्त प्रीति से संयुक्त है तो उसे जब तक जीवित रहे ब्रह्म का वपु जो प्रणव है

उसी का जाप करना चाहिए अथवा मरणपर्यन्त शतरुद्रीय का द्विज को जप करना चाहिए ॥९९-१००॥ जो एकाकी—यतचित्त और आत्मा वाला है वह परम पद को प्राप्त होता है। हे विप्रो ! मरणपर्यन्त वाराणसी में वास करे और समाहित होकर रहे ॥१०१॥ वह भी ईश्वर के प्रसाद से परम पद को प्राप्त कर लेता है। वहाँ पर उत्क्रमण के समय में समस्त देहधारियों को परम ज्ञान प्रदान कर देते हैं जिसके द्वारा वह बन्धन से मुक्त हो जाया करता है। वर्णों और आश्रमों को शास्त्र विदित विधि का सम्पादन करते हुए जो मुझ में ही परायण रहता है वह उसी जन्म में ज्ञान प्राप्त करके शिव के पद को प्राप्त कर लेता है। जो भी नीच तथा पाप योनि वाले लोग वहाँ पर निवास किया करते हैं हे द्विजगण ! वे सभी ईश्वर के अनुग्रह से इस संसार सागर को पार कर जाया करते हैं किन्तु जो पापों से उपहत चित्त वाले होते हैं उनको विघ्न होंगे ॥१०२-१०५॥

धर्मान्समाश्रयेत्तस्तान्मुक्तये सततं द्विजाः।
एतद्रहस्यंवेदानांन देयंयस्यकस्यचित् ॥१०६

धार्मिकायैव दातव्वं भक्ताय ब्रह्मचारिणे !।
इत्येतदुक्त्वा भगवान् शाश्वतो योगमुत्तमम् ॥१०७

व्याजहारसमासीनं नारायणमनामयम् ।
मयैतद्भाषितंज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनम् ॥१०८

दातव्यं शान्तचित्तेभ्यः शिष्येभ्यो भवता शिवम् ।
उक्त्वैवमर्थं योगीन्द्रानब्रवीद्भगवानजः ॥१०९

हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमाः।
भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥११०

उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम।
अयंनारायणोयोऽसावीश्वरो नात्रसंशयः ॥१११

नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदम्परम् ।
ममैषा परमामूर्त्तिर्नारायणसमाह्वया ॥११२

हे द्विजगण ! इसीलिये मुक्ति के लिये निरन्तर धर्मों का समाश्रय करना चाहिए। यह वेदों का परम रहस्य है। इसे जिस किसी को कभी नहीं देना चाहिए ॥१०६॥ जो धार्मिक हो—भक्त हो और ब्रह्मचारी हो उसी को यह विज्ञान प्रदान करना चाहिए। व्यासजी ने कहा—शाश्वत भगवान् ने इस उत्तम योग को इतना ही कहा था ॥१०७॥ फिर अनामय नारायण से जो वहाँ पर समासीन थे कहा था कि मेरे द्वारा भाषित यह ज्ञान ब्रह्म वादियों के हित सम्पादन करने के लिये है ॥१०८॥ इसको जो यतचित्त वाले शिष्य हों उन्हीं को आपको देना चाहिए। इस प्रकार से कह कर भगवान् अज योगीन्द्रों से बोले ॥१०९॥ हे द्विजोत्तमो ! आप सब लोग भी द्विजगति भक्तों के हित के लिये मेरे इस ज्ञान को विधि-पूर्वक शिष्यों को देवें। मेरे वचन से आप भी सब भक्तों को इसका उपदेश करेंगे। यह नारायण साक्षात् ईश्वर हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो इनमें कोई भी अन्तर नहीं देखते हैं उनको ही यह ज्ञान देना चाहिए यह नारायण नाम धारण करने वाली एक दूसरी मेरी ही साक्षात् मूर्त्ति है ॥११०-११२॥

सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंस्थिता ।
येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जनाः ॥११३

न ते मुक्ति प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुनः पुनः ।
येत्वेनंष्णुमव्यक्तंमाञ्चदेवंमहेश्वरम् ॥११४

एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भवः ।
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम् ॥११५

मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च ।
येऽन्यथासम्प्रपश्यन्ति मत्वैवं देवतान्तरम् ॥११६

ते यान्ति नरकान् घोरान्नाहंतेषु व्यवस्थितः ।
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम् ॥११७
मोचयामि श्वपाकं वा नारायणमनिन्दकम् ।
तस्मादेष महायोगीमद्भक्तैः पुरुषोत्तमः ॥११८

अर्च्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय वै ।
एवमुक्त्वा वासुदेवमालिङ्ग्य स पिनाकधृक् ।।११९

समस्त भूतों के आत्म भूतस्थ—शान्त और अक्षर संस्थित जो मुझको अन्यथा देखते हैं तथा लोक में भेद देखने वाले जन हैं वे कभी भी मुक्ति का दर्शन नहीं किया करते हैं और वारम्वार पुनः पुनः इस संसार में जन्म लिया करते हैं। जो अव्यक्त इन विष्णु देव को और महेश्वर मुझको एकीभाव से ही देखा करते हैं। उनका फिर दुबारा इस संसार में जन्म नहीं होता है। इसीलिये अनादि निधन—अव्यय आत्मा भगवान् विष्णु को मुझको ही देखो और उसी भावना से पूजन भी करो। जो लोग दूसरा देव समझकर अन्य प्रकार से ही देखा करते हैं वे परम घोर नरकों में जाया करते हैं। उनमें मैं व्यवस्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो अथवा पण्डित हो या ब्राह्मण हो जो मेरा आश्रय ग्रहण करने वाला है उस नारायण की निन्दा न करने वाले श्वपाक को भी मैं मुक्त कर देता हूँ। इसीलिये यह महायोगी पुरुषोत्तम प्रभु मेरे भक्तों के द्वारा अर्चना करने के योग्य होता है। इनका अर्चन करना चाहिए—इनको प्रणाम करना चाहिए और यह सब मेरी ही प्रीति के उत्पन्न करने के लिये करना चाहिए। इतना इस प्रकार से कहकर उन पिनाक धारी प्रभु शिव ने भगवान् वासुदेव का आलिङ्गन किया था ।।११३-११९।।

अन्तर्हितोऽभवत्तेषां सर्वेषामेव पश्यताम् ।
नारायणोऽपिभगवांस्तापसवेषमुत्तमम् ।।१२०
जग्राह योगिनः सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपुः ।
ज्ञानं भवद्भिरमलं प्रसादात्परमेष्ठिनः ।।१२१
साक्षाद्देवमहेशस्य ज्ञानं संसारनाशम् ।
गच्छध्वं विज्वराः सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिनः ।।१२२
प्रवर्त्तयध्वंशिष्येभ्योधार्मिकेभ्योमुनीश्वराः ।
इदंभक्तायशान्तायधार्मिकायाहिताग्नये ।।१२३
विज्ञानमंश्वरं देयं ब्राह्मणायविशेषतः ।
एवमुक्त्वास्वविश्वात्मायोगिनांयोगवित्तम. ।।१२४

नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम् ।
ऋषयस्तेऽपिदेवेशं नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥१२५
नारायणञ्चभूतादिं स्वानिस्थानानिलेभिरे ।
सनत्कुमारोभगवन्सम्वर्त्तायमहामुनिः ॥१२६

फिर भगवान् महेश्वर उन सबके देखते हुए अन्तर्धान हो गये थे । भगवान् नारायण ने भी उत्तम ताहस का वेष ग्रहण कर लिया था और योगियों से कहा हे योगिजनो ! आप सब लोग भी सबका त्याग करके परमेष्ठी के प्रसाद से परम वपु अमल ज्ञान को धारण करो ॥१२०-१२१॥ साक्षात् देव महेश का ज्ञान इस संसार का नाश करने वाला है । इसलिये सब विज्वर होकर परमेष्ठी के इस विज्ञान को ग्रहण करो । ॥१२२॥ हे मुनीश्वरो ! इस विज्ञान को धार्मिक शिष्यों में प्रवृत्त करो । यह ईश्वर सम्बन्धी विज्ञान भक्त—शान्त—धार्मिक—आहिताग्नि और विशेष रूप से ब्राह्मण को ही देना चाहिए । इस तरह कहकर योगियों में श्रेष्ठ योग के ज्ञाता विश्वात्मा महायोगी नारायण स्वयं भी अदर्शन को प्राप्त हो गये थे । उन समस्त ऋषियों ने भी देवेश महेश्वर को नमस्कार किया था ॥१२३-१२५॥ ऋषियों ने भूतों के आदि भगवान् को भी प्रणाम किया था और फिर अपने-अपने स्थानों को प्राप्त हो गये थे । महामुनि भगवान् सनत्कुमार ने सम्वर्त के लिये यह ईश्वरीय ज्ञान दिया था ॥१२६॥

दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपिसत्यत्वमाययौ ।
सनन्दनोऽपि यागीन्द्रः पुलहाय महर्षये ॥१२७
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापतिः ।
अङ्गिरावेदविदुषे भारद्वाजाय दत्तवान् ॥१२८
जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च ।
पराशरोऽपिसनकात्पितामेसर्वतत्त्वदृक ॥१२९
लेभेतत्परमं ज्ञानं तस्माद्वाल्मीकिराप्तवान् ।
ममोवाच पुरा देवः सतीदेहभवाङ्गजः ॥१३०

वामदेवो महायोगी रुद्रःकालपिनाकधृक् ।
नारायणोऽपिभगवान्देवकीतनयो हरिः ॥१३१

अर्जुनाय स्वयं साक्षाद्दत्तवानिदमुत्तमम् ।
यदाहं लब्धवान्रुद्राद्वामदेवादनुत्तमम् ॥१३२

विशेषाद्‌गिरीशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत् ।
शरण्यंगिरीशंरुद्रंप्रपन्नोऽहंविशेषतः ॥१३३

वह सम्वर्त्त सनत्कुमार से ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करके सत्यत्व को प्राप्त हो गया था । योगीन्द्र सनन्दन ने भी महर्षि पुलह के लिये यह ज्ञान प्रदान किया था । पुलह प्रजापति ने भी गौतम को दिया था । अङ्गिरा ने वेदों के महा विद्वान् भरद्वाज को यही ज्ञान प्रदान किया था ॥१२७-१२८॥ कपिल ने जैगीषव्य तथा पञ्च शिख को दिया था । पराशर मुनि ने जो सभी तत्त्वों के दर्शक मेरे पिता थे इस ज्ञान को सनक से प्राप्त किया था । उनसे उस परम ज्ञान वाल्मीकि ने प्राप्त किया था । पहले सती के देह से समुत्पन्न देव ने मुझको कहा था ॥१२९-१३०॥ वामदेव महायोगी—रुद्र काल पिनाक के धारण करने वाले हैं और नारायण भी भगवान् देवकी के पुत्र हरि हैं । उन्होंने साक्षात् स्वयं इस उत्तम योग को अर्जुन के लिये दिया था । मैंने यह उत्तम ज्ञान वामदेव रुद्र से प्राप्त किया था विशेष रूप से गिरीश में भक्ति तभी से आरम्भ करके मेरी हुई थी । शरण्य गिरीश रुद्रदेव का मैं विशेष रूप से प्रपन्न हो गया था ॥१३१-१३३॥

भूतेशं गिरीशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम् ।
भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम् ॥१३४

प्रपद्यन्तां सपत्नीकाः सपुत्राः शरणं शिवम् ।
वर्त्तध्वन्तत्प्रसादेनकर्मयोगेन शङ्करम् ॥१३५
पूजयध्वं महादेवं गोपतिं व्यालभूषणम् ।
एवमुक्ते पुनस्ते तु शौनकाद्या महेश्वरम् ॥१३६
प्रणेमुः शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम् ।
अब्रुवन् हृष्टमनसः कृष्णद्वैपायनं प्रभुम् ॥१३७

साक्षाद्देवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम् ।
भवत्प्रसादाद्धचला शरण्ये गोवृषध्वजे ।।१३८
इदानीं जायते भक्तिर्यादिवैरपि दुर्लभा ।
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ ! कर्मयोगमनुत्तमम् ।।१३९
येनासौ भगवानोशः समाराध्योमुमुक्षुभि ।
त्वत्सन्निधोवेवसूतःशृणोतिभगवद्वचः ।।१४०

भूतों के स्वामी—गिरीश—स्थाणु—देवों के देव—त्रिशूली गोवृष के वाहन वाले देव उस शम्भु की शरणागति में आप सब लोग भी पत्नीयों के सहित तथा पुत्रों के सहित उस शरण शिव के प्रपन्न हो जाइये । उसके प्रसाद कर्म योग के द्वारा शङ्कर की सेवा में वर्त्तमान हो जाओ ।।१३४-१३५।। व्यालों के भूषण वाले गोपति महादेव की पूजा करो । इस प्रकार से कहे गये शौनकादि उन मुनियों ने पुनः शङ्कर को प्रणाम किया था शाश्वत और स्थाणु हैं । फिर परम प्रसन्न मन वाले होते हुए सत्यवती के पुत्र प्रभु कृष्ण द्वैपायन व्यासजी से वे सब लोग बोले ।।१३६-१३७।। लोक महेश्वर हृषीकेश देव शिव साक्षात् हुए हैं । आपके ही प्रसाद से शरण्य गोवृष की ध्वजा वाले शिव में अब भक्ति उत्पन्न होती है जो यादवों के द्वारा भी दुर्लभ है । हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप परमोत्तम कर्म योग वर्णन करिये जिसके द्वारा मुमुक्षुओं के द्वारा यह भगवान् ईश समाराधान के योग्य होते हैं । आपकी सन्निधि में ही यह सूतजी भी भगवान् के वचन का श्रवण करते हैं ।।१३८-१४०।।

तद्वदालिलोकानां रक्षण धर्म्मसंग्रहम् ।
यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्म्मरूपिणा ।।१४१
पृष्टेन मुनिभिः सर्वं शक्रेणमृतमन्थने ।
श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोग सनातनम् ।।१४२
मुनीनां भाषितं कृत्स्नं प्रोवाच सुसमाहितः ।
य इमं पठते नित्यं सम्वादं कृत्तिवाससः ।।१४३
सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
श्रावयेद्वाद्विजान्शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान् ।।१४४

यो वा विचारयेदर्थं स याति परमाङ्गतिम् ।
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यंभक्तियुक्तोदृढव्रतः ॥१४५
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः ॥१४६
श्रोतव्यश्चानुमन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणैः सदा ॥१४७

अब आप उसी को बतलाइये जो अखिल लोकों की रक्षा करने वाला धर्म संग्रह कूर्म रूपी देवों के देव भगवान् विष्णु ने कहा था। मुनियों के द्वारा पूछे गये इन्द्र से अमृत के मन्थन के समय में सत्यवती के पुत्र ने सनातन कर्म योग का श्रवण कर सुसमाहित होकर सम्पूर्ण मुनियों के भाषित को कह दिया था जो इस कृत्तिवासा के सम्वाद को नित्य ही पढ़ता है वह सनत्कुमार प्रमुखों के सहित समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाता है। तथा ब्रह्मचर्य व्रत में परायणी शुद्ध द्विजों को श्रवण कराता है अथवा जो इसके अर्थ का विचार किया करता है वह भी परमगति को प्राप्त होता है। जो इसको भक्ति से युक्त होकर दृढ़ व्रत वाला नित्य ही श्रवण किया करता है वह सब पापों से छुटकारा पाकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है। इसलिये सब प्रकार के प्रयत्नों मनीषियों को इसका पाठ अवश्य ही करना चाहिए तथा ब्राह्मणों के द्वारा विशेष रूप से नित्य ही सदा इसका अनुमनन एवं श्रवण करना चाहिए ॥१४१-१४७॥

व्यास गीता

१२—कर्मयोगवर्णन

शृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम् ।
कर्मयोगंब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम् ॥१
आम्नायसिद्धमखिलं ब्राह्मणानांप्रदर्शितम् ।
ऋषीणां शृण्वतांपूर्वमनुराह प्रजापतिः ॥२
सर्वपापहरं पुण्यं ऋषिसङ्घैर्निषेवितम् ।
समाहितधियो यूयं शृणुध्वंगदतो मम ॥३

कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमाः ।
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः ।।४

दण्डीचमेखलीसूत्रीकृष्णाजिनधरोमुनिः ।
भिक्षाचारीब्रह्मचारीस्वाश्रमेनिवसन्सुखम् ।।५

कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणापुरा ।
ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा ।।६

सदोपवीता चैव स्यात्सदाबद्धशिखाद्विजः ।
अन्यथायत्कृतंकर्म तद्भवत्ययथांकृतम् ।। ७

व्यास देव ने कहा—हे ऋषिगणो ! अब आप सब लोग श्रवण करो । मैं सनातन कर्म योग का वर्णन करता हूँ जो ब्राह्मणों को आत्यन्तिक फल के प्रदान करने वाला है ।।१।। यह सम्पूर्ण आम्नाय से सिद्ध है और ब्राह्मणों का ही प्रदर्शित किया गया है । श्रवण करने वाले ऋषियों के आगे पहिले प्रजापति मनु ने कहा था ।।२।। यह समस्त पापों के हरण करने वाला परम पुण्यमय है और ऋषि समुदायों के द्वारा निषेवित है । कहने वाले मुझसे अब आप लोग समाहित बुद्धि वाले होकर इसका श्रवण करिये ।।३।। हे द्विजोत्तमो ! उपनयन संस्कार से सम्पन्न होकर वेदों का अध्ययन करना चाहिए । गर्भ से आठवें वर्ष में अथवा जन्म से आठवें वर्ष में अपने सूत्र में कथित विधान के अनुसार ही उपनयन संस्कार सम्पन्न होना चाहिए ।।४।। दण्डधारी—मेखला पहिनने वाला—सूत्र का धारण कर कृष्ण मृग चर्म को धारण करे । ऐसा मुनि ब्रह्मचारी होकर भिक्षाचरण करे और अपने आश्रम में निवास करता हुआ सुख पूर्वक रहे ।।५।। पहिले ब्रह्मा ने उपवीत के लिये कपास का निर्माण किया था । ब्राह्मणों का सूत्र तीन आवृत्ति वाला होता है । वह कौश हो अथवा वस्त्र ही होवे ।।६।। ब्रह्मचारी को सदा उपवीत के धारण करने वाला ही होना चाहिए और सर्वदा उसकी शिखा भी बँधी हुई रहनी चाहिए । इसके अभाव में जो भी कुछ कर्म-कलाप किया गया है वह सभी अन्यथा कृत अर्थात् निष्फल हो जाया करता है ।।७।।

वसेदविकृतं वासः कार्पासं वा कषायकम् ।
तदेव परिधानायं शुक्लमच्छिद्रमुत्तमम् ॥८
उत्तरं तु समाख्यातंवासःकृष्णाजिनंशुभम् ।
अभावे दिव्यमजिनंरौरवंवा विधीयते ॥९
उद्धृत्य दक्षिणंबाहुं सव्येबाहौ समर्पितम् ।
उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतंकण्ठसज्जने ॥१०
सव्यं बाहुंसमुद्धृत्यदक्षिणेतुधृतंद्विजाः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तंपैत्रेकर्मणि योजयेत् ॥११
अग्न्यागारे गवांगोष्ठेहोमेजप्यैतथैवच ।
स्वाध्याये भोजनेनित्यंब्राह्मणानाञ्चसन्निधौ ॥१२
उपासने गुरूणाञ्च सन्ध्यतोः साधुसंगमे ।
उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातनः ॥१३
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
कुशेन निर्म्मिता विप्रा ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः ॥१४

एक ही वस्त्र चाहे वह कपास का बना हुआ हो अथवा कषायक हो किन्तु वह विकृत नहीं होना चाहिए ऐसा ही धारण करे। वह वस्त्र शुक्ल—छिद्र रहित और उत्तम होना चाहिए ॥८॥ उत्तरीय वस्त्र तो शुभ काले मृग का चर्म ही बताया गया है उसके अभाव में दिव्य अजिन या रौरव धारण किया जा सकता है ॥९॥ दक्षिण बाहु को ऊपर उठाकर सव्य बाहु में उपवीत को नित्य समर्पित करना चाहिए। कण्ठ सज्जन में निवीत होता है ॥१०॥ हे द्विजगण ! सव्य बाहु को समुद्धृत करके दक्षिण बाहु में धृत प्राचीनावीत नाम से कहा गया है जिसका योजन पैत्र्य कर्म में ही करना चाहिए ॥११॥ अग्नि के आगार में—गौओं के गोष्ठ में—होम के समय में—जप्य काल में—स्वाध्याय में—भोजन करने के समय में—नित्य ब्राह्मणों की सन्निधि में—गुरुजन की सेवा में—दोनों सन्ध्याओं की उपासना के समय में—साधु पुरुषों के सङ्गम में उपवीत के धारण करने वाला होना ही चाहिए—यह परम सनातन विधि है ॥१२-१३॥ विप्र की मेखला मूंज की त्रिवृत्ति से युक्त और

श्लक्षण वनानी चाहिए। हे विप्रो ! कुशा से निर्मित हो और उसमें एक ही ग्रन्थि लगी हुई हो अथवा तीन ग्रन्थियों से युक्त होनी चाहिए ॥१४॥

धारयेद्वैल्वपालाशौ दण्डौ केशान्तकौ द्विजः।
यज्ञार्हवृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेवच ॥१५
सायं प्रातर्द्विजः सन्ध्यामुपासीत समाहितः।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्त्यक्त्वैनां पतितो भवेत् ॥१६
अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायम्प्रातर्यथाविधि।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा ॥१७
देवताभ्यर्च्चनं कुर्यात्पुष्पैःपत्रेणचाम्बुना।
अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषुधर्मतः ॥१८
असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम्।
आयुरारोग्यसान्निध्यं द्रव्यादिपरिवर्जितम् ॥१९
आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्योविप्रोऽभिवादने।
आकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरप्लुतः ॥२०
न कुर्याद्योऽभिवादस्यद्विजःप्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्यःस विदुषायथाशूद्रस्तथैवसः ॥२१

द्विज को इतना लम्बा दण्ड करना चाहिए कि केशों के समीप तक पहुँच जावे। यह दण्ड बिल्व और पलाश इनमें से किसी भी एक का होना चाहिए। यज्ञ के योग्य किसी भी अन्य वृक्ष का हो किन्तु वह परम सौम्य और व्रणों से रहित होना चाहिए ॥१५॥ द्विज को प्रातःकाल और सायंकाल में परम समाहित होकर सन्ध्या की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए। स्वेच्छा से—लोभ से—भय से और मोह से इस उपासना का त्याग करके द्विज पतित हो जाया करता है ॥१६॥ इसके अनन्तर सायं और प्रातः काल में अग्नि कार्य अर्थात् हवन यथाविधि करना चाहिए स्नान करके देवों तथा ऋषियों का तर्पण करना चाहिए और पीछे अपने पितृगण का भी तर्पण करे ॥१७॥ इसके अनन्तर पत्र—पुष्प और जल के द्वारा देव का अभ्यर्चन करना चाहिए। धर्म के अनुसार नित्य ही अपने वृद्ध जनों

के प्रति अभिवादन करने के स्वभाव वाला होना चाहिए ॥१८॥ वृद्ध तथा गुरुजन को जिसको भी प्रणाम करे सर्वप्रथम सम्बोधित करे फिर अमुक नामधारी मैं प्रणाम करता हूँ—यह कहते हुए अभिवादन करना चाहिए । आयु—आरोग्य सान्निध्य—द्रव्यादि परिवर्जित प्रगति होनी चाहिए । अभिवादन करने पर विप्र को 'हे सौम्य ! आयुष्मान् होओ—इस प्रकार से आशीर्वाद बोलना चाहिए । इस नाम के अन्त में पूर्वाक्षर प्लुत अकार बोलना चाहिए ॥१९-२०॥ जो द्विज अभिवादन करने वाले का प्रत्यभिवादन नहीं किया करता है । ऐसे द्विज को विद्वान् के द्वारा कभी भी अभिवादन नहीं करना चाहिए क्योंकि वह शूद्र के समान हुआ करता है ॥२१॥

विन्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणंगुरोः ।
सव्येन सव्यःस्प्रष्टव्यो दक्षिणेननुदक्षिणः ॥२२
लौकिकंवैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव वा ।
आददीत यतोज्ञानंतं पूर्वमभिवादयेत् ॥२३
नोदकंधारयेद्भैक्ष्यं पुष्पाणि समिधं तथा ।
एवंविधानि चान्यानिन देवद्येषु कर्मषु ॥२४
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥२५
उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः ।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ ॥२६
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्चसर्वे ते गुरवः स्मृताः ।
मातामातामहीगुर्वी पितुर्मातुश्चसोदराः ॥२७
श्वश्रूःपितामहीज्येष्ठाभ्रातृजाया गुरुस्त्रियः ।
इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयंमातृतःपितृतस्तथा ॥२८

हाथों को चरणों में विन्यास करके ही गुरु का उप संग्रहण करना चाहिए । सव्य कर से सव्य चरण का और दक्षिण कर से दक्षिण चरण का स्पर्श करे ॥२२॥ लौकिक तथा वैदिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान जिससे भी ग्रहण करे उसी को सर्वप्रथम अभिवादन करना चाहिए ॥२३॥ देवादि

कर्मों में उदक—भैक्ष्य—पुष्प—समिधा तथा इस प्रकार के अन्य पदार्थों को धारण नहीं करना चाहिए ।।२४।। ब्राह्मण से कुशल पूछना चाहिए। क्षत्रिय से अनामय पूछे—वैश्य से क्षेम पूछे और शूद्र से समागत होकर आरोग्य पूछना चाहिए ।।२५।। उपाध्याय—पिता—ज्येष्ठ भाई—राजा—मामा—श्वशुर—मातामह—पितामह—वर्णं में ज्येष्ठ और पितृव्य ये सभी गुरुजन कहे गये हैं। माता—मातामही भी गुरुवत् सामान्य है। पिता की और माता की सोदरा भगिनी—सास पितामही—ज्येष्ठ भ्रातृ जाया—गुरुपत्नी ये सभी गुरुस्थानीय ही होते हैं। यह माता और पिता से गुरु वर्ग वर्णित कर दिया गया है ।।२६-२८।।

अनुवर्त्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः ।
गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः ।।२९
नैतैरुपविशेत्सार्द्धं विवदेतार्थकारणात् ।
जीवितार्थमपि द्वेषाद्गुरुभिर्नैवभाषणम् ।।३०
उदितोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः ।
गुरूणामपि सर्वेषां पूज्या पञ्च विशेषतः ।।३१
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषांमातासुपूजिता ।
यो भावयतियासूतेयेन विद्योपादिश्यते ।।३२
ज्येष्ठोभ्राता च भर्त्ता पञ्चते गुरवः स्मृता ।
आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेनवापुनः ।।३३
पूजनीया विशेषेण पश्चैते भूतिमिच्छता ।
यावत्पिता च माता च द्वावेतौ निर्व्विकारिणौ ।।३४
तावत्सर्वं परित्यज्यपुत्रःस्यात्तत्परायणः ।
मातापिताचसुप्रीतौस्यातांपुत्रगुणैर्यदि ।।३५

इस उपर्युक्त गुरुवर्ग का सर्वदा अनुवर्त्तन मन—वाणी और शरीर से करना चाहिए। गुरु को देख कर खड़ा हो जाना चाहिए और कृताञ्जलि होकर उनको अभिवादन करना चाहिए ।।२९।। इनके साथ बराबर में कभी नहीं बैठना चाहिए और अर्थ के कारण से कभी इनके साथ विवाद भी नहीं करे। जीवित के लिए भी द्वेष से गुरुओं के साथ कभी भाषण

नहीं करना चाहिए। अन्य गुणों से समुदित होता हुआ भी जो गुरु का द्वेषी होता है वह अधःपतन का अधिकारी हो जाया करता है। इन गुरु वर्गों के मध्य में भी पाँच विशेष रूप से पूजा के योग्य हुआ करते हैं ॥३०-३१॥ उनमें भी आदि के तीन परम श्रेष्ठ होते हैं। उनमें भी माता परम सुपूजित कही गयी है। जो जन्म देती है जो पालन करती है और जिसके द्वारा विद्या का उपदेश किया जाता है। ज्येष्ठ भाई और भर्त्ता ये पाँच गुरु कहे गये हैं। अपनी आत्मा के सभी प्रयत्नों से अथवा प्राणों के भी त्याग के द्वारा ये पाँच विशेष रूप से भूति की इच्छा रखने वाले के द्वारा पूजा के योग्य होते हैं। जितने माता और पिता हैं ये दोनों ही निर्विकारी होते हैं तब तक सब का परित्याग करके पुत्र को अपने माता-पिता की सेवा में सर्वदा परायण रहना चाहिए। यदि माता-पिता पुत्र के गुण गणों से परम प्रसन्न होते हैं तो उस पुत्र का पूर्ण धर्म सम्पन्न हो जाता है ॥३२-३५॥

स पुत्रःसकलं धर्ममाप्नुयात्तेनकर्मणा।
नास्ति मातृसमो देवोनास्तितातसमोगुरुः ॥२६

तयोः प्रत्युपकारो हि न कथञ्चनविद्यते।
तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्कर्मणामनसा गिरा ॥३७

नताभ्यामननुज्ञातो धर्नमन्यंसमाचरेत्।
वर्ज्जयित्वा मुक्तिफलंनित्यंनैमित्तिकंतथा ॥३८

धर्मः सारः समुद्दिष्टःप्रेत्यानन्तफलप्रदः।
सम्यगाराध्यवक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया ॥३९

शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य या पूज्यते दिवि।
यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खोऽवमन्यते ॥४०
तेन दोषेण स प्रेत्य निरयङ्घोरमृच्छति।
पुंसां वर्त्मनि तिष्ठेत पूज्यो भर्त्ता च सर्वदा ॥४१
अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्धि गौरवम्।
ये नरा भर्त्तापिण्डार्थं स्वान्प्राणान् सन्त्यजन्ति हि ॥४२

अपने माता-पिता के पूर्ण सन्तुष्ट रखने वाला पुत्र अपने इस कर्म से सम्पूर्ण धर्म की प्राप्ति कर लेता है। माता के समान इस संसार में अन्य कोई भी देवता नहीं है और पिता के तुल्य अन्य कोई गुरु भी नहीं है। ॥३६॥ उनका कोई भी प्रत्युपकार होता ही नहीं है। अतएव उनका नित्य ही मन, वाणी और कर्म के द्वारा सर्वदा प्रिय ही करना चाहिए। उनके द्वारा आज्ञा न पाये जाने पर अन्य धर्म का आचरण कभी नही करना चाहिए। चाहे वह कर्म नित्य हो या नैमित्तिक हो। केवल मुक्ति फल का इसमें वर्जन होता है अर्थात् मुक्ति फल बिना आज्ञा के प्राप्त करने में संलग्न हो जावे ॥३७-३८॥ धर्म को ही सबका सार कहा गया है जो मरने के पश्चात् आनन्द का प्रदान करने वाला है। वक्ता का भली भाँति समाराधना करके उसकी अनुज्ञा से विसृष्ट हुआ शिष्य विद्या का फल भोगता है और मृत्यु के पश्चात् वह दिव लोक में पूजा जाया करता है। जो पिता के समान बड़े भाई का अपमान किया करता है वह महान् मूर्ख है। इसी दोष से वह मरने के पीछे परम घोर नरक में जाया करता है पुरुषों के मार्ग में पूज्य भर्त्ता सर्वदा स्थित रहा करता है ॥३९-४१॥ इस माता के लोक में उपकार से ही गौरव होता है, जो मनुष्य भर्त्तपिण्ड के लिये अपने प्राणों का त्याग कर देते हैं। उन लोगों के लिये भगवान् मनु ने अक्षय लोकों को कहा है ॥४२॥

तेषामथाऽक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान्मनुः।
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून् ॥४३
असावहमितिब्रयुःप्रत्युत्थाययवीयसः।
अवाच्योदीक्षितोनाम्नायवीयावपियोभवेत् ॥४४
भो भवत्पूर्वकत्वेन अभिभाषेतधर्मवित्।
अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसावन्द्य एव च ॥४५
ब्राह्मणःक्षत्रियाद्यैश्चश्रीकामैःसादरंसदा।
नाभिवाद्यास्तुविप्रेणक्षत्रियाद्याःकथञ्चन ॥४६
ज्ञानकर्मगुणोपेता येयजन्तिबहुश्रुताः।
ब्राह्मणःसर्ववर्णानांस्वस्तिकुर्यादितिश्रुतिः ॥४७

सवर्णेषु सवर्णानां काम्यमेवाभिवादनम् ।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानांब्राह्मणोगुरुः ।।४८
पतिरेव गुरुःस्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः ।
विद्या कर्मतपोबन्धुर्वित्तंभवतिपञ्चमम् ।।४९
मान्यस्थानानिपञ्चाहुः पूर्वंपूर्वंगुरूत्तरात् ।
एतानि त्रिषु वर्णेषुभूयांसि बलवन्तिच ।।५०

मामा—चाचा—श्वशुर—ऋषि और गुरु वर्ग से 'यह मैं हूँ'-ऐसा ही बोलना चाहिए चाहे ये युवा ही हो। जो दीक्षित हो वह यवीयान् भी क्यों न हो उसे नाम लेकर कभी नहीं बोलना चाहिए ।।४३।। भोमवान अर्थात् आप शब्द के साथ हो धर्म के वेत्ता को अभिभाषण करना चाहिए। यह अभिवादन करने के योग्य-अर्चन करने के योग्य और शिर से वन्दनां करने के योग्य ही है ।।४४-४५।। जो श्री की कामना रखने वाले क्षत्रिय आदि है उनको सदा आदर के सहित ब्राह्मण को अभिवादन करना चाहिए और ब्राह्मण के द्वारा क्षत्रियादिक किसी भी तरह से पहिले अभि-वादन नहीं करना चाहिए ।।४६।। ज्ञान कर्म और गुणों से उपेत बहुश्रुत जो भजन किया करते हैं ब्राह्मण सभी वर्णों का स्वस्ति करे—ऐसा श्रुति का वचन है। सब वर्णों में सवर्णों का जो अभिवादन होता है वह काम्य (कामना)से युक्त ही हुआ करता है। द्विजातियों का गुरु अग्नि है और सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण होता है ।। ४७ ।। स्त्रियों का गुरु एक उसका पति ही होता है। अभ्यागत जो होता है वह सब का गुरु होता है। विद्या, कर्म, तप, बन्धु और वित्त पाँचवा होता है ।। ४८ ।। ये पाँच ही मान्य स्थान हुआ करते हैं और इनमें जो पूर्व (पहिला) पूर्व हैं वे उत्तर (पिछले) से गुरु होता है। ये तीनों वर्णों में अधिक होने पर बल वाले हुआ करते हैं ।।४९-५०।।

यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हःशूद्रोऽपि दशमी गतः ।
पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे ।।५१
वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणेदुर्बलाय च ।
भिक्षामाहृत्यशिष्टानांगृहेभ्यःप्रयतोऽन्वहम् ।।५२

निवेद्य गुरुवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया ।
भवत्पूर्वञ्चरेद्भैक्ष्यमुपनीतोद्विजोत्तमः ।।५३
भवन्मध्यन्तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ।
मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् ।।५४
भिक्षेतभिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत् ।
स्वजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा ।।५५
भैक्ष्यस्यचरणं युक्तं पतितादिषु वर्जितम् ।
वेदयज्ञैरहीनानां प्रपन्नानां स्वकर्मसु ।।५६

जहाँ पर ये उक्त वस्तु हैं वही यहाँ लोक में मान्य होता है । दशमीं को गत शूद्र भी मान्य होता है । ब्राह्मण, सती, राजा और चक्षुहीन को स्वयं रुक कर मार्ग दे देना चाहिए ।। ५१ ।। जो वृद्ध हैं, भार से पीड़ित हों, रोगी हों और दुर्बल हों उनको भी मार्ग पहिले दे देना चाहिए । शिष्टों के यहाँ से नित्य भिक्षा ग्रहण करके प्रपन्न रहे ।। ५२ ।। जो भिक्षा लावे उसे ब्रह्मचारी को सर्व प्रथम अपने गुरुदेव की सेवा में समर्पित करना चाहिए । गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही उसका पीछे अशन करे तथा मौन होकर ही अशन करना चाहिए । जो द्विज उपनीत होगया है उसे भवत् शब्द का प्रयोग करके ही भिक्षा करनी चाहिए अर्थात् 'भोमवति'—ऐसा भवस शब्द का पहिले प्रयोग कर 'भिक्षा देहि' इसे बोलना चाहिये ।।५३।। जो क्षत्रिय है उसे 'भवत्'—इस शब्द का प्रयोग मध्य में करना चाहिए यथा—'भिक्षा भो भवति देहि' यही कहना चाहिए । वैश्य को सब से अन्त में भवत् करना चाहिए । माता, स्वसा, माता की भगिनी से प्रथम भिक्षा ग्रहण करे और इन सबका भी कर्त्तव्य है कि ब्रह्मचारी का अवमान न करें । स्वजाति के गृहों में अथवा सवर्णों के गृहों में ही भिक्षा करे । इनमें ही भिक्षा का समाचरण युक्त होता है । जो पतित आदि हों उनका त्याग कर देवे । जो वेद और यज्ञों से हीन हों तथा अपने ही कर्मों में प्रपन्न रहने वाले हों उनको भी वर्जित कर देवे ।।५४-५६।।

ब्रह्मचारी हरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ।
गुरोः कुले न भिक्षेतनज्ञातिकुलबन्धुषु ।।५७

अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्ज्जयेत् ।
सर्वं वाविचरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे ।।५८
नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन् ।
समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं पचेदन्नममायया ।।५९
भुञ्जीत प्रयतोनित्यंवाग्यतोऽनन्यमानसः ।
भैक्ष्येणवर्त्तयेन्नित्यमेकान्नादीभवेद् व्रती ।।६०
भैक्ष्येण वृत्तिनो वृत्तिरूपवाससमास्मृता ।
पूजयैदनसं नित्यमद्याच्चैतद्कुत्सयन् । ७१

ब्रह्मचारी को प्रतिदिन प्रयत होकर ही भिक्षा का आहरण करना चाहिए । गुरु के कुल में और ज्ञाति कुल के बन्धुओं में भिक्षा नहीं करे । ।।५७।। लाभ न होने पर अन्य गृहों के पूर्व-पूर्व को वर्जित कर देवे । पूर्व में कहे हुए यदि सम्भव न हों तो समस्त ग्राम में विचरण करना चाहिए । ।।५८।। प्रयत होकर वाणी का नियम न करे और दिशाओं को न देखते हुए ही उस भिक्षा को लाकर अमाया से अन्न का पाचन करना चाहिये । ।।५९।। अनन्य मन होकर प्रयत रहते हुए ही मौन व्रत से नित्य भोजन करे । नित्य ही भिक्षा कर के निर्वाह करे । एक ही अन्न को खाने वाला व्रती को होना चाहिए । भिक्षा से अपनी वृत्ति का चलाना भी उपवास के ही समान बताया गया है । नित्य ही अन्न का पूजन करे और उसकी बुराई न करते हुए ही उसका अशन करना चाहिए ।।६०-६१।।

दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।।६२
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्ज्जयेत् ।।६३
प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः ।
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् ।।६४
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ।।६५

पहिले जो भोज्य पदार्थ सामने हो उसे देख कर हर्षित होना चाहिए और प्रसन्न होना चाहिए । इसके पश्चात् मौन रहकर ही उसका भोजन

करे। जो भोजन आरोग्य न देने वाला, आयु न बढ़ाने वाला, स्वर्गीय सुख न देने वाला हो तथा अत्यधिक भोजन हो, अपुण्य, लोक के द्वारा विद्विष्ट हो उसका परिवर्जन कर देना चाहिए ॥ ६३ ॥ पूर्व की ओर मुख करके अथवा सूर्य के सम्मुख होकर ही अन्नों का भोजन करे। उत्तर की ओर मुख करके कभी भी भोजन नहीं करे–यह ऐसा एक सनातन विधान है। हाथ और पैरों को धोकर भोजन करने वाले को दो वार उप स्पर्शन करना चाहिए ॥६४॥ किसी परम शुचि स्थल में समासीन होकर ही भोजन करके पुनः दो वार आचमन करे ॥६५॥

———

१३—सदाचारवर्णन

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे।
ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वावासो विपरिधाय च ॥१
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे।
ष्ठीवित्वाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥२
चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तमः।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥३
चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यञ्चापि तथाविधम् ॥४
आचामेदश्रुपातेवा लोहितस्यतथैवच।
भोजनेसन्ध्ययोः स्नात्वात्यागेमूत्रपुरीषयोः ॥५
आचान्तोऽप्याचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथाव्ययः।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च ॥६
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शनीवींवापरिधायच।
उपस्पृशेज्जलञ्चान्तस्तृणांवाभूमिमेवच ॥७

महर्षि व्यास देव ने कहा—भोजन करके, पान करके, सोकर, स्नान करके, गली में उपसर्पण करके, विलोभक ओष्ठों का स्पर्श करके, वस्त्र पहिन करके, रेत (वीर्य), मूत्र और मल का त्याग करके, अयुक्त भाषण

करने में, थूककर, अध्ययन के आरम्भ में, कास और श्वास के आगम में, चत्वर या श्मशान में समागम करके द्विजोत्तम को दोनों सन्ध्याओं में उसी भाँति आचान्त होकर भी पुनः आचमन करना चाहिए ॥१-३॥ चाण्डाल और म्लेच्छ के साथ सम्भाषण करने पर—स्त्री और शूद्र के उच्छिष्ट भाषण में—उच्छिष्ट पुरुष का स्पर्श कर के तथा उस प्रकार का भोज्य का भी स्पर्श करके आचमन करना चाहिए। अश्रु पात में तथा लोहित के पात में—भोजन में—दोनों सन्ध्याओं में—स्नान करके—मूत्र और मल का त्याग करने में आचान्त होकर भी पुनः आचमन करना चाहिए। सुप्तोत्थित होकर एक बार आचमन करे। अग्नि के और गौओं के आलम्भ में स्पर्श करके प्रपत होते हुए आचमन करे ॥४-६॥ स्त्रियों का अपने से स्पर्श होने पर नीवी का परिधान करके जल के मध्य में जाकर उपस्पर्शन करे अथवा तृण और भूमिका स्पर्श करे ॥७॥

केशानाञ्चात्मनः स्पर्शं वाससोऽक्षालितस्य च।
अनुष्णाभिरफेनाभिर्विशुद्धाद्भिश्च वाग्यतः ॥८
शौचेप्सुः सर्वदाऽऽचामेदासीनः प्रागुदङ्मुखः।
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा ॥९
अकृत्वा पादयोःशौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाऽऽचमेद्बुधः ॥१०
न चैव वर्षधाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा बुधः।
नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः ॥११
नपादुकासनस्थोवावपिजानुकरोऽपिवा।
त्रिटशूद्रादिकराभुक्तं नचोच्छिष्टस्तथैवच ॥१२
नचैवाङ्गुलिभिःशस्तंप्रकुर्वन्नन्यमानसः।
नवर्णरसदुष्टाभिर्नचैवाप्रचुरोदकैः ॥१३
नपाणिक्षुभिताभिर्वानबहिष्कक्षएववा।
हृद्गाभिःपूयतेविप्रःकण्ठ्याभिःक्षत्रियःशुचिः ॥१४
प्राशिताभस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽम्भसः
अङ्गुष्ठमूलरेखायां तीर्थं ब्राह्ममिहोच्यते ॥१५

अपने ही केशों का स्पर्श तथा बिना धुले हुए वस्त्र का स्पर्श करके अनुष्णा (शीतल) फेन से रहित और विशुद्ध जल से मौन होकर शौच की इच्छा रखने वाले को पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठकर आचमन सर्वदा करना चाहिए। शिर को ढक कर अथवा कण्ठ को प्रावृत करके—कच्छ और शिखा को खोल कर तथा पैरों का शौच न करके आचान्त भी पुरुष अशुचि होता है। जूते पहिने हुए—जल में स्थित होकर उष्णीष (शिरोवेष्टन) को धारण करके वुध पुरुष को कभी आचमन नहीं करना चाहिए ॥८-१०॥ वुध पुरुष को वर्षा की धाराओं से आचमन नहीं करना चाहिए। तथा हाथ के उच्छिष्ट होने पर—एक ही हाथ में अर्पित जल से—सूत्र के न होने से—पादुका तथा आसन पर स्थित होकर—जानुओं के वाहिर हाथों को रखते हुए—विट् और शूद्र आदि के करों द्वारा छोड़े हुए तथा उच्छिष्ट जल से—अंगुलियों से शस्तन रहते हुए तथा अन्य मानस होकर कभी आचमन नहीं करना चाहिए। जो वर्ण और रस से दूषित जल हो या बहुत ही थोड़ा जल हो तथा जो पाणि से क्षुभित हो उससे वहिष्कक्ष न होकर ही आचमन करे। विप्रहृदय तक जल में पवित्र होता है और कण्ठ तक रहने वाले जल से क्षत्रिय शुचि होता है। वैश्य तो प्राशित जल से ही शुद्ध हो जाया करता है। स्त्री और शूद्र जल के स्पर्श मात्र से ही शुद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। अंगुष्ठ के मूल की रेखा में ब्राह्म तीर्थ कहा जाता है ॥११-१५॥

प्रदेशिन्याश्च यन्मूलं पितृतीर्थमनुत्तमम्।
कनिष्ठामूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्रचक्षते ॥१६

अङ्गुल्यग्रं स्मृतं दैवं तद्देवार्थं प्रकीर्त्तितम्।
मूलेवादैवमादिष्टमाग्नेयमध्यतःस्मृतम् ॥१७

तदेव सौमिक तीर्थमेवंज्ञात्वा नमुह्यति।
ब्राह्मेणैव तुतीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥१८

कायेन वाथ दैवेन चाथाचान्ते शुचिभवेत्।
त्रिराचामेदप पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः ॥१९

संवृताङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत् ।
अंगुष्ठानामिकाभ्यान्तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ॥२०

तर्ज्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृमेन्नासापुटद्वयम् ।
कनिष्ठांगुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत् ॥२१

प्रदेशिनी अंगुलि का जो मूल होता है उसे आम पितृ तीर्थं कहा गया है। कनिष्ठा के मूल से पीछे प्राजापत्य कहा जाता है ॥१६॥ अंगुलि के अग्रभाग में दैव तीर्थं होता है उसको देव के लिये कीर्त्तित किया गया है। अथमा मूल में देव आदिष्ट है और मध्य में आग्नेय कहा गया है। वह हीं सौमिक तीर्थं है इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता है। ब्राह्मण को ब्रह्म तीर्थं से ही नित्य उपस्पर्शन करना चाहिए ॥१७-१८॥ काय अथवा दैव से भी उसी भाँति आचान्त होने पर शुचि होता है। ब्राह्मण को प्रपत होकर तीन बार आचमन करना चाहिए। संवृत अंगुष्ठ के मूल से मुख का समुपर्शन करना चाहिए। अंगुष्ठ और अनामिका से दोनों नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए ॥१६-२०॥ तर्जनी और अंगुष्ठ के योग से दोनों नासिका के पुरों का स्पर्श करना चाहिए। कनिष्ठिका और अंगुष्ठ के योग से दोनों कानों का स्पर्श करे ॥२१॥

सर्वाङ्गुलीभिर्बाहू च हृदयन्तु तलेन वा ।
नाभिः शिरश्च सर्वाभिरंगष्ठेनाथवा द्वयम् ॥२२

त्रिः प्राश्नीयात्तदम्भस्तुसुप्रीतास्तेनदेवताः ।
ब्रह्मा विष्णुमहेशश्चभवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥२३

गंगाच यमुनाचैव प्रीयेतेपरिमार्ज्जनात् ।
संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ ॥२४
नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ।
श्रोत्रयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेतेचानिलानलौ ॥२५
संस्पृष्टे हृदये वास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः ।
मूर्ध्नि संस्पर्शनादेव प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥२६

नोच्छिष्टं कुर्वतेनित्यंविप्रुषोऽङ्गं नयन्तियाः ।
दन्तान्तर्दन्तलग्नेषुजिह्वोष्ठरशुचिर्भवेत् ॥२७
स्पृशन्ति विन्दवः पादौ य आचामयतः परान् ।
भूमिकास्ते समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥२८

अपनी समस्त अंगुलियों से दोनों बाहुओं और तल भाग से हृदय का स्पर्श करे । नाभि और शिर का स्पर्श सभी अंगुलियों से और अंगुष्ठ से या दोनों से स्पर्श करना चाहिए । उस जल को तीन बार प्राशन करे । इससे समस्त देवता परम प्रसन्न होते हैं । ब्रह्मा–विष्णु और महेश भी प्रसन्न होते हैं—ऐसा ही सुनते हैं ॥२२-२३॥ परिमार्जन करने से गङ्गा और यमुना प्रसन्न हुआ करती हैं लोचनों के संस्पर्श करने से सूर्य और चन्द्र देव प्रसन्न होते हैं । दोनों नासापुटों के स्पर्श करने से नासत्य और हस्त प्रसन्न हुआ करते हैं । दोनों श्रोत्रों के स्पर्श किये जाने पर अनिल और अनल देवता परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२४-२५॥ हृदय के स्पर्श करने पर सभी देवगण प्रसन्न होते हैं । मस्तक पर स्पर्श करने से परम-पुरुष प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२६॥ जो छोटे-छोटे जल के कण अङ्ग पर लग जाते हैं वे नित्य ही उच्छिष्ट नहीं किया करते हैं । दाँतों के अन्दर और दाँतों में लगे हुओं में जिह्वा और ओष्ठों से अशुचि हो जाता है ॥२७॥ दूसरों के आचमन करते हुए जो बिन्दु पादों का स्पर्श करते हैं उनको भूमिक हो मानना चाहिए । उनसे कभी भी अप्रयत नहीं होना चाहिए ॥२८॥

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे ।
फले मूलेक्षुदण्डेच न दोषम्प्राहवै मनुः ॥२९
प्रचुरान्नोदपानेषुयद्यच्छिष्टोभवेद्द्विजः ।
भूमौनिक्षिप्यतद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षिपेत्ततः ॥३०
तैजसं वा समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद् द्विजः ।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याह्रियते तु तत ॥३१
यद्यमन्त्रं समादायभवेदुच्छेषणान्वितः ।
अनिधायैवतद्द्रव्यमाचान्तःशुचितामियात् ॥३२

वस्त्रादिषुविकल्पः स्यान्नस्पृष्ट्वाचैवमेव हि ।
अरण्येऽनुदकेरात्रौ चौरव्याघ्राकुलेपथि ।।३३
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तोन दुष्यति ।
निधायदक्षिणेकर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्‌ मुखः ।।३४
अह्निकुर्य्याच्छकृन्मूत्रंहात्रौचेद्दक्षिणामुखः ।
अन्तर्द्धायमहींकाष्ठैःपत्रैर्लोष्टैस्तृणेन वा ।।६५

मधुपर्क में—सोम में और ताम्बूल के भक्षण करने में—फल में—मूल ईत्व के दण्ड में मनु ने कोई भी दोष नहीं कहा है ।।२९।। प्रचुर अन्न और उदक के पान में जो-जो द्विज शिष्ट हो उस द्रव्य को भूमि में निक्षिप्त करके फिर आचमन करके अभ्युक्षेपण कर देना चाहिए ।।३०।। तेजस को ग्रहण करके यदि द्विज उच्छिष्ट होता है तो भूमि में उस द्रव्य को डाल कर आचमन करके फिर उसका आहरण किया जाता है ।।३१।। यदि यमन्त्र का ग्रहण कर उच्छेषण से संयुत होवे तो इस द्रव्य को न रखकर ही आचान्त होने पर शुचिता को प्राप्त कर लेता है ।।३२।। वस्त्र आदि में विकल्प होता है इस प्रकार से स्पर्श न करके ही होता है । अरण्य में—विना जल वाले स्थल में—रात्रि में—चोर तथा व्याघ्र से समाकुलित मार्ग में मूत्र तथा मल को करके भी हाथ में द्रव्य रखने वाला दूषित नहीं होता है । दक्षिण कर्ण में ब्रह्म सूत्र को रखकर उत्तर की ओर मुख करके दिन में शकृत और मूत्र का त्याग करे और रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर त्याग करना चाहिए । उस भूमि को काष्ठ—पत्र-ओष्ठ और तृणों से ढक देवे ।।३५।।

प्रावृत्य च शिरः कुर्य्याद्विण्मूत्रस्य विसर्ज्जनम् ।
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्यान्तःपथि भस्मसु ।।३६
अग्नौ वेश्मश्मशानेचविण्मूत्रे न समाचरेत् ।
न गोपथे न कृष्टे वा महावृक्षेनशाड्वले ।।३७
न तिष्ठन्वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके ।
न जीर्णदेवायतने न वाल्मीके कदाचन ।।३८

न ससत्त्वेषु गर्त्तेषु नागच्छन्वा समाचरेत् ।
तुषांगारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ॥३९
न क्षेत्रे विमले चापि न तीर्थे न चतुष्पथे ।
नोद्याने च समीपे वानोषरे न पराशुचौ ॥४०
न सोपानत्पादुको वा गन्ता यानान्तरिक्षगः ।
न चैवाभिमुखं स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्न च ॥४१

शिर को प्रावृत करके ही विट्—मूत्र का विसर्जन करना चाहिए। छाया—कूप—नदो—गोष्ठ—चैत्य के अन्दर—मार्ग—भस्म—अग्नि—वेश्म—श्मशान में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। गोषक में—जुती हुई भूमि में—महा वृक्ष के नीचे—शाद्वल में खड़े होकर या बिना वस्त्र वाला होकर और पर्वत की चोटी पर—जीर्ण देवता के आयतन में—वल्मीक में—जीवों से युक्त गर्त्तों में—चलते हुए कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। तुषाङ्गार—कपालों में तथा राज मार्गों में—विमल क्षेत्र में—तीर्थ में—चौराहे पर—उद्यान में—ऊषर भूमि में तथा परम अशुचि स्थल में भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। उपान हों को पहिने हुए तथा पादुका पहिने हुए- गमन करने वाला—यान में अन्तरिक्ष गामी होकर—स्त्रियों के सामने और गुरु ब्राह्मणों के समक्ष में भी मल-मूत्र का उत्सर्ग नहीं करे ॥३९-४१॥

न देवदेवालययोर्नद्यामपिकदाचन ।
ज्योतींषिवीक्षित्वा न वार्यभिमुखोऽथवा ॥४२
प्रत्यादित्यंप्रत्यनलंप्रतिसोमंतथैव च ।
आहृत्यप्रमृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणात् ॥४३
कुर्य्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः ।
नाहरेन्मृत्तिकांविप्रःपाशुलान्नचकर्दमात् ।
नमार्गान्नोषराद्देशाच्छौचोच्छिवात्तथैवच ॥४४
न देवायतनात्कूपाद्ग्रामादन्तर्ज्जलात्तथा ।
उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः ॥४५

देवों के देवालयों में और नदी में भी त्याग न करे। नदी ओर ज्योतियों को देख कर अथवा जल के सामने होकर—आदित्य—अग्नि और सोम की ओर मुख करके भी त्याग नहीं करना चाहिए। कल से मृत्तिका को लेकर जो लिप्त मल होता है उसका अपकर्षण करके अतन्द्रित होते हुए विशुद्ध जल से शौच करना चाहिए ।।४२-४३।। विप्र को पांशुल से और कर्दम से मृत्तिका का ग्रहण नहीं करना चाहिए। मार्ग से और ऊषर स्थल से तथा शौच से उच्छिष्ट स्थान से—देवता के आयतन से—कूप से—ग्राम से और जल के अन्दर से भी कभी मृत्तिका का ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसके पश्चात् नित्य ही पूर्व में कहे हुए विधान से उपस्पर्शन करना चाहिए ।।४४-४५।।

———

१४—ब्रह्मचारी-धर्मवर्णन

एवं दण्डोदिभिर्युक्तः शौचचारसमन्वितः।
आहूतोऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।।१
नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्सन्ध्याचार समन्वितः।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नाऽऽसीताभिमुखंगुरोः ।।२
प्रतिश्रवणसम्भाषेशयानोनसमाचरेत्।
आसीनो न च तिष्ठन्वाउत्तिष्ठन्वापराङ्मुखः ।।३
न च शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ।
गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनोभवेत् ।।४
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्।
न चैवास्यानुकुर्वीत् गतिभाषितचेष्टितम् ।।५
गुरोर्यत्र प्रतीवादो निन्दाचापिप्रवर्त्तते।
कर्णौतत्रपिधातव्यौगन्तव्यंवाततोऽन्यतः ।।६
दूरस्थो नाचर्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रिया।
न चैवाऽस्योत्तरं ब्रूयात् स्थिते नासीतसन्निधौ ।।७

श्री व्यास देव ने कहा—इस प्रकार से दण्ड मेखला आदि सामान से युक्त ब्रह्मचारी को होना चाहिए और उसे शौच के आचार से समन्वित

होकर उसे रहना चाहिए। जब उसे गुरुदेव आहूत करें तो गुरु के समीप में उपस्थित होकर ही अध्ययन करना चाहिए तथा अध्ययन करने के समय में गुरु के मुख की ओर देखते रहना चाहिए ॥१॥ नित्य ही उद्धृत पाणि वाला होवे और सदाचार से समन्वित ब्रह्मचारी को रहना चाहिए। जब ब्रह्मचारी से कहा जावे 'बैठ जाओ'—तभी गुरु के समक्ष में उसे बैठना चाहिए ॥२॥ शयन करते हुए प्रतिश्रवण के सम्भाष में समाचरण न करे। बैठे हुए—खड़े होकर—उठते हुए और पराङ्मुख होकर तथा शय्या और आसन पर स्थित होकर गुरु की सन्निधि में सर्वदा नहीं रहना चाहिए। गुरु के चक्षु के विषय में यथेष्ट रूप से आसन पर स्थिति करने वाला भी कभी नहीं रहना चाहिए ॥३-४॥ परोक्ष में भी गुरुदेव के नाम का उच्चारण केवल नहीं करना चाहिए। गुरु की गति—भाषित और चेष्टित का अनुकरण भी कभी नहीं करना चाहिए। गुरुदेव का जहाँ पर कोई भी प्रतिवाद अथवा निन्दा हो रही हो वहाँ पर उसे न सुनने के लिये दोनों कानों को बन्द कर लेना ही उचित है अथवा तुरन्त ही उस स्थान का त्याग करके अन्य किसी स्थान में चले जाना चाहिए ॥५-६॥ दूर में स्थित होकर गुरु का अर्चन न करे तथा क्रुद्ध होकर अथवा स्त्री के समीप में रहकर भी गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिए। गुरु के स्थित होने पर उसकी सन्निधि में कभी बैठना नहीं चाहिए। और गुरु के उत्तर को भी नहीं बोलना चाहिए ॥७॥

उदकुम्भं कुशान्पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा।
मार्जनं लेपनं नित्यमंगानां वा समाचरेत् ॥८

नास्य निर्माल्यशयनं पादुकोपानहावपि।
आक्रमेदासनंछायामासन्दी वा कदाचन ॥९

साधयेद्दन्तकाष्ठादीन् कृत्यञ्चास्मै निवेदयेत्।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहिते रतः ॥१०

न पादौ सारयेदस्य सन्निधाने कदाचन।
जृम्भाहास्यादिकञ्चैव कण्ठप्रावरणं तथा ॥११

वर्ज्जयेत्सन्निधौ नित्यमथास्फोटतमंवचः ।
यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः ॥१२
आसीताथ गुरोरुक्ते फलके वा समाहितः ।
आसने शयने याने नैकस्तिष्ठेत्कदाचन ॥१३
धावन्तमनुधावत्तं गच्छन्तञ्चानुगच्छति ।
गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च ॥१४

जल का कलश—कुशाऐं—पुष्प और समिधाऐं गुरु के लिये सर्वदा आहरण करना चाहिए । मार्जन—लोपन—अङ्गों का नित्य ही करे ॥८॥ गुरु के निर्माल्य पर शयन नहीं करे और इनकी तथा उपानहों को भी धारण नहीं करना चाहिए । आसन और छाया का आक्रमण न करे और किसी भी समय में आसन्दी नहीं होना चाहिए ॥ ९ ॥ दन्तकाष्ठ (दाँतुन) आदि का साधन करे और जो भी कृत्य हो उसे इनको निवेदन कर देना चाहिए । अपने गुरुदेव से विना पूछे हुए ब्रह्मचारी शिष्य को कहीं भी नहीं जाना चाहिए । गुरुदेव के प्रिय कार्य तथा हित के कार्य में रति रखने वाला होना चाहिए ॥१०॥ गुरुदेव के सन्निधान में कभी भी अपने पैरों को नहीं फैलाना चाहिए । जँभाई—हास्य आदिक तथा कण्ठ का प्रावरण और आस्फोटतम वचन का नित्य ही गुरु की सन्निधि में वर्जित रखना चाहिए । यथा समय पर अध्ययन करे जब तक गुरुदेव विमना न होवें ॥११-१२॥ गुरु के कथन करने पर ही समाहित होकर फलक (पट्टा) पर बैठ जावे । आसन—शयन और यान में कभी भी एक साथ नहीं बैठना चाहिए । गुरुदेव धावन करते हों तो स्वयं भी उनके पीछे दौड़ लगावे । गुरुदेव गमन करते हों तो उनके ही पीछे स्वयं भी शिष्य ब्रह्मचारी को गमन करना चाहिए । गौ—अश्व—ऊँट—यान—प्रासाद और प्रस्तर पर तथा कट पर एक साथ गुरु के नहीं बैठे ॥१३-१४॥

नाऽऽसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च ।
जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः ॥१५
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां सितभाषिणीम् ।
गन्धमाल्यं रसम्भव्यं शुक्लम्प्राणिविहिंसनम् ॥१६

अभ्यंगञ्चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च ।
कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्त्तनम् ।।१७
द्यूतंजनपारीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा ।
परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।।१८
उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकांकुशान् ।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्ष्यञ्चाहरसश्चरेत् ।।१९
कृतञ्च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्य्युषितञ्च यत् ।
अनृत्यदर्शी सततं भवेद्गीदिनिस्पृहः ।।२०
नाऽऽदित्यं वै समीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम् ।
एकान्तमशुचिस्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम् ।।२१

शिला के फलक पर और नाव में अपने गुरु के साथ में नहीं बैठना चाहिए । ब्रह्मचारी को निरन्तर इन्द्रियों को जीतने वाला—आत्मा को वश में रखने वाला—शुचि और क्रोध रहित होना चाहिए ।।१५।। सर्वदा हित का भाषण करने वाली मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए । गन्ध—माल्य—भव्य रस—शुक्ल—प्राणियों की विशेष हिंसा—अभ्यङ्ग—अञ्जन—उपानत्—छत्र धारण—काम—क्रोध—लोभ—भय—निद्रा—गीत—वादित्र—नृत्य—द्यूत—जनों का परीवाद—स्त्री की प्रेक्षा—आलम्भन—पर का उपघात—पैशुन्य इन सब का परिवर्जन ब्रह्मचारी को कर देना चाहिए ।।१५-१८।। जल का कलश—पुष्प—गोबर—मृत्तिका—कुश आदि पदार्थ जितने भी आवश्यक हों लाने चाहिए और नित्य-प्रति भिक्षाचरण का समाचरण करे । कृत और सब प्रकार कालवण तथा पर्युषित का वर्जन करना चाहिए । सर्वदा नृत्य देखने वाला नहीं होवे और ब्रह्मचारी को गीत आदि स्पृहा नहीं रखनी चाहिए । सूर्य के सामने दृष्टि करके नहीं देखे और दन्त धावन नहीं करे । एकान्त में अशुचि स्त्रियों के साथ तथा शूद्र और अन्त्यजों के साथ अभिभाषण नहीं करना चाहिए ।।१९-२१।।

गुरुप्रियार्थं सर्वं हि प्रयुञ्जीत न कामतः ।
मलापकर्षणं स्नानमाचरेद्वै कथञ्चन ।।२२

न कुर्य्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागे कदाचन ।
मोहाद्वा यदि वा लोभात्त्यक्त्वैनं पतितो भवेत् ।।२३
लौकिकं वैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव च ।
आददीतयतो ज्ञानं न तंद्रुह्येत्कदाचन ।।२४
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत् ।।२५
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्भक्तिमाचरेत् ।
नचातिसृष्टो गुरुणास्वान्गुरूनभिवादयेत् ।।२६
विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृत्तिःस्वयोनिषु ।
प्रतिषेधत्सुचाधर्मोद्धितंचोपदिशत्स्वपि ।।२७
श्रेयस्तु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत् ।
गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ।।२८

जो कुछ भी करे वह सब गुरुदेव के प्रियता के लिये ही करे अपनी इच्छा से कुछ भी न करे । मल का अपकर्षण और स्नान किसी प्रकार से करे । विप्र को गुरु का मानस त्याग भी कभी नहीं करना चाहिए । मोह के वश में होकर अथवा लोभ में फँस कर गुरु का त्याग करने से मनुष्य पतित हो जाया करता है ।।२२-२३।। लोक से सम्बन्ध रखने वाला—वैदिक और आध्यात्मिक ज्ञान इनमें से जो भी जिससे ग्रहण करे उसको गुरु मानना चाहिए और कभी भी उससे द्रोह नहीं करे ।।२४।। यदि गुरु भी अत्यन्त अव लिप्त (घमण्डी) हो तथा क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए—इसका तनिक भी ज्ञान न रखता हो तथा उत्पथ में प्रतिपन्न हो गया हो ऐसे गुरु के त्याग कर देने का वचन मनु ने कहा है । गुरु के भी गुरु के सनिहित होने पर गुरु के समान ही भक्ति का समाचरण करना चाहिए । गुरु के द्वारा अति सृष्ट होता हुआ अपने गुरुओं का अभिवादन करना चाहिए ।।२५-२६।। इसी प्रकार का व्यवहार विद्या गुरुओं के विषय में भी करना चाहिए—नित्यावृत्ति स्व योनियों में और अधर्म से प्रतिषेध करने वालों में और हित का उपदेश करने वाले में भी वैसा ही गुरु के तुल्य व्यवहार करना चाहिए । गुरु के पुत्रों में गुरु की

स्त्रियों में और गुरु के अपने बन्धुओं में नित्य ही गुरु के समान ही वृत्ति करनी चाहिए यही श्रेय की बात है ॥२७-२८॥

बालःसन्मानयन्मान्यान् शिष्योवायज्ञकर्मणि ।
अध्यापयन् गुरुसुतोगुरुवन्मानमर्हति ॥२९
उत्सादनंवै गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ।
न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोःशौचमेवच ॥३०
गुरुवत्परिपूज्याश्चसवर्णागुरुयोषितः ।
असवर्णास्तुसम्पूज्याःप्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥३१
अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च ।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्चप्रसाधनम् ॥३२
गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः ।
कुर्वीत वन्दनं भूमावसावहमिति ब्रुवन् ॥३३
विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहञ्चाभिवादनम् ।
गुरुदारेषु सर्वेषु सतां धर्ममनुस्मरन् ॥३४
मातृष्वसा मातुलानाश्वश्रूश्चाथपितृष्वसा ।
सम्पूज्यागुरुपत्नीचसमास्तागुरुभार्यया ॥३५

यज्ञ कर्म में बाल शिष्य मान्यों का सम्मान करते हुए और अध्यापन करते हुए गुरु का पुत्र गुरु के समान ही सम्मान करने के योग्य होता है। गात्रों का उत्सादन—स्नायन—उच्छिष्ट भोजन और पादों का शौच गुरु-पुत्र का नहीं करना चाहिए ॥२९-३०॥ गुरु के समान ही सवर्ण गुरु की पत्नियाँ पूजा के योग्य होती हैं। जो असवर्णा पत्नियाँ हों वे भी प्रत्युत्थान और अभिवादनों के द्वारा सम्पूज्य होती हैं ॥३१॥ अभ्यञ्जन—स्नापन और गात्रोत्सादन तथा केशों का प्रसाधन गुरु की पत्नियों के कभी भी नहीं करने चाहिएँ ॥३२॥ जो गुरु की पत्नी युवती हो तो उसके चरणों में अभिवादन नहीं करना चाहिए। यह मैं अमुक हूँ—ऐसा मुख से बोलते हुए केवल दूर से भूमि में ही प्रणाम करना चाहिए ॥३३॥ विप्रोष्यपादों का ग्रहण और प्रतिदिन अभिवादन सब गुरु की पत्नियों में सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए मातृष्वसा—मातुला—श्वश्रू—पितृष्वसा—

गुरु पत्नी ये सभी गुरु की भार्या के समान भली-भाँति पूजा के योग्य होती हैं ।।३४-३५।।

भ्रातुर्भार्या (भार्यापि) च संग्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि ।
विप्रस्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः ।।३६।।
पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि ।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ।।३७
एवमाचारसम्पन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम् ।
वेदमध्यापयेद्धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यशः ।।३८
सम्वत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन् ।
हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्यवसतोगुरुः३९
आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदोधार्मिकःशुचिः ।
सूक्तार्थदोऽरसःसाधुःस्वाध्यायादशधर्मतः ।।४०
कृतज्ञश्च तथाद्राहीमेधावीतू पकृन्नरः ।
आप्तःप्रियोऽथविधिवत् षडध्याप्याद्विजातयः ।।४१
एतेषु ब्रा (ब्र)ह्मणो दानमन्यत्र च यथोदितान् ।
आचम्य संयतो नित्यमधीयीत ह्युदङ्मुखः ।।४२

भाई की भार्या जो सवर्णा हो उसका भी संग्रहण करना चाहिए और दिन प्रति-दिन उसका भी अभिवादन करे । विप्र की ज्ञाति सम्बन्धी योषितों का उप संग्रह करना चाहिए । पिता की भगिनी तथा माता की भगिनी और बड़ी बहिन का भी माता की ही भाँति समादर करना चाहिए किन्तु माता वस्तुतः इन सव में अत्यधिक गौरव युक्त होती है ।।३६-३७।। इस प्रकार के आचार से सुसम्पन्न—आत्मवान्—अदाम्भिक को वेद का अध्यापन कराना चाहिए और नित्य ही धर्म-पुराण तथा अङ्गों का भी अध्यापन करे ।।३८।। एक सम्वत्सर तक शिष्य के रहने पर गुरु ज्ञान का निदर्शन करते हुये वहाँ पर निवास करने वाले शिष्य का दुष्कृत गुरु हरण किया करते हैं ।।३९।। आचार्य का पुत्र—शुश्रूषा करने वाला—ज्ञान का दाता—धार्मिक—शुचि—सूक्त के अर्थ को देने वाला—अरस—साधु—स्वाध्याय वाला तथा दश लक्षणों वाले धर्म

से युक्त—कृतज्ञ—अद्रोही—मेधावी—उपकारी आप्त—प्रिय—विधि का ज्ञाता ये छै द्विजाति अध्यापन करने योग्य हैं ।।४०-४१।। इनमें ब्राह्मण दान है और अन्यत्र यथोदितों को देवें । आचमन करके संयत होकर उत्तर की ओर मुख करके नित्य ही अध्ययन करना चाहिए ।।४२।।

उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामस्त्विति नारभेत् ।।४३।।
अनुकूलं समासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ।।४४
ब्राह्मणः प्रणवंकुर्यादन्तेचविधिवद्द्विजः ।
कुर्यादध्ययनं नित्यंब्रह्माञ्जलिकरस्थितः ।।४५
सर्वेषामेवभूतानांवेदश्चक्षुःसनातनम् ।
अधीयीताप्ययंनित्यंब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा ।।४६
योऽधीयीतऋचोनित्यंक्षीराहुत्यासदेवताः ।
प्रीणातितर्पयन्त्येनंकामैस्तृप्ताःसदैवहि ।।४७
यजूंष्वधीते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः ।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम् ।।४८
अथर्वाङ्गिरसो नित्यंमध्वाप्रीणातिदेवताः ।
वेदाङ्गानिपुराणानिमांसैश्चर्पयेत्सुरान् ।।४९

गुरु देव के चरणों का उप संग्रह करके गुरु के मुख को देखता हुआ ही जब-जो अध्ययन करो—ऐसा बोलना चाहिए । विराम ही—ऐसा कहने पर आरम्भ नहीं करना चाहिए ।।४३।। अनुकूल समासीन होते हुए पवित्रों से पावित तथा तीन प्राणायामों से पूत होकर फिर ओङ्कार के योग्य होता है ।।४४।। ब्राह्मण को प्रणव का जाप करना चाहिए और फिर अन्त में द्विज को विधि के साथ ब्रह्माञ्जलि करों से स्थित होकर नित्य ही अध्ययन करना चाहिए ।।४५।। सभी भूतों का वेद सनातन चक्षु है । इसका नित्य ही अध्ययन करना चाहिए अन्यथा इसके अध्ययन न करने पर ब्राह्मणत्व से ही च्युत हो जाया करता है ।।४६।। जो नित्य ही ऋचाओं का अध्ययन किया करता है और क्षीर की आहुतियों से देवता

को संतृप्त किया करता है उसको वे तृप्त हुए देवता कामनाओं से सदैव ही संतृप्त किया करते हैं ।।४७।। जो यजुर्वेद का नियत रूप से अध्ययन करता है और दधि से देवों का तर्पण किया करता है तथा जो सामवेद का अध्ययन किया करता है और प्रतिदिन घृत की आहुतियाँ देता है ।।४८।। अथर्व आङ्गिरस और वेदों के अङ्ग शास्त्र और पुराण का अध्ययन करने वाला सुरों का तर्पण किया करता है ।।४९।।

अपांसमीपेनियतो नैत्यिकंविधिमाश्रितः ।
गायत्रीमप्यधीयीतगत्वारण्यंसमाहितः ।।५०
सहस्रपरमांदेवीं शतमध्यां दशावराम् ।
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्त्तितः ।।५१
गायत्रीञ्चैव वेदांस्तु तुलयातोलयत्प्रभुः ।
एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीञ्च तथैकतः ।।५२
ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम् ।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ।।५३
पुराकल्पे समुत्पन्नाभूर्भु वःस्वःसनातनाः ।
महाव्याहृतयस्तिस्रः सर्वाःशुभनिबर्हणाः ।।५४
प्रधानंपुरुषःकालोविष्णुर्ब्रह्मा महेश्वरः ।
सत्त्वंरजस्तमस्तिस्रःक्रमाद्व्याहृतयःस्मृताः ।।५५
ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्मसावित्री स्यात्तदक्षरम् ।
एषमन्त्रोमहायोगः सारात्सारउदाहृतः ।।५६

किसी जलाशय के समीप में नियत होकर नैत्यिक विधि का आश्रय ग्रहण करने वाला अरण्य में जाकर पूर्ण समाहित होते हुए गायत्री का भी अध्ययन करे ।।५०।। गायत्री का एक सहस्र नित्य जाप सर्वोत्तम है—सो मन्त्र का जप मध्यम है और कम से कम दश ही वार जाप करना अवर श्रेणी का जप होता है । गायत्री का नित्य ही जप करना चाहिए । यही जप यज्ञ कहा गया है ।।५१।। गायत्री मन्त्र को और समस्त वेदों को प्रभु ने एक वार तुला में रखकर तोला था एक तरफ़ तो पलड़े में चारों वेद थे और एक ओर केवल एक गायत्री मन्त्र ही था। आदि में ओङ्कार

करके उसके अनन्तर व्याहृतियाँ हैं इसके पश्चात् सावित्री है उसका एकाग्र चित्त वाला होकर ही श्रद्धा से समन्वित होकर जप करना चाहिए ॥५२-५३॥ पहिले कल्प में भूः भुवः स्वः ये सनातन समुत्पन्न हुईं थीं। ये तीनों महाव्याहृतियाँ हैं। क्रम से ही ये व्याहृतियाँ कही गई हैं। ये सब शुभ की निर्वहण करने वाली है। प्रधान पुरुष काल—ब्रह्मा—विष्णु महेश्वर—सत्व, रजतम ये क्रम से व्याहृतियाँ पुकारी गयी हैं। ओङ्कार उससे पर वह अक्षर ब्रह्म सावित्री है। यह मन्त्र महायोग है जो सार से भी सार कह दिया गया है ॥५४-५६॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां सावित्रींवेदमातरम्।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारीसयातिपरमागतिम् ॥५७
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
न गायत्र्याः परं जप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥ ५८
श्रावणस्व तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजात्तमाः।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम् ॥५९
उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान्विप्रोर्द्धपञ्चमान्।
अधीयीत शुचौदेशे ब्रह्मचारीसमाहितः ॥६०
पुष्ये तु छन्दसांकुर्याद्बहिरुत्सर्जनन्द्विजाः।
माघशुक्लस्यवा प्राप्तेपूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि ॥६१
छन्दसां प्रीणनंकुर्यात्स्वेषुऋक्षेषुवैद्विजाः।
वेदाङ्गानि पुराणानिकृष्णपक्षेच मानवः ॥६२
इमान्नित्यमनध्यायनधीयानो विवर्ज्जयेत्।
अध्यापनं च कुर्वाणो ह्यनध्यायन्विवर्ज्जयेत् ॥६३

जो पुरुष दिन प्रतिदिन इस वेद माता सावित्री देवी का अध्ययन किया करता है और ब्रह्मचारी इसके अर्थ को समझ कर इसका जा जाप करता है वह परम गति को प्राप्त होता है। यह गायत्री वेदों की जननी है और गायत्री लोकों को पावन करने वाली है। गायत्री से परम अन्य जाप ही नहीं है—यही विशेष रूप से जान कर मुक्त हो जाता है ॥५७-५८॥ श्रावण मास की पूर्णमासी में—आषाढ़ की अथवा भाद्रपद की

पूर्णमासी में हे द्विजोत्तमो ! वेद का उपाकरण कहा गया है ।।५६।। हे विप्र ! ऊर्ध्वं पाँच मासों तक ग्राम—नगर का त्याग करके किसी शुचि देश में ब्रह्मचारी को समाहित होकर पुष्य नक्षत्र में बाहिर छन्दों का उत्सर्जन करना चाहिए । हे द्विजगण ! माघ शुक्ल के प्राप्त होने पर प्रथम दिन में पूर्वाह्ण में छन्दों का प्राणन करे । अपने ही नक्षत्रों में वेदों के अङ्गों का करे तथा पुराणों का मानव को कृष्ण पक्ष में करना चाहिए ।।६०-६२।। इन सब को नित्य करे किन्तु अध्ययन करने वालों को जो अनध्याय हों उनमें अध्ययन का वर्णन कर देवे जो अध्यापन का कार्य करता है उसको भी अध्यापन का कार्य वर्जित कर देना चाहिए ।।६३।।

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवापांशुसमूहने ।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानाञ्च सम्प्लवे ।।६४
आकालिकमनध्यायमेते ष्वाह प्रजापतिः ।
निर्घातेभूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्ज्जने ।।६५
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि ।
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने ।।६६
सज्योतिःस्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ।
नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषुच ।।६७
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धेन नित्यशः ।
अन्तःशवगते ग्रामे वृषलस्यच सन्निधौ ।।६८
अनध्यायो भुज्यमाने समवायेजनस्य च ।
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रेचाविवर्ज्जयेत् ।।६९
उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् ।
प्रतिगृह्यः द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् ।।७०

रात्रि में कर्णश्रव वायु में—दिन में पाँशु के समूहन में—विद्युत्—स्तनित और वर्षा में—महान् उल्काओं के संप्लव में प्रजापति ने इन अनाध्यायों को आकालिक अनध्याय कहा है । निर्घात में—भूमि कम्पन में—ज्योतियों के उपसर्जन में इन अनाध्यायों को भी ऋतु में भी आकालिक ही समझना चाहिए । अग्नि के प्रादुष्कृत होने पर और विद्युत्स्तनित

के होने पर वह ज्योति अनाध्याय होती है विनाऋतु के यहाँ पर दर्शन होने पर होता है। नित्य अनध्याय ग्रामों में और नगरों में ही होता है ॥६४-६७॥ धर्म ने पुण्य काम वालों का पूति गन्ध से नित्य ही होता है। ग्राम में अन्दर शव के जाने पर—वृषल की सन्निधि में जनों के समवाय के युज्यमान होने पर अनध्याय होता है। उदक में मध्यरात्र में विट् और मूत्र को वर्जित कर देवे। उच्छिष्ट और श्राद्ध योगी को मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए। विद्वान् द्विज प्रतिग्रहण करके एकोद्दिष्ट का केतन होता है ॥६८-७०॥

त्र्यहं न कीर्त्तयेद्ब्रह्मराज्ञो राहोश्चसूतके।
यावदेकोऽनुद्दिष्टस्य स्नहो लेपश्चतिष्ठति ॥७१
विप्रस्य विपुले (विदुषुः) देहे तावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत्।
शयानः प्राढपादश्च कृत्वा वै चावसिक्थकाम् ॥७२
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा मूतकाद्यन्नमेव च।
नीहारेबाणपाते च सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥७३
अमावास्यां चतुर्द्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषुच।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ॥७४
अष्टकासु त्र्यहोरात्रमृत्वन्तासुचरात्रिषु।
मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च ॥७५
तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः।
श्लेष्मान्तकस्व च्छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च ॥७६
कदाचिदपिनाध्येयं कोविदारकपित्थयोः।
समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि ॥७७

राजा और राहु के सूतक में तीन दिन तक ब्रह्म कीर्त्तन नहीं करना चाहिए। जब तक अनुद्दिष्ट का एक स्नेह और लेप स्थित रहता है। विप्र के विपुल देह में तब तक ब्रह्म का कीर्त्तन नहीं होना चाहिए। शयन करते हुए—प्रौढ़पादों वाला होकर और अवसक्थिका को करके आमिष खाकर तथा सूतकादि के अन्न को खाकर अध्ययन नहीं करना चाहिए। नीहार में—बाणपात में और दोनों में सन्ध्याओं में भी—अमावस्या—

पूर्णमासी—चतुर्दशी—अष्टमी तिथियों में—उपाकर्म में और उत्सर्ग में तीन रात्रि तक क्षपरण कहा गया है ।।७१-७४।। अष्टकाओं में अहोरात्र अनध्याय रहता है। ऋतु की अन्तिम रात्रियों में—मार्गशीर्ष—पौष—माघ मासों में तीन अष्टका कही गयी हैं जो सूरियों ने कृष्ण पक्ष में बतलाई हैं। श्लेष्मान्तक—शाल्मलि और मधुक की छाया में तथा कोविहार और कपित्थ की छाया में कभी भी अध्ययन नहीं करना चाहिए। किसी समान विद्या वाले पुरुष के मृत हो जाने पर तथा ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर भी अनाध्याय होता है ।।७५-७७।।

आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् ।
छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्त्तिताः ।।७८
हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विस (व) र्जयेत् ।
नैत्यिके नास्त्यनध्यायः सन्ध्योपासन एव च ।।७९
उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि ।
एकामृचमथैकं वा यजुःसामाथ वा पुनः ।।८०
अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चातिवायति ।
अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ।।८१
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वाण्येतानिवर्जयत् ।
एष धम समासेनकीर्त्तितोब्रह्मचारिणाम् ।।८२
ब्रह्मणाभिहितः पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम् ।
योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजाः ।।८३

आचार्य के संस्थित होने पर भी तीन रात्रि का क्षपरण कहा गया है। ये विप्रों के छिद्र हैं जो अनाध्याय कीर्त्तित किये गये हैं ।।७८।। उनमें राक्षस लोग हिंसन किया करते हैं इसीलिये इनका वर्णन कर देना चाहिए। नित्य होने वाले कर्म में कभी अनध्याय नहीं होता है और सन्ध्योपासन में ही अनाध्याय नहीं होता है ।।७९।। उपाकर्म में कर्म के अन्त में क्षेम के मन्त्रों में एक ऋचा को अथच एक यजुर्वेद के मन्त्र को अथवा सामवेद के मन्त्र को अष्टकाओं में तथा मारुत के अतिवायित होने पर भी अध्ययन करना चाहिए। वेद के अङ्ग शास्त्रों में तथा इतिहास पुराणों में अनध्याय

नहीं होता है। अन्य धर्म शास्त्रों में भी इन पत्रों में वर्णन नहीं करना चाहिए। हमने यह ब्रह्मचारियों का धर्म संक्षेप से बतला दिया है ॥८०-८२॥ पहिले इसे ब्रह्माजी ने भावित आत्मा वाले ऋषियों से कहा था। हे द्विजगण ! जो श्रुति का अध्ययन न करके अन्यत्र यत्न किया करता है ॥८३॥

ससम्मूढोनसम्भाष्योवेदवाह्योद्विजातिभिः ।
नवेदपाठमात्रेणसन्तुष्टोवैद्विजोत्तमः ॥८४
एवमाचारहीनस्तु पङ्के गौरिवसीदति ।
योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थंनविचारयेत् ॥८५
स चान्धशूद्रकल्पस्तुपदार्थं न प्रपद्यते ।
यदिचात्यन्तिकं वासं कर्त्तुमिच्छतिवैगुरौ ॥८६
युक्तः परिचरेदेनमाशरीराभिघातनात् ।
गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥८७
अभ्यसेत्स तदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः ।
सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदाङ्गानि विशेषतः ।
अभ्यसेत्सततं युक्तो भस्मस्नानपरायणः ॥८८
एतद्विधानंपरमंपुराणं वेदागमे(वेदांगतः) सम्यगिहेरितञ्च ।
पुरा महर्षिप्रवरानुपृष्टः स्वायम्भुवो यन्मनुराह देवः ॥८९
एवमीश्वरसमर्पितान्तरो योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवि(व)त् ।
मोपजालमपहाय सोऽमृतं याति तत्पदमनामयं शिवम् ॥९०

वह परम सम्मूढ़ है और सम्भाषण करने के योग्य नहीं है तथा द्विजातियों के द्वारा वह वेद वहिष्कृत भी होने के योग्य ही होता है। द्विजोत्तम केवल वेद के पाठ से ही सन्तुष्ट नहीं होता है। इस प्रकार से जो आचार से हीन होता है वह मनुष्य पङ्क (दलदल) में फँसी हुई गौ की भाँति ही दुःखभागी हुआ करता है। जो विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके भी वेद के अर्थों का विचार नहीं करता है वह तो एक प्रकार से अन्धा ही है और वह शूद्र के ही समान होता है क्योंकि उसके पास पदार्थ प्रपन्न नहीं हुआ करता है। यदि गुरु के समीप में ही आत्यन्तिक निवास

करने की इच्छा करता है तो युक्त होकर गुरु की परिचर्या करनी चाहिए जब तक भी इस शरीर का अभियातन नहीं होता है अर्थात् मृत्यु पर्यन्त करना चाहिए । अथवा वन में जाकर अग्नि का विधि विधान के साथ हवन करना चाहिए ।।८४-८७।। उसे नित्य ही उस समय में ब्रह्म में निष्ठ होकर परम समाहित रहते हुए अभ्यास करना चाहिए । विशेष करके उसे सावित्री—शतरुद्रीय और वेदों के अङ्ग शास्त्रों का निरन्तर भस्म और स्नान में परायण होकर ही युक्त होकर अभ्यास करना चाहिए । ।।८८।। यह विधान परम पुराण है वेदों में और आगम में भली भाँति कहा गया है । पहिले समय में महर्षि प्रवरों के द्वारा पूछे गये स्वायम्भुव मनु देव ने इसको कहा है ।।८९।। इस प्रकार से ईश्वर के ही लिये अपने अन्तर को समर्पित करने वाला जो विधान का ज्ञाता इस विधि को किया करता है वह सांसारिक मोह के जाल को काट कर वह अमृत पद को प्राप्त किया करता है जो वह पद अनामय और परम शिव होता है ।।९०।।

१५—गृहस्थधर्मवर्णन

वेदं वेदौ तथा वेदान्विन्द्याद्वा चतुरो द्विजाः ।।
अधीत्य चाभिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तमाः ।।१

गुरवे तु धनंदत्त्वास्नायीततदनुज्ञया ।
चीर्णव्रतोऽथयुक्तात्मा स शक्तःस्नातुमर्हति ।।२

वैष्ववींधारयेद्यष्टिमन्तर्वासं तथोत्तरम् ।
यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकञ्च कमण्डलुम् ।। ३

छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ।
रौक्मे च कुण्डलेवेदंव्युप्तकेशनखःशुचिः ।।४

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत् ।
अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रः नरक्तां बिभृयात्स्रजम् ।।५

शुक्लाम्बरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः ।
न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै वैभवे सति ॥६
नारक्तमुल्वणञ्चान्यधृतंवासो न कुण्डिकाम् ।
नोपानहौस्रजंवाथपादुकेन प्रयोजयेत् ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—हे द्विजगण ! एक ही वेद को दो वेदों को अथवा चारों ही वेदों को प्राप्त करना चाहिए इन वेदों का अध्ययन करके और इनके अर्थ को जान कर फिर ब्रह्मचारी को स्नान करना चाहिए । ॥१॥ अपने गुरु देव को धन समर्पित करके उनकी आज्ञा से ही स्नान करे । जो चीर्ण व्रत वाला हो गया है और युक्त आत्मा वाला है वह शक्त है और स्नान करने की योग्यता को प्राप्त करता है ॥२॥ फिर ब्रह्मचारी के दण्ड का त्याग करके उसे वैष्णवी यष्टि धारण करनी चाहिए । उसके पास अन्तर्वास और उतरीय वस्त्र होना चाहिए । दूसरा यज्ञोपवीत और जल के सहित एक कमण्डलु होवे ॥३॥ छत्र—अमल उष्णीष—पादुका—अथवा उपानह—सुवर्ण के कुण्डल—वेद उसके पास हो तथा और केश तथा नख व्युप्त होने वाला उसे होना चाहिए एवं शुचि होवे ॥४॥ स्वाध्याय में नित्य ही युक्त रहे तथा वहिर्माल्य को धारण नहीं करे । फिर विप्र को सुवर्ण की माला के अतिरिक्त अन्य किसी रक्त वर्ण की माला को धारण नहीं करना चाहिए ॥५॥ नित्य ही शुक्ल वस्त्रों के धारण करने वाला—सुन्दर गन्ध से युक्त और प्रिय दर्शन वाला हो जाना चाहिए । जीर्ण और मत वाले वस्त्र को कभी धारण करने वाला न होवे वैभव के होते हुए भी ऐसी वेश भूषा से युक्त नहीं रहना चाहिए ॥६॥ रक्त—उल्वण और दूसरे के द्वारा धारण किया हुआ वस्त्र तथा कुण्डिका—उपानह—माला और पादुका का प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥७॥

उपवीतकरान् दर्भान्तिथा कृष्णाजिनानि च ।
नापसव्यं परीदध्याद्वासो न विकृतञ्च यत् ॥८
आहरेद्विधिवद्दारान्सदृशानात्मनःशुभाम् ।
रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान् ॥९

अमातृगोत्रप्रभावमसमानर्षिगोत्रजाम् ।
आहरेद् ब्राह्मणो भार्य्यां शीलशौचसमन्विताम् ॥१०
ऋृतुकालाभिगामीस्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ।
वर्ययेत्प्रतिषिद्धानिदिनानितुप्रयत्नतः ॥११
षष्ठचष्टमींपञ्चदशीद्वादशीं च चतुर्द्दशाम् ।
ब्रह्मचारीभवेन्नितयं ब्राह्मणःसंयतेन्द्रियः ॥१२
आदधीतावसथ्याग्निजुहुयाज्जातवेदसम् ।
व्रतानिस्नातकोनित्यं पावनानिचपालयेत् ॥१३
वेदोदितं स्वकं कर्म्मं नित्यं कुर्य्यादतन्द्रितः ।
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकान्याति भीषणान् ॥१४

उपवीत कर दर्भ और कृष्ण मृग चर्म को अपसव्य में कभी परिधान नहीं करे, तथा वस्त्र भी विकृत न पहिने ॥८॥ विधि पूर्वक पत्नी का आहरण करना चाहिए जो अपने ही सदृश और परम शुभ हों। पत्नी भी रूप के लक्षणों से युक्त और योनि के दोषों से वर्जित ही ग्रहण करनी चाहिए ॥९॥ पत्नी माता के गोत्र से रहित तथा असम्भव ऋषि गोत्र में जन्म ग्रहण करने वाली होनी चाहिए ब्राह्मण को ऐसी ही शील और शौच से समन्वित भार्या का आहरण करना उचित है ॥१०॥ उस पत्नी का जिस समय में ऋतु काल उपस्थित हो तभी उसका गमन करे और वह भी तभी तक जब तक किसी पुत्र की उत्पत्ति न होवे। जो दिन शास्त्र में प्रतिषिद्ध बताये गये हैं उनको वर्जित करके ही ऋतुकाल में भी गमन करे और प्रयत्न पूर्वक वर्जित दिनों में भार्याभिगमन नहीं करना चाहिए ॥११॥ षष्ठी–अष्टमी—पञ्चदशी—द्वादशी और चतुर्दशी इन तिथियों में नित्य ही संयत इन्द्रियों वाले ब्राह्मण को ब्रह्मचारी होना चाहिए ॥१२॥ अवसथ्याग्नि का धारण करे और जात वेदा का हवन भी नित्य ही करना चाहिए। स्नातक को नित्य ही पावन व्रतों का पूर्ण परिपालन करना चाहिए ॥१३॥ तन्द्रा से रहित होकर वेदों में कहे हुए कर्मों को नित्य नियम से करना चाहिए। वेद विहित कर्मों को न करता हुआ शीघ्र ही परम भीषण नरकों में जाकर पतित हो जाया करता है ॥१४॥

अभ्यसेत्प्रयतोवेदं महायज्ञांश्चभावयेत् ।
कुर्याद्गृह्याणि कर्माणिसन्ध्योपासनमेवच ॥१५
सख्यंसमाधिकैःकुर्य्यादर्च्चयेदीश्वरंसदा ।
दैवतान्यधिगच्छेतकुर्य्याद्भार्याविभूषणम् ॥१६
न धर्म्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि ।
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पनम् ॥१७
वयसः कर्मणोऽर्थस्यश्रुतस्याभिजनस्य च ।
वेदवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरेद्विहरेत्सदा ॥१८
श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः ।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् ॥१९
येनास्यपितरोयाता येनयाताःपितातहाः ।
तेनयायात्सतांमार्गंतेन गच्छन्तरिष्यति ॥२०
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२१

प्रयत होते हुए वेदों का अभ्यास गृहस्थाश्रम में भी रह कर बराबर करते रहना चाहिए तथा महान् यज्ञों को भावित करे। जो गृह्य कर्म हैं उनका सम्पादन करे और सन्ध्योपासन किया करे ॥१५॥ जो अपने अधिक गुणगण वाले सत्पुरुष हों उनके ही साथ सख्यभाव समुत्पन्न करना समुचित है और सर्वदा ईश्वर का गार्हस्थ्य में अर्चन करना चाहिए। देवताओं का भी पूजन करे और अपनी भार्या को विशेष भूषित करना चाहिए ॥१६॥ विद्वान् पुरुष को कभी भी अपने द्वारा किये धर्म का ख्यापन नहीं करना चाहिए और पाप कर्म का कभी गूहन भी न करे। समस्त भूत मात्र पर अनुकम्पा की मात्रा रखते हुए ही नित्य अपने हित का कार्य करना चाहिए ॥१७॥ सदा अपनी अवस्था—कर्म्म—अर्थ—श्रुत—अभिजन—वेद वाणी और बुद्धि के समान ही सब कुछ करना तथा विहार करना चाहिए अर्थात् इन उपर्युक्त के विपरीत कर्म कभी नहीं करे ॥१८॥ जो आचार श्रुति और स्मृतियों में बताया गया है और जिस आचार साधु पुरुषों ने सर्वदा सेवन किया है उसी आचार का समाचरण करना

चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी कभी नहीं करना चाहिए ॥१६॥ जिस मार्ग एवं आचार का परिपालन करते हुए इसके पितृगण आदि गये थे और जिस मार्ग से पितामह आदि गये हैं उसी सत्पुरुषों के मार्ग से स्वयं भी गमन करना चाहिए। उसी मार्ग से जाते हुए वह अवश्य ही तर जायगा अर्थात् सद्गति की प्राप्ति कर लेगा ॥२०॥ नित्य ही स्वाध्याय करने के स्वभाव वाला होना चाहिए। और नित्य ही यज्ञोपवीत के धारण करने वाला भी रहना चाहिए। सर्वदा सत्य ही भाषण करने वाला और क्रोध को जीत लेने वाला रहे। ऐसा ही गृहस्थाश्रमी ब्रह्मभूय होने के योग्य कल्पित किया जाता है ॥२१॥

सन्ध्यास्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः ।
अनसूयी मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रेत्य वर्द्धते ॥२२
वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः ।
सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही ॥२३
मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रतः ।
दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥२४
त्रिवर्गसेवी सततं देवतानाञ्च पूजनम् ।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान् ॥२५
त्रिभागशीलः सततंक्षायुक्तोदयालुकः ।
गृहस्थस्तु समाख्यातोन गहेणगृहीभवेत् ॥२६
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यञ्चैव दमः शमः ।
अध्यात्मनिरतज्ञानमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥२७
एतस्मान्न प्रमाद्येतविशेषेण द्विजोत्तमः ।
यथाशक्तिचरेत्कर्मनिन्दितानि विवर्ज्जयेत् ॥२८

नित्य ही सन्ध्या वन्दना तथा स्नान करने में तत्पर रहे और ब्रह्म यज्ञ भी नित्य परायण होकर करे। किसी की भी असूया न करने वाला-कोमल स्वभाव से सुसम्पन्न एवं दमन शील गृहस्थ मृत्यु के पश्चात् भी वर्द्धनशील हुआ करता है ॥२२॥ जिसके अन्दर से राग द्वेष—भय और क्रोध निकल गया है तथा जो लोभ और मोह से शून्य रहता है—जिसकी

रति सदा सावित्री के जाप करने में रहा करती है और जो श्राद्धों के करने वाला है वही गृही मुक्त होता है ॥२३॥ अपने माता-पिता के हित में जो युक्त होता है तथा जिसकी रति सर्वदा गौ और ब्राह्मणों के हित कर कार्यों में रहा करती है जो दमनशील—यजन करने वाला—देवों का भक्त होता है वही ब्रह्मलोक में मृत्यु के पश्चात् पहुँच कर प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२४॥ निरन्तर त्रिवर्ग की सेवा करने वाला होकर देवों का पूजन अहर्निश नित्य ही करना चाहिए तथा प्रयत होकर सदा सुरगणों को नमन करना चाहिए ॥२५॥ गृहस्थी को सदा सम्यक् विभाजन करने के स्वभाव वाला होना चाहिए । क्षमा से युक्त और दयालु भी होवे । वही गृहस्थ उस गृह से गृह वाला समाख्यात होता है ॥२६॥ क्षमा—दया—विज्ञान—सत्य—दम—शम और अध्यात्म ज्ञान में सर्वदा विशेष रति का रखना ये ही सद्गणों का होना ब्राह्मण का सच्चा लक्षण होता है ॥२७॥ द्विजोत्तम को विशेष रूप से इन सद्गुणों से कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । जितनी भी अपने आप में करने की शक्ति हो उसी के अनुसार शास्त्रोक्त समुचित कर्मों का सम्पादन करना चाहिए । और जिनको वेद शास्त्रों ने निन्दित कर्म बतलाया है उनका सर्वदा त्याग ही कर देना चाहिए ॥२८॥

विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम् ।
गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥२९

विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम् ।
अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणंक्षमा ॥३०

स्वदुःखेष्विवकारुण्यंपरदुःखेषु सौहृदात् ।
दयेति मुनयःप्राहुःसाक्षाद्धर्मस्यसाधनम् ॥३१

चतुर्द्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः ।
विज्ञानमिति तद्विद्याद्येन धर्मो विवर्द्धते ॥३२

अधीत्य विधिवद्वेदानर्थञ्चैवोपलभ्य तु ।
धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद्विज्ञानमिष्यते ॥३३

सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम् ।
यथाभूतप्रवादन्तु सत्यमाहुर्मनीषिणः ॥३४
दमः शरीरोपरमः शमः प्रज्ञाप्रसादजः ।
अध्यात्ममक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचति ॥३५

इस सांसारिक मोह के कलिल का विधूनन करके उत्तम योग का लाभ करे। ऐसा करने से एक अच्छा गृहस्थ भी बन्धन से युक्त अवश्य ही हो जाया करता है—इसमें तनिक भी विचार करने की या सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है ॥२६॥ विगर्हा–अतिक्रम–आक्षेप–हिंसा–बन्ध और वध के स्वरूप वाले अन्य पर क्रोध से समुत्पन्न दोषों का मर्षण कर जाना ही क्षमा हुआ करती है ॥३०॥ अपने हुए दुःखों के समान सौहार्द से पराये दुःखों में दया हुआ करती है—ऐसा ही मुनियों ने कहा है। यह दया का भाव साक्षात् धर्म का लक्षण तथा साधन होता है।३१। चौदह विधाओं का यथार्थ रूप से धारण करना ही विज्ञान होता है। इसीलिये उसका ज्ञान अवश्य ही प्राप्त करना चाहिए जिससे धर्म की वृद्धि हुआ करती है ॥३२॥ विधि विधान के साथ वेदों का अध्ययन करके और अर्थ को भी प्राप्त करके यदि धर्म के कार्य से निवृत्त हो जाता है तो उसे विज्ञान नहीं माना जाता है ॥३३॥ सत्य ही एक ऐसा उत्तम साधन है जिसके द्वारा लोकों को जीत लिया करता है और यह सत्य ही परम पद है। मनीषीगण सत्य को यथाभूत प्रवाद वाला कहते हैं ॥३४॥ दम-शरीर में उपरम होने वाला शम जो प्रज्ञा के प्रसाद से समुत्पन्न होता है। अध्यात्म को अक्षर जानना चाहिए जहाँ पर पहुंच कर किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहा करती है ॥३५॥

ययासदेवो भगवान्विद्ययावेद्यते परः ।
साक्षाद्देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम् ॥३६
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः ।
महायज्ञपरो विद्वान्न भवेत्तदनुमुत्तमम् ॥३७
धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं प्रतिपालयेत् ।
न च देह विना रुद्रो विद्यते पुरुषैः परः ॥३८

नित्यधर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः ।
न धर्म्मवर्ज्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥३६
सीदन्नपि हिं धर्मेणन त्ववमं समाचरेत् ।
धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषुजन्तुषु ॥४०
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकमधीः ।
न वेददेववतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न सम्वंदेत् ॥४१
यस्त्विमंनियतं विप्रो धर्माध्यायंपठेच्छुचिः ।
अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोकेमहीयते ॥४२

जिस विद्या से वह पर देव भगवान् जाना जाता है वह साक्षात् देव महादेव हैं और उसी का ज्ञान कीर्त्तित किया गया है ॥३६॥ उसमें निष्ठा रखने वाला—उसी में तत्पर विद्वान् नित्य ही क्रोध से रहित और शुचि होता है । वह महायज्ञ में परायण विद्वान् है और उत्तम मही है ॥३७॥ यह शरीर भी एक धर्म का आयतन ही होता है इसकी सुरक्षा यत्न से करके इसका प्रति पालन करना चाहिए । इस देह के बिना पुरुषों के द्वारा पर पुरुष विद्यमान नहीं हुआ करता है ॥३८॥ द्विज को नित्य ही नियत होकर धर्म-अर्थ और काम इस त्रिवर्ग युक्त होना चाहिए । जो अर्थ और काम धर्म से वर्जित हो उसका मन से भी कभी स्मरण नहीं करना चाहिए ॥३६॥ धर्म के कर्म में दुःख भोगता हुआ भी रहे किन्तु अधर्म का समाचरण कभी भी नहीं करना चाहिए । धर्म ही साक्षात् देव भगवान् हैं और सभी जन्तुओं में धर्म ही परम गति है ॥४०॥ द्विज गृहस्थ को समस्त भूतों के हित तथा प्रिय कर्मों का करने वाला होना चाहिए और कभी भी भूलकर पर जनों के साथ द्रोह करने की रति नहीं रखनी चाहिए तथा ऐसी बुद्धि भी नहीं करे । वेदों में कथित अथवा वेद स्वरूपी देवों की कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिए । जो निन्दक पुरुष हों उनके साथ कभी सम्वाद भी नहीं करें ॥४१॥ जो कोई पुरुष विप्र इस धर्माध्याय का नियत रूप से शुचि होकर पाठ किया करता है या इसका दूसरों को श्रवण कराता है अथवा इसको पढ़ाता है वह अन्त समय में ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥४२॥

१६—ब्राह्मणों के नित्यकर्म निरूपण

न हिस्यात्सर्वभूतानि नानृतंवावदेत्क्वचित् ।
नाहितंनाप्रियंब्रूयान्नस्तेनः स्यात्कथञ्चन ।।१
तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव च ।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते ।।२
नराज्ञःप्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात्पतितादपि ।
नान्यस्माद्याचकत्वञ्चनिन्दिताद्वर्ज्जयेद्बुधः ।।३
नित्यं याचनको न स्यात्पुनस्तत्रैव याचयेत् ।
प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्म्मतिः ।।४
न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमाः ।
ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन ।।५
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ।
देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः ।।६
पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले तृणे फले ।
अदत्तादानमस्तेय मनुः प्राह प्रजापतिः ।।७

श्री व्यास देव ने कहा—समस्त भूतों में किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए और कभी भी मिथ्या भाषण भी नहीं करना चाहिए। न तो किसी के अहित का बात बोले और न किसी भी समय में किसी को अप्रिय लगने वाली बात ही कहनी चाहिए। मनुष्य को स्तेन अर्थात् चोरी के कर्म करने वाला भी किसी भी प्रकार से नहीं होना चाहिए ।।१।। तृण हो अथवा शाक हो, मिट्टी हो या जल ही क्यों न हो, जो वस्तु पराई है उसका अपहरण करने वाला जन्तु अवश्य ही नरक का गामी होता है ।।२।। राजा का प्रतिग्रह कभी भी ग्रहण नहीं करे और शूद्र तथा जो पतित हो उसका भी दान नहीं ग्रहण करना चाहिए। जो भी कोई अन्य निन्दित पुरुष हो उसका याचक बुध पुरुष को कभी भी नहीं होना चाहिए और ऐसी याचकता को वर्जित कर देवे ।।३।। नित्य याचना करने वाला न होवे और फिर वहाँ पर ही याचना करे। यह याचक है ऐसी उसकी दुर्मति प्राणों का अपहरण किया करती है ।।४।। विशेष रूप से

द्विजोत्तमों को कभी भी देवों के द्रव्य का अपहरण करने वाला नहीं होना चाहिए। जो ब्राह्मण का धन ब्रह्मस्व है उसका तो आपत्ति के समय में भी कभी भी किसी तरह से अपहरण करना ही नहीं चाहिए ॥५॥ विष को विष नहीं कहा जाता है ब्रह्मस्व को ही विष कहते हैं। ब्रह्मस्व की भाँति ही देवस्व का भी सदा परिहरण कर देना चाहिए ॥६॥ पुष्प में, शाक, उदक, काष्ठ, मूल, तृण, फल इनका न दिया हुआ जो आदान है वही अस्तेय होता है—ऐसा प्रजापति मनु ने कहा है ॥७॥

गृहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजैः।
नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम् ॥८

तृण काष्ठं फलंपुष्पं प्रकाशं वै हरेद्बुधः।
धर्मार्थं केवलं ग्राह्यं ह्यन्यथा पतितोभवेत् ॥९

तिलमुद्गयवादानां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः।
क्षुधार्त्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः ॥१०

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वाव्रतं चरेत्।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रलम्बनम् ॥११

प्रेत्येह चेदृशोविप्रो गह्यते ब्रह्मवादिभिः।
छद्मना चरितंयच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति ॥१२

अलिङ्गी लिङ्गिवेशेनयो वृत्तिमुपजीवति।
स लिङ्गिनां हरेदेंनस्तिर्यग्योनौ चजायते ॥१३

बैडालव्रतिनः पापलोके धर्मविनाशकाः।
सद्यः पतन्तिपापेषुकर्मणस्तस्य तत्फलम् ॥१४

द्विजों के द्वारा देवों की पूजा की विधि का सम्पादन करने के लिये पुष्पों का ग्रहण कर लेना चाहिए किन्तु यह पुष्पों का ग्रहण भी एक ही स्थल से नियत रूप से न करे और केवल अनुज्ञा प्राप्त न करके भी ग्रहण नहीं करने चाहिए ॥८॥ तृण, काष्ठ, फल और पुष्प बुध को प्रकाश में ही हरण करने चाहिए। वे भी जितने धर्म के कर्म के लिये आवश्यक हों उतने ही ग्रहण करे अन्यथा ग्रहण करने पर पतित हो जायगा ॥९॥ तिल, मूंग और यव आदि की केवल एक मुठ्ठी ही मार्ग में स्थित होने

वाले लोगों के द्वारा ग्रहण करनी चाहिए, वह भी जब कि क्षुधा से जो लोग अत्यन्त आर्त्त हों उनको ही लेनी चाहिए। हे विप्रगण ! अन्यथा जो धर्म के ज्ञाता हैं उनको कभी भी नहीं लेनी चाहिए—ऐसी ही वास्तविक स्थिति है ॥१०॥ धर्म के बहाने से पाप कर्म करके कभी भी व्रत का समाचरण नहीं करना चाहिए। व्रत से किये हुए पाप का प्रच्छादन करके स्त्री और शूद्र का समालम्बन करता हुआ जो इस प्रकार का विप्र होता है उसके मरने पर भी ब्रह्मवादियों के द्वारा वह गर्हित ही कहा जाया करता है। जो व्रत छद्म के साथ किया जाता है वह राक्षसों को चला जाया करता है ॥११-१२॥ जो वास्तव में लिङ्गधारी न हो और लिङ्ग-वश से अपनी वृत्ति की उपजीविका करके जीवित रहा करता है वह लिंगियों के पाप का हरण किया करता है और फिर तिर्यक् योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ॥१३॥ इस लोक में ऐसे लोग वैडाल व्रत वाले पापी और धर्म के विनाश करने वाले ही होते हैं। उनके ऐसे कर्मों का फल यही होता है कि वे तुरन्त ही पापों में पतित हो जाया करते हैं।१४।

पाखण्डिनो विकर्मस्थान्वामाचारांस्तथैव च।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नाऽर्चयेत् ॥१५
वेदनिन्दारतान् मर्त्यान्देवनिन्दारतांस्तथा।
द्विजनिन्दारतांश्चैव्रमनसापिनचिन्तयेत् ॥१६
याजनं योनिसम्बन्धसहवासञ्चभाषणम्।
कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद्यत्नेनवर्जयेत् ॥१७
देवद्रोहाद् गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटि गुणाधिकम् ॥१८
गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्यारराजोपसेवया।
कुलान्यकुलतां यान्तियानिहीनानि धर्मतः ॥१९
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥२०
अनृतात्पारदार्याच्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात्।
अश्रौतधर्माचरणात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥२१

जो पाषण्ड करने वाले हैं और विकर्मों में स्थित रहा करते हैं तथा वाम आचरण वाले होते हैं ऐसे पञ्चरात्र पाशु यज्ञों का वाणी मात्रसे भी अर्चन नहीं करना चाहिए ॥१५॥ जो वेदों की निन्दा करने में रति रखते हैं और जो मनुष्य देवों की निन्दा करने में निरत होते हैं तथा जो द्विजों की बुराई करने में रत रहते हैं उनका कभी मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए ॥१६॥ याजन—योनि का सम्बन्ध—साथ में वास करना—सह सम्भाषण करता हुआ भी जन्तु पतित हो जाया करता है अतएव ऐसे महा पातकियों का दूर से ही प्रयत्न पूर्वक परिवर्जन कर देना ही उचित होता है ॥१७॥ देवों के साथ द्रोह करने से गुरु के साथ किया हुआ द्रोह करोड़ों-करोड़ अधिक गुण वाला होता है क्योंकि ज्ञान का अपवाद करना नास्तिकता है अतएव यह करोड़ों गुना अधिक माना गया है ॥१८॥ गौओं, देवताओं और विप्रों के द्वारा कृषि से तथा राजा की उपसेवा से कुल के कुल आकुलता को प्राप्त हो जाया करते हैं क्योंकि ये सब धर्म से हीन होते हैं ॥१९॥ बुरे विवादों से—क्रियाओं के लोपों से और वेदों के अध्ययन न करने से एवं ब्राह्मणों का अतिक्रमण करने, कुल दूषित कुल होकर अकुलता को प्राप्त हो जाया करते हैं, मिथ्या व्यवहार तथा भाषण से, पराई स्त्रियों के साथ सम्पर्क करने से, जो अभक्ष्य पदार्थ हैं उनके खाने से जो श्रुति के द्वारा प्रतिपादित नहीं हैं ऐसे धर्म के समाचरण से कुल बहुत ही शीघ्र विनष्ट हो जाया करता है ॥२०-२१॥

अश्रोत्रिवेषु वै दानाद्वृषलेषु तथैव च ।
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥२२
नाधार्मिकैर्वृ ते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् ।
न शूद्रराज्येनिवसेन्न पाखण्डजनैर्वृ ते ॥२३
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्वपश्चिमयोःशुभम् ।
मुक्त्वासमुद्रयोर्देशंनान्यत्रनिनसेद्द्विजः ॥२४
कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः ।
पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद् द्विजः ॥२५

अर्द्ध कोशान्नदीकूलंवर्जयित्वाद्विजोत्तमः ।
नान्यत्रनिवसेत्पुण्यांनान्त्यजग्रामसन्निधौ ॥२६
नसम्वसेच्चपतितैर्नचण्डालैर्नपुक्कसैः ।
नमूर्खैर्नावलिप्तैश्चनान्त्यावसायिभिः ॥२७
एकशय्यासनम्पक्तिभाण्डपक्वान्नमिश्रणम् ।
याजनाध्यापनं योनिस्तथैवसहभोजनम् ॥२८
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च ।
एकादशैते निर्दिष्टादोषाः साङ्कर्यसञ्ज्ञिताः ॥२९

जो श्रोत्रिय नहीं है उनको दिया हुआ दान तथा वृषलों को और विदित आचार से हीनों को दिया हुआ दान शीघ्र ही कुल का नाश कर दिया करता है ॥२२॥ जो ग्राम धर्म हीनों से समावृत हो और जो बहुत सी व्याधियों से अत्यन्त समाकुल हो उस ग्राम में और शूद्रों के राज्य में एवं पाखण्डियों से संयुत ग्राम में कभी भी अपना निवास नहीं करना चाहिए ॥२३॥ हिमवान् और विन्ध्याचल मध्य में पूर्व और पश्चिम दिशाओं में परम शुभ स्थल है। समुद्रों के देश को छोड़ कर अन्यत्र द्विज को कहीं पर भी निवास नहीं करना चाहिए ॥२४॥ जहाँ पर कृष्ण मृग नित्य ही स्वाभाविक रूप से विचरण किया करता है और जहाँ पर पुण्य एवं विश्रुत नदियाँ वहन किया करती हैं वहाँ पर द्विज को निवास करना चाहिए ॥२५॥ द्विजोत्तम को नदी के कूल से आधा कोश चलकर निवास करे। अन्य स्थान में पुण्या नदी पर भी वास नहीं करे। तथा अन्त्यजों के ग्राम की सन्निधि में भी कभी निवास नहीं करना चाहिए। पतित—चण्डाल—पुक्कसों के साथ भी कभी निवास नहीं करे। मूर्ख—अवलिप्त—आन्त्य और अन्त्यावसायियों के साथ भी निवास तथा एक ही शय्या—एक ही आसन-पंक्ति—भाण्ड—पक्वान्न मिश्रण—याजन—अध्यापन—योनि यथा सह भोजन—साथ अध्ययन दशवाँ तथा सहयाजन एकादश ये दोष निर्दिष्ट किये गये हैं जो साङ्कर्य की संज्ञा वाले होते हैं ॥२६-२९॥

समीपे वाप्यवस्थानात्पापं संक्रमते नृणाम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सङ्करं वर्जयेद् बुधः ॥३०

एकपङ्क्त्युपविष्टा ये नस्पृशन्ति परस्परम् ।
भस्मनाकृतमर्यादा नतेषांसङ्करोभवेत् ॥३१
अग्निनाभस्मनाचैवसलिलेनविशेषतः ।
द्वारेणस्तम्भमार्गेणड्भिःपङ्क्तिर्विभिद्यते ॥३२
न कुर्याद्दुःखवैराणिविवादंचैवपैशुनम् ।
परक्षेत्रे गां चरन्तींनचाचक्षीतकस्यचित् ॥३३
न सम्वसेत्सूतकिना न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत् ।
न सूर्यपरिवेशं वा नेन्द्रचापं शवाग्निकम् ॥३४
परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनंवा कदाचन ।
न कुर्याद्बहुभिः सार्द्धं विरोधं वा कदाचन ॥३५

समीप में अवस्थान से भी पाप एक से दूसरे पर संक्रमण किया करता है। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा बुध पुरुष को सङ्कर को वर्जित कर देना चाहिए ॥३०॥ जो एक ही पंक्ति में उपविष्ट होकर परस्पर में स्पर्श नहीं करते हैं और भस्म से मर्यादा किये हुए हैं उनको सङ्कर दोष नहीं होता है ॥३१॥ अग्नि से—भस्म से—विशेष करके जल से–द्वार से—स्तम्भ के मार्ग से—इन छै उपायों से पंक्ति का भेद किया जाता है ॥३२॥ दुःख वैर कभी नहीं करने चाहिए—विवाद और पैशुन कर्म भी न करे। पराये खेत में चरती हुई गाय को किसी को भी न बतावे या दिखलावे ॥३३॥ सूत की के साथ वास न करे और किसी के मर्म स्थल में स्पर्श नहीं करना चाहिए। सूर्य के परिवेश को–इन्द्र धनुष को और शव की अग्नि को भी नहीं देखना चाहिए ॥३४॥ पर पुरुष से विद्वान् को चन्द्र कहना चाहिए और कभी भी बहुतों के साथ विरोधभाव नहीं करे ॥३५॥

आत्मनःप्रतिकूलानिपरेषांनसमाचरेत् ।
तिथिं पक्षस्यनब्रूयान्नक्षत्राणि विनिर्दिशेत् ॥३६
नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वाद्विजोत्तमः ।
नदेवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत् ॥३७

न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दाञ्चवर्ज्जयेत् ।
वेदनिन्दांदेवनिन्दां प्रयेत्ननविवर्ज्जयेत् ॥३८
यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान्वा निन्दति द्विजः ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः ॥३९
निन्दयेद्वै गुरून्देवान्वेदं वा सोपबृंहणम् ।
कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यतेनरः ॥४०
तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात्किञ्चिदुत्तरम् ।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत् ॥४१
वर्ज्जयेद्वै रहस्यञ्च परेषां गूहयेद्बुधः ।
विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्याद्वै कदाचन ॥४२

जिस व्यवहार को अपने आपके प्रति किये जाने पर प्रतिकूल समझा जावे उस व्यवहार को दूसरों के प्रति कभी भी नहीं करना चाहिए। पक्ष की तिथि को तथा नक्षत्रों को नहीं बोलना चाहिए। अर्थात् विनिर्दिष्ट करना चाहिये ॥३६॥ द्विजोत्तम को उदकी स्त्री से तथा अशुचि पुरुष से अभिभाषण नहीं करना चाहिये। देव—द्विज—और गुरुओं के दिये हुए को वारण नहीं करना चाहिये। अपने आपकी प्रशंसा कभी न करे और पराई निन्दा को वर्जित करे। वेदों की निन्दा और देवगण की निन्दा को प्रयत्न पूर्वक विशेष रूप से वर्जित कर देना चाहिये ॥३७-३८॥ जो द्विज देवों की ऋषियों की—विप्रों की और वेदों की निन्दा किया करता है उसकी कोई भी निष्कृति (प्रायश्चित्त) नहीं देखी गई है। हे मुनीश्वरो ! शास्त्रों में इस अपराध का कहीं भी प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है ॥३९॥ गुरु देव और वेद की जो उपवृंहण के साथ निन्दा किया करता है वह नर सैकड़ों करोड़ कल्पों तक नरक में अर्थात् रौरव नरक में पच्य-मान होकर यातनाऐं भोगा करता है ॥४०॥ यदि इनकी किसी भी स्थान पर निन्दा की जा रही हो तो स्वयं चुप रहना चाहिएं और कोई भी उत्तर नहीं देना चाहिए। अथवा दोनों कानों को ढक कर ही वहाँ से चल देना चाहिये और इनका अवलोकन नहीं करे ॥४१॥ बुध पुरुष को रहस्य को वर्जित करना चाहिये तथा दूसरों से इसे गुप्त रखना

चाहिए। अपने मनुष्यों के साथ किसी भी समय में विवाद नहीं करना चाहिये ।।।४२।।

नपापंपापिनंब्र ूयादपापंवाद्विजोत्तमाः ।
सतेनतुल्यदोषःस्यान्मिथ्यादिदोषवान्भवेत् ।।४३
यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात् ।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिताम् ।।४४
ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे ।
दृष्टं विशोधनं सद्भिर्नास्ति मिथ्याभिशंसने ।।४५
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनञ्चानिमित्ततः ।
नास्तंयातं न वारिस्थं नोपसृष्टं नमध्यगम् ।।४६
तिरोहितं वाससा वा नादर्शान्तिरगामिनम् ।
न नग्नांस्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन ।।४७
न च मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम् ।
नाशुचिःसूर्यसोमादीन्ग्रहानालोकयेद्बुधः ।।४८
पतितव्यंगचण्डालानुच्छिष्टान्नावलोकयेत् ।
नाभिभाषेत चपरमुच्छिष्टोवावगर्वितः ।।
न स्पृशेत्प्रेतसंस्पर्शं नक्रुद्धस्यगुरोर्मुखम् ।
न तैलोदकयोश्छायांनपत्नींभोजनेसति ।।४९

हे द्विजोत्तमो ! पापी पुरुष को पाप नहीं बोलना चाहिये अथवा पापी को और पाप को कभी मुख से न कहे। बोलने से उसके तुल्य ही दोष हुआ करता है और मिथ्यादि दोष वाला हुआ करता है ।।४३।। मिथ्या रूप से अभिशस्तों के रोदन से जो अश्रु गिरा करते हैं वे अश्रु उन मिथ्या अभिशंसियों के पुत्रों का और पशुओं का हनन किया करते हैं ।।४४।। ब्रह्म हत्या—सुरापान—स्तेय—गुरु की अङ्गना का अभिगमन इन महापापों का विशोधन सत्पुरुषों ने देखा है किन्तु मिथ्या अभिशंसन में कोई भी विशोधन नहीं होता है ।।४५।। उदय होते हुए आदित्य को नहीं देखे और बिना किसी निमित्त विशेष के चन्द्रमा को भी नहीं देखना चाहिये। अस्त होते हुए—जल में

स्थित प्रतिविम्व को–उपसृष्ट अर्थात् ग्रहण ग्रस्त को—मध्य काल में गमन करते हुए को–वस्त्र से तिरोहित किये हुए को और दर्पण में गामी को कभी नहीं देखना चाहिये । किसी भी नग्न स्त्री को तथा नग्न पुरुष को भी कभी नहीं देखना चाहिये ।।४६-४७।। पुरीष (विष्ठा) मूत्र और संसर्ग से होने वाला मैथुन को कभी नहीं देखे । अशुचि होते हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों को बुध पुरुष को कभी नहीं देखना चाहिए ।।४८।। पतित पुरुष—व्यङ्ग (अङ्गहीन या विशेप अङ्गयुक्त)–चण्डाल और उच्छिष्टों का कभी अवलोक न करे । उच्छिष्ट या अवगवित होते हुये दूसरे से सम्भाषण नहीं करना चाहिये । प्रेत से जिसका संस्पर्श हुआ हो उसका स्पर्श न करे और क्रोधित हुए गुरु के मुख को भी नहीं देखे । तैल या जल में अपनी छाया को और भोजन करती हुई पत्नी को भी कभी नहीं देखना चाहिये ।।४९।।

नियुक्तवन्धनांगां वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा ।।५०
नाऽश्नीयाद्भार्यया सार्द्ध नैनामीक्षेत मेहनीम् ।
क्षुवन्तींजृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम् ।।५१
नोदके चात्मनो रूपंन कूलं श्वभ्रमेव वा ।
न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन ।।५२
न शूद्राय मतिंदद्यात्कृशरंपायसंदधि ।
नोच्छिष्टं वा घृतमधु नचकृष्णाजिनंहविः ।।५३
न चैवास्मै व्रतंदद्यान्न च धर्मं वदेद्बुधः ।
न च क्रोधवशंगच्छेद्द्वेषंरागञ्चवर्जयेत् ।।५४
लोभंदम्भंतथावर्ज्यंयात्राविज्ञानकृत्सनम् ।
मानं मोहं तथाक्रोधं द्वेषञ्चपरिवर्ज्जयेत् ।।५५
न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यञ्च ताडयेत् ।
न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् क्वचित् ।।५६

नियुक्त बन्धन में रहने वाली गौ को—उन्मत्त को—मत्त को भी नहीं देखना चाहिये । भार्या के साथ ही एक ही थाली या पात्र में कभी भोजन नहीं करना चाहिये और मेदन करती हुई भी अपनी भार्या का

अवलोकन नहीं करना चाहिये। छींक लेती हुई–जँभाई लेती हुई और आसन पर सुख पूर्वक बैठी पत्नी को (साधारणतया स्त्री मात्र को) नहीं देखना चाहिये ॥५०-५१॥ जल में अपना रूप नहीं देखे तथा कूल और श्वभ्र को भी नहीं देखना चाहिये। मूत्र का कभी उल्लंघन न करे और न कभी इस पर अधिष्ठित ही होना चाहिए ॥५२॥ नीच को मति न देवें तथा कृशर–पायस और दधि भी नहीं देवे। उच्छिष्ट घृत और मधु और कृष्णाजिन तथा हवि हो नहीं देना चाहिये ॥५३॥ नीच को कोई व्रत नहीं देवे तथा बुध पुरुष कोई धर्म की बात भी शूद्र को नहीं बतानी चाहिये। मनुष्य को कभी भी क्रोध के वश वर्ती न होना चाहिए तथा द्वेष और राग का वर्जन कर देनाही उचित है ॥५४॥ लोभ—दम्भ—यात्रा विज्ञान कुत्सन—यान—मोह—क्रोध और द्वेष को वर्जित कर देवे ॥५५॥ कहीं पर भी किसी को पीड़ा नहीं देवे। सुत और शिष्य को ताड़ना देनी चाहिये हीन जनों का उपसेवन नहीं करे और तीक्ष्ण मति वालों को भी कहीं पर उपसेवित न करे ॥५६॥

नात्मानञ्चावमन्येतदैन्यंयत्नेनवर्ज्जयेत्।
न चाशिष्यंनसत्कुर्यान्नात्मानंशंसयेद्बुधः ॥५७
न नखैर्विलिखेद्भूमिं गां चसम्वेशयेन्न हि।
न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वते न च पर्वतान् ॥५८
आवसेत्तेन नैवापि न त्यजेत्सहयायिनम्।
नावगाहेदपो नग्नो वह्निञ्चापि व्रजेत्पदा ॥५९
शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेनतैलेनाङ्गनलेपयेत्।
नशस्त्रसर्पैःक्रीडेतनस्वानिखानिचस्पृशेत् ॥६०
रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेनसहव्रजेत्।
न पाणिपादावग्नौचचापलानिसमाश्रयेत् ॥६१
न शिश्नोदरयोर्नित्यं न चश्रवणयोःक्वचित्।
नचांगनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिनापिबेत् ॥६२
नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन।
न शातयेदिष्टकाभिः फलानि सफलानि (न-फलेन) च ॥६३

अपने आपका कभी अवमान नहीं करना चाहिये। दीनता के भाव को यत्न पूर्वक वर्जित करे। जो शिष्य नहीं हो उसका सत्कार नहीं करे और अपने आपको कभी भी वुध पुरुष को संशय में नहीं डालना चाहिये ॥५७॥ अपने नखों से भूमि पर लिखना नहीं चाहिए और पृथ्वी पर शयन भी न करे। नदियों में नदी और पर्वत नहीं बोले ॥५८॥ उसके साथ आवास कभी नहीं करे तथा जो सहपायी हो उसका त्याग भी न करे। बिल्कुल नगा होकर अवगाहन नहीं करना चाहिये। अग्नि को भी पद में गमन न करे। मस्तक में किये हुए से जो शेष वच गया है उससे फिर अंग में लेपन न करे। सर्पों से और शस्त्रों से कभी क्रीड़ा न करे। अपनी खानियों का स्पर्श नहीं करे ॥५६-६०॥ ये रोम रहस्य हैं। अशिष्ट पुरुष के साथ कहीं पर भी गमन नहीं करे। हाथ पैरों में और अग्नि में चपलता के कर्म नहीं करे ॥६१॥ शिश्न और उदर में भी चापलका कर्म नित्य नहीं करना चाहिये और श्रवणों में नखांग और नखवाद न करे तथा अञ्जलि से कभी जल का पान नहीं करे ॥६२॥ पैरों से जल में हनन नहीं करे और हाथों से भी न करे। जो फल वाले वृक्ष हैं उन पर तथा फलों पर ईंटों के द्वारा शातन नहीं करना चाहिए ॥६३॥

न म्लेच्छभाषणं शिक्षेन्नाकर्षेच्चपदासनम्।
न भेदनमधिस्फोटं छेदनं वा विलेखनम् ॥६४
कुर्याद्विमर्दनं धीमान्नाकस्मादेव निष्फलम्।
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् वृथाचेष्टाञ्च नाऽऽचरेत् ॥६५
ननृत्येदथवागायेन्नवादित्राणिवादयेत्।
नसंहताभ्यांपाणिभ्यांकण्डूयेदात्मनःशिरः। ६६
न लौकिकैस्स्तवैर्देवांस्तोषयेद्भेषजैरपि।
नाक्षैःक्रीडेन्नधावेतनाप्सुविण्मूत्रमाचरेत् ॥६७
नोच्छिष्टः सम्विशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न गच्छन्नपठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत् ॥६८

न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत् ।
न वालातपमासेवेत् प्रेतधूमं त्रिवर्ज्जयेत् ॥६९
नैकः सुप्याच्छून्यगृहेस्वयंनोपानहौहरेत् ।
नाकारणाद्वानिष्ठीवेन्नबाहुभ्यांनदींतरेत् ॥७०

म्लेच्छों के भाषण को कभी नहीं सीखे और पदासन का आकर्षण न करे। अक्षिस्फोट का भेदन-छेदन अथवा विलेखन नहीं करना चाहिए ॥६४॥ धीमान् पुरुष को अचानक निष्फल विमर्दन नहीं करना चाहिए। अपनी गोद में रखकर भक्ष्य पदार्थों का भोजन नहीं करना चाहिए। कभी भी वृथा चेष्टाओं का समाचरण नहीं करना चाहिए अर्थात् ऐसी कोई भी चेष्टा न करे जिसका कोई भी प्रयोजन न हो ॥६५॥ नृत्य न करे—गायन न करे और वाद्यों का वादन नहीं करे। दोनों हाथों को संहत अर्थात् मिलाकर अपने शिर को न खुजावे ॥६६॥ लौकिक स्तवों से तथा भेषजों से देवों को सन्तोषण नहीं करना चाहिए। अक्षों के द्वारा कभी क्रीड़ा न करे अर्थात् द्यूत न खेले—कभी धावन न करे और जल में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए ॥६७॥ उच्छिष्ट होकर ही शयन नहीं करे तथा नित्य ही नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए। जाते हुए अर्थात् मार्ग में गमन करते हुए पठन न करे तथा अपने शिर का स्पर्श न करे ॥६८॥ अपने ही दाँतों से नखों को और रोमों को छिन्न नहीं करना चाहिए। जो कोई सो रहा हो उसको जगाना भी नहीं चाहिए। वालातप का सेवन न करे और प्रेत अर्थात् मुर्दे की धूँआ को वर्जित कर देना चाहिए ॥६९॥ किसी भी सूने घर में अकेला शयन न करे। स्वयं उपानहों (जूतों) का हरण (लेकर चलना) न करे। बिना ही कारण के कभी थूक न थूके और अपनी बाहुओं के सहारे अर्थात् तैर कर नदी को पार न करे ॥७०॥

न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन ।
नाग्नो प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद्बुधः ॥७१
नातिप्रसारयेद्देवं ब्राह्मणान् गामथापिवा ।
वाय्वग्निगुरुविप्रान्वासूर्यंवाशशिनम्प्रति ॥७२

अशुद्धःशयनं यानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम् ।
बहिर्निष्क्रमणञ्चैव न कुर्वीत कथञ्चन ॥७३
स्वप्नमध्ययनंयानमुच्चारंभोजनंगतिम् ।
उभयोःसन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्नेतुविवर्जयेत् ॥७४
न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणाऽनलान् ।
न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत् ॥७५
नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान्कीर्त्तयेदृषीन् ।
नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नाग्निमेकतः ॥७६
न वामहस्तेनोद्धृत्यपिबेद्वक्त्रेणवा जलम् ।
नोत्तरेदंनुपस्पृश्यनाप्सुरेतःसमुत्सृजेत् ॥७७

अपने पाद से ही पाद का क्षालन न करे और अपने पैरों को अग्नि की ज्वाला में कभी नहीं तपावे तथा बुध पुरुष को काँस्य पात्र में धावन नहीं करना चाहिए ॥७१॥ देव को—ब्राह्मणों को और गौ को—वायु—अग्नि—गुरु—विप्र—सूर्य और चन्द्र के प्रति अतिप्रसारण न करे अर्थात् पैरों को न फैलाए। अशुद्ध शयन—स्नान—यान—स्वाध्याय—भोजन और बाहिर निष्क्रमण किसी भी प्रकार से नहीं करना चाहिए ॥७२-७३॥ स्वप्न (शयन करना)—अध्ययन—यान—उच्चार—भोजन और गति अर्थात् गमन ये कर्म नित्य ही दोनों सन्धि कालों में और ठीक मध्याह्न के समय में नहीं करने चाहिए ॥७४॥ उच्छिष्ट होकर अपने ही हाथ से विप्र को गौ—ब्राह्मण और आति का स्पर्श नहीं करना चाहिए। पैर से कभी अन्न का तथा देव की प्रतिमा का स्पर्श नहीं करे ॥७५॥ जिस समय में स्वयं अशुद्धि की दशा में वर्त्तमान हो तो उस समय में अग्नि की परिचर्या तथा देवों और ऋषियों का कीर्त्तन नहीं करना चाहिए। जो जल कहीं भी जलाशय में अगाध हो वहाँ पर अवगाहन नहीं करना चाहिए। अकेला अग्नि को धारण कभी न करे ॥७६॥ कभी भी बाँये हाथ से उठाकर मुख से जल का मान नहीं करे। उपस्पर्शन किये बिना कभी भी जल में उत्तरण नहीं करना चाहिए। जल में रेत का समुत्सर्जन कभी नहीं करे ॥७७॥

अमेध्यलिप्तमन्यद्वालोहितं त्राविषाणि वा ।
व्यतिक्रमेन्नस्रवन्तींनाप्सुमैथुनमाचरेत् ॥७८
चैत्यं वृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्सृजेत् ।
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान् ।
ओषाङ्गारकरीषं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन ॥७९
न चाग्निलङ्घयेद्धीमान्नोपदध्यादधःक्वचित् ।
न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद्बुधः ॥८०
न कूपमवरोहेत नाऽवचक्षीताशुचिःक्वचित् ।
नग्नौ न प्रक्षिपेदग्निं नाद्भिःप्रशयेत्तथा ॥८१
सुहृन्मरणमार्त्तिं वा न स्वयंश्रावयेत्परान् ।
अपण्यमथपण्यम्वा विक्रयेनप्रयोजयेत् ॥८२
न वह्निं मुखनिश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः ।
पुण्यस्नानोदकस्नानेसीमान्तंवाकृषेन्नतु ॥८३
न भिन्द्यात्पूर्वंसमयंसत्योपेतंकदाचन ।
परस्परंपशून् व्यालान् पक्षिणोनावबोधयेत् ॥८४

अपवित्र पदार्थ से लिप्त अन्य को—लोहित अथवा विषों का कभी व्यतिक्रमण न करे । स्रवण करता हुई से जल में कभी मैथुन न करे । ॥७८॥ चैत्य वृक्ष का छेदन न करे और जल में स्ठीवन (थूकना) न करे । अस्थि—भस्म—कपाल केश—कंटक—ओषाङ्गार करीष इन पर कभी भी अधिष्ठित नहीं होना चाहिए ॥७९॥ जो बुद्धिमान है उसका कर्त्तव्य है कि अग्नि का समुल्लंघन नहीं करे और कहीं पर भी नीचे की ओर उपध्यान न करे । अग्नि को पैर से न छूए और बुध नर को अग्नि का धमन मुख से फूँक मारकर कभी भी नहीं करना चाहिए ॥८०॥ कूप में कभी भी अवतरण न करे और अशुचि होकर कहीं पर भी नहीं देखे । अग्नि में अग्नि का प्रक्षेप नहीं करना चाहिए तथा जल से प्रशमन भी नहीं करे । ।८१॥ अपने किसी मित्र की मृत्यु का समाचार तथा पीड़ा को दूसरों को स्वयं ही कभी श्रवण नहीं कराना चाहिए । अपण्य अथवा पण्य के विक्रय में प्रयुक्त न करे ॥८२॥ बुध पुरुष को अशुचि रहते हुए

अपने ही मुख के निश्वासों के द्वारा अग्नि का ज्वालन नहीं करना चाहिए। पुण्य स्नान और उदक स्नान अथवा सीमान्त न करे ॥८३॥ सत्य से उपेत पूर्व समय को कभी भी भेदन नहीं करना चाहिए। परस्पर में पशुओं—व्यालों और पक्षियों का कभी भी अववोधन नही कराना चाहिए ॥८४॥

परवाधां न कुर्वीतजलपानायनादिभिः ।
कारयित्वासुकर्माणिकारून्पश्चान्नवर्जयेत् ।
सायं प्रातगृ हद्वारान् भिक्षार्थं नाऽवघाटयेत् ॥८४
बहिर्माल्यं बहिर्गन्धं भार्य्यया सह भोजनम् ।
विगृह्य वादं कुद्वारप्रवेशञ्चविवर्जयेत् ॥८६
न खादन्ब्राह्मणस्तिष्ठेन्नजल्पन्नहसन् बुधः ।
स्वमग्निनैवहस्तेनस्पृशेन्नाप्सुचिरंवसेत् ॥८७
न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना ।
मुखेनैव धमेदग्नि मुखादग्निरजायत ॥८८
परस्त्रियं न भाषेतनायाज्यं याजयेद्द्विजः ।
नैकश्चरेत्सभांविप्र समवायञ्चवर्ज्जयेत् ।
देवतायतनं गच्छेत्कदाचिन्नाप्रदक्षिणम् ॥८९
न वीजयेद्वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत् ।
नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्म्मिकजनैःसह ॥९०
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैःपतितैर्न वा ।
नोपानद्वर्जितोऽध्वानंजलादिरहितस्तथा ९१

जलपान और अयन आदि के द्वारा दूसरों को बाधा कभी नहीं करनी चाहिए। अच्छे कर्मों को कराकर जो उन कर्मों के करने वाले कारु अर्थात् कारीगर हैं पीछे कभी वर्जित नहीं करना चाहिए। सायं काल में और प्रातःकाल में घर के द्वारों को भिक्षा के लिये कभी बन्द नहीं करना चाहिए ॥८५॥ वहिर्माल्य—वहिर्गन्ध—भार्या के साथ में एक साथ एक ही पात्र में भोजन करना—विग्रह करके वार और कुद्वार से प्रवेश करना—इन सब कर्मों को वर्जित कर देना चाहिए ॥८६॥ ब्राह्मण को कुछ भी

खड़े होकर नहीं खाना चाहिए। और बुध पुरुषों को बातचीत करते हुए तथा हास्य हंसते हुए भी कभी भोजन नहीं करना चाहिए। अपनी अग्नि को हाथ से स्पर्श नहीं करे और चिर काल पर्यन्त जल में भी वास नहीं करे ॥८७॥ किसी पक्षक (परेवा) के द्वारा—शूर्प से तथा हाथ से अग्नि का धमन नहीं करे। मुख से ही किसी साधन के द्वारा अग्नि का धमन करे क्योंकि यह अग्नि मुख से ही समुत्पन्न भी हुए हैं ॥८८॥ जा स्त्री किसी दूसरे पुरुष की है उससे कभी भी भाषण नहीं करना चाहिए। द्विज को जो कोई भी यजन करने की योग्यता से शून्य है उससे याजन नहीं कराना चाहिए। विप्र को एकाकी सभा में सञ्चरण नहीं करना चाहिए और अधिक समवाय को भी वर्जित कर देना चाहिए ॥८९॥ बिना प्रदक्षिणा के किसी भी देवता के आयतन में कभी भी नहीं जाना चाहिए। वस्त्र से वीजन न करे और देवायतन में कभी शयन भी नहीं करना चाहिए। मार्ग भी कभी अकेला नहीं गमन करे तथा जो जन अधार्मिक हों उनके साथ भी कभी मार्ग गमन नहीं करे। किसी भी व्याधि से दूषित हों—शूद्र अथवा पतित हों उनके साथ भी मार्ग में गमन नहीं करे। मार्ग गमन कभी जूतों से रहित अर्थात् नंगे पैरों से नहीं करे और जलपात्र आदि से रहित होकर भी मार्ग गमन नहीं करना चाहिए ॥९०-९१॥

न रात्रावरिणासार्द्धंनविनाकमण्डलुम् ।
नाग्निगोब्राह्मणादानामन्तरेणव्रजेत्क्वचित् ॥९२

निवत्स्यन्तीं न वनितामतिक्रामेद् द्विजोत्तमाः ।
न निन्देद्योगिनः सिद्धान् गुणिनो वा यतींस्तथा ॥९३

देवतायतने प्राज्ञो न देवानाञ्च सन्निधौ ।
नाक्रामेत्कामतश्छायांब्राह्मणानांगवामपि ॥९४

स्वां तु नाऽऽक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः ।
नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत्कदाचन ॥९५

वर्जयेन्मार्जनीरेणुं स्नानवस्त्रघटोदकम् ।
न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयञ्चपिबेद्द्विजाः ॥९६

रात्रि के समय में और किसी शत्रु के साथ में तथा बिना कमण्डलु आदि जल पात्र के भी यात्रा अर्थात् मार्ग में गमन नहीं करना चाहिए। अग्नि—गौ—ब्राह्मण आदि के अन्तर से कहीं भी गमन न करे ॥६२॥ हे द्विजोत्तमो ! निवास करती हुई वनिता का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। जो योगी पुरुष हों—सिद्ध हों—गुणवान् हों अथवा यति हों उनकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए ॥६३॥ प्राज्ञ पुरुष को किसी भी देवता के आयतन में तथा देवताओं की सन्निधि में स्वेच्छा से ब्राह्मणों की और गौओं की भी छाया का आक्रमण नहीं करना चाहिए ॥६४॥ अपनी छाया को भी पतित आदि पुरुषों के तथा रोग युक्तों के द्वारा आक्रान्त न होने देना चाहिए। अङ्गार—भस्म और केश आदि पर कभी भी अधिष्ठित नहीं होना चाहिए ॥६५॥ मार्जनी (बुहारी) की धूलि है उसको और स्नान वस्त्र के घटोदक को भी वर्जित कर देवे। हे द्विजगण ! जो पदार्थ शास्त्र में अभक्ष्य बताये गये हैं उनको कभी नहीं खाना चाहिए। जो अपेय हो उसका पान भी कभी न करे ॥६६॥

१७—भक्ष्याभक्ष्यनिर्णयवर्णन

नाऽद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि वाऽन्यतः।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि ॥१

षण्मासान्यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
जीवन्नेवभवेच्छूद्रो मृत (मृतःश्वा) एवाभिजायते ॥२

ब्राह्मणक्षत्रियाविशांशूद्रस्यचमुनीश्वराः।
यस्यान्नेनोदरस्थेनमृतस्तद्योनिमाप्नुयात् ॥३

नटान्नं तर्तकानञ्च तक्षणोऽन्नं कर्मकारिणः।
गण.न्नंग।.कान्नञ्चषडन्नानिच वर्जयेत् ॥४

चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा।
गन्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नञ्च वर्जयेत् ॥५

कुलालचित्रकर्म्मान्नं वार्द्धुषेः पतितस्यच ।
सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च ॥६
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च ।
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च ॥७

महर्षि प्रवर श्रीव्यास देव ने कहा—विप्र को शूद्र का अन्न मोह के वश में आकर अन्य लोभादि के कारण कभी भी नहीं खाना चाहिए । जो बिना ही किसी आपत्ति के समय के शूद्र का अन्न खाता है वह शूद्र की ही योनि को प्राप्त किया करता है ॥१॥ कोई विशेष आपत्ति का समय ही उपस्थित हो तो भले ही विप्र शूद्रान्न का सेवन कर लेवे अन्यथा जो द्विज छै मास पर्यन्त विगर्हित शूद्र के अन्न का सेवन करता है अर्थात् खाता है वह जीवित रहते हुए ही शूद्र हो जाता है और मरकर तो कुत्ता हुआ करता है ॥२॥ हे मुनीश्वरो ! ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य के तथा शूद्र के अन्दर जिस किसी का भी अन्न उदर में रखते हुए मनुष्य मृत होता है वह उसी की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है–यह अन्न का महान् प्रभाव होता है ॥३॥ नट का अन्न—नृत्य करने वाले का अन्न—तक्षा (बढ़ई) का अन्न—कर्मकारी का अन्न—गण का अन्न और वेश्या का अन्न ये छै लोगों के अन्नों को वर्जित कर देना चाहिए अर्थात् इन छै का अन्न अत्यन्त निषिद्ध अन्न होता है ॥४॥ चक्र (चाक) के द्वारा उपजीविका करने वाला (कुम्हार)—रजक—तस्कर—ध्वजी—गन्धर्व—लोह कार (लुहार) का अन्न तथा सूतक जिसको भी हो चाहे जातक या मृतक कैसा ही हो उसका अन्न—इन समस्त अन्नों को वर्जित कर देना चाहिए ॥५॥ कुलाल—चित्र कर्मों के करने वाला—वार्द्धुषि—पतित—सुवर्णकार—शैलूष–व्याध–वद्ध–आतुर—चिकित्सा करने वाला–पुंश्चली स्त्री—दण्डक—स्तेन—नास्तिक और देवों की निन्दा करने वाला–इन सबके अन्न का विप्र को वर्जित कर देना चाहिए ॥६-७॥

सोमविक्रयिणश्चान्नंश्वपाकस्यविशेषतः ।
भार्याजितस्यचैवान्नं यस्यचोपपतिर्गृहे ॥८

उच्छिष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिनः ।
अपङ्क्त्यन्नञ्च संघान्नं शस्त्रजीवस्य चैव हि ।।९
क्लीवसन्न्यासिनश्चान्नंमत्तोन्मत्तस्य चैव हि ।
भीतस्यरुदितस्यान्नमवक्रुष्टपरिग्रहम् १०
ब्रह्मद्विषः पापरुचेः श्राद्धान्नं सूतकस्य च ।
वृथापाकस्य चैवान्नं शठान्नं चतुरस्यच ।।११
अप्रजानान्तुनारीणांभृतकस्यतथैव च ।
कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा ।।१२
शौण्डान्न धातिकान्नञ्च भिषजामन्नमेव च ।
विद्धप्रजननस्यान्नं परिवेत्रन्नमेव च ।।१३
पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपतेः ।
अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम् ।।१४
गुरोरपिनभोक्तव्यमन्नंसंस्कारवर्जितम् ।
दुष्कृतं हिमनुष्यस्यसर्वमन्नेव्यवस्थितम् ।।१५

जो सोम का विक्रय किया करता है उसका अन्न और विशेष रूप से श्वपाक का अन्न—जो अपनी भार्या से जीत लिया गया हो उसका अन्न जिसके घर में ही कोई भार्या का उपपति रहता हो वर्जित करे। ।।८।। उच्छिष्ट—कदर्य—उच्छिष्ट भोगी का अन्न तथा पंक्ति से हीन अन्न—संघ का अन्न और जो शस्त्रों के द्वारा ही जीविका चलाता हो उसका अन्न भी विप्र को वर्जित कर देना चाहिए ।।९।। क्लीव—संन्यासी—मत्त—उन्मत्त—भीत—रुदित का अन्न अवक्रुष्ट परिग्रह अन्न को वर्जित करे ।।१०।। ब्राह्मण से द्वेष करने वाले—पाप कर्म में रुचि रखने वाले का अन्न—श्राद्ध का अन्न—सूतक से संयुत का अन्न—वृथापाक का अन्न—शठ और चतुर का अन्न भी वर्जित अन्न कहा गया है ।।११।। जिन स्त्रियों के कोई भी सन्तान न हो उन नारियों का अन्न—मृतकों का अन्न—कारुओं का अन्न और विशेष करके शास्त्रों के विक्रय करने वाले का अन्न भी वर्जित अन्न होता है ।।१२।। शौण्डान्न—घातिक का अन्न—भिषजों का अन्न—विद्ध प्रजनन का अन्न—परिवेष्ट का अन्न—विशेष करके पुनर्भू

का अन्न—दिधिषूपत्व का अन्न—अवज्ञात—अवधूत—रोषसहित विस्मय से अन्वित—गुरु का अन्न और संस्कार से वर्जित अन्न कभी नहीं खाना चाहिए। मनुष्य का सारा दुष्कृत अन्न में ही व्यवस्थित होता है ॥१३-१५॥

योयस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ।
आर्द्धिकः कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापितः ॥१६
कुशीलवः कुम्भकारः क्षेत्रकर्मक एवच ।
एते शूद्रेषुभोज्यान्नं दत्वा स्वल्पंपणंबुधैः ।
पायसं स्नेहपक्वं यत् गोरसञ्चैव सक्तवः ॥१७
पिण्याकञ्चैवतैलञ्चशूद्राद्ग्राह्यं तथैवच ।
वृन्ताकञ्जालिकाशाकंकुसुम्भाश्मन्तकं तथा ॥१८
पलाण्डुं लशुनं निर्यासञ्चैव वर्जयेत् ।
छत्राकं विड्वराहञ्च शेलं पीयूषमेवच ॥
विलयं सुमुखञ्चैव कवकानिच वर्जयेत् ।
गृञ्जनं निशुकञ्चैव कुक्कुटं च तथैव च ॥१९
उदुम्बरमलाबुं चजग्धवा पतति वै द्विजः ।
वृथाकृशरसंयावं पायसापूपमेव च ॥२०

जो जिसका अन्न खाता है वह उसके किल्विष को खा लेता है। आर्द्धिक—कुलमित्र—अपना गोपाल—नापित—कुशीलव—कुम्भकार—क्षेत्र पर कर्म करने वाला—इन शूद्रों को भोज्यान्न देकर बुधों के द्वारा स्वल्प पण देकर पायस—स्नेह (घृतादि) से पक्व—गोरस—सतुआ—पिण्याक और तैल शूद्र से भी ग्रहण कर लेना चाहिए। वृन्ताक—जालिका शाक—कुसुम्भाश्मन्तक—पलाण्डु (प्याज)—लशुन—सूक्त और निर्यास (गोंद) इन सबको वर्जित कर देना चाहिए। गाजर—किंशुक—उदुम्बर—अलाबु को खाकर द्विज पतित हो जाया करता हैं। वृथा कृशरसंयाव—पायसा पूप को भी वर्जित कर देवे ॥१६-२०॥

नीपंकपित्थंप्लक्षं च प्रयत्नेनविवर्जयेत् ॥२१

पिण्याकं चोद्धृतस्नेहंदिवाधानास्तथैवच ॥२२
रात्रौचतिलसम्बद्धंप्रयत्नेनदधित्यजेत् ।
नाश्नीयापयसातक्रं न बीजान्युपजीवयेत् ॥२३
क्रियादुष्टं भवादुष्ठमसत्सङ्गं विवर्जयेत ।
केशकीटावपन्नं च स्वभूर्लेखंच नित्यश: ॥२४
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा ।
उदक्यया च पतितैर्गवा चाऽऽघ्रातमेव च ॥२५
अनर्च्चितं पर्य्युंषितं पर्य्याभ्रान्तं चनित्यशः ।
काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैवसंयुतम् ॥२६
मनुष्यैरथवा घ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च ।
न रजस्वलयादत्तं न पुंश्चल्या सरोषकम् ॥२७

नीप—कपित्थ—प्लक्ष को प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए । पिण्याक—उद्धृत स्नेह—दिवाधान—रात्रि में तिलों से सम्बन्ध पदार्थ का भी परिवर्जन कर देना चाहिए । तथा दधि का भी रात्रि में त्याग कर देवे । पायस और तक्र एक ही बार में कभी नहीं खाने चाहिए और बीजों को कभी उपजीवित नहीं करे ॥२१-२३॥ जो भोज्य पदार्थ क्रिया से दुष्ट हो—भाव से दूषित हो और असत्सङ्ग वाला हो उसको विवर्जित कर देना चाहिए । केश और कीटों से अवपन्न–नित्य स्वभूर्लेख–कुत्ते के द्वारा आघ्रात–पुनः सिद्ध–चण्डाल के द्वारा अवेक्षित–उदकी (रजस्वला स्त्री) के द्वारा—पतितों से और गौ के द्वारा आघ्रात—अनर्चित—पर्य्युंषित—नित्य ही पर्याभ्रान्त–काक तथा कुक्कुट के द्वारा संस्पर्श किया हुआ तथा कृमियों से समन्वित—मनुष्य अथवा कुष्ठी के द्वारा स्पर्श किया हुआ–रजस्वला के द्वारा दिया हुआ–पुंश्चली स्त्री के द्वारा दिया हुआ और रोष पूर्वक दिया हुआ भी भोज्य पदार्थ अभक्ष्य हो जाता है और उसे वर्जित कर देना चाहिए ॥२४-२८॥

———

१८—आदित्यहृदय,सन्ध्योपासनवर्णन

अहन्यहनिकर्त्तव्यं ब्राह्मणानां महामुने !।
तदाचक्ष्वाखिलंकर्म येन मुच्येत् बन्धनात् ।।१
वक्ष्येसमाहिता यूयं शृणुध्वंगदतो मम ।
अहन्यहनि कर्त्तव्यंब्राह्मणानांक्रमांद्विधिम् ।।२
ब्राह्मे मुहूर्त्ते तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ।
कायक्लेशञ्च यन्मूलं ध्यायेयमनसेश्वरम् ।।३
उष.काले चसम्प्राप्तेकृत्वाचावश्यकं बुधः।
स्नायान्नदीषुशुद्धासुशौचंकृत्वायथाविधि ।।४
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपिपाकृतोजनाः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनप्रातःस्नानंसमाचरेत् ।।५
प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरंहि तत् ।
ऋषीणामृषितानित्यंप्रातःस्नानान्नसंशयः ।।६
मुखे सुप्तस्य सततं लाला याः संस्रवन्ति हि ।
ततो नैवाचरेत्कर्म अकृत्वा स्नानमादितः ।।७

ऋषिगण ने कहा—हे महामुने ! दिन प्रतिदिन ब्राह्मणों का जो भी कर्त्तव्य कर्म हो उसे सम्पूर्ण को आप हमको बतलाइये जिसके द्वारा विप्र सांसारिक बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है। महर्षि श्रीव्यास देव ने कहा—आप लोग पूर्णतया समाहित हो जाइये मैं सब बतलाऊँगा आप लोग कहते हुए मुझसे श्रवण कीजिए कि नित्य प्रति ब्राह्मणों का क्या कर्त्तव्य होता है और क्रम से उसकी क्या विधि है ।।१-२।। ब्राह्मण को ब्रह्ममुहूर्त्त में ही शय्या का त्याग कर उठ जाना चाहिए और उठकर उसे सर्वप्रथम धर्म्म तथा अर्थ का चिन्तन करना चाहिए। काया के क्लेश का जो मूल कारण है उस मन से ईश्वर का ध्यान करना चाहिए ।।३।। जब उषा काल सम्प्राप्त हो जावे तो बुध पुरुष को शौचादि शरीर के अत्यावश्यक कर्म करने चाहिए। फिर शुद्ध नदी में यथाविधि शौच का सम्पादन करके स्नान करना चाहिए ।।४।। प्रातःकाल के समय में स्नान करने

पाप कर्म करने वाले भी मनुष्य पवित्र हो जाया करते हैं। इसलिये सब प्रकार के प्रयत्न से प्रातः काल में ही स्नान करना चाहिए ॥५॥ प्रातः काल के स्नान की बहुत अधिक महिमा है। प्रातः काल में किये गये स्नान की सब अत्यधिक प्रशंसा किया करते हैं क्योंकि यह दृष्ट और अदृष्ट का सम्पादन करने वाला होता है। अर्थात् इससे ही अदृष्ट का निर्माण होता है। ऋषिगणों की जो ऋषित्व है वह भी प्रातः स्नान के कारण से ही है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६॥ सोये हुए मनुष्य के मुख में जो लाला (लार) स्रवण किया करती है। आदि में स्नान न करके फिर कोई भी कर्म नहीं करना चाहिए ॥७॥

अलक्ष्मको जलं किञ्चित् दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् ।
प्रातःस्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः ॥८
अतः स्नानं विनापुंसां पावनं (पापित्वं) कर्म सुस्मृतम् ।
होम जप्ये विशेषेण तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥९
अशक्तावशिरस्कंवास्नानमस्यविधीयते ।
आर्द्रेणवाससावाथमार्ज्जनं पावनंस्मृतम् ॥१०
आयत्ये वैंसमुत्पन्नेस्नानमेवसमाचरेत् ।
ब्राह्मादी नामथाशक्तौस्नानान्याहुर्मनीषिणः ॥११
ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणंयौगिकंयच्चषाढास्नानं समासतः ॥१२
ब्राह्मं तुमार्ज्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आग्नेयंभस्मनापादमस्तकाद्देहधूलनम् ॥१३
गवां हि रजसाप्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् ।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ॥१४

अलक्ष्मक जल—कोई भी दुःस्वप्न और दुर्विचिन्तित ये सब प्रातः स्नान करने से पाप पवित्र हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८॥ इसीलिये स्नान के बिना मनुष्यों का पावन (पापित्व) कर्म सुस्मृत किया गया है। विशेष रूप से होम में—जाप में इसीलिये स्नान अवश्य ही करना चाहिए ॥९॥ यदि सर्वाङ्ग स्नान करने में असमर्थता हो तो

शिर के ऊपर जल न देकर ही इसके स्नान का विधान किया जाता है। और इसके भी करने की शक्ति न हो तो गीले वस्त्र से सर्वांग का मार्जन करना ही पावन बताया गया है ॥१०॥ आगत्य के समुत्पन्न होने पर तो स्नान ही करना चाहिए। ब्राह्मण आदि वर्णों की अशक्ति होने पर मनीषियों ने अन्य स्नान भी बतलाये हैं ॥११॥ संक्षेप से छै प्रकार के स्नान बताये गये हैं। उनके नाम—ब्राह्म—आग्नेय—वायव्य—दिव्य—वारुण और यौगिक ये छै उन स्नानों के नाम हैं ॥१२॥ ब्राह्म स्नान वह होता है जिसमें मन्त्रों से उदक की विन्दुओं के सहित कुशाओं से मार्जन किया जाता है। आग्नेय वह स्नान कहा जाता है जिसमें भस्म से मस्तक से लेकर पाद पर्यन्त सम्पूर्ण देह को धूलित कर लिया जाता है ॥१३॥ वायव्य स्नान वह होता है जिसमें गौओं के खुरों से समुत्थित धूलि से उत्तम स्नान किया जाता है। जो सूर्यातप के होते हुए वर्षा की बूँदें पड़ा करती हैं उनसे ही स्नान किया जाता है वही दिव्य स्नान कहा जाया करता है ॥१४॥

वारुणञ्चावगाहस्तु मानसं स्वात्मवेदनम् ।
योगिनां स्नानमाख्यातं योगे विश्वादिचिन्तनम् ॥१५

आत्मतीर्थमितिख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।
मनःशुद्धिकरंपुंसांनित्यंतत्स्नानमाचरेत् ॥१६

शक्तश्चेद्वारुणं विद्वान प्रायश्चित्तेतथैव च ।
प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वाविधानतः ॥१७

आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत् ।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशाङ्गुलसम्मितम् ॥१८

सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण तु धावयेत् ।
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम् ।
अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरं विशेषतः ॥१९
वर्ज्जयित्वा निन्दितानिगृहीत्वैकंयथोदितम् ।
परिहृत्यदिनं पापंभक्षयेद्वैविधानवित् ॥२०

नोत्पादयेद्दन्तकाष्ठं नांगुल्यग्रेणधारयेत् ।
प्रक्षाल्य भंक्त्वातज्जह्याच्छुचौ देशेसमाहितः ॥२१
स्नात्वा सन्तर्प्ययेद्देवान् षीन् पितृगणांस्तथा ।
आचम्य मन्त्रविन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ॥२२

वारुण स्नान वह होता है जिसमें अपनी आत्मा का ज्ञान स्वरूप अवगाहन किया जाता है। योगियों का यौगिक स्नान हुआ करता है और यह स्नान उन्हीं का बतलाया गया है जो योगाभ्यास में विश्व आदि का चिन्तन किया जाता है ॥१५॥ आत्मा को तीर्थ कहा गया है जो आत्मतीर्थ नाम से विश्रुत है और ब्रह्मवादियों के द्वारा सेवित होता है। यह पुरुषों के मन की शुद्धि करने वाला स्नान है अतएव नित्य ही इस स्नान को करना चाहिए ॥१६॥ यदि शक्ति सम्पन्न हो तो वारुण स्नान करे तथा प्रायश्चित्त में भी करे। दन्तकाष्ठ (दाँतुन) को प्रक्षालित करके विधान से उसका भक्षण करे ॥१७॥ फिर प्रयत होकर नित्य ही आचमन करे और फिर प्रातः स्नान करना चाहिए। दाँतुन मध्यमा अंगुलि के समान स्थूल होनी चाहिए और बारह अंगुल बड़ी होनी चाहिए ॥१८॥ त्वचा के सहित ही दन्त काष्ठ होना चाहिए। उसके अग्र भाग से उसके द्वारा धावन करे। जो वृक्ष ऐसे हैं कि जिनमें दूध निकलता है उन वृक्षों से समुत्पन्न—मालती लता की शुभ—अपामार्ग—विल्व—विशेष रूप से करवीर को ॥१९॥ निन्दितों का वर्णन करके जैसा भी बताया गया है एक का ग्रहण करे। दिन के पाप का परिहार करके विधान के वेत्ता को भक्षण करना चाहिए ॥२०॥ दन्त काष्ठ का उत्पादन नहीं करे और अंगुली के अग्र भाग से धारण नहीं करना चाहिए। भक्षण करके प्रक्षालन करे और समाहित होते हुए किसी शुचि देश में उसका त्याग करे ॥२१॥ स्नान करके देवों को—ऋषियों को—पितृगणों को तर्पण करे। मन्त्रवेत्ता को आचमन करके नित्य ही मौन व्रत में स्थित रह कर पुनः आचमन करना चाहिए ॥२२॥

सम्मार्ज्जयं मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः ।
आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ॥२३

ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रींदेवमातरम् ।
जप्त्वा जलाञ्जलिदद्याद्भास्करंप्रतितन्मनाः ॥२४
प्राक्कल्पेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति स्मृतिः ॥२५
या च सन्ध्या जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला ।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥२६
ध्यात्वार्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपेद् बुधः ।
प्राङ् मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥२७
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुतेकिञ्चिन्नतस्यफलमाप्नुयात् ॥२८

उदक की विन्दुओं के सहित कुशाग्रों से मन्त्रों के द्वारा अपने आपका मार्जन करके जोकि "आपोहिष्ठा भयो भुवः" इत्यादि व्याहृतियों से हो— सावित्री मन्त्र से या शुभ वारुण मन्त्रों से मार्जन करना चाहिए ॥२३॥ ओङ्कार और व्याहृतियों से युक्त देव माता गायत्री का जाप करके तन्मना होकर भास्कर देव के प्रति जलाञ्जलि देनी चाहिए ॥२४॥ प्राक्कल्पों में तथा दर्भों में सुसंमाहित होकर स्थित होवे और तीन प्राणायाम करके सन्ध्या का ध्यान करना चाहिए—ऐसा स्मृति का आदेश या वचन है ॥२५॥ जो सन्ध्या इस जगत् की प्रसूति है माया से अतीत और निष्कला है। वह केवल ईश्वरीय शक्ति ही है जिसका समुद्भव तीन तत्त्वों से ही होता है ॥२६॥ बुध पुरुष उस सावित्री देवी को सूर्य मण्डल में संस्थित हुई का ध्यान करना चाहिए और फिर उसका जाप करे। विप्र को सर्वदा पूर्व दिशा की ओर मुख करके सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए ॥२७॥ जो पुरुष सन्ध्या वन्दन से हीन होता है वह नित्य ही अशुचि और समस्त कर्मों में अनर्ह होता है। इसके अतिरिक्त अन्य जो भी वह कर्म करता है उसका फल उसको नहीं मिला करता है ॥२८॥

अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।

उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वऽपरां गतिम् ॥२९

योऽन्यत्र कुरुतेयत्नंधर्मकार्यें द्विजोत्तमः ।
विहाय सन्ध्याप्रणतिंसयातिनरकायुतम् ॥३०
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः ॥३१
सहस्रपरमांनित्यंगतमध्यांदशावराम् ।
सावित्रींवैजपेद्विद्वान्प्रांगमुखःप्रयतःस्थितः ॥३२
अथोपतिष्ठेदादित्यमुद्यन्तंवैसमाहितः ।
मन्त्रैस्तुविविधैःसौरैःऋग्यजुः सामसम्भवैः ॥३३
उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम् ।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रतः ॥३४
ओंखखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे ।
निवेदयामिचात्मानं नमस्ते विश्वरूपिणे ॥३५

अनन्यचित्त वाले, परम शान्त—वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण विधि पूर्वक सन्ध्या की उपासना करके पहिले परागति को प्राप्त हुए हैं ॥२॥ जो द्विजोत्तम अन्यत्र धर्म कार्य में यत्न किया करता है और सन्ध्या की प्रणति का त्याग कर दिया करता है वह दश हजार वर्ष पर्यन्त नरकों की यातनायें सहन किया करता है ॥३०॥ इसलिये सभी प्रयत्नों के द्वारा सन्ध्या की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए। उसकी उपासना से युक्त उसके कारण ही योग के शरीर वाल पर देव हो जाता है ॥३१॥ एक सहस्र सावित्री का जाप सर्वश्रेष्ठ नैत्यिक जाप है—एक सौ मध्यम श्रणी का है और कम से कम दश वार ही जाप करना अधम कोटि में आता है। विद्वान् पुरुष को इस सावित्री का जाप पूर्वाभिमुख होकर प्रयत समवस्थित रह कर ही करना चाहिए ॥३२॥ समाहित होकर आदित्य देव का जबकि वह उदय हो रहे हों उपस्थान करना चाहिए। इस उपस्थान के अनेक मन्त्र हैं जो सौर है तथा ऋग्—यजु और सामवेद के हैं ॥३३॥ महान् योग वाले देवों के देव भगवान् भुवन भास्कर देव का उपस्थान करके उसी मन्त्र के द्वारा मस्तक से भूमि में प्रणाम करना चाहिए ॥३४॥ उसका प्रणति करने का यह मन्त्र है जिसका अर्थ है

ओम ख के उल्का—परम शान्त स्वरूप तीनों कारणों के हेतु विश्व रूपी आपकी सेवा में मैं अपने आपको समर्पित करता हूँ और आपके लिये मेरा प्रणाम अर्पित है ॥३५॥

नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे ।
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम् ॥
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः शर्वो रुद्रः सनातनः ॥३६
पुरुषःसन्महोऽन्तस्थंप्रणमामि कपर्द्दिनम् ।
त्वमेव विश्वम्बहुधाजातंयज्जायतेच यत् ॥
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः ॥३७
प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय च ।
नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शरणंगतः ।
हिरण्यवाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः ॥३८
अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाःपतये नमः ।
नमोऽस्तुनीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने ॥३९
विलोहिताय भर्गायसहस्राक्षायते नमः ।
तमोपहाय ते नित्यमादित्यायनमोऽस्तुते ॥४०
नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः ।
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम् ॥-१
हिरण्मयेगृहेगुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम् ।
नमस्यामिपरं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परामृतम् ॥४२

घृणी ब्रह्म रूपी सूर्य आपके लिये मेरा प्रणाम है। आप ही परम ब्रह्म हैं और आप ही आप-ज्योति रस और अमृत हैं। भू भुंवः स्वः आप ओङ्कार हैं तथा शर्व रुद्र ओर सनातन है ॥३६॥ पुरुष होते हुए मद के अन्दर स्थित कपर्द्दी आपको मैं प्रणाम करता हूँ आप ही बहुधा विश्व समुत्पन्न हुए हैं और उत्पन्न होते भी हैं। अथवा जो कुछ भी होता है वह आप ही हैं। रुद्र देव सूर्य के लिये नमस्कार है। मैं आपकी शरणागति में प्रपन्न हो गया हूँ ॥३७॥ प्रचेता आपके लिये नमस्कार है—मीढुष्टम के लिये अभिवादन है। रुद्र आपको बारम्बार नमस्कार समर्पित है। मैं

आपकी शरण में आ गया हूँ। हिरण्य बाहु और हिरण्यपति आपके लिये नमस्कार है ॥३८॥ अम्बिका के पति और उमा के पति आपको प्रणाम है। नील ग्रीवा वाले को नमस्कार है। पिनाकधारी आपके लिये नमस्कार अर्पित है ॥३९॥ विलोहित-भर्ग—सहस्राक्ष आपको नमस्कार है। तम के अपहरण करने वाले आपको नित्य ही नमन करता हूँ तथा आदित्य आपकी सेवा में प्रणाम है ॥४०॥ हाथ में वज्र रखने वाले–त्र्यम्बक आपको वारम्बार नमस्कार है। विरुपाक्ष आपकी शरण में प्रपन्न होता हूँ। आप परम महान् और परमेश्वर हैं। समस्त देहधारियों के हिरण्मय गृह में गुप्त आत्मा—परं ज्योति-—परामृत ब्रह्मा आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४१-४२॥

विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम् ।
नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने ॥४३
उग्राय सर्वतक्षाय त्वां प्रपद्ये सदैव हि
एतद्वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम् ॥४४
प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ।
इदं पुत्राय शिष्याय धार्म्मिकाय द्विजातये ॥४५
प्रदेयं सूर्य्यहृदयंब्राह्मणा तु प्रदर्शितम् ।
सर्व्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम् ॥
ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥४६
अथागम्यगृहंविप्रःसमाचम्य यथाविधि ।
प्रज्ज्वाल्यवह्निंविधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥४७
ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः ।
प्राप्याऽनुज्ञां विशेषेण ह्यध्वर्युर्वा यथाविधि ॥४८
पवित्रपाणिःपूतात्माशुक्लाम्बरधरःशुचिः ।
अनन्यमनसा नित्यंजुहुयात्संयतेन्द्रियः ॥४९

विश्व—पशुपति—भीम—नर और नारी के शरीर वाले—को प्रणाम है। सूर्य—रुद्र—भास्वान् और परमेष्ठी की सेवा में नमस्कार है ॥४३॥ उग्र—सर्व तक्ष आपको सदा ही प्रपन्न होकर नमन करता हूँ। इस सूर्य

हृदय का जाप करके जो परम उत्तम सूर्य का स्तव है प्रातःकाल में—मध्याह्न में दिवाकर भगवान् को नमस्कार करना चाहिए ।।४४।। इस परमोत्तम स्तव सूर्य हृदय की दीक्षा या तो अपने पुत्र को देवे या शिष्य को और किसी परम धार्मिक को ही द्विजगत को देनी चाहिए ।।४५।। यह सूर्य हृदय किसी परम योग्य को ही देना चाहिए यह ब्रह्मा के द्वारा प्रदर्शित किया गया है । यह स्तव समस्त पापों के प्रशमन करने वाला तथा वेदों के सार से समुत्पन्न हुआ है । यह ब्राह्मणों का बहुत हितकर है और परम पुण्यमय है इसको ऋषियों के संघों ने सेवित किया है ।।४६।। इसके उपरान्त विप्र को अपने घर में आकर यथाविधि भली-भाँति आचमन करके वह्निका ज्वालन करना चाहिए और जात वेदा का विधि के साथ हवन करना चाहिए ।।४७।। ऋत्विक का पुत्र—पत्नी—शिष्य अथवा सहोदर अथवा अध्वर्यु अनुज्ञा यथाविधि प्राप्त करके विशेष रूप से हवन करे ।।४८।। हाथों को पवित्र करने वाला तथा पवित्री हाथों में धारण करने वाला—पूत आत्मा से युक्त शुक्ल वस्त्र धारी—शुचि और संयत इन्द्रियों वाला होकर ही अनन्य मन के द्वारा नित्य ही हवन करना चाहिए ।।४९।।

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः ।
राक्षसं तद्भवेत्सर्वन्नामुत्रेह फलप्रदम् ।।५०
दैवतानि नमस्कुर्यादुपहारान्निवेदयेत् ।
दद्यात्पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत् ।।५१
गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत् ।
वेदाभ्यासं ततः कुर्य्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजाः ।।५२
जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत् ।
अवेक्ष्यतच्चशास्त्राणि(अवेक्ष्येताथशास्त्रेण)धर्म्मादीनिद्विजोत्तमाः ।।
वैदिकांश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः ।
उपेयादीश्वरं वाथ योगक्षेमप्रसिद्धये ।।५४
साधयेद्विविधानर्थान् कुटुम्बार्थेततोद्विजः ।
ततो मध्याह्नसमयेस्नानार्थं मृदमाहरेत् ।।५५

पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोशकृच्छुद्धमेव वा ।
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसुच ।।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्त्तप्रस्रवणेषु च ।।५६

विना धर्म के तथा विना सूत्र के जो भी कुछ कर्म किया जाता है वह सब किया कराया कर्म के फल को राक्षस ग्रहण कर लिया करते हैं अतएव राक्षस कर्म हो हो जाता है और इस लोक परलोक में कहीं भी कुछ फल प्रद नहीं होता है ।।५०।। फिर देवताओं को नमस्कार करे तथा कुछ उपहार भी उनको समर्पित करना चाहिए। उन देवों को गन्धाक्षत पुष्प आदि देवे तथा फिर जो भी अपने वृद्ध हों उनका अभिवादन करना चाहिए ।।५१।। फिर अपने गुरुदेव की भी उपासना करे और उनका जो भी कुछ हित हो उसका समाचरण करे। हे द्विजगण ! इसके अनन्तर प्रयत्न पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार वेदों का अभ्यास करना चाहिए ।।५२।। स्वयं जप करे—शिष्यों को अध्याय न करे–धारण करे और विचार करना चाहिए। हे द्विजोतमो ! फिर धर्मादि के शास्त्रों का अवेक्षण करना चाहिए। अर्थात् धर्मशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए ।।५३।। जो निगम वैदिक हैं उनको और वेदों के अंग शास्त्रों को पढ़े और योग क्षेम की सिद्धि के लिये ईश्वर की शरण में प्राप्त होवे ।।५४।। इसके उपरान्त द्विज को कुटुम्ब के लिये विविध अर्थों का साधन करना चाहिए और मध्याह्न के समय में स्नान के लिये मृत्तिका आहरण करे ।।५५।। पुष्प—अक्षत—कुश—तिल—गोमय शुद्ध—आदि समस्त उपचारों का संग्रह करे और मध्याह्न समय में नदी—देवखात—तड़ाग और सरोवर तथा गर्त्त पुस्रवण में नित्य स्नान करना चाहिए ।।५६।।

परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन ।
पञ्चपिण्डान्समुद्धृत्य स्नायाद्वासम्भवे पुनः ।।५७
मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि ।
अधस्तु तिसृभिः कायः पादौ षड्भिस्तथैव च ।।५८

मृत्तिका च समुद्दिष्टासार्द्रामलकमात्रिका ।
गोमयस्य प्रमाणन्तुतेनांगंलेपयेत्पुनः ।।५९

लेपयित्वा तीरसंस्थं तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः ।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः ।।६०

अभिमन्त्र्य जलंमन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणैः शुभैः ।
भावपूतस्तदव्यक्तंधारयेद्विष्णुमव्ययम् ।।६१

आपो नारायणोद्भूतास्ता एवाऽस्याऽयनं पुनः ।
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद् बुधः ।।६२

प्रेक्ष्य सोङ्कारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाश्रये ।।६३

जो परकीय निपान हों उनमें कभी भी स्नान नहीं करे। यदि ऐसा सम्भव ही न हो तो पाँच पिण्डों को समुद्धृत कर के ही वहाँ पर स्नान करना चाहिए ।।५७।। एक बार मिट्टी से शिर का क्षालन करे—नाभि के ऊपरी भाग में दो वार मिट्टी लगाकर क्षालन करे—नाभि के नीचे तीन बार और पादों को छै वार मिट्टी लगाकर धोना चाहिए ।।५८।। मिट्टी जो आर्द्र होती है वही अमल करने वाली कही गयी है। गोमय का उतना प्रमाण ग्रहण करे जिससे सम्पूर्ण अङ्ग का लेपन हो जावें। लेपन करके तीर पर संस्थित हो तल्लिङ्ग मन्त्रों के ही द्वारा प्रक्षालन कर आचमन करे और विधिवत् समाहित हो कर ही वहाँ पर इसके पश्चात् स्नान करना चाहिए ।।५९-६०।। उसी लिङ्ग वाले परम शुभ वारुण मन्त्रों के द्वारा जल को अभिमन्त्रित करे। इसके अनन्तर भावना से ही पवित्र होकर उस अव्यय—अव्यक्त भगवान् विष्णु को धारण करे।।६१।। ये जल नारायण से ही समुद्भूत हुए हैं और ये ही इनके निवास करने के भी स्थान हैं। इसी लिये भगवान् नारायण देव का स्नान करने के समय में बुध पुरुष को स्मरण अवश्य ही करना चाहिए ।।६२।। ओङ्कार के सहित आदित्य देव का प्रेक्षण करके तीन बार जलाशय में निमज्जन करे ।।६३।।

आचान्तः पुनराचामेत् मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।।६४

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥६५

द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद्व्याहृतिम्प्रणवान्विताम् ।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाऽघमर्षणम् ॥६६

ततः सम्मार्ज्जनं कुर्यात् (कार्यं) आपो हिष्ठामयो भुवः ।
इदमापः प्रवहतो व्याहृतिभिस्तथैव च ॥६७

तथाभिमन्त्र्यतत्तोयमापोहिष्ठादिभिस्त्रिकैः ।
अन्तर्जलगतोमग्नोजपेत्त्रिरघमर्षणम् ॥६८

द्रुपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः परमम्पदम् ।
आवर्त्तयेच्च प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम् ॥६९

द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठितः ।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७०

मन्त्र वेत्ता को आचान्त होकर भी पुनः इसी मन्त्र से आचमन करना चाहिए ॥६४॥ मन्त्र यह है जिसका अर्थ है—विश्वतोमुख प्रभु गुहा में अन्दर चरण भूतों में किया करते हैं आप ही यज्ञ—वषट्कार–आप—ज्योति—रस और अमृत हैं ॥६५॥ अथवा "द्रुपदिव मुमुचान"–इत्यादि मन्त्र का तीन बार अभ्यास करे जो व्याहृति और प्रणव से समन्वित हो। अथवा विद्वान् को सावित्री का जाप करना चाहिए तथा अघमर्षण करे ॥६६॥ इसके उपरान्त 'आपोदिष्ठा मयो भुवः"–इत्यादि मन्त्रों से सम्मार्जन करना चाहिए। तथा 'इदमापः प्रवहतः" इससे एवं व्याहृतियों से मार्जन करे ॥६७॥ उस जल को "आपोदिष्ठा" इत्यादि त्रिकों के अभिमन्त्रित करके जल के अन्तर्गत होकर मग्न होते हुए ही तीन बार अघमर्षण मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥६८॥ 'द्रुपदाम्'—'सावित्री'—'तद्विष्णोः परमं पदम्' अथवा प्रणव की आवृत्ति करे तथा देव हरि का संस्मरण करना चाहिए ॥६९॥ जो 'द्रुपदादिव' यह मन्त्र यजुर्वेद में प्रतिष्ठित है उसको जल के अन्दर तीन बार आवृत्ति करके मनुष्य समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥७०॥

अपः पाणौसमादायजप्त्वावैमार्जनेकृते ।
विन्यस्यमूर्ध्नितत्तोयंमुच्यतेसर्वपातकैः ॥७१
यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाघमर्षणम्प्रोक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥७२
अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्द्ध्वं पुष्पाक्षतान्वितम् ।
प्रक्षिप्याऽऽलोकयेद् देवमूर्द्ध्वं यस्तमसः परः ॥७३
उदुत्यं चित्रमित्येते तच्चक्षुरिति मन्त्रतः ।
हंसः शुचिषदन्तेन सावित्र्यास्तविशेषतः ॥७४
अन्यैश्चवैदिकैर्मन्त्रैः सौरैःपापप्रणाशनैः ।
सावित्रींवैजपेत्पश्चाज्जपयज्ञः स वैस्मृतः ॥७५
विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च ।
शतरुद्रीयं शिरसं सौरान्मन्त्रांश्च सर्वतः ॥७६
प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्रांगमुखः शुचिः ।
तिष्ठंश्च वीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात्समाहितः ॥७७

हाथ में जल लेकर जाप करके मार्जन करने पर उस जल को मस्तक पर विन्यस्त करने पर मानव सम्पूर्ण पातकों से मुक्ति पा जाया करता है ॥७१॥ जिस तरह अश्व मेध यज्ञ सब यज्ञों का राजा कहा जाता है और वह सभी प्रकार के पापों का अपमोदन करने वाला होता है उसी भाँति यह अघमर्षण मन्त्र भी कहा गया है जो सभी पातकों को दूर हटाने वाला है ॥७२॥ इसके अनन्तर भगवान् आदित्य देव का ऊपर की ओर पुष्प-अक्षत आदि उपस्थान करना चाहिए तथा पुष्पाक्षतों को आदित्य की ओर ऊपर प्रक्षिप्त करके ऊपर की ओर देवका समालोकन करे जो तम से पर है ॥७३॥ उपस्थान के मन्त्र 'उदुत्यम्'—'चित्रम्'—और 'तच्चक्षुः" इत्यादि होते हैं । 'हंसः शुचि षद्'—इस अन्त वाले मन्त्र से और विशेष कर सावित्री मन्त्र से करे ॥७४॥ और भी अन्य वैदिक मन्त्रों के द्वारा तथा पापों के नाशक सौर मन्त्रों के द्वारा उपस्थान करना चाहिए । इसके पीछे सावित्री का जाप करे । यह जप यज्ञ कहा गया है ॥७५॥ विविध पवित्र मन्त्र तथा गुह्य विद्यायें हैं—शत रुद्रीय—शिरस—और सौर

मन्त्र हैं उनको प्राक् कूल था समासीन होकर पूर्व की ओर मुख वाला कुशासन पर संस्थित और शुचि स्थित होते हुए सूर्य को देखते हुए परम समाहित होकर जाप को करना चाहिए ॥७७॥

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः ।
कर्त्तव्यात्वक्षमालास्यादुत्तरादुत्तमास्मृता ॥७८
जपकाले न भाषेत व्यंगानप्रक्षयेद् बुधः ।
न कम्पयेच्छिरोग्रीवांदन्तान्नैवप्रकाशयेत् ॥७९
गुह्यकाराक्षसाःसिद्धाहरन्तिप्रसभं यतः ।
एकान्तेषुशुचौदेशेतस्माज्जप्यंसमाचरेत् ॥८०
चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वाचैवपुनर्जपेत् ।
तैरेव भाषणंकृत्वास्नात्वाचैवपुनर्ज्जपेत् ॥८१
आचम्यप्रयतोनित्यंजपेदशुचिदर्शने ।
सौरान्मन्त्रान्शक्तितोवैपावमानीस्तुकामतः ॥८२
यदि स्यात् क्लिन्न (खिन्न) वासा वै वारिमध्यं गतोऽपि वा ।
अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः ॥८३
प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्य ततः क्षितौ ।
आचम्य च यथाशास्त्रं भक्त्या(शक्त्या)स्वध्यायमाचरेत्॥८४

जाप की माला स्फटिक से निर्मित हो—इन्द्राक्ष—रुद्राक्ष और पुत्र जीव से समुत्पन्नों की हो । ऐसी ही अक्षमाला का निर्माण करना चाहिए । इनमें जो भी उत्तर में हैं वह पहिली मालाओं से उत्तम मानी गयी हैं ॥७८॥ जाप करने के समय में भाषण बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए और बुध पुरुष को कोई भी व्यङ्ग्य वचनों का भी प्रक्षेप नहीं करना चाहिए । जप के समय में शिर और ग्रीवा को भी कम्पित न करे तथा दाँतों को न दिखावे ॥७९॥ ऐसा विधि निषिद्ध जाप करने पर उस जप के सम्पूर्ण फल को गुह्यक—राक्षस और सिद्ध लोग बल पूर्वक हरण कर लिया करते हैं । इसीलिये यह जाप का कर्म परम एकान्त पवित्र स्थल में ही समाचरित करना चाहिए ॥८०॥ चण्डाल और अशौच में पतितों को देख पुनः जाप करे । अगर उनके साथ भाषण कर लेवे तो फिर

दूसरी बार स्नान करके पुनः जप का समारम्भ करना चाहिए ।।८१।। नित्य ही आचमन करके प्रयत हो जप करे। अशुचि के दर्शन करने पर सौर मन्त्रों को शक्ति से पावमानी मन्त्रों को स्वेच्छा से जाप करना चाहिए ।।८२।। यदि भीगे हुए वस्त्रों से हो तो वारि के मध्य में ही स्थित होकर जाप करे अन्यथा तो किसी परम शुचि भूमि में दर्भासन पर स्थित होकर ही अति समादित होकर जप करना चाहिए ।।८३।। फिर जप के प्रदक्षिणा करे और भूमि में नमस्कार करे तथा फिर आचमन करके शास्त्र के अनुसार ही भक्ति की भावना से अपनी शक्ति के अनुरूप स्वाध्याय करना चाहिए ।।८४।।

ततःसन्तर्पयेद्देवान्नृषीन्पितृगणांस्तथा।
आदावोङ्कारमुच्चार्यनामान्तेततर्पयामिवः ।।८५
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैवतर्पयेदक्षतोदकैः ।
तिलोदकैः पितृन्भक्त्यास्वसूत्रोक्तविधानतः ।।८६
अन्वारब्धेन सव्येन पाणिनादक्षिणेन तु।
देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिःपितृन् ।।
यज्ञोपवीतो देवानां निवीती ऋषितपणे ।।८७
प्राचीनावीती पव्येण स्वेन तीर्थेन भावितः ।
निष्पीड्य स्नानवस्त्रन्तु समाचम्य च वाग्यतः ।
स्वैर्मन्त्रै रर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रै रथाम्बुभिः ।।८८
ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।
अन्यांश्चाभिमतान्देवान् भक्त्याचारोनरोत्तमः ।।८९
प्रदद्याद्वाथपुष्पाणिसूक्तेनपौरुषेण तु।
आपो वादेवताःसर्वास्तेनसम्यक् समर्च्चिताः ।।९०
ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वैदैवतानिसमाहितः ।
नमस्कारेणपुष्पाणिविन्यसेद्वैपृथक् पृथक् ।।९१

इस सम्पूर्ण कर्म के समाप्त करने पर फिर देव—ऋषि और पितृगणों का तर्पण करना चाहिए। आदि में ओङ्कार का उच्चारण करके फिर जिसका भी तर्पण करे उसके नाम के अन्त में "वः तर्पयामि"—यह

बोलना चाहिए अर्थात् मैं आपको तृप्त करता हूँ ।।८५।। देवगण और ब्रह्म ऋषिगण का तर्पण तो अक्षतों के सहित जल से ही करना चाहिए। तिलों के सहित जल से भक्ति के साथ स्वसूत्र के उक्त विधान से पितृगण का तर्पण करे ।।८६।। अन्वारवध सव्य से दक्षिण पाणि से देवर्षियों का तर्पण करे। धीमान् को उदकाञ्जलियों से पितृगणों का तर्पण करना चाहिए। देवों के तर्पण में यज्ञोपवीती रहे और ऋषिगण के तर्पण में निवीती हो जावे ।।८७।। अपने तीर्थ से भावित होकर जब पितृगण का तर्पण करे तो उस समय में प्राचीनावीती होकर ही करना चाहिए। स्नान से वस्त्र का निष्पीड़न करके—आचमन करे और मौन होकर ही अपने मन्त्रों के द्वारा पुष्प–पत्र और जल से देवों का समर्चन करना चाहिए ।।८८।। भगवान् शङ्कर—ब्रह्मा—सूर्य—मधुसूदन प्रभु इनका तथा अन्य भी जो अपने अभिमत देव हों उनका अर्चन भक्ति के आचार वाले नरोत्तम को करना चाहिए ।।८९।। पुरुष सूक्त के द्वारा पुष्पों का समर्पण करे। अथवा जल से ही सर्व देवों को भली-भाँति समर्चित करे ।।९०।। परम समाहित होकर प्रणव को पहिले लेकर ही देवगण का ध्यान करे। जब नमस्कार करे तो पुष्पों को पृथक्-पृथक् विन्यस्त करना चाहिए ।।९१।।

विष्णोराराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् ।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ।।९२
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेनसुसमाहितः ।
न ताभ्यांसदृशोमन्त्रोवेदेषूक्तश्चतुष्वपि ।।
तदात्मा तन्मनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रतः ।।९३
अथवा देमीशानं भगवन्तं सनातनम् ।
आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम् ।।९४
मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः ।
ईशानेनाथवा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहितः ।।९५
पुष्पैःपत्रैरथाद्भिर्वाचन्दनाद्यैर्महेश्वरम् ।
उक्त्वा नमः शिवायेतिमन्त्रेणानेन वाजपेत ।।९६

नमस्कुर्यान्महादेवंतंमृत्युञ्जयमीश्वरम् ।
निवेदयीत स्वात्मानंयोब्राह्मणमितीश्वरम् ॥९७

प्रदक्षिणं द्विजःकुर्यात्पश्चवर्षाणि वैबुधः ।
ध्यायीतदेवमीशानं व्योममध्यगतंशिवम् ॥९८

भगवान् विष्णु के समाराधन से वैदिक कर्म का सम्पादन हुआ करता है इसलिये आदि और अन्त से रहित श्रीहरि का आराधन नित्य ही करना चाहिए ॥९२॥ "तद्विष्णोः" इस मन्त्र से और सूक्त से सुसमाहित होकर करे। इन दोनों मन्त्रों के समान चारों वेदों में भी कोई अन्य मन्त्र नहीं है। विष्णुमय आत्मा वाला—उसी प्रभु में मन को लगाने वाला और परम शान्त होकर "तद्विष्णोः"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा भगवान् की आराधना करनी चाहिए ॥९३॥ अपना सनातन भगवान् ईशान देव महेश्वर महादेव की भक्ति के भाव से पूत होकर आराधना करनी चाहिए ॥९४॥ रुद्र गायत्री मन्त्र से—प्रणव से अथवा ईशान मन्त्र से—रुद्रों से—अथवा त्र्यम्ब मन्त्र से सुसमाहित होकर आराधना करे ॥९५॥ पत्र-पुष्प—जल और चन्दनाक्षत आदि से महेश्वर प्रभु का 'नमः शिवाय'—इस मन्त्र का उच्चारण करके द्वारा समाराधन करे और इसी मन्त्र का जाप भी करना चाहिए ॥९६॥ उन प्रभु मृत्युञ्जय ईश्वर महादेव को नमस्कार करे फिर "ब्रह्माणम्"—इस मन्त्र से ईश्वर की सेवा में अपनी आत्मा को निवेदित करना चाहिए ॥९७॥ बुध पुरुष द्विज को पाँच वर्ष पर्यन्त प्रदक्षिणा करनी चाहिए। व्योम के मध्य में समवस्थित ईशान देव शिव का ध्यान करना चाहिए ॥९८॥

अथावलोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यृचा ।
कुर्वन् पञ्च महायज्ञान् गृहंगत्वासमाहितः ॥९९

देवयज्ञं पितृयज्ञम्भूतयज्ञं तथैव च ।
मानुषं ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान्प्रचक्षते ॥१००

यदिस्यात्तर्पणादर्वाक्ब्रह्मयज्ञःकृतोनहि ।
कृत्वामनुष्ययज्ञं वै ततःस्वाध्यायमाचरेत् ॥१०१

अग्नेःपश्चिमतोदेशे भूतयज्ञान्तएव च ।
कुशपुञ्जे समासीनः कुशपाणिःसमाहितः ॥१०२
शालाग्नौलौकिके वाथ जले भूम्यामथापिवा ।
वैश्वदेवश्च कर्त्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः ॥१०३

यदिस्याल्लौकिके पक्षे तपोऽन्नं तत्रहूयते ।
शालाग्नौ तत्पचेदन्नं विधिरेषसनातनः ॥१०४

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूतबलिं हरेत् ।
भूतयज्ञः स विज्ञेयोभूतिदः सर्वदेहिनाम् ॥१०५

इसके उपरान्त "हंसःशुचि षत्"—इस ऋचा से भगवान् सूर्य का अवलोकन करे । इस प्रकार इन पाँच महायज्ञों को करके समाहित होकर घर को गमन करे ॥९९॥ ये पाँच यज्ञ देवयज्ञ—पितृ यज्ञ—भूत यज्ञ—मानुष यज्ञ और ब्रह्म यज्ञ इन नामों से कहे जाते हैं ॥१००॥ यदि तर्पण से पहिले ब्रह्म यज्ञ नहीं किया हुआ हो तो मनुष्य यज्ञ करके इसके पश्चात् ही स्वाध्याय का समाचरण करना चाहिए ॥१०१॥ अग्नि के पश्चिम देश में भूत यज्ञ के अन्त में ही कुशाओं के पुञ्ज पर समासीन होकर हाथ में कुशा ग्रहण करके सुसमाहित होना चाहिए ॥१०२॥ लौकिक अग्निशाला में—जल में अथवा भूमि में वैश्व देव करना चाहिए । यही देव यज्ञ इस नाम से कहा गया है ॥१०३॥ यदि लौकिक पक्ष में हो तो वहाँ पर अन्न का हवन किया जाता है । उस अन्न को शालाग्नि में पाचन करे—यही एक परम सनातन विधि है ॥१०४॥ देवों के लिये जो अन्न का हवन किया जावे उसमें जितना भी शेष रहे उसी से भूत बलि का हरण करना चाहिए । इसी को भूत यज्ञ समझना चाहिए यह सब देहधारियों को भूति के प्रदान करने वाला है ॥१०५॥

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च ।
दद्याद् भूमौ बहिश्चान्नम्पक्षिभ्यो द्विजसत्तमाः ॥१०६
सायश्चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्नं बलिं हरेत् ।
भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायम्प्रातर्यथाविधि ॥१०७

एकन्तु भोजयेद्विप्रं पितृनुद्दिश्य सन्ततम् ।
नित्यश्रांद्ध तदुच्छिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥१०८
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥१०९

पूजयेदतिथिं नित्यंनमस्येदर्च्चयेद्विभुम् ।
मनोवाक्कर्म्मभिः शान्तःस्वागतंस्वगृहंगतः ॥११०

अन्वारब्धेन सव्येनपाणिना दक्षिणेनतु ।
हन्तकारमथाग्रं वाभिक्षां वाशक्तितो द्विजः ॥१११

दद्यादतिथये नित्यम्बुध्येतपरमेश्वरम् ।
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रामग्रं तत्स्याच्चतुर्गुणम् ॥११२

हे द्विज श्रेष्ठो ! श्वपंचों को—कुत्तों को–पतित आदि को और पक्षियों को भूमि में बाहिर अन्न देना चाहिए ॥१०६॥ सायंकाल में सिद्ध पत्न्यन्न से वलि का हरण करना चाहिए । यह भूतयज्ञ नित्य ही यथा विधि सायं-काल और प्रातःकाल में करना चाहिए ॥१०७॥ एक विप्र को निरन्तर पितृगण का उद्देश्य करके भोजन कराना चाहिए । तदुच्छिष्ट नित्य श्राद्ध पितृयज्ञ होता है जो सद्गति के प्रदान करने वाला है ॥१०८॥ अथवा समाहित होकर यथाशक्ति कुछ थोड़ा सा अन्न निकाल कर वेदों के तत्वार्थ के ज्ञाता विद्वान् द्विज के लिये उपपादित कर देवे ॥१०९॥ अतिथि का नित्य ही पूजन करें । नमस्कार करे और विभु का अर्चन करे । परम शान्त होकर अपने घर में गये हुए का मन—वाणी—कर्म से स्वागत करना चाहिए ॥११०॥ अनवारब्ध सव्य पाणि दक्षिण से हन्तकार देवे और द्विज की शक्ति से अतिथि के लिये अग्र अथवा भिक्षा देनी चाहिए तथा उस अतिथि को परमेश्वर ही समझना चाहिए । जो ग्रास मात्र होती है उसे भिक्षा कहते हैं तथा अग्र चौगुना होता है ॥१११-११२॥

पुष्कलं हन्तकारन्तुतच्चतुर्गुणमुच्यते ।
गोदोहकालमात्रंवैप्रतीक्ष्योह्यतिथिःस्वयम् ॥११३
अभ्यागतान्यथाशक्तिपूजयेदतिथीन्सदा ।

भिक्षांवैभिक्षवे दद्याद्विधिवद्‌ब्रह्मचारिणे ।
दद्यादन्नं यथाशक्ति ह्यर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥११४
सर्वेषामप्यलाभे हि त्वन्नं गोभ्यो निवेदयेत् ।
भुञ्जीत बहुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥११५

अकृत्वा तु द्विजः पञ्चमहायज्ञान्द्विजोत्तमाः ।
भुञ्जीत चेत्स मूढात्मा तिर्यग्योनिं स गच्छति ॥११६

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञः क्रियाक्षमा ।
नाशयन्त्याशु पापानि देवताभ्यर्च्चनं तथा ॥११७

योमोहादथवाज्ञानादकृत्वा देवतार्च्चनम् ।
भुङ्क्ते स याति नरकं सूकरं नात्रसंशयः ॥११८

तस्मात्सर्व्वंप्रयत्नेन कृत्वा कर्म्माणि वै द्विजाः ।
भुञ्जीत स्वजनः सार्द्धं स याति परमां गतिम् ॥११९

हन्तकार पुष्कल होता है तथा उससे चौगुना होता है । जितने समय में गाय का दोहन होता है उतने ही समय तक अतिथि को स्वयं प्रतीक्षा करनी चाहिए ॥११३॥ जो अभ्यागत अतिथि हों उनकी सदा यथा शक्ति पूजा करनी चाहिए । जो भिक्षु हो उस ब्रह्मचारी भिक्षुक को विधिपूर्वक भिक्षा देनी चाहिए । जो याचक हों उनके लिये यथाशक्ति लोभ से रहित होते हुए अन्न देना चाहिए ।११४। यदि इन सभी का लाभ न होवे तो अन्न गौओं के लिये दे देना चाहिए । बहुतसों के साथ मौन होकर अन्नकी बुराई न करते हुए ही भोजन करे ॥११५॥ हे द्विजोत्तमवृन्द ! द्विज पाँच महा यज्ञों को न करके यदि स्वयं भोजन कर लेता है तो वह मूढ़ आत्मा वाला तिर्यग् योनि में जाकर जन्म ग्रहण किया करता है ॥ ११६ ॥ वेदों का अभ्यास प्रतिदिन करना—शक्ति पूर्वक महायज्ञों का करना और क्रिया की क्षमता तथा देवों का अभ्यर्चन ये शीघ्र ही पापों का नाश कर दिया करते हैं ॥११७॥ जो मोह से अथवा अज्ञान से देवों का अर्चन न करके स्वयं भोजन कर लेता है वह सूकर नरक में जाकर गिरा करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥११८॥ हे द्विजगण ! इसलिये सभी प्रकार के

पूर्ण प्रयत्नों से कर्म्मों को करके अपने जनों के साथ भोजन करे—ऐसा करने वाला पुरुष परम गति को प्राप्त हुआ करता है ॥११९

१९–भोजनादि प्रकार वर्णन

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा ।
आसीनः स्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय च ॥१
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियम्प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥२॥
पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद् भूमौ पात्रं निधाय च ।
उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापतिः ॥३॥
उपलिप्ते शुचौदेपशेपादौप्रक्षाल्यवै करौ ।
आचम्यार्द्राननोऽक्रोधः पञ्चार्द्रोभोजनञ्चरेत् ॥४
महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु ।
अमृतोपस्तरणमसीत्यापो ऽशानक्रियाञ्चरेत् ॥५
स्वाहाप्रणवसंयुक्तां प्राणायाद्याहुतिं ततः ।
अपानायततोभुक्त्वाव्यानाय तदनन्तरम् ॥६
उदानाय ततःकुर्यात्समानायेति पञ्चमम् ।
विज्ञायतत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनिद्विजः ॥७

श्री व्यास देव ने कहा—पूर्व दिशा की ओर मुख करके अथवा सूर्य की ओर मुख वाला होकर ही अन्न का भोजन करे । अपने आसन पर स्थित होकर जो कि परम शुद्ध हो और भूमि में पैरों को रखकर भोजन करना चाहिए ॥१॥ जो प्राङ्मुख होकर भोजन करता है वह आयुष्य होता है और दक्षिण की ओर मुख करके भोजन करना यशस्य अर्थात् यश के बढ़ाने वाला होता है । प्रतीची (पश्चिम) की ओर मुख करके जो भोजन करता है वह श्री का भोजन करता है और उत्तर की ओर मुख करके भोजन करते वाले ऋत को ही खाता है ॥२॥ पञ्चार्द्र होकर भूमि में पात्र रखकर भोजन करता चाहिए प्रजापति मनु ने इस प्रकार से भोजन

को उपवास के तुल्य बतलाया है ॥३॥ उपलिप्त हुए शुचि देश में अपने दोनों पैर और दोनों हाथों का प्रक्षालन करके आचमन करे और आर्द्र मुख वाला होकर क्रोध से रहित पञ्चार्द्र होता हुआ भोजन करना चाहिए। महाव्याहृतियों से उदक से अन्न का परिधान करे ॥४॥ "अमृतो पस्तरण मसि" इससे आपोशान क्रिया करे ॥ ५ ॥ स्वाहा और प्रणव से संयुत प्राणाय—इत्यादि आहुति देवे। इसके पश्चात् 'ओं अपानाय स्वाहा'—यह उच्चारण करके भोजन करे। इसके पश्चात् "ओं व्यानाय स्वाहा" इसे बोल कर ग्रास ग्रहण करे ॥६॥ इसके उपरान्त उदानाय और समानाय बोलते हुए पूर्वोक्त विधि से चौथा और पाँचवा ग्रास ग्रहण करे। द्विज को इनका तत्त्व समझकर ही आत्मा में हवन करना चाहिये ॥७॥

शेषमन्नं यथाकामंभुञ्जीत व्यञ्जनैर्युतम् ।
ध्यात्वा तन्मनसादेवानात्मानंवैप्रजापतिम् ॥८
अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादपः पिबेत् ।
आचान्तः पुनराचामेदयंगौरिति मन्त्रतः ॥९
द्रुपदां वा त्रिरासृत्यं सर्वपापप्रणाशनीम् ।
प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यलभेदुदरंततः ॥१०
आचम्यांगुष्ठमात्रेण पादांगुष्ठेन दक्षिणे ।
निस्रावयेद्धस्तजलमूर्द्ध हस्तः समाहितः ॥११
कृतानुमन्त्रणं कुर्यात्सन्ध्यायामितिमन्त्रतः ।
अथाक्षरेण स्वात्मानं योजयेद् ब्राह्मणेति हि ॥१२
सर्वेषामेवयोगानामात्मयोगःस्मृतःपरः ।
योऽनेनविधिनाकुर्यात्सकविर्ब्राह्मणःस्वयम् ॥१३
यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालङ्कृतः शुचिः ।
सायम्प्रातर्नान्तरा वै सन्ध्यायां तु विशेषतः ॥१४

इस तरह पांच आहुतियाँ उक्त विधि से ग्रहण करके फिर शेष अन्न को इच्छा पूर्वक व्यञ्जनों युत भोजन करे। तन्मना होकर देवों का, आत्मा का और प्रजापति का ध्यान करके भोजन करना चाहिए। पुनः "अमृता-

पिधानमसि"– इसे बोल कर ऊपर से जल का पान करना चाहिए। आचान्त होकर भी पुनः "अयं गौ"–इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके आचमन करना चाहिए ॥ ८-९ ॥ समस्त पापों के नाश करने वाली "द्रुपदाम्"—इत्यादि ऋचा की तीन आवृत्ति करके फिर 'प्राणानां ग्रन्थिरसि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा उदर का आलभन करना चाहिए ॥१०॥ आचमन करके अंगुष्ठमात्र पादांकुष्ठ से दक्षिण भागमें हाथके जलका स्रावणकरना चाहिए। फिर ऊपर को हाथ करके समाहित होवे ॥११॥ "सन्ध्या याम्",इस मन्त्र से कृतानुमन्त्रण करे। इसके अनन्तर 'अक्षरेण' और 'ब्राह्मण", इत्यादि मन्त्रों से अपनी आत्मा का भोजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ सब योगों में जो आत्म योग होता है वह सबसे पर अर्थात् शिरोमणि माना गया है। जो इस विधि से किया करता है वह ब्राह्मण स्वयं कवि होता है ॥१३॥ यज्ञोपवीती स्नग् गन्ध से अलंकृत होकर तथा परम शुचि होकर भोजन करना चाहिए। सायंकाल और प्रातः काल में कोई भी अन्तर नहीं है। सन्ध्या में तो विशेषता होती है ॥१४॥

नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वंप्रतिसायंशशिग्रहात्।
ग्रहकालेनचाश्नीयात्स्नात्वाश्नीयाद्विमुक्तये ॥१५

मुक्ते शशिनि चाश्नीयाद्यदि न स्यान्महानिशा।
अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद् दृष्ट्वा परेऽहनि ॥१६

नाश्नीयात्प्रेक्षमाणानामप्रदाय च दुर्मतिः।
यज्ञावशिष्टमद्याद्वा न क्रुद्धो नान्यमामसः ॥१७

आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्।
वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम् ॥१८

यद्भुंक्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते उदंमुखः।
सोपानत्कश्च यो भुंक्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम् ॥१९

नार्द्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णेनार्द्रवस्त्रधृक्।
न च भिन्नासनगतोनयानसंस्थितोपिवा ॥२०

न भिन्नभाजने चैव न भूम्यांनच पाणिषु ।
नोच्छिष्टोघृतमादद्यात्नमूर्द्धानंस्पृशेदपि ॥२१

सूर्य ग्रह से पूर्व प्रातः भोजन न करे और सायं काल में शशि ग्रह से पूर्व भोजन नहीं करना चाहिए । ग्रह काल में अशन नहीं करना चाहिए । स्नान करके विमुक्त के लिये अशन करे ॥१५॥ शशि के मुक्त हो जाने पर ही भोजन करे यदि महानिशा का काल उस समय वर्त्तमान न होवे । अमुक्त होते हुए ही सूर्य और चन्द्र दोनों अस्त हो जावें तो दूसरे दिन उनके शुद्ध स्वरूप का दर्शन करके ही भोजन करना चाहिए ॥१६॥ प्रेक्षमाणों को न देकर दुर्मति को भोजन नहीं करना चाहिए । अथवा यज्ञावशिष्ट को क्रुद्ध होकर तथा अन्य मानस न होकर खा लेना चाहिए ॥१७॥ जिसका भोजन आत्मा के लिये ही होता है और जिसका मैथुन केवल रति प्राप्त करने के लिये ही है तथा जिसका अध्ययन केवल वृत्ति के लिये ही है उस पुरुष का जीवन ही निष्फल होता है ॥१८॥ जो अपने शिर को वेष्टित करके भोजन किया करता है और जो उत्तर की ओर मुख करके भोजन करता है तथा जूते पहिने हुए जो भोजन करता है उन सबको आसुर भोजन ही समझना चाहिए अर्थात् उसका रस असुरगण ही ग्रहण कर लेते हैं ॥१९॥ अर्द्ध रात्रि में—मध्याह्न में—अजीर्ण में तथा भीगे हुए वस्त्र धारण करके एवं भिन्न आसन पर स्थित होकर और यान में बैठकर भोजन नहीं करना चाहिए ॥२०॥ भिन्न पात्र में—भूमि में—हाथों में भोजन न करे । उच्छिष्ट होकर भी भोजन नहीं करना चाहिए और मूर्द्धा का भी स्पर्श नहीं करे ॥२१॥

न ब्रह्मकीर्त्तयेच्चापिननिःशेषं न भार्यया ।
नान्धकारे न सन्ध्यायां न चदेवालयादिषु ॥२२

नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः ।
न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन्विलपन्नपि ॥२३

भुक्त्वा वै सुखमास्थाय तदन्नम्परिणा मयेत् ।
इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत् ॥२४

तत: सन्ध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना शुचि: ।
आसीनश्च जपेद्देवीं गायत्रीं पश्चिमाम्प्रति ।।२५
न तिष्ठति तु य: पूर्वानास्ते(पूर्वानापीति)सन्ध्यांतुपश्चिमाम् ।
स शूद्रेण समो लोके सर्वकर्मविवर्जित: ।।२६
हुत्वाऽग्निं विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम् ।
सभृत्यबान्धवजन: स्वपेच्छुष्कपदो निशि ।।२७
नोत्तराभिमुख: स्वप्यात्पश्चिमाभिमुखो न च ।
न चाऽऽकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित् ।।२८

ब्रह्म का कीर्तन नहीं करना चाहिए—नि:शेष भी भोजन न करे तथा अपनी भार्या के साथ में बैठकर भी कभी अशन नहीं करना चाहिए। अन्धकार में—सन्ध्या के समय में और देवालय आदि स्थलों में भोजन नहीं करे ।।२२।। एक वस्त्र धारण करके भी कभी भोजन नहीं करे। यान और शयन में संस्थित होकर भी भोजन नहीं करे। पादुका से निर्गत होकर—हँसते हुए और विलाप करते हुए भी भोजन नहीं करना चाहिए ।।२३।। भोजन करके सुख पूर्वक समास्थित होवे और उस अन्न का परिणाम करना चाहिए। इतिहास और पुराणों से वेदों के अर्थ को उपबृंहित करना चाहिए ।।२४।। इसके उपरान्त पूर्वोक्त विधि से सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए और शुचि होकर करे। प्रतीची दिशा की ओर समासीन होकर गायत्री देवी का जाप करे ।२५। जो पहिली और पिछली सन्ध्याओं की उपासना नहीं करता है वह द्विज लोक में एक शूद्र के ही समान है और वह सभी कर्मों से विवर्जित होता है ।।२६।। विधि पूर्वक अग्नि में हवन करके और मन्त्रों से यज्ञावशिष्ट को खाकर भृत्य और और बान्धव जनों के सहित रात्रि में शुष्क पद वाला होकर शयन करे। ।।२७।। न तो उत्तर की तरफ मुख करके सोवे और न पश्चिमाभिमुख होकर शयन करे—न आकाश में—न नग्न—न अशुचि और न कहीं पर भी आसन पर शयन करना चाहिए ।।२८।।

न शीर्णायांतु खट्वायांशून्यागारे न चैव हि ।
नानुवंशेन पालाशे शयने वा कदाचन ।।२९

इत्येतदखिलेनोक्तमहन्यहनि वै मया।
ब्राह्मणानाङ् कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम् ॥३०

नास्तिक्यादथवालस्यद् ब्राह्मणो न करोति यः।
स याति नरकान्घोरान् काकयोनौ च जायते ॥३१

नाऽन्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाऽऽश्रमविधिं स्वकम्।
तस्मात्कर्म्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः ॥३२

जो खाट अत्यन्त शीर्ण हो उस पर भी नहीं सोना चाहिए तथा शून्य घर में न सोवे एवं अनुवंश से पलाश को शय्या पर भी कभी शयन नहीं करना चाहिए ॥२९॥ यह मैंने दिन प्रतिदिन में पूर्ण ही ब्राह्मणों का कृत्य जात बतला दिया है जो अपवर्ग के फल का प्रदान करने वाला है ॥३०॥ जो ब्राह्मण नास्तिक्य भाव से अथवा आलस्य से यह नहीं करता है वह ब्राह्मण घोर नरकों में जाता है और फिर कौआ की योनि में समुत्पन्न हुआ करता है ॥३१॥ अपनी आश्रम की विधि का त्याग करके अन्य कोई भी विमुक्ति का मार्ग ही नहीं है। इसलिये भगवान् परमेष्ठी की सन्तुष्टि के लिये ब्राह्मण को अपने कर्म अवश्य करने चाहिए ॥३२॥

———

२०—श्राद्धकल्पवर्णन [१]

अथ श्राद्धममावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः।
पिण्डान्वाहार्यकम्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१

पिण्डान्वाहार्यकंश्राद्धं क्षीणेराजनिशस्यते।
अपराह्णेद्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेणच ॥२

प्रतिपत्प्रभृतिह्यन्यास्तिथयः कृष्णपक्षके।
चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युपरोत्तरः ॥३

अमावास्याष्टकास्तिस्रःपौषमासादिषु त्रिषु।
तिस्रस्तास्त्वष्टकाः पुण्या माघी पञ्चदशा तथा ॥४

त्रयोदशीमघायुक्तावर्षासुच विशेषतः ।
शस्यपाकश्राद्धकाला:नित्या:प्रोक्तादिनेदिने ॥५

नैमित्तिकंतुकर्त्तव्यंग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ।
बान्धवानांविस्तरेणनारकीस्यादतोऽन्यथा ॥६

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु ।
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥७

महर्षि व्यास देव ने कहा—इसके बाद अमावस्या तिथि में श्राद्ध पाकर उसे द्विजोत्तमों को करना चाहिए। भक्तिभाव से पिण्डों का आहरण करे जो भुक्ति और मुक्ति दोनों का ही प्रदान करने वाला होता है ॥१॥ पिण्डान्वाहार्यक एक श्राद्ध विशेष है जो राजा के क्षीण होने पर प्रशस्त माना जाता है। यह द्विजातियों का अपराह्ण में प्रशस्त आभिष से होता है ॥२॥ प्रतिपदा से लेकर कृष्ण पक्ष में अन्य सभी तिथियाँ उपरोध से प्रशस्त है केवल चतुर्दशी तिथि को वर्जित कर देना चाहिए ॥३॥ पौष मासादि तीनों में तीन अमावस्या—अष्टका होते हैं। ये तीनों अष्टका परम पुण्यमय होते हैं तथा माघी पञ्चदशा होती है ॥४॥ मघा से युक्त त्रयोदशी तिथि और विशेष करके वर्षा में ग्रहण की गई है। शस्यपाक श्राद्ध काल नित्य कहे गये हैं ये दिन दिन में अर्थात् हर दिन में होते हैं ॥५॥ जो नैमित्ति होता है वह तो चन्द्र सूर्य के ग्रहण में ही करना चाहिए। बान्धवों में विस्तार से नार की होता है इसलिये इसे अन्यथा ही करे। ॥६॥ जो काम्य श्राद्ध होते हैं वे ग्रहण आदि में प्रशस्त हुआ करते हैं। अयन में—विषुव में और व्यतीपात में तो यह अनन्त फल प्रद होते हैं ॥७॥

संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि ।
नक्षत्रेषुच सर्वेषु कार्यकाले विशेषतः ॥८

स्वर्गञ्चलभतेकृत्वाकृत्तिकासुद्विजोत्तमः ।
अपत्यमथरोहिण्यांसौम्येतुब्रह्मवर्चसम् ॥९
रौद्राणां कर्मणां सिद्धिमार्द्रायांशौर्यमेव च ।

पुनर्वसौतथा भूमिश्रियं पुष्येतथैवच ।
सर्वान्कामांस्तथा सार्प्ये पित्र्ये सौभाग्यमेव च ॥१०
अर्यम्णे तु धनं विन्द्येत् फाल्गुन्यां पापनाशनम् ॥११
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायाञ्च बहून् सुतान् ।
वाणिज्यसिद्धि स्वातौ तु:विशाखासु सुवर्णकम् ॥१२
मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्यं शाक्रे तथैवच ।
मूले कृषि लभेज्ज्ञानंसिद्धिमाप्येसमुद्रतः ॥१३
सर्वान् कामान्वैश्वदेवे:श्रैष्ठ्यन्तुश्रवणेपुनः ।
धनिष्ठायांतथाकामानम्वुपेचपरम्बलम् ॥१४

संक्रान्ति में जो श्राद्ध होता है वह अक्षय होता है । जन्म दिन के नक्षत्र में और सभी में तथा कार्य काल में विशेष रूप से फलप्रद होते हैं ॥८॥ द्विजोत्तम कृत्तिका में श्राद्ध करके स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है । रोहिणी करके अपत्य लाभ और सौम्य में करके ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति की जाती है ॥६॥ आर्द्रा में रौद्र कर्मों की सिद्धि होती है और शौर्य का भी लाभ होता है । पुनर्वसु में भूमि और श्री का लाभ प्राप्त हुआ करता है । पुष्य नक्षत्र में किये हुए श्राद्ध का भी फल पुनर्वसु के ही समान होता है ॥१०॥ सार्प्य में सभी कामनाओं का लाभ होता है और पित्र्य में सौभाग्य की प्राप्ति हुआ करती है । अर्यम्ण में धन प्राप्त करता है और फाल्गुनी में पापों का नाश होता है ॥११॥ हस्त में करने ज्ञाति में श्रेष्ठता मिलती है तथा चित्रा नक्षत्र में श्राद्ध करने से वहुत पुत्रों की प्राप्ति होती हैं । स्वाती में वाणिज्य की सिद्धि होती है और विशाखा में स्वर्ण का लाभ होता है ॥१२॥ मैत्र में वहुत से मित्र होते हैं तथा शाक्र में राज्य का लाभ होता है । मूल में कृषि लाभ और आप्य में समुद्र से ज्ञान की सिद्धि होती है ॥१३॥ सभी कामों को प्राप्ति वैश्वदेव में होती है और श्रवण में श्रेष्ठता होती है । धनिष्ठा में कामों की और अम्वुप में पर बल की प्राप्ति होती है ॥१४॥

अजकपादकुप्यस्यादाहिर्बुध्नेगृहंशुभम् ।
रेवत्याम्वहवोगावोह्यश्विन्यांतुरगांस्तथा ॥१५

याम्ये तु जीवितन्तु स्याद्यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति ॥१५
आदित्यवारेऽन्वारोग्यंचन्द्रे सौभाग्यमेवच ।
कुजेसर्वत्रविजयंसर्वान्कामान्बुधस्यतु ॥१६
विद्यामभीष्टांतु गुरौ धनम्वै भार्गवे पुनः ।
शनैश्चरे लभेदायुःप्रतिपत्सुसुतान्शुभान् ॥१७
कन्यका वै द्वितीयायां तृतीयायां तु विन्दति ।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां वै पञ्चम्यां शोभनान् सुतान् ॥१८
षष्ठ्यां द्युतिकृषिञ्चापिसप्तम्यान्चधनंनरः ।
अष्टम्यामपि वाणिज्यंलभतेश्राद्धदःसदा ॥१९
स्यान्नवम्यामेकखुरंदशम्यांद्विखुरं बहु ।
एकादश्यान्तथारूप्यंब्रह्मवर्चस्विनःसुतान् ॥२०
द्वादश्यां जातरूपञ्च रजतंकुप्यमेव च ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यांचतुर्दश्यांतुकुप्रजाः ।
पञ्चदश्यां सर्वकामान् प्राप्नोति श्राद्धदः सदा ॥२१

अजैक पाद में कुप्य और दाहिबुंध्न में शुभगृह—रेवती में बहुत-सी गौऐं तथा अश्विनी में तुरग होते हैं। याम्य में जीवित्त होता है जो श्राद्ध दिया करता है ॥१५॥ अब वारों श्राद्ध करने का फल बताते हुए कहते हैं—रवि के बार में अन्नारोग्य होता है—चन्द्र बार में सौभाग्य, भौम में सर्वत्र विजय और बुध में सभी कामनाऐं होती हैं ॥१६॥ गुरु में अभीष्ट विद्या—भृगु बार में धन—शनैश्चर बार में आयु का लाभ होता है। अब तिथियों में फल बताया जाता है—प्रतिपदा में श्राद्ध देने से शुभ सुतों की प्राप्ति हुआ करती है ॥१७॥ द्वितीय और तृतीया में कन्यका होती है। चतुर्थी में क्षुद्र पशुओं का लाभ होता है तथा पञ्चमी में शुभ सुतों का जन्म होता है ॥१८॥ षष्ठी में द्युति और कृषि तथा सप्तमी में मनुष्य को धन मिलता हैं। अष्टमी में वाणिज्य का लाभ श्राद्ध देने वाला सदा किया करता है ॥१९॥ नवमी में एक खुर वाले का लाभ—दशमी में बहुत दो खुर वाले—एकादशी में रूप्य और ब्रह्मवर्चस्वी सुतों का लाभ होता है ॥२०॥ द्वादशी में जातरूप–रजत और कुप्य का लाभ होता है।

त्रयोदशी में श्राद्ध देने से ज्ञाति में श्रेष्ठता होती है तथा चतुर्दशी में कुप्रजा हुआ करती है। पञ्चदशी में सभी कामनाऐं पूर्ण होती हैं जो उस दिन श्राद्ध दिन में श्राद्ध दिया करता है ॥२१॥

तस्माच्छ्राद्धं न कर्त्तव्यं चतुर्द्दश्यां द्विजातिभिः।
शस्त्रेण तु हतानां तु श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत् ॥२२
द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालनियमः कृतः।
तस्माद्भोगापवर्गार्थं श्राद्धं कुर्युर्द्विजातयः ॥२३
कर्मारम्भेषुसर्वेषु कुर्यादभ्युदये पुनः।
पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पावर्णंपर्वषु स्मृतम् ॥२४
अहन्यहनि नित्यं स्यात्काम्यं नैमित्तिकं पुनः।
एकोद्दिष्टादि विज्ञेयं द्विधा श्राद्धं तु पार्वणम् ॥२५
एतत्पञ्चविधं श्राद्धं मनुनापरिकीर्त्तितम्।
यात्रांयां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेनपालयेत् ॥२६
शुद्धयेसप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणापरिभाषितम्।
दैविकञ्चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्वा मुच्यतेभयात् ॥२७
सन्ध्यांरात्रौनकत्तव्यंराहोरन्यत्रदर्शनात्।
देशानान्तुविशेषेण भवेत्पुण्यमनन्तकम् ॥२८

इसीलिये द्विजातियों को चतुर्दशी तिथि में कभी भी श्राद्ध नहीं करना चाहिए। जिनका हनन किसी भी शस्त्र के द्वारा हुआ हो उन्हीं का श्राद्ध चतुर्दशी में करना चाहिए ॥२२॥ द्रव्य ब्राह्मण सम्पत्ति में कोई भी काल का नियम नहीं किया गया है। इसीलिये भोग और अपवर्ग के लिये द्विजातियों को श्राद्ध करना चाहिए ॥२३॥ समस्त कर्मों के आरम्भ में और अभ्युदय में श्राद्ध करना चाहिए। पुत्र के जन्म में श्राद्ध करे। यह नान्दी मुख नाम वाला श्राद्ध होता है और जो पार्वण श्राद्ध है वह पर्वों में ही बताया गया है ॥२४॥ दिन प्रतिदिन नित्य ही काम्य और नैमित्तिक श्राद्ध हुआ करते हैं। पार्वण श्राद्ध ऐकोद्दिष्ट आदि भेद से दो प्रकार का होता है ॥२५॥ इस प्रकार से महर्षि मनु ने यह पाँच प्रकार के श्राद्ध बताये हैं। यात्रा से जो श्राद्ध किया जाता वह छटवें प्रकार का श्राद्ध

होता है उसका भी प्रयत्न पूर्वक परिपालन करना चाहिए ॥२६॥ शुद्धि के लिये सप्तम प्रकार का श्राद्ध ब्रह्माजी ने भाषित किया है । दैविक आठवाँ श्राद्ध होता है जिसके करने से भय से मुक्ति हो ज या करती है । ॥२७॥ सन्ध्या के समय में और रात्रि के राहु के अन्यत्र दर्शन होने से श्राद्ध नहीं करना चाहिए । देशों की विशेषता होने से अनन्त पुण्य हुआ करता है ॥२८॥

गङ्गायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके ।
गायन्ति पितरोगाथांनर्त्तयन्ति मनीषिणः ।२९
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः ।
तेषान्तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥३०
गयांप्राप्यातुषङ्गेण यदि श्राद्धंसमाचरेत् ।
तारिताः पितरस्तेनसयातिपरमांगतिम् ॥३१
वाराहपर्वते चैव गयायां वै विशेषतः ।
वाराणस्यां विशेषेण यत्र देवः स्वयं हरः ॥३२
गंगाद्वारे प्रभासे तु बिल्वके नीलपर्वते ।
कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुङ्गे महालये ॥३३
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च ।
सरस्वत्यां विशेषेण पुष्करे तु विशेषतः ॥३४
नर्मदायां कुशावर्त्ते श्रीशैले भद्रकर्णके ।
वेत्रवत्यां विशाखायां गोदावर्यां विशेषतः ॥३५

गङ्गा में जो श्राद्ध किया जाता है वह अक्षय होता है । प्रयाग में और अमर कण्टक में किया हुआ श्राद्ध क्षय से रहित ही हुआ करता है । पितृगण गङ्गा में श्राद्ध की महिमा की गाथा का गान किया करते हैं और मनीषीगण नृत्य करते हैं ॥२९॥ बहुत से शीलवान् गुणगण से समन्वित पुत्रों की कामना करनी चाहिए उन समवेत हुए सबमें यदि कोई भी एक गया में प्राप्त हो जावे ॥३०॥ फिर वहाँ गया में पहुँचकर आनुषङ्ग से यदि श्राद्ध करे तो समझ लेना चाहिए कि उसने समस्त पितरों का उद्धार कर दिया है और वह स्वयं भी परम गति की प्राप्ति किया करता है ।

॥३१॥ वाराह पर्वत में विशेष रूप से गया में एवं वाराणसी में भी विशेषता से श्राद्ध का फल होता है। जहाँ पर स्वयं देव हर विराजमान रहा करते हैं ॥३२॥ गङ्गाद्वार—प्रयास क्षेत्र—विल्वक—नील पर्वत—कुरुक्षेत्र—कुब्जाम्र—भृगुतुङ्ग–महालय–केदार–फल्गु तीर्थ में–नैमिषारण्य में—विशेष रूप से सरस्वती में और पुष्कर में पुण्य होता है ॥३३·३४॥ नर्मदा में—कुशावर्त्त में—श्रीशैल में—भद्र कर्णक में—वेत्रवती–विशाखा और विशेष करके गोदावरी श्राद्ध करने का महान् पुण्य होता है ॥३५॥

एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च।
नदीनाञ्चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितरः सदा ॥३६
व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
श्यामाकैश्च यवैः काशैर्नीवारैश्च प्रियंगुभिः।
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्गैर्मासं प्रीणयते पितॄन् ॥३७
आम्रान् पाने रतानिक्षून् मृद्वीकांश्च सदाडिमान्।
विदाश्वांश्च कुरण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत् ॥३८
लाजान्मधुयुतान् दद्यात्सक्तून् शर्करया सह।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृंगाटककशेरुकान् ॥३९
पिप्पली रुचकञ्चैव तथा चैव मसूरकम्।
कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकिभूतृणं सरसंतथा ॥४०
कुसुम्भपिण्डमूलं वैतन्दुलीयकमेवच।
राजमाषांस्तथा क्षीरंमाहिषाजंविवर्ज्जयेत् ॥४१
आढक्यःकोविदाराश्चपालक्यामरिचास्तथा।
वर्जयेत्सप्तयत्नेनश्राद्धकालेद्विजोत्तमः ॥०२

इस प्रकार से अन्य तीर्थों में तथा पुलिनों में और नदियों की तीरों में सदा ही श्राद्ध करने से पितृगण सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥३६॥ व्रीहि—यव—माष—जल—मूल—फल–श्यामाक—यव-काश–नीवार—प्रियंगु—गोधूम—तिल—मूंग ये सब पितृगण को मास भर पर्यन्त प्रीणित किया करते हैं ॥३७॥ आम्र—पान में–रतों को इक्षु–मृद्वीक–दाडिम–विदाश्व–कुरण्ड इनको श्राद्ध के काल में दिलाना चाहिए ॥३८॥ मधु से युक्त

लाजाओं को तथा शर्करा के सहित सतुवा देवें। श्राद्ध में प्रयत्न पूर्वक शृङ्गाटक एव कशेरुक देवें ॥३९॥ पिप्पली—रुचक—मसूर—कूष्माण्ड—अलावु—वार्त्ताक—भूतृण सरस देना चाहिए ॥४०॥ कुसुम्भ पिण्डमूल—वैतन्दुलीयक—राजमाष और क्षीर श्राद्ध में देवे किन्तु भेंस और बकरी का क्षीर वर्जित किया गया है ॥४१॥ आढक्य—कोविहार—पालक्य—मरिच इसको द्विजोत्तम को श्राद्ध के काल में प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए ॥४२॥

२१—श्राद्धकल्पवर्णन [२]

स्नात्वा यथोक्तं सन्तर्प्य पितृंश्चन्द्रक्षये द्विजः।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात्सौम्यमनाः शुचिः ॥१
पूर्व्वमेव समीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदानानाञ्च स स्मृतः ॥२
ये सोमपा विरजसो धर्म्मज्ञाःशान्तचेतसः।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥३
पञ्चाग्निरप्यधीयानोयजुर्वेदविदेव च।
वह् वृचश्चात्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वा च योऽभवत् ॥४
त्रिणाचिकेतच्छन्दोगोज्येष्ठसामग एव च।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः ॥५
अग्निहोत्रपरोविद्वान्न्यायविच्चषडङ्गवित्।
मन्त्रब्राह्मणविच्चैवयश्चस्याद्धर्म्मपाठकः ॥६
ऋषिव्रती ऋषीकश्च शान्तचेता जितेन्द्रियः।
ब्रह्मदेयानुसन्तानो गर्भशुद्धः सहस्रदः ॥७

महामहर्षि व्यास देव ने कहा—द्विज को स्नान करके यथोक्त विधि से पितृगण का तर्पण करके चन्द्र क्षय में सौम्य मनन वाला और शुचि होकर पिण्डान्वाहार्यक श्राद्ध करना चाहिए ॥१। श्राद्धारम्भ के पहिले ही किसी वेदों के पारगामी महान् विद्वान ब्राह्मण को देख रखना चाहिए।

पितामहाय शुद्धाय युगादौ लोकधारिणे ।
पितामहश्च दक्षाय धर्ममेतं पुरा ददौ ॥ ४९ ॥
ततो ज्येष्ठे तु दौहित्रे प्रादाद्दक्षो नृपोत्तम ।
आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे विवस्वान् जगृहे ततः ॥ ५० ॥
त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान्मनवे ददौ
मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ ॥ ५१ ॥
इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थितः ।

इत्यादिना 'इमं विवस्वते योग' मिति गीतोक्तदिशा सात्त्वतधर्मस्य परम्पराप्राप्तत्वं त्रेतायुगेऽपि व्याप्तिम् ॥

कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः ॥ ५३ ॥
नारदेन तु संप्राप्तः सरहस्यस्ससंग्रहः ।
एष धर्मो जगन्नाथात्साक्षान्नरायणान्नृप ॥ ५ ॥
एवमेष महान्धर्म आद्यो राजन्सनातनः ।
दुर्विज्ञेयो दुष्करश्च सात्त्वतैर्धार्यते सदा ॥ ५५ ॥
धर्मज्ञानेन चैतेन सुप्रयुक्तेन कर्मणा ।
[1] अहिंसाधर्मयुक्तेन प्रीयते हरिरीश्वरः ॥ ५६ ॥

---

[1] अहिंसेति कृतयुगाभिप्रायम् । वस्तुतस्तु 'यज्ञानांजपयज्ञोस्मीति' गीतैकार्थ्याज्जपयज्ञ एवात्र विवक्षितः । अत्रैव (ना. ७ अ) धर्मराजादीनामेतदाख्यानश्रवणानन्तरं 'नित्यं जप्यपराभूत्वा' इति जपयज्ञनिष्ठत्वोक्तेः । त्रेतायुगे—

प्रोक्षितायत्रपशवोवधं प्राप्स्यन्तिवैमखे । (ना. ८-८२).

इति प्रत्यक्षपशुवधस्य, अत्रैतद्धर्मस्य व्याप्तेश्चाभिधानेन पशुहिंसानिषेधविवक्षायाः वक्तुमशक्यत्वाच्च । अत्र 'इतरेषु यज्ञेषु हिंसादिप्रसङ्गोऽधिकारिविशेषादिना

[1] एकव्यूहविभागो वा क्वचिद्द्विव्यूहसंज्ञितः ।
त्रिव्यूहश्चापि संख्यातश्चतुर्व्यूहश्च दृश्यते ॥ ५७ ॥
हरिरेव हि क्षेत्रज्ञो निर्ममोनिष्कलस्तथा ॥ ५८ ॥
यद्येकान्तिभिराकीर्णं जगत्स्यात्कुरुनन्दन ॥ ६२ ॥
अहिंसकैरात्मविद्भिः सर्वभूतहितेरतैः ।
भवेत्कृतयुगप्राप्ति राशीःकर्मविवर्जिता ॥ ६३ ॥
एवं स भगवान्व्यासो गुरुर्ममविशांपते ।
कथयामासधर्मज्ञो धर्मराजे द्विजोत्तमः ॥ ६४ ॥
ऋषीणां सन्निधौ राज ञ्शृण्वतोः कृष्ण भीष्मयोः ॥ ६५ ॥

इत्यनेन गीतायां सङ्ग्रहेणोक्तस्य पञ्चरात्रे विस्तृतस्य चातुरात्म्य वासुदेवाराधनधर्मस्य सात्वतैर्धार्यत्वं । त्रेतादौ पर्वक्रमेण अनुष्ठातृविरलत्वं च—

एवं प्रविरलम् धर्मं प्रतिबुद्धैर्निषेवितम् ।

विषयव्यवस्थापनं इत्यादिमहान्क्लेशः । जपयज्ञे तु तत्प्रसङ्गाभावात् अव्याक्षेपेणार्थप्रतीत्यासहजयोगद्वारा सहसासमाधौ निवेशनाच्च यज्ञान्तरेभ्यो जपयज्ञः प्रशस्ततमः' । इत्यादि तात्पर्यचन्द्रिकासूक्तिरनुसन्धेया ॥

[1] वासुदेव एकोव्यूहः, वासुदेव नारायणौद्वौव्यूहौ, सत्याच्युतपुरुषाः त्रयोव्यूहाः इति पाद्मसंहितायां क्रियापादे (१८ अध्याये ५६, ५७ श्लो). सङ्कर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धास्त्रय एवव्यूहा इति अहिर्बुध्न्य संहितादौ च व्यक्तम् । एकः परवासुदेवः वासुदेवसङ्कर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धाः चत्वारोव्यूहा इति लक्ष्मीतन्त्रादौ स्फुटम् । तदनेन गीतायास्सङ्ग्रहत्वमुपपादितं भवति ॥

इत्यादिवचनानि एतच्छ्रुतितात्पर्यं विशदयन्ति । एतत्तात्पर्येणैव "निरुपाधिक-मैश्वर्यादिक" मित्यादिभट्टार्योक्तिः अधिपत्नी भोगपत्नीभूताभ्यां भूनीळाभ्या-मधिकमहिमवती पत्नी, एतच्छ्रुतितात्पर्यनिर्णायकानि च—

"स्वातन्त्र्येण स्वरूपेण विष्णुपत्नीयमद्भुता ।
यतो जगद्भविष्यन्ती काचिदुन्मेषमृच्छति"। (अ. सं. ३. २६) इति ।
भगवद्यज्ञसंयोगात्पत्नी भगवतो ह्यहम् । ल. तं. ४. ४८ ।
निरुपाधि स्वतन्त्रा च स्वामिनी नःकृपानिधिः ॥५०॥२१८॥ इति ॥
तथा लक्ष्म्यास्स्वरूपञ्च श्रुणु वक्ष्ये समाहितः । वि. सं ।
गुणतश्च स्वरूपेण व्याप्तिस्साधारणी मता ॥
यथा मया जगद्व्याप्तं स्वरूपेण स्वभावतः ।
तया व्याप्तमिदं सर्वं नियन्त्री च तथेश्वरी ॥
मया व्याप्ता तथा साऽपि तया व्याप्तोऽहमीश्वरः ।
मम तस्याश्च सेनेश वैलक्षण्यमिदं श्रुणु ॥
मच्छेषभूता सर्वेषामीश्वरी वल्लभा मम ।
तस्याश्च जगतश्चाहमीश्वरो वेदविश्रुतः ।
अस्या मम च शेषं हि विभूतिरुभयात्मिका ।
इति श्रुतिशिरस्सिद्धं मच्छास्त्रेष्वपि मानद ॥
तथा भूमिश्च नीळा च शेषभूते मते मम ।
तथाऽऽत्मनाञ्च सर्वेषां ज्ञानतो व्याप्तिरिष्यते ॥
स्वरूपतस्तु न तयोर्व्याप्तिर्वेदान्तपारग ॥ इति ॥
युवां तु विश्वस्य विभू जगतःकारणं परम् ॥

इत्यहिर्बुध्न्यसंहिता लक्ष्मीतन्त्रविष्वक्सेनसंहिताभागवतादिवचनानि । वचनार्थस्त्वन्यत्र विचारितः । अत्र लक्ष्म्या अधिपत्नीत्वकथनेन पतिवत्पत्न्या अपि सृष्ट्यादियज्ञाधिकारः सृष्ट्यादियज्ञकर्तृत्वञ्च बोधितम् ॥

पूर्वतन्त्रे "जातिन्तु बादरायणोऽविशेषात्तस्मात् स्त्र्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्" (६-१-३-८) "स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात्" (६-१-४-१७) इति सूत्रद्वये पत्न्या अपि यज्ञाधिकारः पति-पत्न्योरेकमेव यागकर्तृत्वम्, इत्यादिकं स्फुटम्। अत्र ऐककर्म्यपदं प्रयुञ्जता जैमिनिना पत्न्या अनुमतिकर्तृत्वादिकमेवेति वदन्तः प्रत्युक्ताः। तदुक्तं भाट्टदीपिकायां भट्टकुमारिलानुयायिना खण्डदेवेन—"यदपि तस्स्वारस्यात्पुंस एव त्यागे कर्तृत्वं तस्या अप्यनुमतिद्वारा तदिति केषाञ्चिन्मतम्। तत् अनुमतेः फलसम्बन्धाश्रवणात् तद्द्वारकत्वे प्रमाणाभावेन पूर्वाधिकरणव्युत्पादिताधिकार-भङ्गापत्तेरुपेक्षितम्। यत्तु आख्यातोपात्तमेकत्वं सहाधिकारे नावकल्पत इति तन्न। एकवचनश्रवणादेव व्यासज्यवृत्त्यैककर्तृत्वस्य कल्पनात्। इतरथा कर्तृ-भेदात्सत्रवद्द्विवचनाद्यापत्तेः" इति। अत्र 'जातिन्तु बादरायण' इति पूर्वाधि-करणसिद्धान्तसूत्रानुसारेण "स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात्" इत्युत्तराधि-करणसिद्धान्तसूत्रे कर्मण्येकत्वमेकजातीयत्वमेवेति न तिरोहितं विदुषाम्। अत एव शास्त्रदीपिकाव्याख्याने सोमनाथीये दम्पत्योरेकजातीयत्यागकर्तृत्व-प्रतिपादनं सङ्गच्छते। यत्र तु विषयविशेषे एककर्तृत्वांशे विरोधादिकं तत्र त्वगत्या प्रमाणान्तरेण च प्रेरणानुमतिनिबन्धनमेव कर्तृत्वमित्यादिकं सुधीभि-रूह्यम्। एवं स्थिते वेदव्यासापरनामबादरायणसिद्धान्ते केषाञ्चिन्मीमां-सकैकदेशीनां सर्वत्र यागकर्तृत्वस्य प्रेरणानुमतिनिबन्धनत्वोक्तिरनुपादेया। तथा च सकलार्थसङ्ग्राहिका श्वेताश्वतरद्वितियाध्यायगा श्रुतिः "मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः युजे वां ब्रह्मपूर्व्यं नमोभिः" इति अत्र 'वां ब्रह्म' इति समानाधिकरणनिर्देशः एतेन श्वेताश्वतरप्रथमाध्याये "क्षरात्माना वीशते देव एक" इत्यत्र लक्ष्मीपतिरेव विवक्षितः पुंस्त्वञ्चाविवक्षितमिति सिद्धम्। "युजे वां ब्रह्मपूर्व्यं नमोभि" रिति श्रुतितात्पर्यं लक्ष्मीतन्त्रे—

नमो नित्यानवद्याय जगतस्सर्वहेतवे।
ज्ञानाय निस्तरङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने॥

वही हव्य कव्यों को और प्रदानों का तीर्थ कहा गया है ।।२।। जो सोम का पान करने वाला—विगत रजोगुण वाले—धर्म के ज्ञान रखने वाले—शान्त चित्त वाले—व्रतधारी—नियमों में स्थित और केवल ऋतु काल में ही गमन करने वाले हों—ऐसे ब्राह्मण होने चाहिए ।।३।। पञ्चाग्नि तपने वाले—वेदों का अध्ययन करने वाला—यजुर्वेद का ज्ञाता—वह्वृच—अत्रि सौपर्ण—त्रिमधु जो हो ब्रह्मी ब्राह्मण के श्राद्ध में रखना चाहिए ।।४।। त्रिणाचिकेत छन्दोग—ज्येष्ठ सामग—अथर्व शिर का अध्येता और विशेष करके रुद्राध्यायी ब्राह्मण ही श्राद्ध के योग्य होता है ।।५।। अग्नि होत्र करने में परायण—विद्वान्—न्याय का वेत्ता—षट् अङ्गों का ज्ञाता—मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग—इन दोनों का ही ज्ञाता और जो धर्म पाठक हो—ऋषियों के समान व्रतों का धारण करने वाला—ऋषीक—शान्त चित्त वाला—इन्द्रियों को जीत लेने वाला—ब्रह्मदेयानुसन्तान—गर्भशुद्ध—सहस्रद ब्राह्मण ही श्राद्ध कर्म के लिये उपर्युक्त होता है ।।६-७।।

चान्द्रायणव्रतचरःसत्यवादीपुराणवित् ।
गुरुदेवाग्निपूजासुप्रसक्तोज्ञानतत्परः ।।८

विमुक्तः सर्वतोधीरोब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः ।
महादेवार्च्चनरतोवैष्णवः पङ्क्तिपावनः ।।९

अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा ।
सत्री चदाननिरतो विज्ञेयः पङ्क्तिपावनः ।।१०

(युवानः श्रोत्रियाः स्वस्था महायज्ञपरायणाः ।
सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनः ।।
कुलानां श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विनः ।
अग्निचित् स्नातको विप्रो विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः) ।
मातपित्रोर्हिते युक्तः प्रातःस्नायी तथा द्विजः ।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पङ्क्तिपावनः ।।११

ज्ञाननिष्ठोमहायोगीवेदान्तार्थ विचिन्तकः ।
श्रद्धालुःश्राद्धनिरतोब्राह्मणःपंक्तिपावनः ।।१२

वेदविद्यारतः स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा।
अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१३
असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च।
सम्बन्धशून्यो विज्ञेयो ब्राह्मणःपंक्तिपावनः ॥१४

चान्द्रायण महाव्रत के चरण करने वाला—सत्यवादी—पुराणों का ज्ञान रखने वाला—गुरु, देव और अग्नि की पूजा में प्रसक्त रहने वाला—ज्ञान में तत्पर ब्राह्मण होना चाहिए ॥८॥ विमुक्त—सभी प्रकार से धीर—ब्रह्मभूत—द्विजों में उत्तम—महादेवजी की अर्चना में रति रखने वाला—वैष्णव—पंक्ति में पावन ब्राह्मण श्राद्ध के उपयुक्त होता है ॥९॥ जो नित्य ही अहिंसा में रति रखने वाला हो और नित्य ही किसी का भी प्रति ग्रह लेने वाला न हो, सत्री तथा दान करने में निरत हो उसे ही पंक्तिपावन समझना चाहिए ॥१०॥ युवा—श्रोत्रिय—स्वस्थ—महायज्ञ में परायण—सावित्री के जाप में निरत रहने वाले ब्राह्मण ही पंक्तिपावन हुआ करते हैं। कुलों के श्रुतवान्—शील वाले—तपस्वी—अग्निचित् स्नातक जो विप्र होते हैं वे ही पंक्तिपावन विप्र हुआ करते हैं। जो अपने माता-पिता के हित-कार्य में निरत रहते हैं—प्रातः काल में ही नित्य स्नान करने वाले हैं—अध्यात्म के वेत्ता—मुनि और दान्त अर्थात् दमनशील जो होते हैं वे ही ब्राह्मण पंक्तिपावन समझने चाहिऐं ॥११॥ जो ज्ञान में निष्ठा रखने वाला—महायोगी—वेदान्तों के अर्थ का विशेष रूप से चिन्तन करने वाला—श्रद्धालु—श्राद्ध करने में निरत ब्राह्मण होता है वही पंक्ति पावन विप्र कहा जाता है ॥१२॥ वेद विद्या में रति रखने वाला—स्नात—ब्रह्मचर्य्य में सदा परायण—अथर्वण—मुमुक्षु जो ब्राह्मण होता है उसी को पंक्तिपावन कहा जाता है ॥१३॥ असमान प्रवरों वाला—सगोत्रता से रहित—सम्बन्ध से शून्य ही ब्राह्मण पंक्तिपावन समझना चाहिए ॥१४॥

भोजयेद्योगिनं शान्तं तत्त्वज्ञानरतं यतः।
अभावे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा ॥१५
तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सङ्गवर्जितम्।
सर्वालाभेसाधकं वा गृहस्थमपिभोजयेत् ॥१६

प्रकृतेर्गु णतत्त्वज्ञोयस्याश्नाति यतिर्हविः ।
फलं वेदान्तवित्तस्य सहस्रादतिरिच्यते ।।१७

तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम् ।
भोजयेद्धव्यकव्येषुअलाभादितरान्द्विजान् ।।१८

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदानेहव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ।।१९

मातामहं मातुलञ्च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिम्बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ।।२०

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
पैशाची दक्षिणाशा हि नेहाऽमुत्रफलप्रदा ।।२१

जो योगी हो—शान्त स्वभाव से समन्वित हो और तत्त्व ज्ञान में रति रखने वाला हो उसी को श्राद्ध में भोजन कराना चाहिए । यदि ऐसा ब्राह्मण न मिले तो अभाव में नैष्ठिक—दान्त और उपकार करने वाले ब्राह्मण को भोजन करावे ।।१५।। यदि ऐसे का भी लाभ न हो तो गृहस्थ मुमुक्षु और सङ्ग से रहित किसी ब्राह्मण को भोजन करावे । सभी के लाभ न होने पर किसी साधना करने वाले गृहस्थ ब्राह्मण को ही भोजन कराना चाहिए ।।१६।। प्रकृति के गुणों के तत्त्व को जानने वाला यति यदि हवि का अशन करता है तो वेदान्त के वित्त का फल सहस्र से भी अत्यधिक होता है ।।१७।। इसलिये अपने प्रयत्न के द्वारा ईश्वर के ज्ञान में तत्पर योगीन्द्र को ही भोजन कराना चाहिए । हव्य कव्यों अलाभावितर द्विजों को ही भोजन करावे ।।१८।। हव्य कव्य के प्रदान करने में यह प्रथम कल्प होता है । यह अनुकल्प सदा सत्पुरुषों के द्वारा अनुष्ठित जानना चाहिए ।।१९।। मातामह—मातुल—भगिनी का पुत्र—श्वशुर—गुरु—धेवता—विट्पति—वन्धु—ऋत्विक्—याज्य इनको भी भोजन कराना चाहिए ।।२०।। श्राद्ध में कभी भी मित्र को भोजन नहीं कराना चाहिए । इसका संग्रह धनों के द्वारा ही करना चाहिए । पैशाची दक्षिण दिशा यहाँ पर और परलोक में भी फल का प्रदान नहीं किया करती है ।।२१।।

कामं श्राद्धेऽर्च्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भववि प्रेत्य निष्फलम् ॥२२
ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिवशाम्यति ।
तस्मैहव्यंनदातव्यं न हिभस्मनिहूयते ॥२३
यथोषरे वीजमुप्त्वा न वप्तालभतेफलम् ।
तथाऽनृचेहविर्दत्वा न दानाल्लभतेफलम् ॥२४
यावतो ग्रसते पिण्डान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दाप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान् ॥२५
अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः ।
यत्रैते भुञ्जते हव्यं तद्भवेदासुरं द्विजाः ॥२६
यस्यवेदश्च वेदी च विच्छिद्येतेत्रिपूरुषम् ।
सवैदुर्ब्राह्मणो नार्हःश्राद्धादिषुकदाचन ॥२७
शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलानाञ्च याजकः ।
वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धवः ॥२८

श्राद्ध में स्वेच्छा पूर्वकमित्र का अर्चन करे । द्वेष रखने वाले के द्वारा मुक्त हवि मरकर निष्फल ही हुआ करता है ॥२२॥ अनवीयान जो ब्राह्मण होता है वह तृण की अग्नि के समान ही शमित हो जाया करता है । ऐसे अध्ययन हीन ब्राह्मण को हव्य कभी नहीं देना चाहिए । भस्म में कभी भी हवन नहीं किया जाता है ॥२३॥ जिस प्रकार से ऊषर में (अन्न उपजाऊ) भूमि में बीज का वपन करके वह बोने वाला उसका कोई भी फल प्राप्त नहीं किया करता है । ठीक उसी भाँति जो ऋचाओं के ज्ञान से हीन ब्राह्मण है उसमें हवि का दान करके उस दान से फल का लाभ नहीं प्राप्त किया करता है ॥२४॥ जो मन्त्रों का ज्ञाता नहीं है ऐसा ब्राह्मण हव्य-कव्यों में जितने ही पिण्डों का ग्रसन किया करता है उतने ही वह मरकर परम स्थूल दीप्त लोहे के गुड़ों का अशन किया करता है अर्थात् लोहे के गोले जो अत्यन्त गर्म होते हैं उन्हें ग्रस्त करते हैं ॥२५॥ हे द्विजगण ! विद्या और कुल से युक्त होते हुए भी जो हीन चरित्र वाले अधम नर होते हैं वे जहाँ पर हव्य का भोजन किया करते हैं उसको

आसुर समझना चाहिए अर्थात् उसका फल असुर ग्रहण कर लिया करते हैं ।।२६।। जिसका वेद और वेदी तीन पुरुषों को विच्छिन्न कर देते हैं वह बहुत ही दुर्ब्राह्मण होता है और ऐसा बुरा ब्राह्मण कभी भी श्राद्ध आदि सत्कर्मों के योग्य नहीं होता है ।।२७।। शूद्र का प्रेष्य—राजा का भृत और वृषलों का याजक वध तथा बन्ध के द्वारा उपजीविका करने वाला ये छै ब्रह्म बन्धु हुआ करते हैं ।।२८।।

दत्त्वानुयोगो द्रव्यार्थं पतितान्मनुरब्रवीत् ।
वेदविक्रयिणो ह्येते श्राद्धादिषु विगर्हिताः ।।२९
सुतविक्रयिणो ये तु परपूर्वासमुद्भवाः ।
असामान्यान्यजन्ते ये पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः ।।३०
असंस्कृताध्यापका ये भृत्यर्थेऽध्यापयन्ति ये ।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः ।।३१
वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः ।
कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः ।।३२
यस्याऽश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः ।
न तस्य तद्भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम् ।।३३
अनाश्रमी द्विजो यः स्यादाश्रमी वा निरर्थकः ।
मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेयाः पङ्क्तिदूषकाः ।।३४
दुश्चर्मा कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः ।
विद्धप्रजननश्चैव तेन क्लीवोऽथ नास्तिकः ।।३५

महर्षि मुन ने देकर द्रव्य के लिये जो अनुयोग है उनको पतित कहा है । जो वेद का विक्रय किया करते हैं अर्थात् धन ग्रहण करके वेद पढ़ाते हैं ये ब्राह्मण श्राद्ध आदि कर्मों में निन्दित कहे गये हैं ।।२९।। जो सुत के विक्रय करने वाले हैं और परपूवा समुद्भवहैं—जो असामान्यों का यजन किया करते हैं वे सभी पतित कीर्त्तित किये गये हैं ।।३०।। जो असंस्कृत अध्यापक हैं और केवल भृति के लिये ही अध्यापन कर्म किया करते हैं तथा वेदों का भी अध्ययन केवल धनार्जन के लिये ही किया करते हैं वे ब्राह्मण भी पतित ही कहे गये हैं ।।३१।। वृद्ध, श्रावक, निर्ग्रन्थ, पञ्चरात्र

के ज्ञाता, कापालिक, पाशुपत और पाषण्ड करने वाले तथा इसी प्रकार वाले ये जिसके हवि का अशन किया करते हैं। ये दुष्ट आत्मा वाले और तामस होते हैं उसका श्राद्ध ही नहीं होता है। मरने के पश्चात् तथा इस लोक से भी वह श्राद्ध फल का प्रदान करने वाला नहीं हुआ करता है। ॥३२-३३॥ जो द्विज आश्रम हीन हो अथवा आश्रम में रहते हुए भी निरर्थक हो तथा जो मिथ्या आश्रम का धारण करने वाला हो—ये सभी विप्र पंक्ति को दूषित करने वाले ही समझने चाहिए ॥३४॥ दुष्ट चर्म वाला, बुरे नखों वाला, कुष्ठ रोग से युक्त, श्वित्री (सफेद कोढ़ वाला), कृष्ण वर्ण के दाँतों वाला, विद्ध प्रजनन, क्लीव और नास्तिक ये सभी ब्राह्मण श्राद्धादि कर्मों के योग्य नहीं होते हैं ॥३५॥

मद्यपौवृषलीसक्तो वीरहादिधिषूपतिः।
अगारदाहीकुण्डाशीसोमविक्रयिणोद्विजाः ॥३६
परिवेत्ता च हिंस्रश्च परिवित्तिर्निराकृतिः।
पौनर्भवः कुसीदश्च तथा नक्षत्रदर्शकः ॥३७
गीतवादित्रशीलश्चव्याधितःकाणएवच।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णातथैवच ॥३८
अन्नदूपीकुण्डगोलौअभिशस्तोऽथदेवलः।
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैवनित्यंभार्यानुवर्त्तितः ॥३९
मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च।
गोत्रस्पृक् भ्रष्टशौचश्च काण्डस्पृष्टस्तथैवच ॥४०
अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवकः।
समुद्रायायी कृतहा तथा समयभेदकः ॥४१
वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दापरस्तथा।
द्विजनिन्दारतश्चैव वर्ज्याः श्रादादिकर्मणि ॥४२

मद्य पान करने वाला, वृषली में आसक्त, वीरहा, दिधिषूपति, अगार के दाह करने वाला, कुण्डाशी, सोम का विक्रय करने वाला द्विज, परिवेत्ता, हिंसा, परिवित्ति, निराकृति, पौनर्भव, कुसीद तथा नक्षत्रों को देखने वाला द्विज श्रद्धादि में वर्जित हुआ करते हैं ॥३६-३७॥ जो गीतों के

गायन तथा वादित्रों के वादन करने के स्वभाव वाला हो, व्याधि से युक्त, काणा, हीन अङ्गों वाला, अतिरिक्त अङ्ग वाला, अवकीर्ण, अन्नदूषी, कुण्ड, गोलक, अभिशस्त, देवल, मित्र से द्रोह करने वाला, पिशुन और जो नित्य ही अपनी भार्या का अनुवर्त्ती हो ऐसा द्विज भी श्राद्धादि में वर्जित होता है ।।३८-३९।। माता-पिता का त्याग तथा गुरु का त्याग करने वाला, स्त्री का त्याग करने वाला, गोत्रस्पृक्, शौच की भ्रष्टता वाला, काण्ड स्पृष्ट, सन्तान से रहित, कूट साक्षी (झूठी गवाही देने वाला), याचना करने वाला, रङ्ग से जीविका करने वाला, समुद्र में यात्रा करने वाला, किये हुए उपकार का हनन करने वाला, समय का भेदक, वेदों की निन्दा में रति रखने वाला, देवों की निन्दा में परायण, द्विजों की निन्दा में तत्पर ये सभी ब्राह्मण श्राद्ध आदि सत्कर्मों में वर्जित होते हैं ।।४०-४२।।

कृतघ्नःपिशुनः क्रूरोनास्तिकोवेदनिन्दकः ।
मित्रध्रुक्कुहकश्चैव विशेषात्पङ्क्तिदूषकः ।।४३
सर्वे पुनरभोज्यान्ना न दानार्हाःस्वकर्मसु ।
ब्रह्महाचाभिशस्ताश्च वर्जनीयाःप्रयत्नतः ।।४४
शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः सन्ध्योपासनवर्जितः ।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ।।४५
अधीतनाशनश्चैव स्नानदानविवर्जितः ।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ।।४६
बहुनाऽत्रकिमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते ।
निन्दितानाचरन्त्येवर्ज्याःश्राद्धेप्रयत्नतः ।।४७

कृतघ्न—पिशुन—क्रूर—नास्तिक—वेदनिन्दक-मित्रों से द्रोह करने वाला—कुहक ये विशेष रूप से पंक्ति दूषक होते हैं ।।४३।। ये सभी भोजन कराने योग्य नहीं होते हैं और अपने कर्मों में दान के योग्य भी नहीं होते हैं। ब्रह्महा और अभिशस्त भी प्रयत्न पूर्वक वर्जन के योग्य होते हैं ।।४४।। शूद्र के अन्न रस से पुष्ट अङ्गों वाला तथा सन्ध्योपासन से रहित और महायज्ञ से विहीन ब्राह्मण भी पंक्ति दूषित होता है ।।४५।। अध्ययन का नाश करने वाला—स्नान तथा दान से रहित—तामस और

राजस ब्राह्मण भी पंक्ति दूषक होता है ।।४६।। अत्यधिक यहाँ पर कहने की क्या आवश्यकता है यही समझ लेना चाहिए कि जो विहित विधियों को नहीं किया करते हैं तथा जो निन्दित एवं निषिद्ध कर्म हैं उनका ही सदा समाचरण किया करते हैं वे सभी श्राद्ध में प्रयत्न पूर्वक वर्जन करने के योग्य होते हैं ।।४७।।

२२—श्राद्धकल्पवर्णन (३)

गोमयेनोकैंर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः ।
सन्निमन्त्र्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः सन्निमन्त्रयेत् ।।१
श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्यच ।
असम्भवे परेद्युर्वायथोक्तैर्लक्षणैर्युतान् ।।२
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम् ।
अन्योऽन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः ।।३
तैर्ब्राह्मणैः सहाऽश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः ।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परांगतिम् ।।४
आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते ।
वसेयुर्नियताःसर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः ।।५
अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तःसत्यवादीसमाहितः ।
भारंमैथुनमध्वानं श्राद्धकृद्वर्जयेद्ध्रुवम् ।।६
आमन्त्रितोब्राह्मणोवैयोऽन्यस्मैकुरुतेक्षणम् ।
स यातिनरकंघोरं सूकरत्वम्प्रयातिच ।।७

महामहर्षि व्यासदेवजी ने कहा—गोमय से और जल से भूमि का शोधन करके समाहित होकर समस्त द्विजों का भली भाँति नियन्त्रण करके साधुओं के द्वारा सन्निमन्त्रित करना चाहिए ।।१।। यह कहना चाहिए कि कल मेरे यहाँ श्राद्ध होगा । पहिले ही दिन में ब्राह्मणों का अभि-पूजन कर देवे यदि दूसरे दिन में पूजन करना असम्भव हो तो ऐसा करे । ब्राह्मण यथोक्त लक्षणों से युक्त होने चाहिए ।।२।। उसके पितृगण ने यह

गायन तथा वादित्रों के वादन करने के स्वभाव वाला हो, व्याधि से युक्त, काणा, हीन अङ्गों वाला, अतिरिक्त अङ्ग वाला, अवकीर्ण, अन्नदूषी, कुण्ड, गोलक, अभिशस्त, देवल, मित्र से द्रोह करने वाला, पिशुन और जो नित्य ही अपनी भार्या का अनुवर्त्ती हो ऐसा द्विज भी श्राद्धादि में वर्जित होता है ।।३८-३९।। माता-पिता का त्याग तथा गुरु का त्याग करने वाला, स्त्री का त्याग करने वाला, गोत्रस्पृक्, शौच की भ्रष्टता वाला, काण्ड स्पृष्ट, सन्तान से रहित, कूट साक्षी (झूठी गवाही देने वाला), याचना करने वाला, रङ्ग से जीविका करने वाला, समुद्र में यात्रा करने वाला, किये हुए उपकार का हनन करने वाला, समय का भेदक, वेदों की निन्दा में रति रखने वाला, देवों की निन्दा में परायण, द्विजों की निन्दा में तत्पर ये सभी ब्राह्मण श्राद्ध आदि सत्कर्मों में वर्जित होते हैं ।।४०-४२।।

कृतघ्नःपिशुनः क्रूरोनास्तिकोवेदनिन्दकः ।
मित्रध्रुक्कुहकश्चैव विशेषात्पङ्क्तिदूषकः ।।४३
सर्वे पुनरभोज्यान्ना न दानार्हाःस्वकर्मसु ।
ब्रह्महाचाभिशस्ताश्च वर्जनीयाःप्रयत्नतः ।।४४
शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः सन्ध्योपासनवर्जितः ।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ।।४५
अधीतनाशनश्चैव स्नानदानविवर्जितः ।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पङ्क्तिदूषकः ।।४६
बहुनाऽत्रकिमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते ।
निन्दितानाचरन्त्येववर्ज्याःश्राद्धेप्रयत्नतः ।।४७

कृतघ्न—पिशुन—क्रूर—नास्तिक—वेदनिन्दक–मित्रों से द्रोह करने वाला—कुहक ये विशेष रूप से पंक्ति दूषक होते हैं ।।४३।। ये सभी भोजन कराने योग्य नहीं होते हैं और अपने कर्मों में दान के योग्य भी नहीं होते हैं । ब्रह्महा और अभिशस्त भी प्रयत्न पूर्वक वर्जन के योग्य होते हैं ।।४४।। शूद्र के अन्न रस से पुष्ट अङ्गों वाला तथा सन्ध्योपासन से रहित और महायज्ञ से विहीन ब्राह्मण भी पंक्ति दूषित होता है ।।४५।। अध्ययन का नाश करने वाला—स्नान तथा दान से रहित—तामस और

राजस ब्राह्मण भी पंक्ति दूषक होता है ।।४६।। अत्यधिक यहाँ पर कहने की क्या आवश्यकता है यही समझ लेना चाहिए कि जो विहित विधियों को नहीं किया करते हैं तथा जो निन्दित एवं निषिद्ध कर्म हैं उनका ही सदा समाचरण किया करते हैं वे सभी श्राद्ध में प्रयत्न पूर्वक वर्जन करने के योग्य होते हैं ।।४७।।

२२—श्राद्धकल्पवर्णन (३)

गोमयेनोकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः ।
सन्निमन्त्र्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः सन्निमन्त्रयेत् ।।१
श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्यच ।
असम्भवे परेद्युर्वायथोक्तैर्लक्षणैर्युतान् ।।२
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम् ।
अन्योऽन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवाः ।।३
तैर्ब्राह्मणैः सहाऽश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः ।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परांगतिम् ।।४
आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते ।
वसेयुर्नियताःसर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः ।।५
अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तःसत्यवादीसमाहितः ।
भारंमैथुनमध्वानं श्राद्धकृद्वर्जयेद्ध्रुवम् ।।६
आमन्त्रितोब्राह्मणोवैयोऽन्यस्मैकुरुतेक्षणम् ।
स यातिनरकंघोरं सूकरत्वम्प्रयातिच ।।७

महामहर्षि व्यासदेवजी ने कहा—गोमय से और जल से भूमि का शोधन करके समाहित होकर समस्त द्विजों का भली भाँति नियन्त्रण करके साधुओं के द्वारा सन्निमन्त्रित करना चाहिए ।।१।। यह कहना चाहिए कि कल मेरे यहाँ श्राद्ध होगा । पहिले ही दिन में ब्राह्मणों का अभि-पूजन कर देवे यदि दूसरे दिन में पूजन करना असम्भव हो तो ऐसा करे । ब्राह्मण यथोक्त लक्षणों से युक्त होने चाहिए ।।२।। उसके पितृगण ने यह

श्रवण करके कि अब श्राद्ध करने का काल उपस्थित हो गया है वे मन से अन्योन्य का ध्यान करके मन के तुल वेग वाले नीचे उतर आते हैं ।।३।। वे ब्राह्मणों के साथ अशन किया करते हैं और वे पितर अन्तरिक्षगामी होते हैं। वहाँ पर वायु के स्वरूप में ही स्थित होते हैं तथा भोजन करके परागति को प्राप्त हो जाते हैं ।।४।। जो ब्राह्मण श्राद्ध के काल के उपस्थित होने पर आमन्त्रित होते हैं उन सबको नियत होकर ब्रह्मचर्य में परायण होते हुए ही निवास करना चाहिए ।।५।। जो श्राद्ध के करने वाला है उसे त्वरा से (जल्दवाजी) रहित विना क्रोध वाला—अभक्त, सत्यवादी और परम समाहित होना चाहिए तथा श्राद्ध कर्त्ता को भार, मैथुन और मार्ग गमन को भी निश्चित रूप से वर्जित कर देना चाहिए। ।।६।। जो ब्राह्मण आमन्त्रित हो वह दूसरे के लिये क्षण करता है तो वह घोर नरक में जाता है फिर सूकर की योनि में जन्म लिया करता है ।।७।।

आमन्त्र्यित्वा यो मोहादन्यञ्चाऽऽमन्त्रयेद् द्विजः।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते ।।८

श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ विधीयते ।।९

निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पापभोजनाः ।।१०

निमन्त्रितस्तुयःश्राद्धेकुर्याद्वैकलहंद्विजः।
भवन्ति पितरस्तस्यतन्मासंमलभोजनाः ।।११

तस्मान्निमन्त्रितः श्राद्धे नियतात्मा भवेद् द्विजः।
अक्रोधनः शौचपरः कर्त्ता चैव जितेन्द्रियः ।।१२

श्वोभूतेदक्षिणांगत्वादिशंदर्भान्समाहितः।
समूलानाहरेद्वारिदक्षिणाग्रान्सुनिर्मलान् ।।१३

दक्षिणाप्रवणांस्निग्धं विभक्तं शुभलक्षणम्।
शुचि देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् ।।१४

जो द्विज आमन्त्रण करके मोह से फिर अन्य को आमन्त्रित करे वह उससे भी अधिक पापी है और विष्ठा की कीट बना करता है ।।८।। श्राद्ध में निमन्त्रित किया हुआ विप्र यदि मैथुन करता है तो वह ब्रह्महत्या का पाप भागी होता है और फिर किसी तिर्यक् की योनि में जन्म लेता है ।।९।। जो निमन्त्रित विप्र दुष्ट बुद्धि वाला मार्ग का गमन करता. है तो उसके पितर उस मास में पाप के भोजन करने वाले होते हैं ।।१०।। जो द्विज श्राद्ध में निमन्त्रित होकर कलह करता है तो पितृगण उस मास में मल का भोजन करने वाले होते हैं ।।११।। इसलिये श्राद्ध में निमन्त्रित विप्र को नियत आत्मा वाला अवश्य ही होना चाहिए । क्रोध से एक दम हीन—शौच में परम परायण—कर्त्ता और इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला होना चाहिए ।१२। प्रातःकाल होने पर दक्षिण दिशा में जाकर समूल दर्भों का आहरण करना चाहिए और दक्षिण में ही अग्रभाग वाले सुनिर्मल उनको द्वार पर रखे ।।१३।। दक्षिणा प्रवण—स्निग्ध—विभक्त और शुभ लक्षण वाले शुचि देश को जो विविक्त हो गोबर से लेपन करे ।।१४।।

नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव नाम्बुषु ।
विविक्तेषुच तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ।।१५
पारक्येभूमिभागेतु पितृणांनैवनिर्वपेत् ।
स्वामिभिस्तद्विहन्येतमोहाद्यत्क्रियतेनरैः ।।१६
अटव्यःपर्वताःपुण्यास्तीर्थान्यायतनानिच ।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नह्यतेषुपरिग्रहः ।।१७
तिलान्प्रविकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजम् ।
असुरोपहतं श्राद्धं तिलैः शुध्यत्यजेन तु ।।१८
ततोऽन्नम्बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमध्यगम् ।
चोष्यंपेयं ससृतञ्चयथाशक्ति प्रकल्पयेत् ।।१९
ततो निवृत्ते मध्याह्नेलुप्तरोमनखान्द्विजान् ।
अवगम्य यथामार्गम्प्रयच्छेद्दन्तधावनम् ।।२०
आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरन्ते पृथक पृथक ।

तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयञ्च पृथग्विधम् ।
पात्रैरौदुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ॥२१

नदी के तीरों पर—तीर्थों में—अपनी भूमि में—जलीय स्थानों में नहीं—विविक्त (एकान्त) स्थला में सदा दिये हुए श्राद्ध से पितृगण परम सन्तुष्ट हुआ करते हैं ॥१५॥ पारक्य भूमि भाग में पितृगणों के लिये कभी भी निर्वपम नहीं करना चाहिए । उसके स्वामियों के द्वारा उसका विशेष हनन कर दिया जाया करता है जो कि मोह के वशीभूत होकर मनुष्यों के द्वारा किया जाता है ॥१६॥ अटवियाँ—पर्वत—पुण्य स्थल—तीर्थ और आयतन ये सब स्वामि रहित ही होते हैं इनमें परिग्रह नहीं होता है ॥१७॥ वहाँ पर जहाँ श्राद्ध कर्म किया जावे तिलों को प्रकीर्ण कर देवे और सभी ओर से अज का वन्धन कर देना चाहिए । असुरों के द्वारा उपहत श्राद्ध अज के द्वारा तिलों से शुद्ध होता है ॥१८॥ इसके पश्चात् अन्न को बहुत संस्कारों वाला करके प्रस्तुत करे जिसमें एक ही व्यञ्जन मध्यगामी न हो । चोष्य—पेय और संसृत भोजन शक्ति के अनुसार प्रकल्पित करना चाहिए ॥१९॥ इसके उपरान्त मध्याह्न काल के निवृत्त हो जाने पर द्विजों को जिनके रोम और नख लुप्त हों अवगमन करके यथा मार्ग दन्त धावन देना चाहिए ॥२०॥ आसध्वम्—अर्थात् उपविष्ट होइये—यह कहकर उनको पृथक्-पृथक् आस्थित करे । तैल—अभ्यंजन—स्नान—स्नानीय पृथक् प्रकार युक्त वैश्व दैवत्य पूर्वक उदुम्बर के पात्रों से समर्पित करना चाहिए ॥२१॥

ततःस्नानान्निवृत्तेभ्यःप्रत्युत्थायकृताञ्जलिः ।
पाद्यमाचमनीयञ्च सम्प्रयच्छेद्यथाक्रमम् ॥२२
ये चात्र विश्वदेवानां द्विजाः पूर्वं निमन्त्रिताः ।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहतानि च ॥२३
दक्षिणामुखमुक्तानि पितृणामासनानि च ।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रोक्षितानितिलोदकैः ॥२४
तेषूपवेशयेदेतानासनं संम्पृशन्नपि ।
आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरंस्ते पृथक् पृथक् ॥२५

द्वौदंवेप्राङ् मुखौ पित्रेत्रयश्चोदङ् मुखास्तथा ।
एकैकं तत्र दैवंतु पितृमातामहेष्वपि ॥२६

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम् ।
पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम् ॥२७

अपिवाभोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
श्रुतशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम् ॥२८

इसके उपरान्त स्नान से निवृत्त होने वालों को उनकर कृताञ्जलि होकर यथाक्रम पाद्य और आचमनीय अर्पित करे ॥२२॥ जो यहाँ पर विश्वदेवों के द्विज पहिले निमन्त्रित हों उनके आसन पूर्व की ओर मुख वाले होंवे और वे त्रिदर्भों से उपहृत होने चाहिए ॥२३॥ दक्षिण मुख मुक्त पितृगणों के आसन होने चाहिए जो दक्षिणाग्र वाले दर्भों में तिलः सहित जल के द्वारा प्रोक्षित होने चाहिए ॥२४॥ उन आसनों पर इनको आसनों का स्पर्श करते उपवेशित करे। उस समय में भी 'आसध्वम्'— ऐसा उच्चारण करके ही उपवेशित करना चाहिए और वे पृथक्-पृथक् उपविष्ट हो जावें ॥२५॥ जो दो दैव के हों उन्हें पूर्व की ओर मुख वाले उपवेशित करे। पितृगण के तीनों को उत्तर की ओर मुख वाले विराजमान करे। उनमें एक-एक दैव है जो पितृ मातामहों में भी होता है। ॥२६॥ इसमें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिए क्योंकि विस्तार सक्रिया—देशकाल—शौच—ब्राह्मण सम्पदा इन पाँचों का हनन किया करता है अतएव विशेष विस्तार की कभी भी इच्छा न करे ॥२७॥ अथवा किसी एक ही वेदों का पारगामी ब्राह्मण को भोजन करा देना चाहिए किन्तु वह ब्राह्मण श्रुत—शील आदि सभी सद्गुणगणों से सुपम्पन्न होना चाहिए और जो बुरे लक्षण हैं उन से वर्जित भी होना चाहिए ॥२८॥

उद्धृत्यपात्रेचान्नं तत्सर्वस्मात्प्रकृतात्ततः ।
देवतायतने वासौ निवेद्यान्यत्प्रवर्त्तयेत् ॥२९

प्राश्येदन्नं तदग्नौ तु दद्याद्वै ब्रह्मचारिणे ।
तस्मादेकमपिश्रेष्ठं विद्वांसभोजवेद्द्विजम् ॥३०

भिक्षुकोब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः ।
उपविष्टस्तुयःश्राद्धेकामंतमपिभोजयेत् ।।३१
अतिथिर्यस्य नाऽश्नाति न तच्छ्राद्धम्प्रशस्यते ।
तस्मात्प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्याह्यतिथयो द्विजैः ।।३२
आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जतेये द्विजातयः ।
काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैवन संशयः ।।३३
हीनाङ्गःपतितःकुष्ठीव्रणयुक्तस्तुनास्तिकः ।
कुक्कुटः शूकरश्वानौवर्ज्याःश्राद्धेषुदूरतः ।।३४
वीभत्सुमशुचिं नग्नंमत्तं धूर्त्तं रजस्वलाम् ।
नीलकाषायवसनपाषण्डांश्च विवर्जयेत् ।।३५

उस सब प्रकृत से अन्न को पात्र में उद्धृत करके इसे देवतायतन में निवेदन करके अन्य को प्रवर्त्तित कर देना चाहिए ।।२६।। उस अन्न को अग्नि में प्राशित कर देवे और ब्रह्मचारी को दे देना चाहिए । इसलिये एक ही किसी परमश्रेष्ठ विद्वान् द्विज को भली भाँति भोजन कराना चाहिए ।।३०।। कोई भिक्षुक अथवा ब्रह्मचारी भोजन के लिये उपस्थित हो जावे और जो श्राद्ध में इच्छा पूर्वक उपविष्ट हो जाय तो उसको भी भोजन करा देना चाहिए ।।३१। जिसका अतिथि अशन नहीं किया करता है वह श्राद्ध प्रशस्त नहीं कहा जाता है । इसलिये द्विजों के द्वारा सभी प्रकार के प्रयत्न अतिथियों को श्राद्ध में पूजा करनी चाहिए ।।३२।। आतिथ्य से रहित श्राद्ध में जो द्विजातिगण स्वयं भोजन किया करते हैं ये सब कौआ की योनि में प्रपन्न होते हैं और दाता भी वही योनि प्राप्त करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।३३।। हीन अङ्गों वाला—पतित—कोढ़ी—व्रण से युक्त—नास्तिक—मुर्गा—श्वान—शूकर इन सबको श्राद्धों में दूर से ही वर्जित कर देना चाहिए ।।३४।। वीभत्सु—अशुचि—नग्न—मत्त—धूर्त्त—रजस्वला–नीले और काषाय वस्त्र धारण करने वाले—पाषण्डी को भी श्राद्ध में वर्जित कर देवे ।।३५।।

यत्तत्र क्रियते कर्म पैतृके ब्राह्मणान्प्रति ।
तत्सर्वमेव कर्त्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम् ।।३६

यथोपविष्टन् सर्वांस्तानलंकुर्याद्विभूषणैः ।
स्रग्दामभिःशिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनैः ॥३७

ततस्त्वावाहयेद्देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
उदङ्मुखो यथान्यायं विश्वेदेवास इत्यृचा ॥३८

द्वे पवित्रे गृहीत्वाऽस्य भाजने क्षालिते पुनः ।
शन्नो देवी जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा ॥३९

यादिव्याइतिमन्त्रेणहस्तेत्वर्घं विनिक्षिपेत् ।
प्रदद्याद्गन्धमाल्यानिधूपादीनिचशक्तितः ॥४०

अपसव्यं ततःकृत्वापितृणांदक्षिणामुखः ।
आवाहनं ततःकुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचाबुधः ॥४१
आवाह्यतदनुज्ञातोजपेदायान्तुनस्ततः ।
शन्नोदेव्योदकंपात्रेतिलोऽसीतितिलांस्तथा ॥४२

पैतृक विधान जो भी वहाँ पर श्राद्ध में कर्म ब्राह्मणों के प्रति किया जावे वह सभी कर्म वैश्यदैवत्य पूर्वक ही करना चाहिए अर्थात् वैश्वदैवत्य पहिले सब करना अत्यावश्यक है ॥३६॥ ठीक विधि से समुपविष्ट हुए उन सब ब्राह्मणों को विभूषण—माला—शिरोवेष्टन—धूप–चन्दनानुलेपन आदि से समलंकृत करना चाहिए । इसके उपरान्त ब्राह्मणों की अनुज्ञा से देवों का आवाहन करे । उत्तर की ओर मुख करके "विश्वेदेवास"–इत्यादि ऋचा के द्वारा आवाहन करना चाहिए ॥३७-३८॥ दो पवित्रा ग्रहण करके इसके पात्र में फिर उन्हें क्षालित करे "शन्नो देवी"–इत्यादि मन्त्र से जल का क्षेप करे और "यवोऽसि"—इत्यादि मन्त्र से हाथ में अर्घ का विनिक्षेप करे । फिर गन्ध, माला, धूप आदि का समर्पण अपनी शक्तिके ही अनुसार करना चाहिए ।३९-४०। इसके उपरान्त बुध पुरुष को अपसव्य हो दक्षिण की ओर मुख करके पितृगण का आवाहन 'उशन्तस्त्वा' इत्यादि ऋचा से करना चाहिए ॥४१॥ आवाहन करके फिर 'आयान्तु नः' इसको जपे और "शन्नो देवी" इससे पात्र उदक को "तिलोऽसि"–इत्यादि के द्वारा तिलों का क्षेप करना चाहिए ॥४२॥

क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वंदत्त्वा हस्तेषु वा पुनः ।
संस्रवांश्च ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहितः ।।४३

पितृभ्यः स्थानमेतच्चन्युब्जपात्रंनिधापयेत् ।
अग्नौकरिष्यन्नादायपृच्छेदन्नंघृतप्लुतम् ।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवित् ।।४४

यज्ञोपवीतिना होमःकर्त्तव्यःकुशपाणिना ।
प्राचीनावीतिनापित्र्यंवैश्वदेवन्जुहोमवित् ।।४५

दक्षिणं पातयेज्जानु देवान् परिचरन्सदा ।
पितृणां परिचर्यासु पातयेदितरं तथा ।।४६

सोमाय वै पितृमते स्वधानम इति ब्रुवन् ।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधेतिजुहुयात्ततः ।।४७

अग्न्यभावेतु विप्रस्य प्राणावेवोपपादयेत् ।
महादेवान्तिके वाथगोष्ठेवा सुसमाहितः ।।४८

ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणां दिशम् ।
गोमयेनोपलिप्याथ स्थानंकुर्यात्ससैकतम् ।।४९

अर्घं का क्षेह करके पूर्व की भाँति ही हाथों में देकर फिर परम समाहित होकर पात्र में सभी संस्तवों को करे ।।४३।। यह पितृगण के लिये स्थान है—न्युब्ज पात्र को निधापित करे, घृत प्लुत अन्न को लेकर 'अग्नौ करिष्यन्'—इससे पूछे । जब 'कुरुष्व'—अर्थात् करो—इस प्रकार से अनुज्ञात हो जावे उपवीतवित् को हवन करना चाहिए ।।४४।। कुशा हाथ में ग्रहण करके ही यज्ञोपवीति को होम करना चाहिए । प्राचीनावीती होकर पित्र्य और होमवित् को वैश्वदेव करना चाहिए ।।४५।। सदा देवों की परिचर्या करते हुए दक्षिण जानु को नीचे गिरा देवे । पितृगण की परिचर्या में वाम जानु का पालन करे ।।४६।। पितृ मत में सोम के लिये "स्वधा" को बोले । कव्यवाहन अग्नि के लिये स्वधा—यही कहकर हवन करे ।।४७।। अग्नि के अभाव में विप्र के पाणि में ही उपपादन करे अथवा समाहित होकर महादेव के समीप में अथवा गोष्ठ में करे ।।४८।। उन

सबके द्वारा अनुज्ञात होकर दक्षिण में जाकर गोमय से उपलिप्त कर स्थान को सिकता से संयुत करे ॥४९॥

मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणाप्रवणं शुभम् ।
त्रिरुल्लित्तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि ॥५०
ततः संस्तीर्य्यं तत्स्थाने दर्भान्वै दक्षिणाग्रगान् ।
त्रीन्पिण्डान्निर्वपेत् तत्र हविः शेषात्समाहितः ॥५१
उप्यपिण्डांस्तुतद्धस्तंनिमृज्याल्लेपभोजिनान् ।
तेषुदर्भे वथाचम्यत्रिराचम्यशनैरसून् ।
तदन्नन्तुनमस्कुर्यात्पितृनेव चः मन्त्रवित् ॥५२
उदकन्निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः ।
अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथा न्युप्त्वा समाहितः ॥५३
अथ पिण्डाच्च शिष्टान्नं विधिवद्भोजयेद् द्विजान् ॥
मांसान् पूपांश्च विविधाञ्छ्राद्धकल्पांस्तु शोभनान् ॥५४
(ततोऽन्नमुत्सृजेद्भुक्ष्वग्रतो विकिरन्भुवि ।
पृष्ट्वा तदन्नमित्येव तृप्तानाचामयेत्ततः ॥५५
आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति ।
स्वधास्त्विति च ते ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥५६

वहाँ पर चतुरस्त्र मण्डल जो दक्षिण की ओर प्रवण हो परम शुभ बनावे। उसके मध्य में तीन बार उल्लेख करे जो कि एक दर्भ से करना चाहिए ॥५०॥ फिर उस स्थान पर दक्षिणाग्र भाग वाले दर्भों का संस्तरण करे। वहाँ पर हवि शेष से तीन पिण्डों का निर्वपन करना चाहिए ।५१। लेप भोजि उप्य पिण्डोंको हस्तमें निमञ्जन करे। उन दर्भों में तीन बार आचमन करके धीरे से रक्खे फिर उस अन्न को मन्त्र वेत्ता के द्वारा पितृगण को ही नमस्कार करना चाहिए ॥५२॥ फिर धीरे से शेष उदक को पिण्डों के समीप में ले जावे, न्युप्त करके समाहित हो उन पिण्डों का अवघ्राण करे। इसके उपरान्त पिण्ड से शिष्ट अन्न को लेकर विधान के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। माँस—पूप और विविध श्राद्ध कल्प में शोभन पदार्थों का भोजन करावे ॥५३-५४॥

मुक्त होने पर उस अन्न को भूमि पर विकीर्ण करते हुए उत्सृष्ट कर देवे। तदन्नम्—उतना पूछकर ही तृप्त हुआ का आचमन करावे ॥५५॥ जब वे ब्राह्मण आचान्त हो जावें तो उनसे प्रार्थना करे कि "अभितोरम्यताम्" अर्थात् सभी ओर रमण करिये। उन ब्राह्मणों को "स्वधास्तु"—यह कहना चाहिए ॥५६॥

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥५७
पित्रेस्वदितमित्येववाच्यगोष्ठेषु सुश्रितम् ।
सम्पन्नमित्यभ्युदयेदेवे सेवितमित्यपि ॥५८
विसृज्य ब्राह्मणान् तान्वै पितृपूर्वन्तु वाग्यतः ।
दक्षिणां दिशमाकांक्षन्याचेतेमान्वरान् पितॄन् ॥५६
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ।
श्रद्धा च नो मा वि (व्य) गमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति ॥६०
पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपिवा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी ॥६१
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिशेषेणतोषयेत्)।
सूपशाकफलानीक्षून् पयोदधिघृतं मधु ॥६२
अन्नचैव यथाकाममंविविधं भोज्यपेयकम् ।
यद्यदिष्टं द्विजेन्द्राणांतत्सर्वं विनिवेदयेत् ॥६३

इसके अनन्तर जब वे ब्राह्मण भोजन कर लेवें तो उन भुक्त हुओं की सेवा में शेष अन्न को निवेदित कर देवे जैसा भी वे कहें उसके अनुसार ही उन द्विजों से अनुज्ञात होकर करना चाहिए। 'पित्रे स्वदितम्'—"गोष्ठेषु सुश्रितं सम्पन्नम्"अभ्युदये देवे सेवितम्"—इनको बोलना चाहिए।५७-५८। उन समस्त ब्राह्मणों को विसर्जित करके पितृगण को भी पहिले वाग्यत होते हुए विसर्जित कर देवे। फिर दक्षिण दिशा की ओर इच्छा करते हुए इन वरों को पितृगण से याचित करे ॥५९॥ आप दाता हैं हमारे वेदों और सन्तति का वर्द्धन करें। हमारी श्रद्धा में कमी न होवे और अत्यधिक देय शक्ति हम में समुत्पन्न हो जावे ॥६०॥ उन पिण्डों को गो—अज

ग्रौर विप्रों को दे देना चाहिए अथवा अग्नि में ग्रथवा जल निक्षिप्त कर देवे। जो मध्यम पिण्ड है उसको सुत की ग्रर्थना करने वाली पत्नी को खा लेना चाहिए ॥६१॥ फिर हाथों का प्रक्षालन कर आचमन करे ग्रौर शेष से ज्ञाति का तोषण करे। शूप—शाक—फल—इक्षु—पय—दधि—घृत—मधु ग्रौर ग्रन्न विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ तथा पेय को इच्छा पूर्वक जो जो भी द्विजेन्द्रों को ग्रभीष्ट हों उन सबको समर्पित करना चाहिए ॥६२-६३॥

धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा।
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता।
अन्यत्र फलमूलेभ्यो पानकेभ्यस्तथैव च ॥६४
न भूमौ पातयेज्जानुं न कुप्येन्नानृतं वदेत्।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैवमत्रधूनयेत् ॥६५
क्रोधेनैवच यद्भुक्तंयद्भुक्तं त्वयथाविधि।
यातुधाना विलुम्पन्तिजल्पता चोपपादितम् ॥६६
स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ च द्विजोत्तमाः।
न च पश्येत काकादीन् पक्षिणः प्रतिलोमगान् ॥
तद्रूपाः पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षवः ॥६७
न दद्यात्तत्र हस्तेन प्रत्यक्षं लवणं तथा।
न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुनः ॥६८
काञ्चनेन तु पात्रेण राजतोदुम्बरेण वा।
दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषतः ॥६९
पात्रेतुमृण्मयेयो वै श्राद्धेवैभोजयेद्द्विजान्।
स यातिनरकंघोरभोक्ता चैव पुरोधसः ॥७०

अपने श्रेय के सम्पादन की इच्छा रखने वाले को धान्य—तिल विविध अन्न और अनेक प्रकार की शर्करा उष्ण अन्न द्विजातियों को देना चाहिए। अन्यत्र फल मूलों से तथा पानकों से ही उसी भाँति करे ॥ ६४ ॥ भूमि में जानु का पातन नहीं करे—कोप न करे—मिथ्या न बोले—पाद से अन्न का स्पर्श न करे और अवधूनन भी नहीं करे। क्रोध पूर्वक जो भी खाया

गया है और यथा विधि से नहीं खाया गया है तथा बोल चाल करते हुए जो भी भोजन किया है उसके सम्पूर्ण रस का राक्षस विलोपन कर दिया करते हैं ।।६५-६६।। हे द्विजोत्तमो ! स्विन्नगात्र वाला होकर सन्निधि में स्थित नहीं होना चाहिए । काक आदि को न देखे जो पक्षी प्रतिलोमग होते हैं । उसी रूप में पितृगण वहाँ पर बुभूक्षित होते हुए समायात हुआ करते हैं ।।६७।। वहाँ पर हाथ से प्रत्यक्ष लवण न देवे और लोहे के पात्र से भी न देवे तथा अश्रद्धा से नहीं देना चाहिए । श्राद्ध इस नाम से ही श्रद्धा से जो किया जाता है वही श्राद्ध है श्रद्धा का ही पूर्ण महत्त्व है ।।६८।। सुवर्ण के पात्र से, चाँदी के तथा उदुम्बर के पात्र द्वारा दिया हुआ अक्षयता को प्राप्त होता हैं खड्ग के द्वारा विशेष रूप से होता है ।।६९।। मृत्तिका के पात्र में जो श्राद्ध में द्विजों को भोजन कराता है । वह घोर नरक में जाया करता है और जो पुरोधा भोक्ता है वह भी जाता है ।७०।

नपङ्क्त्यांविषमदद्यान्नयाचेतनदापयेत् ।
याचिता दापितादाता नरकान्याति भीषाणन् ।।७१
भुञ्जीरन्नग्रतः श्रेष्ठं न ब्रुयुः प्राकृतान् गुणान् ।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ।।७२
नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विजः ।
बहूनां पश्यतां सोऽन्यः पङ्क्त्याहरति किल्विषम् ।।७३
न किंचिद्वर्जच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तमः ।
न मांसस्य निषेधेन न चान्यस्यान्नमीक्षयेत् ।।७४
स्वाध्यायाञ्छ्रावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि ।।७५
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान् ।।७६
ततोऽन्नमुत्सृजेद्भोक्ता साग्रतोविकिरन्भुवि ।
पृष्ट्वास्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ।।७७

सामने समुपस्थित पदार्थों का भोजन करे जोकि परम श्रेष्ठ परिवेषित किये गये हैं किन्तु उन पदार्थों के प्राकृत गुणों का वर्णन नहीं करना चाहिए । पितृगण तभी तक उन ब्राह्मणों के साथ स्थित रहते हुए भोजन किया करते हैं जब तक भोजन करने वाले ब्राह्मणों के हवि के गुणों का

वर्णन नहीं किया जाता है ॥७१-७२॥ अग्रासन पर स्थित द्विज को पहिले भोजन नहीं करना चाहिए। बहुतों के देखते हुए वह अन्य पंक्ति से किल्विष का आहरण किया करता है ॥७३॥ कुत्र वर्जित श्राद्ध में नियुक्त द्विजोत्तम नहीं है। अन्य का अन्न भी नहीं देखना चाहिए ॥७४॥ इनको स्वाध्यायों का श्रवण करावे और धर्म शास्त्रों का भी श्रवण करना चाहिए। इतिहास—पुराण और परम शोभन श्राद्ध कल्पों का श्रवण कराना चाहिए ॥७५-७६॥ इसके पश्चात् आगे भूमि में विकीर्ण करते हुए भोक्ता को अन्न का समुत्सृजन करना चाहिए। "स्वदितम्"—अच्छी तरह भोजन कर लिया—यह पूछ कर ही तृप्तों को फिर आचमन कराना चाहिए ॥७७॥

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति ।
स्वधास्त्विति च त ब्रूयूर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥७८
ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तुनैर्द्विजैः ॥७९
पित्र्ये स्वदित इत्येवाक्यं गोष्ठेषुसूत्रितम् ।
सम्पन्नमित्यभ्युदयेदेवे रोचत इत्यपि ॥८०
विसृज्य ब्राह्मणांस्तुत्वा पितृपूर्वं तु वाग्यतः ।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्याचेतेमान्वरान्पितृन् ॥८१
दातारोनोभिवर्द्धंतां वेदा सन्ततिरेवच ।
श्रद्धा च नोमाव्यगमद्बहुदेयंचनोस्त्विति ॥८२
पिण्डांस्तु गोचविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा ।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी ॥८३
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत् ।
ज्ञातिष्वपि चतुर्थेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत्ततः ॥८४

जब सब ब्राह्मण आचान्त होजावें तो उनसे प्रार्थना करे कि आप सब ओर रमण कीजिए। ब्राह्मणों को "स्वधा अस्तु"—यह उस श्राद्ध दाता से कहना चाहिए ॥७८॥ इसके उपरान्त में मुक्त हुए उनकी सेवा में जो शेष अन्न हो उसको निवेदित कर देना चाहिए। जिस प्रकार से

भी वे द्विज वोलें उनके द्वारा अनुज्ञात होकर वही करना चाहिए ॥७९॥ 'पित्रो स्वदित' इस वाक्य को 'गोष्ठेषु सूत्रितंसम्पन्न' इसको और 'अभ्युदये देवे रोचत"—इस वाक्य को वोले ॥ ८० ॥ वाग्यत होकर पितृगण के पूर्व स्तवन करके ब्राह्मणों का विसर्जन करे। दक्षिण दिशा की ओर देखते हुए पितृगण से इन वरदानों की याचना करनी चाहिए। दाता आप लोग वेद और मेरी सन्तति का अभिवर्द्धन करें। यह भी वरदान हमें प्रदान करें कि हमारी श्रद्धा का कभी व्ययगमन होवे तथा अत्यधिक दान देने की भावना विशेष रूप से समुत्पन्न होवे ॥८१-८२॥ फिर उन पिण्डों को गौ अज और विप्रों को दे देवे या अग्नि तथा जल में प्रक्षिप्त कर देवे। जो मध्यम पिण्ड है उसको सुत की इच्छा वाली पत्नी को खा लेना चाहिए। हाथों का प्रक्षालन करके तथा आचमन करके शेष जो हो उससे ज्ञाति के लोगों को भोजन कराना चाहिए। ज्ञाति के लोगों में भी चतुर्थ श्रेणी के अपने भृत्यों को भोजन कराना चाहिए ॥८३-८४॥

पश्चात्स्वयञ्चपत्नीभिःशेमन्नंसमाचरेत् ।
नोद्वासयेत्तदुच्छिष्टंयावन्नास्तंगतोरविः ॥८५
ब्रह्मचारी भवेतांतु दम्पतीरजनीं तुताम् ।
दत्त्वा श्राद्धंतथाभुक्त्वासेवते यस्तुमैथुनम् ॥८६
महारौरवमासाद्य कीटयोनिं व्रजेत्पुनः ॥८७
शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहित ।
स्वाध्यायञ्च तथाध्वानं कर्त्ता भोक्ता च वर्ज्जयेत् ॥८८
श्राद्धं भुक्त्वापरश्राद्धभुञ्जतेयेद्विजातयः ।
महापातकिभिस्तुल्या यान्तितेनरकान्बहून् ॥८९
एषवोविहितःसम्यक्श्राद्धकल्पःसमासतः ।
अनेनवर्द्धयेन्नित्यं ब्राह्मणोव्यसनान्वितः ॥९०
आमश्राद्धं यदाकुर्याद्विधिज्ञःश्रद्धयान्वितः ।
तेनाग्नौकरणंकुर्यात्पिण्डांस्तेनैवनिर्वपेत् ॥९१

इसके अनन्तर स्वयं और अपनी पत्नियों को साथ भोजन करना चाहिए। उस उच्छिष्ट अन्न को उद्वासित न करे जब तक सूर्य अस्तगत न

होवे ॥ ८५ ॥ उस रात्रि में स्त्री पुरुष दोनों दम्पति ब्रह्मचारी रहें। श्राद्ध देकर या श्राद्ध खाकर जो मैथुन किया करता है वह महा रौरव नरक में जाकर फिर कीटों की योनि में जन्म लेता है ॥८६-८७॥ श्राद्ध कर्त्ता और भोक्ता दोनों को ही परम शुचि—क्रोध रहित—शान्त—सत्यवादी और परम समाहित होना चाहिए। स्वाध्याय तथा मार्ग गमन इन दोनों कार्यों को कर्त्ता तथा भोक्ता दोनों को ही वर्जित कर देने चाहिए ॥८८॥ जो एक स्थान पर श्राद्ध में भोजन करके किसी भी लालच आदि कारणों से दूसरे श्राद्ध में द्विजातिगण भोजन किया करते हैं वे महापातकियों के ही समान होते हैं और फिर बहुत से घोरतम नरकों में पड़ा करते हैं। ॥८९॥ यह श्राद्ध कल्प संक्षेप से आप सब लोगों को बतला दिया है व्यसनों से समन्वित ब्राह्मण को इसके द्वारा नित्य ही बढ़ना चाहिए ।९०। जो विधि का ज्ञाता श्रद्धा से समन्वित होकर आम श्राद्ध करता है उसको आम श्राद्ध करता है उसको अग्नि में करण करना चाहिए और पिंडों को भी उसी के द्वारा निर्वपन करे ॥९१॥

योऽनेन विधिनाश्राद्धं कुर्याद्वैशान्तमानसः ।
व्यपेतकल्मषोनित्यंयतीनां वर्त्तयेत्पदम् ॥९२
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्विजोत्तमः ।
आराधितोभवेदीशस्तेनसम्यक्सनातनः ॥९३
अपि मूलैः फलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्द्धनो द्विजः ।
तिलोदकैस्तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा समाहितः ॥९४
न जीवत्पितृकोदद्याद्धोमान्तं वा विधीयते ।
येषां वापि पितादद्यात्तेषाञ्चैकेप्रचक्षते ॥९५
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।
यो यस्य प्रीयते तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु ॥९६
भोजयेद्वापि जीवन्तंयथकामं तु भक्तितः ।
न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति प्रयतःशुचिः ॥९७
द्व्यामुष्यायणिको दद्याद्बीजिक्षेत्रिकयोः समम् ।
अधिकारी भवेत्सोऽथ नियोगोत्पादितो यदि ॥९८

जो इस विधि से शान्त मन वाला होकर श्राद्ध किया करता है वह कल्मषों से व्यपेत हकर यतियों के पद को प्राप्त किया करता है ।।६२।। अतएव सभी प्रयत्नों के साथ द्विजोत्तम को श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिए । इसके करने से सनातन प्रभु ईश भली-भाँति समाराधित होते हैं ।।६३।। यदि कोई द्विज निर्धन हो तो उसको मूलों और फलों से ही श्राद्ध का कर्म अवश्य ही करना चाहिए । स्नान करके परम समाहित होकर तिलोदक से पितरों का तर्पण करे ।।६४।। जिसका पिता जीवित हो उसे श्राद्ध नहीं देना चाहिए अथवा होम के अन्त तक ही करे । जिनका पिता श्राद्ध देवे उनका वह एक ही कहा जाता है ।।६५।। पिता—पितामह और प्रपितामह जिसका जो प्रसन्न होकर ग्रहण करता है उसी को देवे और को नहीं देना चाहिए ।।६६।। जीवित है उसको यथेच्छा पूर्वक भक्तिभाव से भोजन करावे । प्रयत और शुचि होकर जीवित का अति क्रमण करके कभी श्राद्ध नहीं देवे ।।६७।। उठ्यायणिक को वीजी और क्षेत्र दोनों को समान ही देना चाहिए । यदि नियोग के द्वारा उत्पादित हुआ तो वह अधिकारी होता है ।।६८।।

अनियुक्तात्सुतोयश्चशुक्रतोजायतेत्विह ।
प्रदद्याद्वीजिने पिण्ड क्षेत्रिणेतु ततोऽन्यथा ।।९९
द्वौ पिण्डौ निर्वपेत्ताभ्यां क्षेत्रिणे बीजिने तथा ।
कीर्त्तयेदथचैवास्मिन् बीजिनं क्षेत्रिणं ततः ।
मृताहनि तुकर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः ।।१००
अशौचेस्वेपरिक्षीणेकाम्यंवै कामतः पुनः ।
पूर्वाह्णे चैव कर्त्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना ।।१०१
देववत्सवमेव स्यान्नैव कार्या तिलैः क्रियाः ।
दर्भाश्च ऋजवः कार्या युग्मान्वै भोजयेद् द्विजान् ।।१०२
नान्दीमुखास्तु पितरः प्रीयन्तामिति वाचयेत् ।
मातृश्राद्धं तु पूर्व्वं स्यात्पितृणां तदनन्तरम् ।।१०३

अनियुक्त से यहाँ पर जो सुत शुक्र से ही समुत्पन्न होता है उसे वीजी या वपन करने वाले को पिण्ड देना चाहिए फिर क्षेत्री को देवे तथा दूसरा

प्रकार यह है कि दो पिण्डों का निर्वपन करे। एक क्षेत्री को और दूसरा बीजी को देवे ॥९९॥ एक पिण्ड के निर्वपन में बीजी का और दूसरे में क्षेत्री का नाम कीर्त्तित करना चाहिए। जो दिन मृत होने का हो उसी में एकोद्दिष्ट श्राद्ध विधान के साथ करना चाहिए ॥१००॥ यदि अशौच हो गया हो तो उसके परिक्षीण हो जाने पर ही काम्य कर्म को इच्छा से पुनः पूर्वाह्न में ही श्राद्ध उदयार्थी पुरुष को करना चाहिए ॥१०१॥ यह सब देव के समान ही होता है और तिलों से क्रिया नहीं करनी चाहिए। दर्भों को भी सीधी कर लेवे और दो ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥१०२॥ उस समय में नान्दी मुख पितृगण प्रसन्न हों—ऐसा ही बोलना चाहिए। पहिले मातृ श्राद्ध होता है और इसके अनन्तर पितृगण का श्राद्ध होता है ॥१०३॥

ततो मातामहानान्तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्।
दैवपूर्वं प्रदाद्याद्वै न कुर्यादप्रदक्षिणम् ॥१०४

प्राङ् मुखो निर्वपेद्विद्वानुपवीती समाहितः।
पूर्वं तु मातरः पूज्याभक्त्यावै सगणेश्वराः ॥१०५

स्थाण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु।
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्भूषणैरपि पूजयेत् ॥१०६

पूजयित्वामातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयंद्विजः।
अकृत्वा मातृयोगंतुयःश्राद्धंतुनिवेशयेत्।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसां गच्छन्ति मातरः ॥१०७

इसके उपरान्त मातामहादिक का होता है। ऐसे ये वृद्धि में तीन श्राद्ध बताये गये हैं। दैव पूर्व ही प्रदान करे और अदक्षिण न करे ॥१०४॥ पुरुष को प्राङ् मुख होकर निर्वपन करना चाहिए। उपवीती और समाहित होकर पहिले माताओं का पूजन करना चाहिए और भक्ति से सगणेश्वर पूजने चाहिए ॥१०५॥ स्थण्डिलों में—विचित्रों में—प्रतिमाओं में–द्विजातियों में पुष्प—धूप—नैवेद्य और भूषणों से पूजन करना चाहिए ॥१०६॥ मातृगण का पूजन करके द्विज को तीनों श्राद्ध करने

चाहिएँ। मातृयोग को न करके जो श्राद्ध को निवेशित करता है उसकी माताऐं क्रोध से समाविष्ट होकर हिंसा को जाया करती हैं ।।१०७।।

———

२३—अशौचकल्पवर्णन

दशाहम्प्राहुराशौचं सपिण्डेतु विधीयते ।
मृतेषुवापिजातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमाः ।।१
नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः ।
न कुर्याद्विहितं किञ्चित्स्वाध्यायं मनसाऽपि च ।।२
शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालाग्नौ भावयेद् द्विजान् ।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानान् जुहुयात्तथा ।।३
न स्पृशेदुरिमानन्येनच तेभ्यः समाहरेत् ।
चतुर्थे पञ्चमे चाह्निसंस्पर्शः कथितोबुधैः ।।४
सूतकेतु सपिण्डानां संस्पर्शोनैवदुष्यति ।
सूतकं सूतिकाञ्चैव वर्ज्जयित्वानृणांपुनः ।।५
अधीयानस्तथा वेदान् वेदविच्च पिता भवेत् ।
संस्पृश्याः सर्व एवैते स्नानान्माता दशाहतः ।।६
दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमाशौचं वातिनिर्गुणे ।
एकद्वित्रिगुणैर्युक्तश्चतुस्त्र्यैकदिनैः शुचिः ।।७

महामहर्षि श्री व्यास देवजी ने कहा—जो पुरुष सपिण्ड होते हैं उनका अशौच दश दिन का होता है। हे द्विजोत्तमो ! ब्राह्मणों का यह अशौच मृत तथा जात दोनों में ही समान ही हुआ करता है ।।१।। ऐसी अशौच अवस्था में नित्य किये जाने वाले कर्म और विशेष रूप से काम्य कर्म कुछ भी विहित कर्म नहीं करे स्वाध्याय तो मन से भी नहीं करना चाहिए ।।२।। शुचि अक्रोधन—भूम्य द्विजों को शालाग्नि में भावित करे शुष्क अन्न से अथवा फलों से वैतानों को हवन करना चाहिए ।।३।। इनका स्पर्श नहीं करे और अन्य के द्वारा ही उनके लिये समाहरण करे। बुध पुरुषों ने चौथे पाँचवें दिन में संस्पर्श कहा है ।।४।। सूतक में सपिण्डों

का संस्पर्श दूषित नहीं होता है। सूतक और सूतिका का वर्णन करके ही फिर सूतक हुआ करता है ॥५॥ स्वयं वेदों के अध्ययन करने वाला हो और वेदों का वेत्ता होवे। ये सभी स्नान से संस्पर्श करने के योग्य होते हैं माता दश दिन से होती है ॥६॥ निर्गुण में दश दिन का आशोच होता है ऐसा कहा गया है। एक–दो–तीन गुणों से युक्त और चार एक दिन में ही शुचि हो जाता है ॥७॥

दशाह्नादपरं सम्यक्प्रधीयीत जुहोति च।
चतुर्थे तस्य संस्पर्शमनुः प्राहप्रजापतिः ॥८
क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च।
यथेष्टाचरणस्येह मरणान्तमशौचकम् ॥९
त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम्।
प्राक्सम्वत्सरात्त्रिरात्रंदशरात्रंततःपरम्।
ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते ॥१०
(त्रिरात्रेणशुचिस्त्वन्यो यदिह्यत्यन्तनिर्गुणः।
अदन्तजातमरणेपित्रोरेकाहमिष्यते)
जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातां तु निर्गुणौ ॥११
आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम्।
त्रिरात्रमौपनयनात्सपिण्डानामशौचकम् ॥१२
जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः।
मातुश्च सूतकं तत्स्यात्पिता स्यात्स्पृश्य एव च ॥१३
सदाशौचंसपिण्डानांकर्त्तव्यंसोदरस्यतु।
उद्ध्वं दशाहादेकाहंसोदरोयदिनिर्गुणः ॥१४

दश दिन के पश्चात् अध्ययन करे और हवन करे। चतुर्थ में उसके संस्पर्श को प्रजापति मनु ने कहा है ॥८॥ क्रिया से हीन का—मूर्ख का—महा रोगी का–यथेष्ट आचरण करने वाले का मरण के अन्त तक अशौच होता है ॥९॥ तीन रात्रि अथवा दश रात्रि का अशौचक ब्राह्मणों का ही हुआ करता है। एक वर्ष से पूर्व का तीन रात्रि का और इससे ऊपर दश रात्रि का अशौच होता है। जो दो वर्ष से भी कम हो उसके प्रेत हो जाने

पर उसके माता-पिता को ही वह हुआ करता है ॥१०॥ अन्य तो तीन रात्रि में ही शुचि हो जाता है यदि वह अत्यन्त ही निर्गुण होता है। जिसके दाँत न निकले हों उसके मर जाने पर माता-पिता को भी एक ही दिन का अशौच इष्ट माना जाता है। जिसके दाँत उत्पन्न हो गये हों उसका अशौच तीन रात्रिक होता है। यदि वे दोनों निर्गुण हों ॥११॥ दाँतों के निकलने से लेकर चूड़ा कर्म तक सद्यः एक रात्रि का ही आशौच होता है। उपनयन संस्कार हो जाने वालों का आशौच सपिण्ड पुरुषों को तीन रात्रि का हुआ करता है। जो बालक उत्पन्न होते ही मृत हो जाता है तो उसका सूतक माता-पिता को होता है। किन्तु पिता स्पर्श करने के योग्य होता है ॥१२-१३॥ सगे भाई का अशौच सपिण्डों को सदा ही करना चाहिए। यदि सोदर निर्गुण हो तो ऊर्ध्व दश दिन एक ही दिन तक का आशौच हुआ करता है ॥१४॥

ततोदूर्ध्वं दन्तजननात्सपिण्डानामशौचकम् ।
एकरात्रं निर्गुणानां चौडादूर्ध्वंत्रिरात्रकम् ॥१५
अदन्तजातमरणंसम्भवेद्यदि सत्तमाः ।
एकरात्रं सपिण्डानांयदि तेऽत्यनिर्गुणाः ॥१६
व्रतादेशात्सपिण्डानां गर्भस्रावात्स्वपाततः ।
(सर्वेषामेवगुणिनामूर्ध्वन्तु विषमः पुनः ।
अर्वाक् षण्मासतःस्त्रीणां यदि स्याद् गर्भसंस्रवः ।
तदा माससमैस्तासामशौच दिवसैः स्मृतम् ।
तत ऊर्ध्वन्तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम् ।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च धातुतः ।)
गर्भच्युतादहोरात्रंसपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे ।
ययेष्टाचरणे ज्ञातौत्रिरात्रमितिनिश्चयः ॥१७
यदिस्यात्सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत् ।
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे त्रिरात्रकम् ॥१८
मरणोत्पत्तियोगेन मरणेन समाप्यते ।
आद्यवृद्धिमदाशौच तदा पूर्वेण शुद्ध्यति ॥१९

(तथाच पञ्चमीरात्रिमतीत्य परतो भवेत्)।
देशान्तरगतं श्रुत्वा सूतकं शावमेवच ।
तावदप्रयतो मर्त्यो यावच्छेषं समाप्यते ॥२०
अतीते सूतके प्रोक्तं सपिण्डानां त्रिरात्रकम् ।
(अथैवमरणेस्नानमूर्ध्वंसम्वत्सराद्यदि ।
वेदार्थविद्याधीयानोयोऽग्निवान्वृत्तिकर्षितः ।
सद्यः शौचंभवेत्तस्यसर्वावस्थासुसर्वदा ।
स्त्रीणामसंस्कृतानांतुप्रदानात्परतः सदा ।
सपिण्डानां त्रिरात्रं स्यात्संस्कारे भर्त्तुरेव हि ।
अहस्त्वदत्तकन्यानामशौचं मरणं स्मृतम् ।
ऊनद्विवर्षमिरणे सद्यः शौचमुदाहृतम् ।
आदन्तात्सोदरे सद्य आचूडादेकरात्रकम्)।
आप्रदानात्त्रिरात्रं स्याद्दशारात्रं ततः परम् ॥२१

इससे ऊपर दाँतों के निकलने से सपिण्डों का अशौचक एक रात्रि का होता है और निर्गुणों का चूड़ा कर्म से ऊर्ध्व में तीन रात्रि का होता है ॥१५॥ हे श्रेष्ठगण ! अदन्त और जात मात्र के यदि मरण हो तो सपिण्डों का अशौच एक रात्रि का होता है । यदि वे अत्यन्त ही निर्गुण हों । व्रतादेश से सपिण्डों का गर्भस्राव से स्वपात से सभी गुणियों के ऊपर पुनः विपर्भ होता है । स्त्रियों का गर्भ स्राव यदि छै मास से पीछे हो तो जितने मास हों उतने ही दिनों का अशौच कहा गया है । उसके ऊपर गर्भ के पात होने पर स्त्रियों का बारह रात्रिका आशौच हुआ करता है । सपिण्डों का शौच गर्भस्राव से सद्य ही हो जाया करता है । अत्यन्त निर्गुण सपिण्ड में गर्भ के च्युत होने से अहोरात्र का ही आशौच होता है । जो यथेष्ट आचरण वाले ज्ञाति के हों उनका आशौच तीन रात्रि का हुआ करता है—ऐसा निश्चय है । यदि सूतक में ही प्रसव हो जावे या मरण में मृति हो जावे तो शेष से हो शुद्धि होती है । अह के शेष रहने पर तीन रात्रि का ही सूतक हुआ करता है । मरण और उत्पत्ति का योग हो उससे मरण के द्वारा समाप्त किया जाता है । आद्य आशौच वृद्धि

वाला होता है तब वह पूर्व के द्वारा शुद्ध होता है। उसी भाँति पाँचवीं रात्रि को अतीत करके ही पर से होता है। देशान्तर में गया हुआ शाव ही सूतक श्रवण करके ही होता है। तब तक मनुष्य अप्रयत रहता है जब तक शेष समय समाप्त होता है ॥१६-२०॥ सूतक के अतीत होने पर सपिंडों को तीन रात्रि का सूतक हुआ करता है। यदि एक वर्ष से ऊपर का समय व्यतीत हो गया हो और फिर सूचना प्राप्त हो तो मरण में केवल स्नान करने ही से शुद्धि होती है। जो वेदार्थ का ज्ञाता है—अधीमान है—अग्निमान् है और वृत्ति कर्षित है उसका शौच सभी अवस्थाओं में सर्वदा तुरन्त ही हो जाया करता है। स्त्रियों का असंस्कृत होने के कारण से सदा प्रदान से पर होता है। स्वामी के ही संस्कार में सपिण्डों का तीन रात्रि का सूतक होता है। अदन्त कन्याओं का मरण अशौच एक दिन का ही बताया गया है। दो वर्ष से कम के मरण में तुरन्त ही शौच कहा गया है। दाँत जब तक नहीं निकले हुए हों ऐसे सोदर का तुरन्त ही और चूड़ा कर्म संस्कार से तीन रात्रि का सूतक होता है। जब तक प्रदान नहीं किया जावे तक तीन रात्रि का और उससे ऊपर दश रात्रि का आशौच हुआ करता है ॥२१॥

मातामहानां मरणे त्रिरात्रं स्यादशौचकम् ।
एकादशानाञ्च तथा सूतके चैतदेव हि ॥२२
पक्षिणी यानिसम्बन्धे बान्धवेषु तथैव च ।
एकरात्रं समुद्दिष्टं गुरौ सब्रह्मचारिणि ॥२३
प्रेतेराजनिसज्योतिर्यस्यस्याद्विषयेस्थितः ।
गृहेमृतासुसर्वासु कन्यासुचत्र्यहंपितुः ॥२४
परपूर्वासु भार्यासु पुत्रेषु कृतकेषु च ।
त्रिरात्रं स्यात्तथाचार्यास्वभार्यास्वन्यगासुच ॥२५
आचार्यपुत्रेपत्न्याञ्चअहोरात्रमुदाहृतम् ।
एकाहं स्यादुपाध्यायेस्वग्रामेश्रोत्रियेऽपिच ॥२६
त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषुच ।
एकाहं त्वासवर्ये स्यादेकरात्रं तदध्वसे ॥२७

त्रिरात्रं श्वश्रूमरणात श्वशुरेचैतदेव हि।
सद्यःशौचंसमुद्दिष्टं स्वगोत्रेसंस्थितेसति ।।२८

मातामहों के मरण में तीन रात्रि का अशौच होता है। एकादशों के सूतक में भी यही होता है। योनि सम्बन्ध में तथा वान्धवों में पक्षिणी होता है। गुरु और साथी ब्रह्मचारी की मृत्यु पर एक रात्रि का सूतक कहा गया है ।।२१-२२।। सज्योति राजा के प्रेत हो जाने पर जिसके देश में स्थिति होवे। अपने ही घर में सभी किसी के मृत हो जाने पर और कन्याओं के मृत होने पर पिता को तीन रात्रि का आशौच हुआ करता है ।।२३-२४।। परपूर्वा भार्याओं में और कृतक पुत्रों में तीन रात्रि का सूतक होता है। आचार्यों की अन्यगा भार्याओं में भी तीन रात्रि का सूतक होता है। आचार्य के पुत्रों में—पत्नी में अहोरात्र का सूतक कहा गया है। उपाध्याय में—अपने ग्राम में और श्रोत्रिय में भी एक रात्रि का ही सूतक हुआ करता है ।।२५-२६।। अपने गृह में स्थित हो चाहे वे असपिण्ड ही क्यों न हों उनके भी प्रेत होने पर तीन रात्रि का आशौच होता है। अस्ववर्य में एक दिन का होता है जो एक रात्रि का इष्ट माना जाता है। सास के मरने पर तीन रात्रि का और श्वसुर के प्रेत हो जाने पर इतना ही आशौच हुआ करता है। अपने गोत्र के संस्थित होने पर तुरन्त ही शौच बताया गया है ।।२७-२८।।

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेनभूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धयति ।।२९
क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः।
तेषामशौचे विप्रस्यं दशाहाच्छुद्धिरिष्यते ।।३०
राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु।
तमेवशौचं कुर्याता विशुद्धयर्थमसंशयम् ।।३१
सर्वे तूत्तरवर्णानामशौच कुर्यु राहताः।
तद्वर्णविधिदृष्टेन एवं तु शौचं स्वयोनिषु ।।३२
षड्रात्रं तु त्रिरात्रंस्यादेकरात्रंक्रमेण तु।
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव तु ।।३३

अर्द्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुङ्गवाः ।
शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्यस्याशौचमेव च ॥३४
षड्रात्रं वै दशाहञ्च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः ।
अशौचंक्षत्रिये प्रोक्तं क्रमेणद्विजपुङ्गवाः ॥३५

विप्र दश दिन में शुद्ध होता है और क्षत्रिय वारह दिन में शुद्धि प्राप्त किया करता है। वैश्य की शुद्धि पन्द्रह दिन में होती है तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ॥२९॥ क्षत्र–विट् और शूद्र दायाद जो विप्र के वान्धव हों उनके आशौच में विप्र की दश दिन में शुद्धि हुआ करती है ॥३०॥ क्षत्रिय और वैश्य भी इसी प्रकार से हीन वर्ण वाली योनियों में विशुद्धि के लिये उस ही शौच को संशय रहित होकर करें ॥३१॥ सभी आहत लोग उत्तर वर्णों का अशौच किया करें। उस वर्ण की विधि में दृष्ट के द्वारा ही अशौच करना चाहिए और अपना शौच अपनी योनियों में करें ॥३२॥ छै रात्रि का—तीन रात्रि का–एक रात्रि का क्रम से वैश्य—क्षत्रिय और विप्रों का होता है और शूद्रों में तो अशौच ही रहा करता है ॥३३॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! आधामास—षड्रात्र–त्रिरात्र शूद्र क्षत्रिय विप्रों का होता है और वैश्यों का अशौच ही रहा करता है। रात्र–दशाह विप्रों का वैश्य शूद्रों का होता है और क्षत्रिय में अशौच कहा गया है ॥३४-३५॥

शूद्रविट्क्षत्त्रियाणांतु ब्राह्मणस्य तथैव च ।
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलापतिः ॥३६
असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य वन्धुवत् ।
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुद्धयति ॥३७
यद्यन्नमति तेषांतु त्रिरात्रेणततःशुचिः ।
अनदंस्त्वन्नमह्ना तु नचतस्मिन्गृहे वसेत् ॥३८
सोदकेऽथ तदेवस्यान्मातुराप्तेषु वन्धुषु ।
दशाहेन शवस्पर्शी सपिण्डश्चैव शुद्धयति ॥३९
यदि निर्हरति प्रेतं लोभादाक्रान्तमानसः ।
दशाहेन द्विजः शुद्धयेद्द्वादशाहेनभूमिपः ॥४०

अर्द्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति ।
षड्रात्रेणाथवासर्वेत्रिरात्रेणाथवापुनः ।।४१
अनाथञ्चैवनिर्हृत्यब्राह्मणंधनवर्जितम् ।
स्नात्वासम्प्राश्यचघृतं शुध्यन्तिब्राह्मणादयः ।। २

शूद्र विट् क्षत्रियों की तथा च विप्रों की दशरात्रि में शुद्धि होती है—कमलापति ने यही कहा है ।।३६।। असपिण्ड प्रेतद्विज को विप्र एक बन्धु की भाँति निर्हरण करके—खाकर और साथ ही में रहकर दशरात्रि में शुद्ध होता है ।।३७।। यदि उनका अन्न खाता है तो तीन रात्रि में शुचि होता है । और अन्न को न खाते हुए एक दिन में शुद्धि होती है उसके घर में निवास नहीं करना चाहिए ।।३८।। सोदक में वही होता है माता के आप्त बंधुओं में जो भी हों । शव के स्पर्श करने वाला पुरुष दश दिन में सपिण्ड शुद्ध हुआ करता है ।। ३६ ।। लोभ से आक्रान्त मन वाला होकर यदि प्रेत का निर्हरण करता है तो दश दिन में द्विज की शुद्धि होती है और क्षत्रिय की बारह दिन में हुआ करती है । वैश्य की आधे मास में तथा शूद्र की एक मास में शुद्धि हुआ करती है । अथवा सभी छै रात्रि में या तीन रात्रि में शुद्ध होते हैं ।।४०-४१।। जो अनाथ हो अथवा धन से रहित ब्राह्मण हो उसका निर्हरण करके स्नान करे और घृत का प्राशन करे तो ब्राह्मण आदि सब शुद्ध होजाया करते हैं ।। ४२ ।।

अपरश्चेत्परं वर्णमपरञ्चापरे यदि ।
अशौचे सस्पृशेत्स्नेहात्तदा शौचेन शुद्धयति ।।४३
प्रेतीभूतं द्विजं विप्रोह्यनुगच्छेत्तकामतः ।
स्नात्वासचैलंस्पृष्ट्वाग्निघृतंप्राश्यविशुध्यति ।।४४
एकाहात्क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्चद्वयहेन तु ।
शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः ।।४५
अनस्थिसञ्चिते शूद्रे रौति चेद् ब्राह्मणः स्वकैः ।
त्रिरात्रं स्यात्तथाशौचमेकाह त्वन्यथा स्मृतम् ।।४६
अस्थिसञ्चयनादर्वागेकाहः क्षत्रवैश्योः ।
अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणेस्नानमेव तु ।।४७

अनस्थिसञ्चिते विप्रो ब्राह्मणोरौतिचेत्तदा ।
स्नानेनैवभवेच्छुद्धिःसचैलेनात्रसंशयः ॥४८
यस्तैः सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि ।
बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुध्यति ॥४६

यदि कोई अपर पर वर्ण को और पर अपर वर्ण को अशौच में स्नेह के वशीभूत होकर संस्पर्श कर लेवे तो शौच से शुद्ध होजाया करता है ॥४३॥ प्रेतीभूत द्विज के साथ इच्छा से ही कोई अनुगमन करता है तो वस्त्रों के स्नान करके—अग्नि का स्पर्श करके और घृत का प्राशन करके विशुद्ध होजाता है ॥४४॥ एक दिन में क्षत्रिय की शुद्धि होती है, वैश्य की दो दिन में और शूद्र में तीन दिन कहे गये हैं । पुनः सौ वार प्राणायाम करे ॥४५॥ अनस्थि सञ्चित शूद्र में यदि ब्राह्मण अपनों के साथ शब्द करता है तो तीन रात्रि तक आशौच रहता है अन्यथा एक ही दिन कहा गया है ॥४६॥ अस्थि सञ्चय करने के पश्चात् क्षत्रिय और वैश्य का एक दिन अशौच रहता है । अन्यथा सज्योति ब्राह्मण में स्नान ही शौच है ॥४७॥ अनस्थि सञ्चित में विप्र अब्द करता है तो उस समय में स्नान से ही जो वस्त्रों के सहित किया गया हो शुद्धि हो जाती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४८॥ जो उन्हीं के साथ अशन करे और शयन आदि भी करे तो चाहे वह बानधव हो या कोई दूसरा हो दश दिन में ही शुद्ध हुआ करता है ॥४६॥

यस्तेषां सममश्नाति सकृदेवापि कामतः ।
तदाऽशौचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥५०
यावत्तदान्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतोनरः।
तावन्त्यहान्यशौचं स्यात्प्रायश्चित्तततश्चरेत्॥५१
दाहाद्यशौचं कर्त्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम् ।
सपिण्डानाञ्चमरणेमरणादितरेषु च ॥५२
सपिण्डता च पुरुषेसप्तमेविनिवर्त्तते ।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥५३

पिता पितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः।
लेपभाजस्त्रयो ज्ञेयाःसापिण्डयं साप्तपौरुषम् ॥५४
अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्डयं साप्तपौरुषम्।
तासां तु भर्तृसापिण्डयं प्राह देवः पितामहः ॥५५
ये चैकजाता बहवोभिन्नयोनयएव च।
भिन्नवर्णास्तु सापिण्डयं भवेत्तेषांत्रिपूरुषम् ॥५६

जो इच्छा पूर्वक एक वार भी उसके साथ भोजन कर लेता है तो उस समय में अशौच के निवृत्त हो जाने पर वह स्नान करके ही विशुद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥५०॥ दुर्भिक्षा से अभिहत मनुष्य जब तक उसके अन्न को खाता है उतने ही दिन तक उसको अशौच रहा करता है। इसके पश्चात् उसे प्रायश्चित्त का समाचरण कर लेना चाहिए ॥ ५१ ॥ अग्नि-होत्री द्विजों का दाहादि अशौच करना चाहिए। सपिण्डों के मरण में मरण से इतरों में करे ॥ ५२ ॥ पुरुष में सपिंडता सात पुरुष तक ही रहा करती है फिर वह निवृत्त होजाती है। समानोदक भाव जन्म नाम के अवेदन में होता है ॥५३॥ पिता—पितामह और प्रपितामह ये तीनों लेप का भजने वाले जानने चाहिए। सपिंडता सात पुरुषों तक ही सीमित होती है। अप्रत्त तथा स्त्रियों की सपिंडता सप्त पौरुष ही होती है। देव पितामह ने यही कहा है कि स्त्रियों की भर्तृ सपिंडता ही होती है ॥५४-५५॥ जो एक से समुत्पन्न बहुत भिन्न योनि वाले होते हैं उनकी सपिंडता तो तीन ही पुरुष तक रहा करती है ॥५६॥

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च।
दातारो नियमाच्चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ।
सत्रिणो व्रतिनस्तावत्सद्यः शौचमुदाहृतम् ॥५७
राजा चैवाऽभिषिक्तश्च अन्नंसत्रिण एव च।
यज्ञे विवाहकाले च दैवयोगे तथैव च।
सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपप्लवे ॥५८
डिम्बाहवहतामाञ्चसर्पादिमरणेपि च।
सद्यः शौचं समाख्यातं स्वज्ञातिमरणेतथा ॥५९

अग्निमरुत्प्रपतने वीराध्वन्यत्यनाशके ।
गोब्राह्मणार्थे सन्न्यस्ते सद्य:शोचंविधीयते ।।६०
नैष्ठिकानां वनस्थानांयतीनांब्रह्मचारिणाम् ।
नाशौचंकीर्त्यतेसद्भि:पतितेचतथामृते ।।६१
पतितानां न दाह: स्यान्नान्त्येष्टिर्नाऽस्थिसञ्चय: ।
नाऽश्रुपातो न पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित् ।।६२
व्यापादयेत्तथाऽऽत्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभि: ।
विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम् ।।६३

कारु—शिल्पी—वैद्य—दासी—दास—नियम से दाता—ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मचारी—सत्र करने वाले—व्रतधारी ये तभी तक ही अशौच वाले हैं और इन सबका शौच तुरन्त हो जाया करता है—ऐसा हो बताया गया है ।।५७।। राजा—अभिषिक्त—अन्न सत्री—यज्ञ में—विवाह के समय में दैव योग में तुरन्त ही शौच कहा गया है तथा दुर्भिक्ष में और किसी उपप्लव में भी तुरन्त शौच होजाता है ।।५८।। डिम्ब आहव (युद्ध) में हत हुओं का और सर्पादि के द्वारा दशन से मर जाने पर तथा स्वज्ञाति मरण में भी तुरन्त ही शौच बताया गया है ।।५९।। अग्नि—मरुत् के प्रपतन में—वीराध्वा में जो अनाशक है—गो ब्राह्मण के हित कार्य के के सम्पादन में और सनयस्त में भी तुरन्त हो शौच का विधान होता है ।। ६० ।। नैष्ठिक ब्रह्मचारी—वानप्रस्थ—वन में ही वास करने वाले—यती—ब्रह्मचारी इनका और पतित के मृत होजाने में सत्पुरुषों ने कोई भी अशौच बताया ही नहीं है ।।६१।। जो पतित पुरुष होते हैं उनके दाह का कोई भी विधान ही नहीं है न उनकी अन्त्येष्ठि होती है और न कोई अस्थियों के सञ्चय का ही विधान शास्त्र में कहा गया है । न उनके लिये अश्रुपात ही करना चाहिए और न पिंडों का ही निर्वपन करे । उनको कोई कहीं पर भी श्राद्ध भी नहीं किया जाता है ।। ६२ ।। जो स्वयं ही जान बूझ कर अपने आप को आग लगाकर या विष आदि का पान करके मृत होजावे उसका भी कोई अशौच विहित नहीं है न उनका अग्नि

संस्कार ही होता है और न जलाञ्जलि आदि ही उनको दी जाया करती है ॥६३॥

अथ किञ्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः ।
तस्याऽशौचं विधातव्यं कार्यञ्चैवोदकादिकम् ॥६४
जाते कुमारे तदहः कामंकुर्यात्प्रतिग्रहम् ।
हिरण्यधान्यगोवासस्तिलांश्चगुडसर्पिषा ॥६५
फलानि पुष्पं शाकञ्च लवणं काष्ठमेव च ।
तक्रं दधिघृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च ॥
आशौचिनो गृहाद्ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः ॥६६
आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ।
अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जनः ॥६७
देहाभावात्पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिम्पुनः ।
दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः ॥६८
सकृत्प्रसिञ्चेदुदकं नामगोत्रेण वाग्यतः ।
दशाहं बान्धवाः श्राद्धं सर्वेचैवसुसंयताः ॥६९
पिण्डं प्रतिदिनंदद्युः सायंप्रातर्यथाविधि ।
प्रेतायच गृहद्वारिचतुर्थे भोजयेद्द्विजान् ॥७०

जो कुछ प्रमाद से अग्नि विषादि के द्वारा मर जाया करता है उसका अशौच करना चाहिए और उदकादिक का कर्म भी करना आवश्यक है ॥६४॥ जिस दिन सनत्कुमार समुत्पन्न होवे उस दिन में इच्छा पूर्वक प्रतिग्रह करना चाहिए । सुवर्ण—धान्य—गो—वस्त्र—तिल—गुड़ और घृत—फल पुष्प—शाक—लवण—काष्ठ—तक्र—दधि—घृत—तेल—औषध—आदि का दान दिल खोलकर करे । अशौची के गृह से नित ही शुष्कान्न का ग्रहण करना चाहिए ॥६५-६६॥ जो आदिताग्नि पुरुष हो उसका दाह तीनों अग्नियों से करना चाहिए । जो अनाहिताग्नि है उसका दाह गृह्य अग्नि के द्वारा ही करे और इतर जन का दाह लौकिक अग्नि के द्वारा ही करे ॥६७॥ यदि शव का देह न प्राप्त हो सके तो पलाशों से उसकी प्रतिकृति करावे अर्थात् पुतला विधान करना चाहिए । और

फिर उस प्रतिकृति का (पुत्तला) का दाह न्यायानुसार सपिंड पुरुषों के द्वारा श्रद्धा से समन्वित होकर ही करना चाहिए ।।६८।। दशदिन तक बान्धव गण सभी सुसंयत होते हुए मौन रह कर प्रेत के नाम और गोत्र से एक बार जल का सिंचन करना चाहिए । पिंडों का निर्वपन तो प्रति-दिन सायंकाल और प्रातःकाल में विधि के अनुसार ही करना चाहिए । प्रेत के लिये घर के द्वार पर चतुर्थ में द्विजों को भोजन कराना चाहिए ।।६९-७०।।

द्वितीयेऽह्नि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म्म सबान्धवैः ।
चतुर्थे बान्धवैः सर्वोरस्थ्नां सञ्चयनं भवेत् ।
पूर्वान्प्रयुञ्जयेद्विप्रान् युग्मान्सुश्रद्धया शुचीन् ।।७१
पञ्चमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि ।
युग्मांश्च भोजयेद्विप्रान्नवश्राद्धं तु तद्द्विजाः ।।७२
एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्यभावतः ।
द्वादशे वान्हि कर्त्तव्यंनवमेऽप्यथवाहनि ।
एकं पवित्रमेकोऽर्घः पिण्डपात्रं तथैव च ।।७३
एवं मृताह्नि कर्त्तव्यं प्रतिमासंतु वत्सरम् ।
सपिण्डीकरणं प्रोक्तंपूर्णेसंवत्सरेपुनः ।।७४
कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमाः ।
प्रेतार्थे पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्ततः ।।७५
येसमाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि ।
सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं विधीयते ।।७६
पितृनावाहयेत्तत्रपुनःप्रेतंविनिर्द्दिशेत् ।
ये सपिण्डीकृताः प्रेतानतेषांस्युःप्रतिक्रियाः ।
यस्तु कुर्यात्पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते ।।७७

दूसरे दिन में बान्धवों के सहित क्षुर कर्म (केशों का वनना) करावे । चौथे दिन में ही समस्त बान्धवों के साथ मिलकर अस्थियों का संचय होता है । पूर्व विप्रों का जो सुश्रद्धा से शुचि हों ऐसे युग्मों का प्रयोग करें ।।७१।। पाँचवें—नवम में तथा एकादशवें दिन में युग्म विप्रों को

भोजन करावे। हे द्विजगण ! वह नव श्राद्ध होते हैं ॥७२॥ ग्यारहवें दिन करना चाहिए अथवा नवम दिन में एक पवित्र—एक अर्घ और पिंड पात्र लेवे ॥७३॥ इसी प्रकार से जिस दिन मृत्यु होवे उस दिन में प्रतिमास में एक वर्ष पर्यन्त करे। जब पूरा एक वर्ष हो जावे तो सपिंडीकरण कहा गया है ॥७४॥ हे द्विज श्रेष्ठो ! प्रेतादिकों के चार पात्र करे। प्रेत के लिये पितृ–पात्रों में पाँच का आसेचन करना चाहिए ॥७५॥ "ये समाना"—इन दो मन्त्रों से पिण्डों को भी इसी प्रकार से करे। सपिंडीकरण श्राद्ध देव पूर्व ही किया जाता है ॥७६॥ वहाँ पर पितृगणों का आवाहन करे और पुनः प्रेत को विनिर्देशित करे। जो प्रेत सपिंडी कृत होते हैं उनकी फिर कोई भी प्रतिक्रिया नही होती है। जो पिण्ड को पृथक् करे वह पितृ का हनन करने वाला अभिजात होता है ॥७७॥

मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डानब्दं समावसेत्।
दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहंप्रेतधर्मतः ॥७८
पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते।
प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेष सनातनः॥७९
मातापित्रोः सुतैः कार्यम्पिण्डदानादिकञ्च यत्।
पत्नी कार्यात्सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदरः ॥८०
अनेनैव विधानेन जीवः श्राद्धं समाचरेत्।
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः॥८१
एषवःकथितःसम्यग्गृहस्थानांक्रियाविधिः।
स्त्रीणांभर्तृ शुश्रूषाधर्मोनान्यइहोच्यते ॥८२
स्वधर्मतत्परा नित्यमीश्वरार्पितमानसाः।
प्राप्नुवन्ति परं स्थानंयदुक्तं वेदवादिभिः ॥८३

पिता के मृत्युगत हो जाने पर पुत्र एक वर्ष तक पिंडों को समाविसित करे। प्रतिदिन धर्म की भावना से अन्न और जल का कुम्भ देवे ॥७८॥ पार्वण श्राद्ध के विधान से सांवत्सरिक किया जाता है। इसे प्रतिवर्ष ही करना चाहिए यही सनातन विधि है ॥७९॥ माता-पिता के लिये सुतों को ही पिण्डदान आदि समस्त कर्म-कलाप करना चाहिए

क्योंकि इसके प्रधान अधिकारी पुत्र ही होते हैं। यदि किसी के पुत्र का अभाव ही हो प्रेत की पत्नी को ही पिण्डदानादि करना चाहिए और पत्नी भी न हो तो सोदर (सगे भाई) को करना चाहिए ।।८०।। इसी विधान से जीवात्मा श्राद्ध का समाचरण करे। दान आदिक सब करके समाहित और परम श्रद्धा से युक्त होकर ही सब कुछ करे ।।८१।। यह हमको सम्पूर्ण गृहस्थों की क्रिया की विधि भली-भाँति आपको कह दी है। इस संसार में अपने भर्त्ता की शुश्रूषा से वड़ा अन्य स्त्रियों का भी दूसरा धर्म नहीं होता है ।।८२।। जो अपने निज के धर्म में परायण रहा करती हैं और नित्य ही ईश्वर में अर्पित मन वाली होती हैं वेदों के बताने वालों ने यही बतलाया है कि वे स्त्रियाँ परम पद को प्राप्त किया करती है ।।८३।।

२४—द्विजों के अग्निहोत्रादि कृत्य वर्णन

अग्निहोत्रंतु जुहुयात्सायम्प्रातर्यथाविधि ।
दर्शे चैव हितस्यान्तेनवसस्येतथैवच ।।१
इष्ट्वा चैव यथान्यायमृत्वन्ते च द्विजोऽध्वरैः ।
पशुना त्वयनस्यान्ने समान्ते सोऽग्निकैर्मखैः ।।२
नानिष्ट्वानवसस्येष्टचापशुनावाग्निमान्द्विजः ।
नचान्नमद्यान्मांसंवादीर्घमायुर्जिजीविषुः ।।३
नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नयः ।
प्राणानेवात्तमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः ।।४
सावित्रान्शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः ।
पितृश्चैवाष्टकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकासु च ।।५
एष धर्म परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते ।
त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ।।६
नास्तिक्यादथवालस्याद्योऽग्नीन्नाधातुमिच्छति ।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान्बहून् ।।७

महा महर्षि श्री व्यास देव ने कहा—विधि पूर्वक अग्नि होत्र का कर्म प्रातः काल में और सायंकाल में करना चाहिये। दर्श में—हिम के अन्त में और नवीन शस्य के समय में करे ॥१॥ न्याय पूर्वक द्विज को यजन करके ऋतु के अन्त में अध्वरों के द्वारा यजन करना चाहिए। अयन की समाप्ति में पशु के द्वारा करे तथा वर्ष के अन्त में उसे अग्नि के मखों के द्वारा यजन करना चाहिए ॥२॥ द्विज यजन न करके तथा नवशस्येष्टि—पशुयज्ञ—और आग्निक मख इनको न करके जो दीर्घ आयु के जीवन की इच्छा रखने वाला है उसे नवीन अन्न और माँस नहीं खाना चाहिए ॥३॥ नवीन अन्न से और पशु के हव्य से अग्नियों का यजन न करके नवान्न और आमिष के अशन का लालची अपने प्राणों को ही खाना चाहते हैं ॥४॥ सावित्र होम और शान्ती होमों को पर्वों में नित्य ही करना चाहिये। समस्त अष्ट का और अन्वष्टकाओं में नित्य ही पितृ यज्ञों को करे ॥५॥ यह ही नित्य का परधर्म है। इसके अतिरिक्त जो भी कुछ अन्य होता है वह अधर्म कहा जाता है। ये तीनों वर्णों का और गृहस्थ आश्रम में स्थितों का धर्म होता है ॥६॥ नास्तिका भाव से अर्थात् इसके करने से कुछ भी नहीं होता है अतएव यह सब व्यर्थ है—ऐसी भावना से अथवा आलस्य से जो भी कोई अग्नियों का आधान करना नहीं चाहता है और यज्ञ के द्वारा यजन नहीं किया करता है वह मनुष्य बहुत से नरकों में जाकर नाटकीय यातनाओं को सहन किया करता है ॥७॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।
कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा।
अन्यांश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्नोति सुदुर्मतिः।
अन्त्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते।)
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः।
आधायाऽग्नि विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ॥८
अग्निहोत्रात्परोधर्माद्विजानां नेहविद्यते।
तस्माद्[illegible] ॥९

यस्त्वाध्यायाग्निमांश्च स्यान्न यष्टुं देवमिच्छति ।
स सम्मूढो न सम्भाष्यः किं पुनर्नास्तिको जनः ।।१०

यस्यत्रैवार्षिकम्भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ।
अधिकं वा भवेद्यस्य स सोमं पातुमर्हति ।।११

एष वै सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते ।
सोमेनाराधयेद्देवं सोमलोकमहेश्वरम् ।।१२

नसोमयागादधिकोमहेशाराधनात्ततः ।
नसोमो विद्यतेतस्मात्सोमेनाभ्यर्चयेत्परम् ।।१३

पितामहेनविप्राणामादाविहितःपशुः ।
धर्मोविमुक्तयेसाक्षाच्छ्रौतःस्मार्त्तोभवेत्पुनः ।
श्रौतस्त्रेताग्निसम्बन्धात्स्मार्त्तः पुर्वं मयोदितः ।
श्रेयस्करतमः श्रौतस्तस्माच्छ्रौतं समाचरेत् ।।१४

उन महान् घोर नरकों के नाम ये हैं—तामिस्र—अन्ध तामिस्र—महारौरव—रौरव—कुम्भी पाक—वैतरणी—असिपत्र वन—इन नरकों में तथा अन्य भी महान् घोरातिघोर नरकों में वह दुष्ट मति वाला पुरुष सम्प्राप्त हुआ करता है। विप्रगण अन्त्यजों के कुल में तथा शूद्र योनि में जन्म ग्रहण किया करते हैं। इसीलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों को करके विशेष रूप से ब्राह्मण वर्ण वाले व्यक्ति को अग्नि का आधान करके विशुद्ध आत्मा वाले को परमेश्वर का यजन अवश्य ही करना चाहिए ।।८।। इस लोक में अग्नि होत्र से विशेष अधिक पर धर्म द्विजों का अन्य कोई भी नहीं होता है। इसीलिये अग्नि होत्र के द्वारा ही नित्य परम शाश्वत प्रभु का आराधन करना चाहिए ।।९।। जो अध्ययन करके और अग्निमान् होकर देव का यजन करने की इच्छा नहीं किया करता है वह बहुत बड़ा मूढ़ है और सम्भाषण करने के भी योग्य नहीं है। ऐसा ही पुरुष तो नास्तिक हुआ करता है और नास्तिक कैसा होता है ।।१०।। जिसका भृत्य वृत्ति के लिये त्रैवार्षिक भक्त पर्याप्त होता है उसका इससे अधिक होता है तो वह सोम का पान करने के ही योग्य होता है तो वह

सोम का पान करने के ही योग्य होता है ॥११॥ यह सोम ही अन्य समस्त यज्ञों का प्रथम इष्ट होता है। सोम लोक के महेश्वर देव का सोम के द्वारा ही समाराधन करना चाहिए ॥१२॥ महेश के समाराधन करने के लिये सोम से अधिक अन्य कोई भी याग नहीं होता है। सोम नहीं विद्यमान होता है इसीलिये उस परम का सोम के द्वारा ही समाराधन करना चाहिए ॥१३॥ पितामह ने विप्रों को लाकर पशु को विहित किया है जो विमुक्ति के लिये साक्षात् श्रौत एवं स्मार्त्त धर्म होता है। त्रेता ग्न के सम्बन्ध से वह श्रौत होता है और स्मार्त्त धर्म मैंने पहिले ही बता दिया है। सबसे अधिक श्रेय का करने वाला श्रौत ही होता है अतएव श्रौत धर्म का ही समाचरण करना चाहिए ॥१४॥

उभावपि हितौ धर्मौ वेदवेदविनिःसृतौ।
शिष्टाचारस्तृतीयःस्याच्छ्रुतिस्मृत्योरभावतः ॥१५
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिवृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणाः प्रोक्ताः नित्यमात्मगुणान्विता ॥१६
तेषामभिमतोयःस्याच्चेतसानित्यमेवहि।
सधर्मःकथितःसद्भिर्नान्येषामितिधारणा ॥१७
पुराणंधर्मशास्त्राणि वेदानामुपबृंहणम्।
एक मादब्रह्मविज्ञानं धर्मज्ञानं तथैकतः ॥१८
धर्मं जिज्ञासमानानां तत्प्रमाणतरं स्मृतम्।
धर्मशास्त्रं पुराणानि ब्रह्मज्ञानेतराश्रमम् ॥१९
नान्यतो जायते धर्मो ब्राह्मी विद्या च वदिकी।
तस्माद्धर्मं पुराणञ्च श्रद्धातव्यं मनीषिभिः ॥२०

वैसे श्रौत और समात्त ये दोनों ही धर्म वेदों से ही विनिःसृत हुए हैं। श्रुति और स्मृति में कहे हुए के अभाव में तीसरा शिष्टाचार होता है ॥१५॥ जिन्होंने परिवृहण के सहित धर्म से वेदों का अधिगमन किया है वे ही ब्राह्मण शिष्ट कहे गये हैं जो नित्य ही आत्मगुणों से समन्वित हुआ करते हैं ॥१६॥ उन शिष्ट ब्राह्मणों का जः भी अभिमत नित्य हो चित्त से हुआ करता है सत्पुरुषों ने उसको भी एक प्रकार का धर्म ही

बतलाया है और यही शिष्टाचरित धर्म के नाम से श्रौत—स्मार्त्त से भिन्न हुआ करता है किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य पुरुषों का समाचरित धर्म नहीं हुआ करता है। ऐसी ही धारणा है ॥१७॥ पुराण—धर्म शास्त्र ये ही वेदों के उपबृंहण कहे जाते हैं। एक से ब्रह्म का ज्ञान होता है और एक से धर्म का ज्ञान हुआ करता है ॥१८॥ जो धर्म के प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उनके लिये वही अधिक प्रमाण होता है—ऐसा ही कहा गया है। धर्म शास्त्र और पुराण ब्रह्मज्ञान द्वारा इतर आश्रम को बतलाया करते हैं ॥१६॥ अन्य किसी से भी धर्म तथा वैदिकी ब्राह्मी विद्या नहीं हुआ करती है। इसीलिये धर्म-शास्त्र और पुराणों में मनीषियों को परम श्रद्धा रखनी ही चाहिए ॥२०॥

२५—द्विजों की वृत्ति वर्णन

एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिनः।
द्विजातेः परमो धर्मो वर्त्तनानि निबोधत ॥१
द्विविधस्तुगृहीज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः।
अध्यापनंयाजनञ्च पूवस्याहुःप्रतिग्रहम्।
कुसीदकृषिवाणिज्यम्प्रकुर्वन्तः स्वयं कृतम् ॥२
कृषेरभावे वाणिज्यं तदभावे कुसीदकम्।
आपत्कल्पस्त्वयं ज्ञेयः पूर्वोक्तोमुख्यइष्यते ॥३
स्वयं वा कर्षणाकुर्याद्वाणिज्यं वा कुसीदकम्।
कष्टा पापीयसी वृत्तिः कुसीदं तद्विवर्जयेत् ॥४
क्षात्रवृत्तिम्पराम्प्राहुर्न स्वयंकर्षणं द्विजैः।
तस्मात्क्षात्रेण वर्त्तेत वर्ततेऽनापदिद्विजः ॥५
तेन चावाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिःकृषिव्रजेत्।
न कथञ्चन कुर्वीतब्राह्मणः कर्म कर्षणम् ॥६
लब्धलाभः पितॄन्देवान्ब्राह्मणांश्चापापूजयेत्।
तेतृप्तास्तस्यतं दोषंशमयन्तिनसंशयः ॥७

महामहिम महर्षि व्यास देव ने कहा—यह हमने सम्पूर्ण गृहस्थाश्रम वासी का धर्म आप लोगों को बतला दिया है जो कि द्विजाति का परम धर्म होता है अब वर्त्तमान को भी समझ लो ॥१॥ यह गृही भी दो प्रकार का होता है—एक साधक गृही है और दूसरा असाधक गृही होता है। अध्यापन—याजन और प्रतिग्रह पहिले का ही अर्थात् साधक गृही का ही बताया गया है। कुसीद—कृषि—वाणिज्य को स्वयं ही करने वाले होते हैं ॥२॥ कृषि के अभाव में वाणिज्य और वाणिज्य के भी अभाव में कुसीदक वृत्ति करे। किन्तु यह आपत्ति के समय में किये जाने वाला कल्प है—ऐसा ही समझ लेना चाहिए जो पूर्व में कहा गया है वही मुख्य अभीष्ट हैं ॥३॥ स्वयं ही कर्षण करे—वाणिज्य अथवा कुसीदक करे। पापीयसी वृष्टि बड़ी ही कष्ट कर होती है अतएव कुसीद को विवर्जित कर देना चाहिए ॥४॥ क्षात्र वृत्ति को परा कहते हैं। द्विजों को स्वयं कर्षण नहीं करना चाहिए। इसीलिये क्षात्र वृत्ति से वर्त्तन करना चाहिए। अनापत्तिकाल में द्विज को वर्त्तना चाहिए ॥५॥ उसके द्वारा अवाप्य जीवन होते हुए वैश्य वृत्ति कृषि को करे। किन्तु किसी भी प्रकार से ब्राह्मण को कर्षण का कर्म (खेत की जुताई) नहीं करना चाहिए। लाभ प्राप्त करने वाले को पितृगण—देवगण और ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिए। वे जब तृप्त हो जाते हैं परम सन्तृप्त होकर उस कर्म के उस दोष का वे अवश्य ही शमन कर दिया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६-७॥

देवेभ्यश्चपितृभ्यश्चदद्याद्भागन्तुविंशकम् ।
त्रिंशद्भागंब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन्न दुष्यति ॥८
वाणिज्येद्विगुणंदद्यात् कुसीदीत्रिगुणंपुनः ।
कृषिपालान्नदोषेणयुज्यते नात्रसंशयः ॥९
शिलोञ्छंवाप्याददीतगृहस्थःसाधकःपुनः ।
विद्याशिल्पादयस्त्वन्येवहवोवृत्तिहेतवः ॥१०
असाधकस्तु यः प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः ।
शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभिः ॥११

अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा दयि ।
अयाचितं स्यादमृतं मृतम्भेक्षन्तुयाचितम् ॥१२
कुशूलधान्यकोवा स्यात्कुम्भीधान्यकएव च ।
त्र्यह्निकोवापिचभवेदश्वस्तनिकएव च ॥१३
चतुर्णामपि वै तेषां द्विजानांगृहमेधिनाम् ।
श्रेयान्परःपरोज्ञेयोधर्मतोलोकजित्तमः ॥१४

देवों और पितृगणों के लिये बीसवाँ भाग देवे। तीस भाग ब्राह्मणों को देवे तो कृषिकर्म करते हुए भी कोई दोष नहीं होता है ॥ ८ ॥ वाणिज्य में दुगुना देवे और कुसीदजीवी को तिगुना देना चाहिए। कृषि-पाल के अन्न दोष से युक्त होता है—इस में संशय नहीं है ॥९॥ अथवा स्तवृक गृहस्थ को शिलोञ्छ का आदान करना चाहिए। अन्य शिल्प आदि की बहुत-सी विद्याऐं हैं जो वृत्ति के हेतु होती हैं ॥ १० ॥ जो आसाधक है और गृहस्थाश्रम में संस्थित होता है—ऐसा कहा गया है उसकी शिलोञ्छ ये हो वृत्तियाँ परम ऋषियों ने बताई हैं ॥ ११ ॥ अमृत वृत्ति से जीवन यापन करे अथवा मृत से करे। जो अयाचित होता है वही अमृत होता है और जो भैक्ष्य याचना के द्वारा प्राप्त किया जावे वही मृत कहलाता है ॥ १२ ॥ कुशूल धान्यक होवे या कुम्भीधान्यक हो अथवा त्र्यह्निक (तीन दिन का) होवे तथा अश्वस्तनिक ही हो—इन चारों प्रकार के गृहमेधी द्विजों के अन्नों में जो पर से पर हो उसी को श्रेयस्कर समझना चाहिए और धर्म से लोक जित्तम होता है ॥१३-१४॥

षट्कर्मको भवेत्तेषां त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते ।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति ॥१५
वर्त्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः ।
इष्टिः पार्वायणान्ता याः केवला निर्वपेत्सदा ॥१६
नलोकवृत्तांवर्त्तेतवार्त्तान्ते वृत्तिहेतवे ।
अजिह्मामशठांशुद्धांजीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥१७
याचित्वा चार्थसद्भ्योऽन्नं पितृन्दवांस्तु तोषयेत् ।
याचयेद्वा शुचीन्दान्तान्तेन तृप्येत् स्वयं ततः ॥१८

यस्तु द्रव्यार्ज्जनं कृत्वा गृहस्थस्तोषयेन्न तु ।
देवान्पितृंस्तु विधिना शुनां योनिं व्रजत्यधा ॥१९

धर्मश्चार्थश्चकामश्चश्रेयामोक्षश्चतुष्टयम् ।
धर्माद्विरुद्धःकामःस्याद्ब्राह्मणानांतुनेतरः ॥२०

योऽर्थो धर्माय नाऽऽत्मार्थं सोऽर्थो नार्थस्तथेतरः ।
तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद्वै जुहुयाद् द्विजः ॥२१

उनमें से तीनों से ही षट्कर्म करने वाला होना चाहिए । अन्य दो से ही प्रवृत्त होता है । एक चौथा तो ब्रह्म सत्र से ही जीवित रहा करता है ॥ १५ ॥ शिलोञ्छों से अपना वर्त्तन करते हुए अग्निहोत्र कर्म में परायण होता है । जो पार्वायणाना इष्टि हैं उन्हें ही केवल सदा निर्वपन करे ॥ १६ ॥ वृत्ति के हेतु के लिये वार्त्तान्त में लोक वृत्त को नहीं वर्त्तन करे । ब्राह्मण को अजिह्म—अशठ—शुद्धजीविका ही से जीवन यापन करना चाहिए ॥ १७ ॥ जिनके पास सतअर्थ हो उनसे अन्न की याचना करके पितृगण और देववृन्द का तोषण करे । अथवा शुचि तथा दान्त पुरुषों से याचना करे और उससे ही स्वयं भी तृप्त होना चाहिए ॥ १८ ॥ जो गृहस्थ द्रव्य का अर्चन करके भी देवों को और पितृगणों को सन्तुष्ट नहीं किया करता है तथा विधि से श्राद्धादि नहीं करता है वह नीचे की कुत्ते की योनि को प्राप्त किया करता है ॥ १९ ॥ धर्म—अर्थ—काम और चौथा मोक्ष ये चारों ही श्रेय हैं । ब्राह्मणों का धर्म से विरुद्ध काम होता है, इतर नहीं होता ॥ २० ॥ जो अर्थ धर्म्म के ही लिये है आत्मा के लिये नहीं है वही अर्थ है इतर उस प्रकार का अर्थ ही नहीं है । इस लिये अर्थ को प्राप्त करके द्विज को होम करना चाहिए और दान देना चाहिए ॥ २१ ॥

———

२६—दानधर्मवर्णन

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् ।
ब्रह्मणाभिहितंपूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम् ॥१

अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥२
यदद्दाति विशिष्टेभ्यः श्रद्धया युतः ।
तद्विचित्रमहम्मन्ये शेषंकस्यापिरक्षति ॥३
नित्यंनैमित्तिककाम्यंत्रिविधंदानमुच्यते ।
चतुर्थं विमलम्प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥४
अहन्यहनियत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे ।
अनुद्दिश्यफलंतस्माद्ब्राह्मणायपुनित्यकम् ॥५
यत्तापापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषांकरे ।
नैमित्ति दाकन्तदुद्दिष्टं नं सद्भिरनुष्ठितम् ॥६
आपत्यविजयैश्वर्य्यस्वगार्थं यत्प्रदीयते ।
दानंतत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्द्धर्मचिन्तकैः ॥७

महामहिम श्री व्यासजी ने कहा—इसके उपरान्त अब मैं दान के धर्म्मों के विषय में वर्णन करता हूँ । जिसके पहिले ब्रह्मवादी ऋषियों को ब्रह्माजी ने कहा था ॥१॥ अर्थों का समुचित पात्र अर्थात् योग्य अधिकार मनुष्य में श्रद्धा पूर्वक जो प्रतिपादन करना है उसी को दान इस नाम से अभिनिर्दिष्ट किया गया है मुक्ति (सांसारिक सभी उत्तमोत्तम पदार्थों का उपभोग) और मुक्ति अर्थात् निरन्तर जीवन—मरण के बन्धन से छुटकारा पाजाना—इन दोनों ही के फल को वह दिया हुआ दान प्रदान किया करता है ॥ २ ॥ जो दान विशेषता से सम्पन्न शिष्टों को श्रद्धा से युक्त होकर दिया जाता है—मैं ऐसा मानता हूँ कि वह तो एक परम अद्भुत ही दान होता है शेष किसी की रक्षा करता है ॥ ३ ॥ यह दान भी नित्य—नैमित्तिक—काम्य तीन प्रकार का हुआ करता है । इसका एक चौथा भेद भी है जो "विमल" कहा गया है । यह सभी उत्तम से भी उत्तम दानों में से एक है ॥ ४ ॥ दिन प्रति दिन उपकार न करने वाले ब्राह्मण के लिये उससे किसी फल का उद्देश्य न करके जो कुछ भी दया जाता है यही नित्य दान कहलाता है । जो पापों की उप शान्ति रखने के लिये जो विद्वान् पुरुषों को दान दिया करता है उस दान

नैमित्तिक दान अद्दिष्ट किया गया है उसका सत्पुरुषों ने अनुष्ठान किया है ॥५-६॥ सन्तान—विजय—ऐश्वर्य और स्वर्ग की प्राप्ति के लिये जो कुछ भी दिया जाता है उसी दान को काम्य कहा गया है जिसका प्रति धर्म के चिन्तन करने वाले ऋषिगण ने किया है ॥ ७ ॥

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते ।
चेतसाधर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८
दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तितः ।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः ॥९
कुटुम्बभक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते ।
अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानं फलप्रदम् ॥१०
श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने ।
व्रतस्थाय दरिद्राय यद्देयं भक्तिपूर्वकम् ॥११
यस्तुदद्यान्महीम्भक्त्याब्राह्मणायाहिताग्नये ।
सयातिपरमंस्थानंयत्रगत्वानशोचति ॥१२
इक्षुभिः सन्ततांभूमिं यवगोधूमशालिनीम् ।
ददाति वेदविदुषे यः स भूयोनजायते ॥१३
गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिसम्प्रयच्छति ।
ब्राह्मणायदरिद्रायसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१४

ईश्वर के प्रसन्नता के लिये जिसको ब्रह्म के ज्ञाता जनों में दिया जाता है और धर्म्म से युक्त चित से ही वह दान किया जाया करता है उसी को ऋत्व इस नाम से परम शिव दान बताया गया है ॥८॥ उचित पात्र को प्राप्त करके शक्ति के अनुसार धन के धर्म का निषेवत करना चाहिए । ऐसा ही पात्र उत्पन्न होगा जो सभी को तार दिया करता है ॥९॥ कुटुम्ब को भोजन—वस्त्र से देने के पश्चात् जो भी कुछ अतिरिक्त होता है उसी का दान भी करना चाहिए । जो अन्यथा दिया जाता है वह दान फल तो प्रदान करने वाला नहीं होता है ॥ १० ॥ श्रोत्रिय—कुलीन—विनीत—तपस्वी—व्रत में स्थित और दरिद्र के लिये उस दान को भक्ति की भावना से देना चाहिए ॥ ११ ॥ जो कोई भक्ति पूर्वक

किसी आहित अग्नि वाले ब्राह्मण को भूमि का दान करता है वह भूमि का दान दाता पुरुष उस परम स्थान को अन्त में प्राप्त होता है कि जहाँ पर पहुंच कर किसी भी प्रकार शोक चिन्ता ही नहीं रहाकरती है ॥१२॥ ईख से सन्तत और यन तथा गेंहूं से शोभा सम्पन्न भूमि को जो कोई किसी वेदों के विद्वान् ब्राह्मण को दान में देता है वह फिर दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥ १३ ॥ गौ का चर्म जितनी दूरी में विछाकर फैलता है उतनी भूमि भी यदि दान में प्रदान कोई करता है और वह भी किसी अत्यन्त गरीब धन हीन दरिद्र ब्राह्मण को दी जावे तो वह दाता समस्त पापों से छूट जाया करता है ॥ १४ ॥

भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन ।
अन्नदानंतेनततुल्यं विद्यादानंततोऽधिकम् ॥१५
यो ब्राह्मणाय शुचये धर्मशीलाय शीलिने ।
ददाति विद्यां विधिनाब्रह्मलोकेमहीयते ॥१६
दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्राह्मणंस्थानमाप्नुयात् ॥१७
गृहस्थायाऽन्नदानेन फलम्प्राप्नोति मानवः ।
आगमे चास्य दातव्यं दत्वाऽऽप्नोति परां गतिम् ॥१८
वैशाख्यां पौर्णमास्यांतु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा ।
उपोष्य विधिना शान्ताञ्छुचीन् प्रयतमानसः ॥१९
पूजयित्वातिलैःकृष्णैर्मधुनाचविशेषतः ।
गन्धादिभिःसमभ्यर्च्यवाचयेद्वास्वयंवदेत् ॥२०
प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्त्तते ।
यावज्जीवं कृतम्पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२१

इस संसार में भूमि के दान की वहुत वड़ी महिमा है इस दान से पर अर्थात् वड़ा दान लोक में कोई भी नहीं है। अन्न दान भी वहुत वड़ा दान है किन्तु उसके दान से भी यह वड़ा दान है। विद्या का दान इससे भी अधिक होता है ॥ १५ ॥ जो किसी पवित्र—धर्मशील और शील सम्पन्न ब्राह्मण को विद्या का दान देता है वह ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित

हुआ करता है ॥१६॥ श्रद्धा से प्रतिदिन ब्रह्मचारी को अन्न देना चाहिए। अन्नदाता सभी पापों से छूट कर ब्राह्मण स्थान को प्राप्त किया करता है ॥ १७ ॥ मनुष्य गृहस्थाश्रमी को अन्न के दान से फल की प्राप्ति किया करता है। आगम में इसके दान का पुण्य लिखा है कि अवश्य अन्न का दान करना ही चाहिए और इसको देकर परागति को प्राप्त किया करता है ॥ १८ ॥ वैशाखी पूर्णमासी को पाँच या सात ब्राह्मणों को उपवास कराकर जो परम शान्त स्वभाव वाले और शुचि हों प्रयत मन वाला होकर कृष्ण तिलों से और विशेष रूप से मनु के द्वारा पूजन करके तथा गन्धाक्षत आदि के द्वारा भली भाँति अर्चन करके वाचन करावे या स्वयं ही बोले—'धर्मराज प्रसन्न होवें' अथवा मनमें वर्त्तमान होता है। जीवन भर में जितना भी पाप किया है वह उसी समय में क्षण मात्र में नष्ट हो जाया करता है ॥ १६-२१ ॥

कृष्णाजिनेतिलान्दत्त्वाहिरण्यंमधुसर्पिषी।
ददातियस्तु विप्राय सर्वंतरतिदुष्कृतम् ॥२२
कृतान्नमुदकुम्भञ्च वैशाख्याञ्च विशेषतः।
निर्दिश्यधर्मराजयविप्रेभ्योमुच्यतेभयात् ॥२३
सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा।
तर्पयेदुदपात्राणि ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥२४
(माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्यां समुपोषितः।)
शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्।
प्रदद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु विप्रेभ्यः सुसमाहितः।
जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः ॥२५
अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।
यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याद्वोद्दिश्यशङ्करम् ॥२६
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२७
यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्।
आराधयेद् द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः ॥२८

कृष्ण मृग चर्म में तिलों को देकर सुवर्ण—मधु और घृत जो कोई ब्राह्मण के लिये दान करता है वह सभी दुष्कृतों से तर जाया करता है ।।२२।। कृतान्न—जल का कलश वैशाखी पूर्णिमा में विशेष रूप से धर्मराज के लिये निर्देश करके विप्रों को दान देता है वह भय से मुक्त होजाता है ।।२३।। सुवर्ण तिल युक्तों के द्वारा सात या पाँच ब्राह्मणों को जल के पात्र से जो तृप्त किया करता है वह ब्रह्म हत्या के पाप को भी दूर कर दिया करता है ।। २४ ।। माघ मास में द्वादशी तिथि में समुपोषित विप्र शुक्ल वस्त्रों के धारण करने वाला तिलों से अग्नि को हुत करके सुसमाहित होकर विप्र ब्राह्मणों को दान करे । वह द्विज जन्म से लेकर जो भी कुछ पाप हो उस सब से मुक्त होजाया करता है ।। २५ ।। अमावस्या तिथि को प्राप्त करके किसी परम तपस्वी ब्राह्मण के लिये देवों के भी देव भगवान् शङ्कर का उद्देश्य करके जो कुछ भी दान किया करता है और यह कहकर कि सनातन ईश्वर सोम महादेव प्रसन्न होवें तो सात जन्मों के किये हुए भी पाप उसी क्षण में तुरन्त ही नष्ट होजाया करते हैं ।२६-२७। जो कोई कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में स्नान करके पिनाक धारी देव की आराधना करता है और वह भी द्विज मुख में करे तो उसका संसार में पुनजन्म नहीं होता है ।। २८ ।।

कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये ।
स्नात्वाऽभ्यर्च्य यथान्याय पादप्रक्षालनादिभिः ।।२९

प्रीयतांमेमहादेवोदद्याद्द्रव्यंस्वकीयकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तःप्राप्नोतिपरमांगितम् ।।३०

द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः ।
अमावास्यांतु वै भक्तैः पूजनीयस्त्रिलोचनः ।।३१

एकादश्यां निराहारोद्वादश्यांपुरुषोत्तमम् ।
अर्चयेद्ब्राह्मणमुखेस गच्छेत्परमम्पदम् ।।३२

एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद्द्वादशीशुक्लपक्षकें ।
तस्यामाराधयेद्देवमप्रयत्नेन जनार्दनम् ।।३३

यत्किञ्चिद्देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ ।
दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम् ॥३४
यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुन्नरः ।
ब्राह्मणान् पूजयेद्विद्वान् स तस्यास्तोषहेतुतः ॥३५

कृष्ण पक्ष की अष्टमी में विशेष रूप से धार्मिक द्विजाति के लिये स्नान करके यथा न्याय पादों के प्रक्षालन आदि के द्वारा अभ्यर्चन करके यह कहते हुए महादेव मुझ पर प्रसन्न होवें अपना द्रव्यदान करे तो वह सभी प्रकार के पापों से विनिर्मुक्त होकर परम गति को प्राप्त किया करता है ॥ २९-३० ॥ भक्त द्विजों को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में—विशेष रूप से कृष्णाष्टमी में और अमावस्या में भगवान् त्रिलोचन की पूजा अवश्य ही करनी चाहिए ॥ ३१ ॥ एकादशी तिथि में निराहार वृत करके द्वादशी तिथि में ब्राह्मण मुख में भगवान् पुरुषोत्तम का समर्चन करे तो वह परम पद को चला जाया करता है ॥३२॥ शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि वैष्णवी होती है । उस में प्रयत्न पूर्वक जनार्दन देव का समाराधन करना चाहिए जो कुछ भी किसी शुचि ब्राह्मण को ईशान देव का उद्देश्य करके अथवा विष्णु के लिये दान किया जाता है उसका अनन्त फल हुआ करता है ॥३३-३४॥ जो कोई जिस देवता की भी आराधना करना चाहता है तो उसका कर्त्तव्य है कि उस देवता के तोष करने के लिये विद्वान पुरुष को सर्व प्रथम ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिए ॥३५॥

द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः ।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित् ॥३६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्तत्फलमभीप्सुभिः ।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः ॥३७
विभूतिकामः सततं पूजयेद्वैपुरन्दरम् ।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः ॥३८
आरोग्यकामोऽथर विंधेनुकामोहुताशनम् ।
कर्मणांसिद्धिकामस्तुपूजयेद्व विनायकम् ॥३९

भोगकामस्तुशशिनंबलकामःसमीरणम् ।
मुमुक्षुः सर्वसंसारात्प्रयत्नेनार्च्चयेद्धरिम् ।।४०
यस्तु योगंतथामोक्षमिच्छेत्तज्ज्ञानमैश्वरम् ।
सोऽर्चयेद्वै विरूपाक्षंप्रयत्नेन महेश्वरम् ।।४१
यो वाञ्छतिमहायोगाज्ज्ञानानिच महेश्वरम् ।
ते पूजयन्तिभूतेशंकेशवञ्चापिभोगिनः ।।४२

द्विजों के शरीर में देवगण समास्थित होकर नित्य ही स्थित रहा करते हैं। ब्राह्मणों का लाभ न हो तो कहीं पर प्रतिमा आदि में भी देवों का पूजन किया जाता है ।।३६।। इसलिये उस देवार्चन के फल की इच्छा रखने वालों को सब प्रकार के प्रयत्न से द्विजों में ही नित्य विशेष रूप से देवों का पूजन करना चाहिए ।।३७।। जो कोई पुरुष वैभव की कामना रखता हो उसे निरन्तर पुरन्दर का पूजन करना चाहिए। जो ब्रह्म कामुक ब्रह्म वर्चस के प्राप्त करने की कामना रखता है उसे ब्रह्माजी का आराधन करना उचित है ।।३८।। जो अपने आरोग्य को स्थिर और सार्वदिक रखना चाहता है उसको भुवनभास्कर सूर्य देव का अर्चन करना चाहिए। धेनु की कामना वाले को अग्नि देव का आराधन करना चाहिए। जो अपने किये गये कर्मों की सिद्धि की कामना रखता है उसे भगवान् विनायक का पूजन करना चाहिए ।।३९।। भोगों की कामना वाले को शशि—बल की कामना वाले को वायु—तथा इस संसार से सभी प्रकार से छुटकारा पाने की इच्छा वाले को प्रयत्न पूर्वक भगवान् श्रीहरि का ही समर्चन करना चाहिए ।।४०।। जो योग तथा मोक्ष और उसका ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसे प्रयत्न के साथ विरुपाक्ष महेश्वर का ही अर्चन करना उचित है ।।४१।। जो महायोगों की तथा ज्ञानों की प्राप्ति की इच्छा करता है उसको महेश्वर प्रभु का पूजन उचित होता है जो भूतेश हैं और भोगी लोग केशव प्रभु का पूजन किया करते हैं ।।४२।।

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ।।४३

भूमिदःसर्वमाप्नोतिदीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोऽग्राणिवेश्मानिरूप्यदोरूप्यमुत्तमम् ॥४४
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।
अनडुद्दः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥४५
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदःशाश्वतंसौख्यंब्रह्मदोब्रह्मसात्म्यताम् ॥४६
धान्यान्यपियथाशक्तिविप्रेषुप्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्यस्वर्गं समश्नुते ॥४७
गवां वा सम्प्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ॥४८
फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च ।
प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः स्वयम्भवेत् ॥४९

जब वारिद होता है अर्थात् जल का दान करता है तृप्ति की प्राप्ति करता है तो वह अक्षय सुख और अन्न को देने वाला होता है। तिलों का प्रदान करने वाला अभीष्ट प्रजा पाता है। दीप का दाता उत्तम चक्षु प्राप्त किया करता है ॥४३॥ भूमि का दाता सभी कुछ की प्राप्ति किया करता है। सुवर्ण का दाता दीर्घ आयु की प्राप्ति करता है। गृह का दान करने वाला उत्तम घरों की प्राप्ति किया करता है। रूप्य (चाँदी या रुपया) का दाता उत्तम रूप्य का लाभ किया करता है ॥४४॥ वस्त्रों का दाता पुरुष चन्द्र का सालोक्य पाता है और अश्व का दान करने वाला पुरुष अश्वि को सलोकता की प्राप्ति किया करता है। अनुडुह (वृषभ) का दान करने वाला पुरुष परम पुष्ट श्री की प्राप्ति करता है और गौ का दाता विष्टप (स्वर्ग) की प्राप्ति करता है ॥४५॥ पान और शय्या का दान करने वाला भार्या को पाता है और अभय का दान करने वाला पुरुष ऐश्वर्य का लाभ किया करता है। जो धान्य का दान करता है उसे शाश्वत सुख मिलता है तथा ब्रह्मज्ञान का दाता ब्रह्मा की ही सात्मता का लाभ पाता है ॥४६॥ इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार धान्यों का दान

विप्रों को अवश्य ही प्रतिपादित करना ही चाहिए। जो वेदों के विद्वान् हों और विशेपता से सुसम्पन्न हों उन्हीं विप्रों को दान देने से मनुष्य मर कर फिर स्वर्ग के वास को प्राप्त करता है ॥४७॥ गौओं के भली-भाँति दान देने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाया करता है। ईंधनों के दान से मनुष्य दीप्त अग्नि वाला हो जाता है ॥४८॥ फल-मूल-शाक-विविध भाँति के भोज्य पदार्थ ब्राह्मणों को दाव में देने चाहिए—इसका फल यह होता है कि मनुष्य स्वयं आनन्द से युक्त हुआ करता है ॥४९॥

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणे रोगशान्तये ।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥५०
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम् ।
तीव्रतापञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः ॥५१
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे ।
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥५२
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तम्भवति चाक्षयम् ॥५३
प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च ।
दत्त्वाचाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च ॥५४
दानधर्मात्परोधर्मोभूतानांनेह विद्यते ।
तस्माद्विप्रायदातव्यंश्रोतियाय द्विजातिभिः ॥५५
स्वर्गायुर्भूतिकामेनतथापापोपशान्तये ।
मुमुक्षुणाच दातव्यंब्राह्मणेभ्यस्तथान्वहम् ॥५६

औषध—स्नेह (घृतादि) और आहार रोगी पुरुष को उसके रोग की शान्ति के लिये दान करने वाला पुरुष स्वयं रोग से रहित—सुखी और दीर्घ आयु वाला होता है ॥५०॥ छाता और जूतों का प्रदान करने वाला पुरुष क्षुर के समान महा कठिन एवं कष्ट प्रद असिपत्र वन नामक नरक के मार्ग को तथा तीव्रतम ताप को तर जाया करता है ॥५१॥ जो-जो भी इस लोक में इष्टतम हो और जो भी गृह में परम प्रिय पदार्थ हो उसके अक्षय होने की इच्छा से वही-वही किसी गुणशाली पुरुष को

दान में देने ही चाहिए ।।५२।। अयन में—विषुव में और चन्द्र सूर्य के ग्रहण की वेला में तथा संक्रान्ति आदि कालों में जो भी कुछ दान किया जाता है वह अक्षय होता है ।।५३।। प्रयाग आदि तीर्थों में तथा पुण्यमय आयतनों में पवित्र नदी और पुष्प पूर्ण वनों में जो भी कुछ दान किया जाता है वही क्षय से रहित हो जाया करता है ।।५४।। इस संसार में दान के धर्म का वश अधिक महत्त्व है और इससे वड़ा कोई भी अन्य धर्म नहीं है । इसीलिये द्विजातियों के द्वारा श्रोत्रिय विप्र को दान अवश्य ही देना चाहिए ।।५५।। स्वर्ग—आयु-—वैभव के प्राप्त करने की कामना वाले तथा पापों की उपशान्ति के लिये मुमुक्षुओं को प्रतिदिन ही ब्राह्मणों को दान अवश्य की करना चाहिए ।।५६।।

दीयमानन्तुया मोहाद्गोविप्राग्निसुरेषु च ।
निवारयतिपापात्मातिर्यग्योनिंव्रजेत्तु सः ।।५७
यस्तु द्रव्यार्ज्जनं कृत्वा नार्च्चयेद् ब्राह्मणान् सुरान् ।
सर्वस्वमपहृत्यैनं राष्ट्राद्विप्रतिवासयेत् ।।५८
यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्य न प्रयच्छति ।
म्रियमाणेषुसत्त्वेषु ब्राह्मणः स तु गर्हितः ।।५९
तस्मन्नप्रतिगृह्णीयान्नवै देयञ्चतस्यहि ।
अङ्कयित्वास्वकाद्राष्ट्रात्तं राजाविप्रवासयेत् ।।६०
यस्तु सद्भ्यो ददातीह न द्रव्यंधर्मसाधनम् ।
सपूर्वाभ्यधिकःपापीनरकेपच्यतेनरः ।।६१
स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः ।
सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद् द्विजोत्तमः ।।६२
सुभुक्तमपिविद्वांसंधार्मिकम्भोजयेद् द्विजम् ।
न तु मूर्खमवृत्तस्थंदशरात्रमुपोषितम् ।।६३

जो कोई गौ—विप्र—अग्नि और सुरों को दीपमान दान का मोह के वश में होकर निवारण किया करता है वह पापात्मा तिर्यक् योनि में जाया करता है ।।५७।। जो पुरुष धन की खूब खासी आमदनी करके भी ब्राह्मणों और देवों का समर्चन नहीं किया करता है वह सर्वस्व का

अपहरण करा कर राष्ट्र से विप्रति वासित हुआ करता है ।।५८।। जो दुर्भिक्ष के समय में भी अन्न आदि का दान नहीं किया करता है और जब जीव म्रियमाण होते हैं तो वह ब्राह्मण अत्यन्त गर्हित हो जाता है ।।५६।। इस प्रकार के ब्राह्मण से प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिए और उसको कुछ दान भी नहीं देना चाहिए। राजा का कर्त्तव्य है कि उसे पकड़कर अपने देश से बाहिर निकाल देवे ।।६०।। जो पुरुष यहाँ पर सत्पुरुषों को दान नहीं दिया करता है उसका द्रव्य धर्म का साधन नहीं होता है वह पहिले से भी अत्यधिक पापी है और वह मनुष्य नरक में जाकर अनेक यातनाओं को सहन किया करता है ।।६१।। जो विप्र स्वाध्याय वाले हैं तथा विद्या से सम्पन्न हैं और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं तथा सत्व और संयम से समन्वित हैं, हे द्विजश्रेष्ठो ! ऐसे ही ब्राह्मणों को सर्वदा दान देना चाहिए ।।६२।। भली भाँति मुक्त भी हो किन्तु विद्वान् और धार्म्मिक हो तो उसी ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए अर्थात् विद्वान् और धार्मिक चाहे भूखा भी न हो तो भी भोजन उसको ही कराना कल्याण कर होता है और जो मूर्ख तथा असत् चरित्र वाला हो वह चाहे दश दिन का भूखा भी क्यों न हो उसे कभी भी दान का धान्य नहीं देना चाहिए क्योंकि मूर्ख और चरित्र हीन को देने से पुण्य तो होता हो नहीं प्रत्युत पाप हो हुआ करता है ।।६३।।

सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति ।
स तेन कर्मणापापी दहत्यासप्तमंकुलम् ।।६४
यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम् ।
तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्याऽपि सन्निधिम् ।।६५
योऽर्च्चितम्प्रतिगृह्णाति ददात्यर्च्चितमेववा ।
तावुभौगच्छतः स्वर्गं नरकन्तु विपर्यये ।।६६
न वार्यपि प्रयच्छेतनास्तिकेहैतुकेऽपि च ।
पाषण्डेषुच सर्वेषुनाऽवेदविदि धर्मवित् ।।६७
अपूपञ्च हिरण्यञ्च गामश्वं पृथिवींतिलान् ।
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मी भवति काष्ठवत् ।।६८

द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत्प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः ।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथञ्चन ॥६९
वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेत् नेहेतधनविस्तरम् ।
धनलोभेप्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेवहीयते ॥७०

समीप में संस्थित श्रोत्रिय विप्र को अतिक्रान्त करके जो दूर स्थित अन्य को दान दिया करता है वह उस कर्म से पापी होता है और सात कुलों तक को दग्ध कर दिया करता है ॥६४॥ यदि कोई भी विप्र स्वयं शील और विद्या आदि के द्वारा अत्यधिक हो तो सन्निधि में स्थित रहने वाले का भी अतिक्रमण करके प्रयत्न पूर्वक उस अधिक योग्य को ही दान देना चाहिए ॥६५॥ जो समर्चित पुरुष से प्रतिग्रह लेता है और समर्चित पुरुष को ही दान देता है वे दोनों ही स्वर्ग को गमन किया करते हैं और इसके विपरीत करने वाले नरक में जाकर पड़ा करते हैं ॥६६॥ जो धर्म का वेत्ता पुरुष है उसको नास्तिक और हैतुक का जल भी नहीं देना चाहिए । जो भी पाषण्ड करने वाले तथा वेदों के ज्ञाता न हों उन सब को ही कुछ भी दान नहीं देना चाहिए ॥६७॥ अपूप-सुवर्ण—गौ—अश्व—पृथिवी—तिल—इनको अविद्वान् प्रतिग्रह के रूप में ग्रहण करके एक काष्ठ की भाँति ही भस्मीभूत हो जाता करता है ॥६८॥ द्विजोत्तम को प्रशस्त द्विजातियों के लिये धन की इच्छा करनी चाहिए । जाति मात्रों से भी ग्रहण करे किन्तु शूद्र से किसी प्रकार से भी ग्रहण नहीं करे ॥६९॥ वृत्ति के सङ्कोच की इच्छा करे और धन के विस्तार की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए । धन के लोभ में प्रशक्त होने वाला द्विज ब्राह्मणत्व से ही अब हीन हो जाया करता है ॥७०॥

वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः ।
न तां गतिमवाप्नोति सङ्कोचाद्यामवाप्नुयात् ॥७१
प्रतिग्रहरुचिर्न स्याद्यात्रार्थन्तु धनं हरेत् ।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥७२
यस्तुस्याद्याचकोनित्यंनसस्वर्गस्यभाजनम् ।
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः ॥७३

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन् अर्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥७४
एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः ।
वर्त्तमानः संयतात्मायातितत्परमम्पदम् ॥७५
पुत्रेनिधायवासर्वंगत्वाऽरण्यन्तु तत्त्ववित् ।
एकाकीविचरेन्नित्यमुदासीनःसमाहितः ॥७६
एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः ।
ज्ञात्वा तु तिष्ठेन्नियतं तथाऽनुष्ठापयेद् द्विजान् ॥७७
इति देवमनादिमेकमीशं गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम् ।
समतीत्य स सर्वभूययोनिं प्रकृतिं वै स परंन यातिजन्म ॥७८

समस्त वेदों का अध्ययन करके और सभी यज्ञों का अवाप्त करके उस गति को द्विज प्राप्त नहीं होता है जिसको सङ्कोच में प्राप्त कर लिया करता है। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण को कम से कम आवश्यकतानुसार ही धन एवं परिग्रह का विस्तार करने में ही श्रेय का सम्पादन होता है ॥७१॥ ब्राह्मण को कभी भी प्रतिग्रह लेने की अभिरुचि नहीं रखनी चाहिए। केवल अपने जीवन की यात्रा का निर्वाह करने के लिये ही धन का अर्जन या प्राप्ति करना चाहिए। स्थिति के अर्थ से अधिक ग्रहण करने वाला ब्राह्मण अधोगति को ही प्राप्त हुआ करता है ॥७२॥ जो नित्य ही याचना करने का अभ्यासी होता है वह स्वर्ग का पात्र तो कदापि हो ही नहीं सकता है। ऐसा याचना वृत्ति वाला ब्राह्मण सर्वदा जीवों को उद्वेग ही करता रहा करता है जिस तरह चोर होता है वैसा ही वह भी होता है ॥७३॥ गुरु और भृत्यों की उज्जिहीर्ष करते हुए तथा देवता और अतिथियों का अर्चन करते हुए सभी ओर से प्रतिग्रह ग्रहण करे तो भी स्वयं तृप्त न होवे ॥७४॥ इस प्रकार से युक्तात्मा गृहस्थ देवगण और अतिथियों का पूजन करने वाला वर्त्तमान होते हुए संयत आत्मा वाला परम पद को प्राप्त किया करता है ॥७५॥ तत्त्वों के वेत्ता का कर्त्तव्य है कि अपने पुत्र को समस्त कार्य भार सुपुर्द करके अरण्य में चला जावे और वहाँ पर अकेला ही परम उदासीन होकर तथा

समाहित होकर नित्य ही विचरण करना चाहिए ॥७६॥ हे द्विजोत्तमगण ! यह गृहस्थों का परमोत्तम धर्म का हमने वर्णन कर दिया है। इसको जान कर नियत रूप से समवस्थित होवे और द्विजों से इसका अनुष्ठान भी कराना चाहिए ॥७७॥ इस विधि से ही अनादि एक द्वेष को निरन्तर गृह धर्म्म के द्वारा समर्चित करना चाहिए। ऐसा करने वाला वह ब्राह्मण समस्त भूत योनिओं का समतिक्रमण करके प्रकृति को प्राप्त होता है और फिर वह दूसरा जन्म कभी भी ग्रहण नहीं किया करता हैं ॥७८॥

२७—वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णन

एवं गृहाश्रमेस्थित्वाद्वितीयम्भागमायुषः ।
वानप्रस्थाश्रमंगच्छेत्सदारः साग्निरेववा ॥१
निक्षिप्यभार्यांपुत्रेषु गच्छेद्वनमथापिवा ।
दृष्ट्वा पत्यस्यचापत्यं जर्ज्जरीकृतविग्रहः ॥२
शुक्लपक्षस्यपूर्वाह्णे प्रशस्तेचोत्तरायणे ।
गत्वारण्यं नियमवांस्तपः कुर्यात्समाहितः ॥३
फलमूलानिपूतानि नित्यमाहारमाहरेत् ।
यताहारोभवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥४
पूजयित्वातिथीन्नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत्सुरान् ।
गृहादादाय चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः ॥५
जटां वै बिभृयान्नित्यं नखरोमाणि नोत्सृजेत् ।
स्वाध्यायं सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद्वाचमन्यतः ॥६
अग्निहोत्रञ्चजुहुयात्पञ्चयज्ञान्समाचरेत् ।
मुन्यन्नैर्विविधैर्वन्यैः शाकमूलफलेन च ॥७

महामहिम श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास महर्षि ने कहा—इस उपर्युक्त प्रकार से गार्हस्थ्य आश्रम में स्थित रहकर आयु के दूसरे भाग में वानप्रस्थाश्रम में गमन करना चाहिए। अथवा अपनी दारा और अग्नि के साथ ही वानप्रस्थ में प्रवेश करे ॥१॥ अथवा अपनी भार्या को पुत्रों के सुपुर्द कर वन में गमन करना चाहिए और जब अपने पुत्र के भी सन्तान

उत्पन्न हो जावे तो उसे देखकर ही जर्जरी भूत अपने शरीर के होने पर मास के शुक्ल पक्ष में पूर्वाह्न के समय में तथा परम प्रशस्त उत्तरायण सूर्य के होने पर वन में जाकर नियमों के ग्रहण करने वाला होवे और परम समाहित होकर वहाँ पर तपश्चर्या करनी चाहिए ।।२-३।। परम पवित्र फलों और मूलों को नित्य ही अपने आहार के लिये समाहरण करना चाहिए । उससे संयत आहार वाला होवे तथा देवता और पितृगण का पूजन करना चाहिए ।।४।। नित्य ही अतिथियों का पूजन करके स्नान करके सुरों का अर्चन करना चाहिए । गृह से लाकर समाहित होते हुए आठ ग्रासों का अशन करना चाहिए ।।५।। नित्य जटाओं को धारण करे तथा नख और रोमों का उत्सृजन नहीं करे । सर्वदा स्वाध्याय करे और वाणी को अन्य में निःशेष रूप से देवे ।।६।। अग्नि होत्र का हवन करे और पाँच महायज्ञों का सम्पादन करना चाहिए । ये पञ्च यज्ञ मुन्यन्न अनेक वन्य अन्न–शाक–मूल और फल से ही करे ।।७।।

चीरवासाभवेन्नित्यं स्नातित्रिषवणंशुचिः ।
सर्वभूतानुकम्पीस्यात्प्रतिग्रहविवर्जितः ।।८

स दर्शपौर्णमासेन यजेतनियतंद्विजः ।
ऋक्षेष्वाग्रयणेचैवञ्चातुर्मास्यानि चाहरेत् ।।९

उत्तरायणञ्चक्रमशो दक्षस्यायनमेव च ।
वासन्तैः शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ।।१०

पुरोडाशांश्चरुञ्चैव द्विविधं निर्वपेत्पृथक् ।
देवताभ्यश्चतद्धुत्वावन्यं मेध्यतरं हविः ।।११

शेषं समुपभुञ्जीत लवणञ्च स्वयंकृतम् ।
वर्ज्जयेन्मधुमांसानि भौमानि कवकानिच ।।१२

भूस्तृणं शिशुकञ्चैव श्लेष्मातकफलानि च ।
नफालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपिकेनचित् ।।१३

न ग्रामजातान्यात्तोऽपिपुष्पाणिचफलानि च ।
श्रावणेनैवविधिनावह्निपरिचरेत्सदा ।।१४

नित्य ही चीरों के वसन धारण करे। तीनों वार स्नान और सन्ध्योपासन करे तथा शुचि रहे। समस्त प्राणियों पर अनुकम्पा की भावना बनाये रक्खे और सभी प्रकार के प्रतिग्रह से वर्जित रहना चाहिए ॥८॥ उस द्विज को दर्श और पौर्ण मास याग के द्वारा यजन करना चाहिए। नक्षत्रों में और आग्रयण में चातुर्मास्य व्रत को आहृत करे ॥९॥ क्रम से उत्तरायण और दक्षिणायन—वासन्त और शारद पवित्र मुन्यन्नों के द्वारा जो स्वयं ही समाहृत किये गये हों पुरोडाश और चरु दो प्रकार के पृथक् निर्वपन करे। उस मेध्यतर वन्य हवि का देवों के लिये हवन करे ॥१०-११॥ उस हवन से जो शेष रहे उसे स्वयं अशन करे और लवण भी स्वयं कृत ही ग्रहण करे। मधु और मांस तथा भूमि में समुत्पन्न कवच आदि को वर्जित रक्खे ॥१२॥ भूस्तृण—शिशुक—श्लेस्मातक फल—फालकृष्ट तथा किसी के द्वारा उत्सृष्ट—इनका कभी भी अशन नहीं करना चाहिए ॥१३॥ चाहे आर्तावस्था में ही क्यों न हो ग्राम में उत्पन्न पुष्प और फलों को अशन न करे। श्रावण में विधि से सदा वह्नि का परिचरण नहीं करे ॥१४॥

नद्रुह्येत्सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयोभवेत्।
ननक्तञ्चैवमश्नीयात्रात्रौध्यानपरोभवेत् ॥१५

जितेन्द्रियोजितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः।
ब्रह्मचारीभवेन्नित्यंनपत्नीमपिसंश्रयेत् ॥१६

यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत्।
तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥१७

तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो भवेद् द्विजः।
न च वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि ॥१८

अधःशयीत नियतं सावित्रीजपतत्परः।
शरण्यः सर्वभूतानां सम्विभागरमः सदा ॥१९

परिवादंमृषावादंनिद्रालस्यंविवर्जयेत्।
एकाग्निरनिकेतःस्यात्प्रोक्षितांभूमिमाश्रयेत् ॥२०

मृगैः सह चरेद्वा यस्तैः सहैव च संविशेत् ।
शिलायां वा शर्करायां शयीत सुसमाहितः ॥२१

समस्त प्राणियों से कभी भी द्रोह नहीं करना चाहिए। सदा निर्द्वन्द्व और निर्भय होकर रहना चाहिए। रात्रि में कभी भी अशन न करे तथा रात्रि कीं वेला में ध्यान में तत्पर होकर ही रहना चाहिए ॥१५॥ इन्द्रियों को जीतने वाला—क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला और तत्त्वज्ञान का विशेष चिन्तन करने वाला ब्रह्मचर्य धारी नित्य रहना चाहिए। अपनी पत्नी का संश्रय ग्रहण न करे ॥१६॥ जो वन में जाकर भी पत्नी के साथ स्वेच्छया मैथुन करता है उसका वह वानप्रस्थाश्रम का लुप्त हो जाता है और वह द्विज प्रायश्चित का अधिकारी बन जाया करता है ॥१७॥ वहाँ वन में जो गर्भ समुत्पन्न होता है वह द्विज संस्पर्श के योग्य नहीं होता है। इसका वेद में भी कोई अधिकार नहीं होता है और उसका जो भी वंश होगा उसमें भी यही होता है ॥१८॥ नित्य ही भूमि में शयन करे और सावित्री के जाप करने में परायण रहना चाहिए। समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाला तथा सम्विभाग में रति रखने वाला रहे ॥१९॥ परीवाद—मिथ्यावाद—निद्रा और आलस्य का परिवर्जन कर देवे। एकाग्नि और विना निकेत वाला होवे तथा सर्वदा प्रेक्षित भूमि का आश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥२०॥ वन में मृगों के साथ ही चरण करे तथा उनके साथ ही संवेशन भी करना चाहिए। अथवा शिला पर या धूलि में ही शयन समाहित होकर करना चाहिए ॥२१॥

सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयकोऽपि वा ।
षण्मासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव च ॥२२
त्यजेदाश्वयुजे मासि सम्पन्नं पूर्वचिन्तितम् ।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥२३
दन्तोलूखलिको वा स्यात्कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत् ।
अश्मकुट्टो भवेद्वाऽपि कालपक्वभुगेव च ॥२४
नक्तं चान्नं समश्नीयाद् दिवा चाहृत्य शक्तितः ।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वा चाष्टमकालिकः ॥२५

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्त्तयेत् ।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद् द्विजाग्रचान् कथितान् सकृत् ॥२६

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्त्तयेत्सदा ।
स्वाभाविकैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥२७

भूमौ वा परिवर्त्तेतत्तिष्ठेद्वाप्रपदैर्दिनम् ।
स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद्धैर्यमुत्सृजेत् ॥२८

तुरन्त प्रक्षालक होवे अथवा सास संचयक होवे अथवा षण्मास निश्चय वाला होवे तथा समानिचय वाला होवे ॥२२॥ आश्वयुज मास में सम्नन्न पूर्व चिन्तित का त्याग कर देना चाहिए। जीर्ण वसन और शाक भूल फल सब का त्याग कर देना चाहिए ॥२३॥ दन्त रूपी उलूखल से युक्त होवे तथा कपोती की वृत्ति का समाचरण करे। अश्मकुट्ट होवे और काल में पके हुए फलों का उपभोग करने वाला रहे ॥२४॥ रात्रि की वेला में अन्न का अशन नहीं करे। दिन में शक्ति से समाहरण करके ही अशन करना चाहिए। चौथे काल का हो अथवा आठवें काल का होवे। चान्द्रायण व्रत के ही विधान से शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष में वर्त्तन करना चाहिए। पक्ष-पक्ष में अशन करे वह भी एक बार श्रेष्ठ द्विजों को कथित करके ही करना चाहिए ॥२५-२६॥ पुष्प मूल और फलों के द्वारा ही केवल सदा वर्तन करना चाहिए। वैखानस मत में स्थित रहने वालों को फलादि भी जो स्वयं शीर्ण हों अथवा स्वाभाविक हों उनसे ही अपना वर्त्तन करना चाहिए ॥२७॥ भूमि में ही परिवर्त्तन करे अथवा दिन में प्रपदों से स्थित रहे। स्थान और आसन से विहार न करे और किसी समय में भी धैर्य का उत्सर्ग नहीं करना चाहिए ॥२८॥

ग्रीष्मेपञ्चतपास्तद्वद्वर्षास्वभ्रावकाशकः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्तेक्रमशो वर्द्धयंस्तपः ॥२९

उपस्पृश्य त्रिषवणं पित्रदेवांश्च तर्पयेत् ।
एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन्वा पिबेत्तदा ॥३०

पञ्चाग्निर्धूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽथवा।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च गोमयम् ॥३१

शीर्णपर्णाशिनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्त्तयेत्सदा।
योनाभ्यासरतश्चैव रुद्राध्यायी भवेत्सदा ॥३२

अथर्वशिरसोऽध्येतावेदान्ताभ्यासतत्परः।
यमान् सेवेतसततंनियमांश्चाप्यतन्द्रितः ॥३३

कृष्णाजिनः सात्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः ॥३४

अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत्।
तापसेष्वेव विप्रेषयात्रिकंभंक्ष्यमाहरेत् ॥३५

ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तपने की तपस्या करे तथा वर्षा ऋतु में अभ्रों में ही अवकाश ग्रहण करके रहे तथा हेमन्त ऋतु में गीले वस्त्रधारी होकर रहे। इस तरह क्रम से अपने तपस्या का सदा वर्धन करे ॥२६॥ तीनों कालों में उपस्पर्शन करके पितृगण और देवों का तर्पण करना चाहिए। एक ही पैर से स्थित्त रहे अथवा उस समय में मरीचियों का पान करना चाहिए ॥३०॥ पञ्चाग्नि को धूम्र का पान करने वाला रहे—उष्मप अथवा सोमप रहे। शुक्ल पक्ष में पय का पान करे तथा कृष्ण पक्ष में गोमथ का पान करना चाहिए ॥३१॥ शीर्ण होकर गिरे हुए पत्तों का अशन करने वाला होवे अथवा सदा कृच्छ्र व्रतों से ही वर्त्तन करना चाहिए। योग के अभ्यास में रति रखने वाला तथा रुद्राध्यायी सदा होना चाहिए ॥३२॥ अथर्व वेद के शिर का अध्ययन करे तथा वेदान्त शास्त्र के अभ्यास में परायण रहना चाहिए। जितने भी शास्त्रोक्त यम हैं उनका निरन्तर सेवन करना चाहिए तथा तन्द्रा रहित होकर नियमों का भी पूर्ण परिपालन करना चाहिए ॥३३॥ कृष्ण मृगचर्म को ही अपना उत्तरीय वस्त्र बनावे तथा शुक्ल यज्ञोपवीत को धारण करने वाला होवे। इसके अनन्तर अग्नियों का समारोपण कर अपनी आत्मा में ही ध्यान में तत्पर रहना चाहिए ॥३४॥ अग्नि से रहित और निकेत से

हीन होवे तया मुनिमक्षि पर रहना चाहिए। तापस विप्रों में ही यात्रिक भिक्षा का समाहरण करना चाहिए ॥३५॥

गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु।
ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वनेवसन् ३६
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिनाशकलेन वा।
विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत् ॥३७
विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च।
महाप्रस्थानिकंवासौ कुर्यादनशनन्तु वा।
अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः ३८
ये न सम्यगिममाश्रमं शिवं संश्रयन्त्यशिवपुञ्जनाशनम्।
ते विशन्ति पदमैश्वरं पदं यान्ति यत्र गतमस्य संस्थितेः ॥३९

अन्य गृह मेधियों में तथा वन में वास करने वाले द्विजों में—ग्राम से समाहृत करके वन में वास करते हुए केवल आठ ही ग्रासों का अशन करना चाहिए ॥३६॥ पुर के द्वारा प्रतिग्रहण कर अथवा पाणि से शकल के द्वारा ग्रहण करना चाहिए। अपनी आत्मा की संसिद्धि के लिये अनेक उपनिषदों का जाप करे ॥३७॥ विद्या विशेषों को—सावित्री को तथा रुद्राध्याय को आत्म सिद्धि के लिये जपना चाहिए। इसको महा प्रस्थानिक अथवा अनशन करना चाहिए। अग्नि में प्रवेश अथवा अन्य ब्रह्मार्पण विधि में स्थित होता हुआ करे ॥३८॥ जो इस परम शिव आश्रम का भली-भाँति संश्रय किया करते हैं वे अशिव पुंज का नाश कर दिया करते हैं। ऐसे लोग फिर ईश्वरीय परमपद में ही प्रवेश किया करते हैं जहाँ पर संस्थिति का गमन होता है ॥३९॥

---

२८ यतिधर्मवर्णन

एवं वनाश्रमे स्थित्वातृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषोभागं सन्न्यासेननयेत्क्रमात् ॥१
अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत्।
योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥२

यदामनसिसञ्जातंवैतृष्ण्यंसर्ववस्तुषु ।
तदासन्न्यासमिच्छन्तिपतितःस्याद्विपर्यये ॥३

प्राजापत्यान्निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवापुनः ।
दान्तः पक्वकषायोऽसौब्रह्माश्रममुपाश्रयेत् ॥४

ज्ञानसन्न्यासिनः केचिद्वेदसन्न्यासिनः परे ।
कर्मसन्न्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्त्तिताः ॥५

यः सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः ।
प्रोच्यते ज्ञानसन्न्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थितः ॥६

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यन्निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्रोच्यते वेदसन्न्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः ॥७

महामहर्षि व्यास देव ने कहा—इस प्रकार से आयु के तीसरे भाग को वनाश्रम में स्थित रह कर फिर आयु के चतुर्थ भाग को संन्यास के द्वारा क्रम से वहन करना चाहिए ॥१॥ द्विज को चाहिए कि अग्नियों को आत्मा में ही संस्थापित करके प्रव्रजन कर जाना चाहिए अर्थात् संन्यासी हो जावे । संन्यास—आश्रम को ग्रहण कर सदा योग के अभ्यास में निरत—परम शान्त और ब्रह्मविद्या में तत्पर हो जाना चाहिए ॥२॥ जिस समय में प्राणी के मन में सभी वस्तुओं में तृष्णा का एकदम अभाव हो जावे तभी संन्यास को ग्रहण करने की इच्छा किया करते हैं । इसके विपर्यय से पतित हो जाया करता है ॥३॥ प्राजापत्य इष्टि को निरूपित करके अथवा आग्नेयी को करके परम दान्त और परिपक्व कषायों वाले इसको ब्रह्माश्रम का उपाश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥४॥ कुछ तो ज्ञान से ही संन्यासी होते हैं—कुछ वेद संन्यासी हुआ करते हैं—अन्य कर्म संन्यासी हैं—इस प्रकार से त्रिविध प्रकार के संन्यासी होते हैं । जिनको कीर्त्तित भी किया गया है ॥५॥ जो सभी के सङ्ग से निर्मुक्त होकर निर्द्वन्द्व और निर्भय रहता है और अपनी आत्मा में ही व्यवस्थित रहा करता है उसे ही ज्ञान संन्यासी कहा जाता है ॥६॥ जो बिल्कुल निर्द्वन्द्व और परिग्रह रहित होकर नित्य वेदों का ही अभ्यास किया करता है वह मुमुक्षु

(मुक्ति की इच्छा रखने वाला) और इन्द्रियों को विजित करने वाला वेद संन्यासी कहा जाया करता है ।।७।।

यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वाब्रह्मार्पणपरो द्विजः ।
सज्ञेयःकर्मसन्न्यासीमहायज्ञपरायणः ।।८
त्रयाणामपि चैतेषांज्ञानीत्वभ्यधिकोमतः ।
नतस्यविद्यतेकार्यंनलिङ्गवाविपश्चितः ।।९
निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः ।।१०
ब्रह्मचारी मितग्रासी ग्रामात्त्वन्नंसमाहरेत् ।
अध्यात्ममतिरासीतनिरपेक्षोनिरामिषः ।।११
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ।
नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।।१२
कालमेव प्रतिक्षेत निदेशम्भृतको यथा ।
नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन ।।१३
एवं ज्ञात्वापरोयोगीब्रह्मभूयायकल्पते ।
एकवासाथवा विद्वान्कौपीनाच्छादनस्तथा ।।१४

जो द्विज अग्नियों को आत्मसात् करके ब्रह्मार्पण में ही परायण हो उस महायज्ञ में ही तत्पर रहने वाले को कर्म—संन्यासी ही समझना चाहिए ।।८।। ये तीन प्रकार के संन्यासियों के जो भेद बतलाये गये हैं इनमें ज्ञान संन्यासी ही सबसे अधिक माना गया हैं । उस विद्वान् का कोई भी कार्य विद्यमान नहीं होता है और न कोई लिङ्ग ही हुआ करता है ।।९।। वह ममता से एक दम रहित—भय से शून्य—निर्द्वन्द्व और कुछ भी परिग्रह न रखने वाला—जीर्ण वस्त्र की एक कोपीन को धारण करने वाला होता है अथवा कभी ध्यान में तत्पर होकर नग्न भी हो जाता है ।।१०।। ब्रह्मचर्य धारण करने वाला—बहुत ही कम ग्रास ग्रहण करने वाला ग्राम से अन्न का समाहरण करे और बिल्कुल निरपेक्ष और निरामिष होकर आत्मा में ही मति रखने वाला होना चाहिए ।।११।। आत्मा की ही सहायता से इस लोक में सुख का चाहने वाला विचरण करे न तो

वह मरण का अभिनन्दन करे और न उसे जीवन का ही कोई अभिनन्दन करना चाहिए ।।१२।। निदेश के मृतक की भाँति ही केवल काल की ही उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए । न तो कुछ भी अध्ययन करे और वोले तथा कदाचित् भी कुछ श्रवण भी नहीं करना चाहिए ।।१३।। इस प्रकार से ही जानकर ही पर योगी ब्रह्म भूय अर्थात् ब्रह्म के ही स्वरूप वाला कल्पित हुआ करता है । उस विद्वान् को केवल एक ही वस्त्र का धारण करने वाला या कौपीन के समाच्छादन करने वाला होना चाहिए ।।१४।।

मुण्डीशिखीवाथभवेत्त्रिदण्डीनिष्परिग्रहः ।
काषायवासाःसततंध्यानयोगपरायणः ।।१५
ग्रामान्तेवृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपिवा ।
समः शत्रौचमित्रेचतथामानापमानयोः ।।१६
भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यन्नैकान्नादी भवेत्क्वचित् ।
यस्तु मोहेन वान्यस्मादेकान्नादी भवेद्यतिः ।।१७
न तस्यनिष्कृतिःकाचिद्धर्मशास्त्रेषुकथ्यते ।
रागद्वेषविमुक्तात्मासमलोष्टाश्मकाञ्चनः ।।१८
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनीस्यात्सर्वनिस्पृहः ।
दृष्टिपूतंन्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलंपिबेत् ।
शास्त्रपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत् ।।१९
नैकत्र निवसेद्देशेवर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः ।
स्नानशौचरतोनित्यंकमण्डलुकरःशुचिः ।।२०
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत् ।
मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।।२१

केशों को एक दम मुण्डन कराकर रहने वाला अथवा शिखाधारी परिग्रह से पूर्णतया रहित त्रिदण्डी को होना चाहिए । उसे निरन्तर काषाय रंग के वस्त्रों का धारण करने वाला और ध्यान योग में परायण रहना चाहिए ।। १५ ।। किसी वृक्ष के मूल में अथवा किसी देवालय में उसे निवास करना चाहिए । शत्रु और मित्रों में समान भाव रखने वाला तथा मान और अपमान को भी समान ही समझने वाला होना चाहिए

॥ १६ ॥ नित्य ही भिक्षा करके उसे अपना वर्त्तन करना चाहिए। एक ही अन्न का अशन करने वाला कभी नहीं होना चाहिए। यदि मोह से या किसी अन्य कारण से यति एक ही अन्न का अशन करके रहने वाले होवे तो उसका शास्त्र में कहीं पर भी कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है धर्म शास्त्रों में अन्य पापों का प्रायश्चित्त होता है किन्तु यह ऐसा महा पाप है इसकी धर्मशास्त्र ने कोई भी निष्कृति ही नहीं बतलाई है। सर्वदा दृष्टि से आगे भली भाँति देखकर ही कदम रखना चाहिए और सदा वस्त्र से छान कर जल का पान करे यति को राग द्वेष से बिल्कुल विमुक्त आत्मा वाला और मिट्टी के ढेले तथा सुवर्ण के टुकड़े को एक समान ही समझना चाहिए। सभी प्राणियों की हिंसा से निवृत्त होवे—मौन धारण करे और सभी प्रकार की स्पृहा से रहित रहना चाहिए। सर्वदा शास्त्र से पवित्र हुई वाणी को बोले और मन से पवित्र जिस को समझले उसी कर्म को करना चाहिए ॥ १७-१६ ॥ वर्षा ऋतु के सिवाय भिक्षुक को किसी भी एक ही सथन में निवास नहीं करना चाहिए। उसे नित्य ही ज्ञान के द्वारा शौच करने में रति वाला—शुचि तथा एक कमण्डलु हाथ में धारण करने वाला रहना चाहिए ॥ २० ॥ नित्य ही ब्रह्मचर्य्य में रत और वन में निवास करने में ही रति रखने वाला होना चाहिए। मोक्ष दिलाने वाले शास्त्रों में निरत—ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर ही रहना चाहिए ॥ २१ ॥

दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतोयतिर्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२२

अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवाख्यंसनातनम्।
स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु ॥२३

यज्ञोपवीतीशान्तात्माकुशपाणिःसमाहितः।
धौतकाषायवसनोभस्मच्छन्नतनूरुहः ॥२४

अधियज्ञंब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव वा।
आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितञ्चयत् ॥२५

पुत्रेषु चाथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः ।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं सयातिपरमांगतिम् ॥२६
अहिंसा सत्यमस्तेयंब्रह्मचर्यं तपः परम् ।
क्षमा दयाच सन्तोषोव्रतान्यस्यविशेषतः ॥२७
वेदान्तज्ञानर्निष्ठो वा पञ्चयज्ञान् समाहितः ।
ज्ञानध्यानसमायुक्तो भिक्षार्थे नैवतेनहि ॥२८

एक सन्यासी को दम्भ और अहङ्कार से नित्य ही दूर रहना चाहिए तथा किसी की निन्दा और पिशुनिता से भी रहित रहना उचित है। जो यति आत्मा के ज्ञान रूपी गुण से युक्त होता है वही मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥ २२ ॥ निरन्तर ही सन्यासी को प्रणव नाम वाले सनातन वेद का अभ्यास करते रहना चाहिए। स्नान करके—आचमन करके विधि पूर्वक परम शुचि होकर देवालय आदि में अभ्यास करना चाहिए ॥ २३ ॥ यज्ञोपवीत धारी—शान्त आत्मा वाला—हाथ में कुशा रखने वाला—अति समाहित—धुला हुआ कापाय वस्त्र धारण करने वाला—भस्म से समाच्छन्न तनूरुहों वाला अधियज्ञ ब्रह्म का जाप करे—आधिदैविक और आध्यात्मिक तथा जो भी वेदान्त में कहा गया है उसका निरन्तर जाप करता रहना चाहिए ॥ २४-२५ ॥ अपने पुत्रों के साथ भी उन्हीं में निवास करने वाले यति—मुनि और ब्रह्मचारी को नित्य ही वेदों का ही अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार से रहने वाला ही यति परम गति की प्राप्ति किया करता है ॥ २६ ॥ अहिंसा—सत्य—ब्रह्मचर्य—परम तपश्चर्या—क्षमा—दया और सन्तोष ये व्रत यति के विशेष रूप से हुआ करते हैं ॥ २७ ॥ वेदान्त में निर्दिष्ट ज्ञान में निष्ठा रखने वाला तथा पूज्य यज्ञों को परम समाहित होकर करने वाला—ज्ञान और ध्यान से समायुक्त रहे और भिक्षा के लिये उसे नहीं करने चाहिए ॥ २८ ॥

होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं कालेकाले समाहितः ।
स्वाध्यायञ्चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत् ॥२९
ततो ध्यायीत तं देवमेकान्ते परमेश्वरम् ।
एकान्ते वर्जयेन्नित्यं कामंक्रोधं परिग्रहम् ॥३०

एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान् ।
कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम् ।।३१

नित्य ही होम के मन्त्रों का जाप करे और समय समय पर समाहित होकर ही प्रतिदिन स्वाध्याय भी करना चाहिए। दोनों सन्ध्याओं के समय में नियत रूप से सावित्री का जाप करना चाहिए ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् परम शान्त नितान्त एकान्त स्थान में उस देव परमात्मा का बैठकर ध्यान करना चाहिए। एकान्त में स्थित होकर नित्य ही काम—क्रोध और परिग्रह को वर्जित कर देना चाहिए ॥ ३० ॥ एक वस्त्र धारी अथवा दो वस्त्रों को धारण करने वाला—शिखाधारी और यज्ञो पवीत धारण करने वाला तथा एक कमण्डलु कर में रखने वाला त्रिदण्डी स्वामी उस पर को प्राप्त किया करता है ॥ ३१ ॥

२९—यतिधर्मवर्णन (२)

एवं स्वाश्रमनिष्टानांयतीनांनियतात्मनाम् ।
भैक्ष्येण वर्त्तनंप्रोक्तं फलमूलैरथापिवा ।।१
एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे ।
भैक्ष्यप्रसक्तोहियतिर्विषवेष्वपि सज्जति ।।२
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत् ।
प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीत अद्भिः प्रक्षालयेत्पुनः ।।३
अथवाऽन्यदुपादायपात्रे भुञ्जीतनित्यशः ।
भुक्त्वातत्सम्मृजेत्पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः ।।४
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवर्जने ।
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षांनित्यं यतिश्चरेत् ।।५
गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालम्भिक्षुरधोमुखः ।
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद्वाग्यतः शुचिः ।।६
प्रक्षाल्य पाणीपादौ च समाचम्य यथाविधि ।
आदित्ये दर्शयित्वाऽन्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखः शुचिः ।।७

महर्षि व्यासजी ने कहा—इस तरह से अपने आश्रम में निष्ठ नियत आत्मा वाले यतियों का भिक्षा के द्वारा ही तथा फलों और मूलों से वर्त्तन बतलाया गया है ।। १ ।। केवल एक ही समय में यति को भिक्षा करनी चाहिए और इसके अधिक विस्तार करने में कभी प्रसक्त नहीं होना चाहिए । जो यति दूर तक भिक्षाटन करने में प्रसक्त होता है वह विषयों में भी सज्जित हो जाया करता है ।। २ ।। केवल सात ही घरों में भिक्षाटन करे । यदि वहाँ पर लाभ न हो तो पुनः समाचरण करे । पात्र में प्रक्षालन करके ही अशन करे और फिर भी जल से प्रक्षालन कर देना चाहिए ।। ३ ।। अथवा कोई अन्य का उपादान करके ही नित्य भोजन करना चाहिए । भोजन करके ही उस पात्र का सम्मार्जन कर देवे । यात्रा मात्र में अलोलुप रहना चाहिए ।। ४ ।। जो घर धूम से रहित हो—जिसमें मुसल की ध्वनि न आरही हो—जिस घर में आग के अङ्गार न होवें और जिसमें लोग खा न चुके हों—शराव सम्पात के होने पर यति को नित्य ही भिक्षा का समाचरण करना चाहिए ।। ५ ।। भिक्षु को जब भिक्षा ग्रहण करने को जावे तो उसके द्वार पर नीचे की ओर मुख करके जितनी देर में एक गौ का दोहन हो उतने ही समय तक ठहरना चाहिए । भिक्षा—यह कहकर एक वार चुप हो जावे । वाग्यत और शुचि होकर ही उसे अशन करना चाहिए ।। ६ ।। हाथ—पैरों को धोकर यथाविधि भली भाँति आचमन करके पूर्व की ओर मुख करके शुचि होते हुए सूर्य को दिखा कर ही भोजन करना चाहिए ।। ७ ।।

हुत्वाप्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहित ।
आचम्यदेवंब्रह्माणं ध्यायीतपरमेश्वरम् ।।८
अलाबुं दारुपात्रञ्ज मृण्मयं वैणवंततः ।
चत्वार्येतानि पात्राणि मनुराह प्रजापतिः ।।९
प्राग्रात्रे पररात्रे च मध्यरात्रे तथैवच ।
सन्ध्यास्वग्निविशेषेणचिन्तयेन्नित्यमीश्वरम् ।।१०
कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्य विश्वसम्भवम् ।
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसः स्थितम् ।।११

सर्वस्याधारभूतानामानन्दं ज्योतिरव्ययम् ।
प्रधानपुरुषातीतमाकाशकुहरं शिवम् ॥१२
तदन्तःसर्वभावानामीश्वरंब्रह्मरूपिणम् ।
ध्यायेदनादिमध्यान्तमानन्दादिगुणालयम् ॥१३
महान्तं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्माणं सत्यमव्ययम्
तरुणादित्यसङ्काशं महेशं विश्वरूपिणम् ॥१४
ओङ्कारेणाथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि ।
आकाशे देवमीशानं ध्यायीताऽऽकाशमध्यगम् ॥१५

पाँच प्राणों की आहूति देकर फिर परम समाहित होकर आठ ग्रास ग्रहण करे। फिर आचमन करके देव ब्रह्मा परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए ॥ ८ ॥ प्रजापति महर्षि मनु महाराज ने यति के लिये चार ही पात्रों को बतलाया है—अलाबु का पात्र हो या काष्ठ का पात्र—मृण्मयं पात्र अथवा वैष्णव पात्र होना चाहिए ॥ ९ ॥ प्राग् रात्र में और पर रात्र में तथा मध्य रात्र में—दोनों सन्ध्याओं में अग्नि विशेष के द्वारा ही नित्य ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए ॥ १० ॥ हृदय कमल में विश्व नाम धारी और विश्व सम्भव को करके समस्त भूतों से पर तम से भी परे स्थित आत्मा का चिन्तन करना चाहिए ॥ ११ ॥ सबके आधार भूतों का आनन्द—अव्यय—ज्योति—प्रधान पुरुष से भी परे—आकाश कुहर—शिव—अन्तर्गत समस्त भावों का ईश्वर—ब्रह्मरूपी—अनादि मध्यान्त—आनन्द आदि गुणों का आलय का ध्यान करना चाहिए ॥ १२-१३ ॥ महान् पुरुष—ब्रह्म—ब्रह्मा—सत्य—अव्यय—तरुण सूर्य के सदृश—विश्वरूपी महेश का ध्यान करे। ओङ्कार के द्वारा आत्मा को परमात्मा में संस्थापित करे। आकार के मध्य में गमन करने वाले ईशान देव का आकाश में ध्यान करे ॥ १४-१५ ॥

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम् ।
पुराणं पुरुषं शुभ्रं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात् ॥१६
यद्वा गुहायां प्रकृतं जगत्सम्मोहनालये ।
विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम् ॥१७

जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते ।
आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मंयत्पश्यन्तिमुमुक्षवः ॥१८
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलंज्ञानलक्षणम् ।
अनन्तंसत्यमीशानंविचिन्त्यासीतसंयतः ॥१९

गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम् ।
योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुतेयोगमैश्वरम् ॥२०
तस्माद्ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ।
ज्ञानं समाश्रयेद् ब्राह्मं येन मुच्येत बन्धनात् ॥२१

समस्त भूतों का कारण सब भावों के आनन्द का एक समाश्रय शुभ्र पुराण पुरुष का ध्यान करते हुए बन्धन से मुक्त हो जाया करता है ।१६। यद्वा गुहा में सम्मोहनालय में प्रकृत जगत् का विचिन्तन करके जो परम व्योम और समस्त भूतों का एक ही कारण है और सब भूतों का जीवन है जहाँ पर यह लोक प्रलीन हो जाता है । ब्रह्म का परम सूक्ष्म आनन्द है जिस को मुमुक्षु लोग ही देखा करते हैं ॥ १७-१८ ॥ उसके मध्य में निहित ब्रह्म केवल ज्ञान के ही लक्षण वाला है । उस अनन्त सत्य ईशान का विचिन्तन करके संयत होकर स्थित रहे ॥ १९ ॥ यह गोपनीय से भी अत्याधिक गुह्य यतियों का ज्ञान बता दिया गया है । जो महेश के साथ अनुष्ठान करता है वह ईश्वरीय योग का अशन किया करता है ॥ २० ॥ इसलिये ध्यान में रत होकर नित्य ही आत्म—विद्या में परायण होना चाहिए । तथा ब्रह्म ज्ञान को समाश्रय करे जिससे बन्धन से मुक्त हो जावे ॥ २१ ॥

गत्वा पृथक् स्वमात्मानंसर्वस्मादेवकेवलम् ।
आनन्दमजरंज्ञानंध्यायीतचपुनःपरम् ॥२२
यस्माद्भवन्तिभूतानियद्गत्वानेहजायते ।
स तस्मादीश्वरोदेवःपरस्माद्योऽधितिष्ठति ॥२३
यदन्तरे गद्गमनं शाश्वतं शिवमुच्यते ।
यदाहुस्तत्परो यः स्यात्स देवस्तु महेश्वरः ॥२४

व्रतानियानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ५

उपेत्य तु स्त्रियं कामात्कृच्छ्रसंयतमानसः ।
प्राणायामसमायुक्तः कुर्यात्सान्तपनं शुचिः ॥२६
ततश्चरेत नियमात्कृच्छ्रं संयतमानसः ।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥२७

न नर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः ।
तथापि च न कर्त्तव्यं प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ॥२८

सबसे ही केवल अपनी आत्मा को पृथक् जानकर आनन्द—अजर—पर ज्ञान का पुनः ध्यान करना चाहिए ॥ २२ ॥ जिससे भूतगण समुत्पन्न होते हैं और जहाँ पर पहुंच कर फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है । इसीलिये वह देव ईश्वर है जो उस पर से अधिष्ठित होता है जिस के अन्तर में वह गमन शाश्वत और शिव कहा जाता है जिसको तत्पद कहते हैं और जो देव महेश्वर हैं ॥ २३-२४ ॥ भिक्षुओं के जो व्रत हैं तथा उपव्रत हैं । इनमें एक-एक के भी अतिक्रमण करने में उनका प्रायश्चित्त किया जाता है ॥ २५ ॥ कृच्छ्रव्रत से सयत मन वाला यदि काम से स्त्री के पास जाता है तो उसे प्राणायाम से समायुक्त होकर परम शुचि हो सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥ २६ ॥ इसके पश्चात् संयत मानस वाला होकर नियम से कृच्छ्र व्रत का समाचरण करना चाहिए । फिर आश्रम में आकर भिक्षु को अतन्द्रित होकर चरण करना चाहिए ॥ २७ ॥ मनीषीगण चर्म से युक्त भी अनृत का प्रयोग अनुचित नहीं होता है तो भी इसका प्रयोग नहीं किया करते हैं तो भी इसे नहीं करना चाहिए । यह एक बड़ा ही दारुड़ प्रसङ्ग है ॥ २८ ॥

एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा ।
कर्त्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना वरमव्ययम् ॥२९
गतेनाऽपि न कार्यन्ते न कार्यं स्तैन्यमन्यतः ।
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः ॥३०

हिंसाचैषा परा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका ।
यदेतद्द्रविणं नामप्राणाह्येतेवहिश्चराः ॥३१

स तस्य हरति प्राणान्योयस्य हरतेधनम् ।
एवंकृत्वा सुदुष्टात्माभिन्नवृत्तोव्रताहतः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥३२

विधिना शास्त्रदृष्टेन सम्वत्सरमिति श्रुतिः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥३३

अकस्मादेव हिंसा तु यदि भिक्षुः समाचरेत् ।
कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रं तु चान्द्रायणमथापि वा ॥३४

स्कन्नमिन्द्रियवैल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्यां वै प्राणायामास्तु षोडश ॥३५

एक रात्रि का उपवास और सौ प्राणायाम धर्म के इच्छुक यति को अव्यय वर करना चाहिए ॥ २९ ॥ गत के द्वारा भी नहीं किये जाते हैं और अन्य से स्तैन्य भी नहीं करना चाहिए । स्तेय कर्म से अधिक कोई अधर्म नहीं होता है ऐसा स्मृतिकार का वचन है ॥ ३० ॥ इस हिंसा को भी परा कहा गया है जो कि आत्म ज्ञान के नास करने वालो होती है । जो यह धन है जिसका नाम तो द्रविण है किन्तु ये वाहिर चरण करने वाले प्राण ही होते हैं ॥ ३१ ॥ जो जिसके धन का हरण करता है वह उसके प्राणों का ही हरण किया करता है इस प्रकार से वह दुष्ट आत्मा वाला भिन्न वृत्त वाला और वृत्त से आहत हो जाता है । फिर निर्वेद को प्राप्त होकर उसे चान्द्रायण व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥ ३२ ॥ शास्त्रों में जो निर्दिष्ट की गयी है उसी विधि से करे और वह सम्वत्सर का विधान है ऐसा श्रुति वचन है । फिर जब निर्वेद को सं पन्न होजावे तो भिक्षु को तन्द्रा से रहित होकर चरण करना चाहिए ॥३३॥ अचानक ही यदि कोई भिक्षु हिंसा का समाचरण करे तो उसे अपनी शुद्धि के लिये तथा पाप से मुक्ति प्राप्त करने के वास्ते कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत तथा चान्द्रायण महाव्रत करना चाहिए ॥ ३४ ॥ यदि यति किसी स्त्री को देखकर

इन्द्रियों की दुर्बलता से स्कन्न हो जाता है तो उसे सोलह प्राणायाम धारण करने चाहिए ॥ ३५ ॥

दिवास्कन्ने त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतं तथा ।
एकान्ते मधुमांसे व नवश्राद्धेतथैवच ।
प्रत्यक्षलवणे प्रोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ॥३६
ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यतेसर्वपातकम् ।
तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वातद्ध्यानपरमोभवेत् ॥३७
यद्ब्रह्मपरमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् ।
योऽन्तरापरमं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः ॥३८
एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः ।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम् ॥३९
यस्मान्महीयसो देवः स्वधाग्निज्ञानसंस्थिते ।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः ॥४०
नान्यं देवं महादेवाद्व्यतिरिक्तंप्रपश्यति ।
तमेवात्मानमात्मेतियःसयातिपरम्पदम् ॥४१
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः ॥४२

दिन में यदि स्कन्द हो जावे तो तीन रात्रि का उपवास करे तथा सौ बार प्राणायाम करना चाहिए । एकान्त में—मधुमास में तथा नव-श्राद्ध में और प्रत्यक्ष लवण में प्राजापत्य व्रत को ही विशोध न बताया गया है ॥३६॥ जो ध्यान में निष्ठ होता है उसके सभी पातक सर्वदा नष्ट हो जाया करते हैं । इसलिये महेश्वर का ज्ञान प्राप्त करके उसी के ध्यान में परम हो जाना चाहिए ॥३७॥ जो परम ब्रह्म—ज्योति—प्रतिष्ठाक्षर—अव्यय है । जो अन्तरा में परम ब्रह्म है उसे ही महेश्वर जानना चाहिए ॥३८॥ यह देव महादेव केवल परम शिव है । वह ही अक्षर—अद्वैत और वही परम अदित्यान्तर है ॥३९॥ जिस महीयान् से देव स्वधाग्नि ज्ञान में संस्थित आत्म योग नाम वाले तत्त्व में फिर महादेव कहा गया है ॥४०॥ महादेव से अन्य अतिरिक्त किसी देव को नहीं देखता है उसी

आत्मा को आत्मा ऐसा ज : मानता है वह परम पद को प्राप्त होता है ।।४१।। जो अपनी आत्मा को परमेश्वर से विभिन्न मानते हैं वे उस देव को कभी नहीं देखा करते हैं और उनका सभी परिश्रम वृथा ही होता है ।।४२।।

एकं ब्रह्म परं ब्रह्म ज्ञेयं तत्तत्त्वमव्ययम् ।
स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय वाध्यते ।।४३
तस्माद्यजेत नियतं यतिः संयतमानसः ।
ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः ।।४४
एष वः कथितोविप्रा यतीनामाश्रमः शुभः ।
पितामहेन विभुनामुनीनां पूर्वमीरितम् ।।४५
नाऽत्र शिष्यस्य योगिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम् ।
ज्ञानं स्वयम्भुना प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम् ।।४६
इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं ।
पशुपतिपरितोषे यद्भवेदकहेतुः ।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः ।
प्रणिहितमनसा ये नित्यमेवाचरन्ति ।।०७

एक ही ब्रह्म को परम ब्रह्म तत्तत्व और अव्यय समझना चाहिए । वह देव महादेव हैं—यह ज्ञान प्राप्त करके फिर वाध्यमान नहीं हुआ करता है ।।४३।। इसी लिये संयत मन वाले यति नियत होकर यजन करना चाहिए । जो ज्ञान योग में रति रखने वाला परम शान्त स्वभाव वाला और महादेव की उत्तराधना में ही परायण रहता है । हे विप्रगण ! यह यतियों का परम शुभ आश्रम का वर्णन आपको कह कर सुना दिया है । विभु पितामह ने पहिले मुनियों को यही कहा था ।।४४-४५।। यहाँ पर शिष्य को नहीं प्रत्युत इस अत्युत्तम को योगियों को देना चाहिए । यह ज्ञान यतियों के धर्म का आश्रय करने वाला परमशिव है और इसको स्वयम्भू ने कहा था ।।४६।। यह यतियों के नियमों का विधान कह दिया गया है जो यह भगवान् पशुपति के परितोष करने में एक ही हेतु है । जो प्रणिहित मन से इसका नित्य ही समाचरण किया करते हैं उनका

फिर इस संसार में जन्म ही नहीं होता है अथवा उनका विनाश भी नहीं हुआ करता है ॥४७॥

३०—प्रायश्चित्तविधिवर्णन

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिंशुभम् ।
हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये ॥१
अकृत्वा विहितं कर्म्म कृत्वा निन्दितमेव च
दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायचित्तं विशोधनम् ॥२
प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद् ब्राह्मणः क्वचित् ।
यद्ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ताः विद्वांसस्तत्समाचरेत ॥३
वेदार्थवित्तमः शान्ता धर्म्मकामोऽग्निमान्द्विजः ।
स एव स्यात्परो धर्म्मो यमेकोऽपि व्यवस्यतिः ॥४
अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः ।
यद्ब्रूयुर्धर्मकामांस्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम् ॥५
अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्त्तिताः ॥६
मीमांसाज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः ।
एकविंशतिविख्याताः प्रायश्चित्तं वदन्ति वै ॥७

महामहिम महर्षि श्री व्यास देव ने कहा—अब इसके आगे हम प्रायश्चित्त की शुभ विधि का वर्णन करते हैं इसका वर्णन सभी विप्रों के हित के लिये ही होगा और दोषों की अपनुत्ति के लिये भी होगा ॥१॥ जो शास्त्र के द्वारा वेदों से विहित कर्म बतलाया गया है उसे न करके तथा परम निन्दित एवं शास्त्र—निषद्ध कर्म को करके जो दोष को मनुष्य प्राप्त किया करता है उसके विशोधन को ही प्रायश्चित्त कहते हैं ॥२॥ ब्राह्मण को किसी भी समय में दोषों के अपनोदन के लिये बताये हुए प्रायश्चित्त को न करके स्थित नहीं रहना चाहिए । जो भी शान्त और विद्वान ब्राह्मण प्रायश्चित्त बतलावें उस का समाचरण अवश्य ही करना

चाहिए ॥३॥ वेदार्थ के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ—शान्त–धर्म की ही कामना रखने वाला और अग्निमान द्विज वही होता है जिसका एक भी परमधर्म होता है ॥४॥ अनाहित अग्नि वाले विप्र तीन वेदार्थों के पारगामी धर्म्म के कामों को जो भी जैसा भी कहें उसी को धर्म्म का परम साधन समझना चाहिए। अहापोह में अतीव विशारद और अनेक शास्त्रों के ज्ञाता एव वेदों के अध्ययन से सुसम्पन्न—ये सात ही परिकीर्त्तित किये गये हैं। मीमाँसा के ज्ञान के तत्त्व को जानने वाले—वेदान्त में परम कुशल द्विज इक्कीस विख्यात हैं जो प्रायश्चित को बतलाया करते हैं ॥५-७॥

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च।
महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह सम्विशेत् ॥८
सम्वत्सरन्तु पतितैः संसर्गंकुरुते तु यः।
यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितोभवेत् ॥९
याजनं योनिसम्वन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः।
सद्यः कृत्वा पतत्येव सह भोजनमेव च ॥१०
अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्यादध्यापनं द्विजः।
सम्वत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च ॥११
ब्रह्महाद्वादशाव्दानिकुटिंकृत्वावनेवसेत्।
भैक्षमात्मविशुद्धयर्थं कृत्वाशवशिरोध्वंजम् ॥१२
ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्ज्जयेत्।
विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तञ्च संस्मरन् ॥१३
असङ्कल्पितयोग्यानि सप्तागाराणिसम्विशेत्।
विधूमेशनकैर्नित्यंव्यङ्गारेभुक्तवर्ज्जने ॥१४

ब्राह्मण का हनन करने वाला—मद्यपान करने वाला—स्तेन (चोरी करने वाला)—गुरु तल्प गामी—ये महापातकी हुआ करते हैं और जो इन के साथ में बैठता उठता है वह भी महापातकी होता है ॥८॥ जो पुरुष एक वर्ष तक पतितों के साथ संसर्ग किया करता है और नित्य ही यान—शय्या और आसन पर स्थित जान बूझ कर रहा करता है वह भी पतित ही हो जाया करता है ॥९॥ याजन—योनि सम्बन्ध—अध्ययन

ये कर्म द्विज करके तुरन्त ही पतित होजाया करता है और सह भोजन से भी पतित होजाता है ।।१०।। न जान करके जो कोई द्विज मोह से अध्ययन कर्म किया करता है वह एक वर्ष में पतित होजाता है । एक साथ अध्ययन से भी पतित हो जाता है ।।११।। ब्राह्मण को हनन करने वाले पुरुष को बारह वर्ष पर्यन्त कुटी बनाकर वन में वास करना चाहिए । शव के शिर को ऊपर करके आत्मा की विशुद्धि के भिक्षा करनी चाहिए ।।१२।। उसे समस्त ब्राह्मणों के अवसथों—और देवों के आगारों को वर्जित कर देना चाहिए । अपनी आत्मा को स्वयं ही विनिन्दित करते हुए और उस ब्राह्मण का स्मरण भी करते रहना चाहिए । जिसका हवन किया है ।।१३।। असङ्कल्पित योग्य सात आगारो में ही संविष्ट होवे । विगत धूम वाले—विगत अङ्गार वाले और मुक्तवर्जन घरों में ही धीरे से प्रवेश करना चाहिए ।।१४।।

एककालञ्चरेद्भक्षं दोषं विख्यापयन्नृणाम् ।
वन्यमूलफलैर्वापि वर्त्तयेद्वै समाश्रितः ।।१५
कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः ।
पर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।।१६
अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।
कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित् ।।१७
कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेववा ।
ज्वलन्तं वा विशेदग्नि जलंवा प्रतिशेत्स्वयम् ।।१८
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत् ।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु ।।१९
दीर्घामियाविनं विप्रं कृत्वानामयमेव वा ।
दत्वा चान्नं सुविदुषे ब्रह्महत्या व्यपोहति ।।२०
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वै शुध्यते द्विजः ।
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायप्रदाय च ।।२१

एक ही समय में भिक्षा का समाचरण करे और सभी मनुष्यों को अपने द्वारा किये हुए दोष को विशेष रूप से ख्यापित करते हुए ही रहना चाहिए

या वन में समुत्पन्न फलों और मूलों के द्वारा ही समाश्रित रहकर वर्त्तन करे ।१५। हाथ में कपाल का ग्रहण करते हुए तथा खट्वा के अङ्ग वाला और ब्रह्मचर्य्य व्रत में परायण रहकर वारह वर्ष व्यतीत करे जब वारह वर्ष पूरे हो जावें तभी वह की हुई ब्रह्म हत्या से विमुक्त हो जाता है ।।१६।। विना ही इच्छा के जब ऐसा पाप वन जावे तो उसी में यह इस तरह का उपर्युक्त प्रायश्चित्त परम शुभ होता है । यदि स्वयं इच्छा करके ही ब्रह्म हत्या जैसा पाप किया जावे तो मरण करके ही उस पाप से शुद्धि होती है अन्य किसी भी प्रायश्चित्त से शुद्धि हो ही नहीं सकती है ।।१७।। मरण स्वयं करने के कई साधन वताये गये हैं—स्वयं अनशन कर देवे—अथवा भृगु से पतन करे या जलती हुई अग्नि में प्रवेश करके मृत्यु को प्राप्त होवे तथा जल में स्वयं प्रवेश करे ।।१८।। अथवा मृत होने के विना ब्रह्महत्या के पाप का अपनोदन करने के लिये ब्राह्मणों की सुरक्षा एवं गौओं के हित के लिये अपने प्राणों का स्वय वलिदान करके उन्हें त्याग देना चाहिए ।।१९।। अथवा दीर्घायिनी विप्र को अनामय करके और किसी अच्छे विद्वान को अन्न दान करके ब्रह्महत्या को दूर करे । इससे भी ब्रह्महत्या का निवारण होता है ।।२०।। अश्वमेधा व भृथक में स्नान करके भी द्विज शुद्ध हो जाता है । अथवा अपना सर्वस्व किसी वेदों के वेत्ता ब्राह्मण को प्रदान कर देने से भी ब्रह्महत्या से विमुक्ति होजाया करती है ।।२१।।

सरस्वत्यास्त्वरुणया सङ्गमे लोकविश्रुते ।
शुध्येत्त्रिषवणस्नानात्त्रिरात्रोपोषितो द्विजः ।।२२
गत्वा रामेश्वरं पुण्यंस्नात्वाचैवमहोदधौ ।
ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रंविमोचयेत् ।।२३
कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः ।
स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।।२४
यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितौजसा ।
कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।२५
समभ्यर्च्य महादेवंत्र भैरवरूपिणम् ।
तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वामुच्यते ब्रह्महत्यया ।।२६

सरस्वती और अरुणा नदियों के लोक में परम प्रसिद्ध सङ्गम में त्रिषवण स्नान करके तीन रात्रि तक उपोषित होने वाला द्विज भी शुद्ध हो जाया करता है ॥२२॥ रामेश्वर तीर्थ में जाकर परम पुण्यमय महोदधि में वहाँ पर स्नान करके ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक भगवान् रुद्र का दर्शन करके भी ब्रह्महत्या के पाप को दूर करे ॥२३॥ भगवान् शूली का कपाल मोचन नाम वाले तीर्थ में स्नान करके पितृगण और देवों का अभ्यर्चन करके ब्रह्महत्या के दोष का दूर कर देता है ॥२४॥ कपाल मोचन वह तीर्थ है जहाँ पर अमित ओज वाले देवाधिदेव भैरव में परमेष्ठी ब्रह्मा का कपाल पहिले स्थापित किया था। वहाँ पर भैरव रूपी महादेव का अभ्यर्चन कर पितृगण तर्पण करे और स्नान करे तो ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाया करता है ॥२५-२६॥

३१—ब्रह्माकपालस्थापनवर्णन

कथं देवेन रुद्रेण शङ्करेणातितेजसा ।
कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजम्भुवि ॥१
शृणुध्वमृषयःपुण्यांकथां पापप्रणाशिनीम् ।
माहात्म्यं देवदेवस्यमहादेवस्यधीमतः ॥२
पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः ।
प्रोचुः प्रणम्य लोकादिंकिमेकं तत्त्वमव्ययम् ॥३
समायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः ।
अविज्ञायपरम्भावंस्वात्मानंप्राहधर्षिणम् ॥४
अहंधाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः ।
अनादि मत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्यविमुच्यते ॥५
अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ।
न विद्यते चाभ्यधिकोमत्तो लोकेषु कश्चन ॥६
तस्यैवंमन्यमानस्यजज्ञे नारायणांशजः ।
प्रोवाचप्रहसन्वाक्यं रोषितोऽम्बंत्रिलोचनः ॥७

ऋषि वृन्द ने कहा—हे भगवन् ! अब आप हम लोगों को यही बतलाइये कि अत्यन्त तेजस्वी भगवान् शङ्कर रुद्र देव ने पहिले इस भू-मण्डल में देह में समुत्पन्न ब्रह्माजी के कपाल को किस प्रकार से और किस कारण से स्थापित किया था ? ।।१।। महर्षि सूतजी ने कहा—हे ऋषिगण ! पापों के प्रणाश करने वाली इस परम पुण्यमयी कथा का आप लोग अब श्रवण करें। इस कथा में देवों के भी देव परम धीमान् महादेव का पूर्ण माहात्म्य भरा हुआ है ।।२।। पहिले एक बार मेरु पर्वत के शिखर पर महर्षियों ने पितामह देव को प्रणाम करके यही उनसे पूछा था कि इस लोक का आदि एक अव्यय तत्त्व क्या है ।।३।। वह लोकों को सम्भूत करने वाले ब्राह्माजी महेश की माया से मोहित हो गये थे और परम भाव को न जान कर अपने आपको ही सर्वदर्शी बतला दिया था ।।४।। उन्होंने कहा था कि मैं ही धाता—इस जगत् की योनि अर्थात् पूर्ण जगत् को समुत्पन्न करने वाला स्वयम्भू एक ही ईश्वर हूँ। मैं ही अनादि ब्रह्म हूँ मेरे में ही परायण होकर मेरा अभ्यर्चन करके प्राणी विमुक्त हो जाया करता है ।।५।। मैं ही समस्त देवों का प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक हूँ। मुझसे अधिक और ऊँचा लोकों में कोई भी नहीं है ।।६।। उन ब्रह्माजी को इस तरह से अपने आपको मानने वाले होने पर नारायण के अंश से जन्म ग्रहण करने वाले त्रिलोचन ने जन्म लिया था। और यह देव परम क्रोधित होकर हँसते हुए यह वाक्य बोले थे ।।७।।

किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्त्तते तव साम्प्रतम् ।
अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतत्त्वयि विद्यते ।।८

अहंकर्त्तादिलोकानांयज्ञे नरायणात्प्रभोः ।
न मामृतेऽस्यजगतो जीवनंसर्वथाक्वचित् ।।९

अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः ।
मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम् ।।१०

एवं विवदतोर्मोहात्परस्परजयैषिणोः ।
आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि ।।११

अन्वीक्ष्यदेवं ब्रह्माणंयज्ञात्मानञ्चसंस्थितम् ।
प्रोचुः संविग्नहृदया याथात्म्यंपरमेष्ठिनः ॥१२
यस्यान्तःस्थानि भूतानि यस्मात्सर्व्वं प्रवर्त्तते ।
यदाहुस्तत्परं तत्त्वं स देवः स्यान्महेश्वरः ॥१३
यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते ।
यमाहुरीश्वरं देवं स देवःस्यात्पिनाकधृक् ॥१४

हे ब्रह्मन् ! इस समय में क्या कारण हो गया है कि आपके अन्दर ऐसी भावना समुत्पन्न हो गई हैं । आप ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय में अज्ञान से युक्त हो रहे हैं अन्यथा ऐसा भाव आप में तो कभी भी नहीं विद्यमान था ॥८॥ प्रभु नारायण से इन लोकों के यज्ञ में इनका कर्त्ता आदि तो मैं ही हूँ । मेरे बिना इस जगत् का जीवन सर्वथा कहीं पर भी नहीं है ॥९॥ मैं ही पर ज्योति हूँ और मैं ही परागति हूँ । मेरे द्वारा प्रेरित होकर ही आपने यह समस्त भुवन मण्डल की रचना की है ॥१०॥ इस प्रकार से मोह वश उन दोनों में बड़ा भारी विवाद बढ़ गया था और दोनों ही एक दूसरे पर अपना विजय स्थापित करने की इच्छा वाले होगये थे । जहाँ पर ये दोनों बड़े देव इस प्रकार का परस्पर में विवाद कर रहे थे वहीं पर चारों वेद आ गये थे ॥११॥ देव ब्रह्माजी को जो यज्ञों की आत्मा वहाँ पर संस्थित थे देखकर उन वेदों ने संविग्न हृदय वाले होकर परमेष्ठी का जो याथात्म्य अर्थात् ठीक स्वरूप था उसको बतलाया था ॥१२॥ ऋग्वेद ने कहा—जिसके अन्तर में स्थित समस्त भूत हैं और जिससे सभी कुछ प्रवृत्त हुआ करता है । जिसको परात्पर तत्त्व कहा जाता है वह देव महेश्वर ही हैं ॥१३॥ यजुर्वेद ने कहा—जो समस्त यज्ञों के द्वारा तथा योग के द्वारा समर्चित किया जाता है और जिसको देव को ईश्वर कहा जाता है वह देव पिनाक को धारण करने वाले शिव ही हैं ॥१४॥

येनेदम्भ्राम्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम् ।
योगिभिर्वेद्यते तत्त्वंमहादेवःसशङ्करः ॥१५

यम्प्रपश्यन्ति देवेशं यजन्ते यतयः परम् ।
महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भवगान् भवः ॥१६
एवं सभगवान्ब्रह्मावेदानामीरितंशुभम् ।
श्रुत्वाविहस्यविश्वात्मातश्चाहविमोहितः ॥१७
कथं तत्परमं ब्रह्मसर्वसङ्गविवर्जितम् ।
रमतेभार्ययासार्द्धं प्रमथैश्चातिगर्वितैः ॥१८
इतीरितेऽथभगवान्प्रणवात्मसनातनः ।
अमूर्त्तो मूर्त्तिमान्भूत्वावचःप्राहपितामहम् ॥१९
न ह्येष भगवानीश स्वात्मनोव्यर्तिरिक्तया ।
कदाचिद्रमतेरुद्रस्तादृशो हि महेश्वरः ॥२०
अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ।
स्वानन्दभूता कथिता देवी आगन्तुका शिवा ॥२१

जिसके द्वारा यह विश्व भ्रमित होता है और आकाश के अन्तर में स्थित है। वह तत्त्व योगियों के द्वाराही जाना जाता है वह महादेव शङ्कर ही है ॥१५॥ अथर्ववेद ने कहा—यति लोग जिस देव को देखा करते हैं और जिस पर का यतिगण यजन किया करते हैं वह पुरुष महेश—रुद्रदेव भगवान् भव ही हैं ॥१६॥ इस प्रकार से वेदों के शुभ कथन को भगवान् ब्रह्मा ने श्रवण करके हँस गये थे और फिर विश्वात्मा विमोहित होकर बोले ॥१७॥ यदि वह ही परम ब्रह्म है तो वह सबके सङ्ग से विवर्जित होकर केवल अपनी भार्या के साथ ही क्यों रमण किया करता है और उसके साथ में अत्यन्त गर्वित प्रथम गण भी रहा करते हैं ॥१८॥ इस तरह से कहने पर वह प्रणवात्मा सनातन भगवान् अमूर्त्त होते हुए भी मूर्त्तिमान् उस समय में हो गये थे और उन्होंने पितामह से यह वचन कहा था ॥१९॥ प्रणव ने कहा—यह भगवान् ईश किसी समय में भी अपनी आत्मा से व्यतिरिक्त के साथ रमण नहीं किया करते हैं। उसी प्रकार के महेश्वर प्रभु हैं। यह भगवान् ईश स्वयं ज्योति और सनातन हैं ॥२०॥ शिवा देवी तो अपने ही आनन्द के स्वरूप वाली आगन्तुका देवी है ॥२१॥

इत्येवमुक्तेऽपितदायज्ञमूर्त्तेरजस्य च ।
नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैवमायया ॥२२
तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावनः ।
प्रादर्शदद्भुतं दिव्यम्पूरयन् गगनान्तरम् ॥२३
तन्मध्यसंस्थितञ्ज्योतिर्मण्डलंतेजसोज्वलम् ।
व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद् द्विजोत्तमाः ! ॥२४
स दृष्ट्वा वदनं दिव्यमूर्ध्नि लोकपितामहः ।
तैजसं मण्डलं घोरमलोकयदनिन्दितम् ॥२५
प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणःपञ्चमं शिरः ।
क्षणादपश्यत्समहान् पुरुषोनीललोहितः ॥२६
त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान् ।
तं प्राहभगवान् ब्रह्मा शङ्करंनीललोहितम् ॥२७
ज्ञानाय पूर्वं भवतो ललाटाद्द्यशंकरम् ।
प्रादुर्भूतंमहेशानं मामतःशरणंव्रज ॥२८

उस समय में यज्ञ मूर्ति अज को इस प्रकार से कहने पर भी ईश्वर की ही माया से वह अज्ञान नाश को प्राप्त नहीं हुआ था ॥२२॥ उसी बीच में विश्वभावन विरञ्जि ने एक महा ज्योति को देखा था जो परम अद्भुत और दिव्य गगन के अन्तर को पूरित करने वाली थी ॥२३॥ हे द्विजोत्तमो ! उसके मध्य में संस्थित ज्योति मण्डल तेज से परम उज्ज्वल था—व्योम के मध्य में रहने वाला अति दिव्य ही प्रादुर्भूत हुआ था । ॥२४॥ दिव्य मूर्द्धा में उन लोक पितामह ने तैजस मण्डल–परम घोर और अभिन्दित वदन को देखा था ॥२५॥ उस समय में ब्रह्माजी का पाँचवाँ शिर अत्यन्त कोप से प्रज्वलित हो गया था । क्षण भर में ही उन नील लोहित महान् पुरुष ने उसे देखा था ॥२६॥ त्रिशूल से पिङ्गल नागों के यज्ञोपवीत से युक्त देव भगवान् ब्रह्मा उन नील लोहित शङ्कर से बोले—॥२७॥ पहिले ज्ञान के लिये आपके लालट से प्रादुर्भूत आज महेशान मेरी शरण में गमन करो ॥२८॥

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः ।
प्राहिणोत्पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम् ।।२९

स कृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः ।
प्रचकर्त्तास्य वदनं विरिञ्चस्याथपञ्चमम् ।।३०

निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना ।
ममार चेशो योगेन जीवितं प्राप विश्वधृक् ।।३१

अथान्वपश्यदीशानं मण्डलान्तरसंस्थितम् ।
समासीनं महादेव्यामहादेवंसनातनम् ।।३२

भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशञ्जटाजूटविपराजितम् ।।३३

शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम् ।
त्रिशूलपाणि दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम् ।।३४

यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम् ।
तमादिमेकं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह ।।३५

इसके अनन्तर गर्व से युक्त पद्म योनि के इस वचन को ईश्वर ने श्रवण करके लोक के दाह करने वाले काल भैरव पुरुष को प्रेरित किया था ।।२९।। उस काल भैरव पुरुष ने ब्रह्मा के साथ सुमहान् युद्ध किया था और उसने ब्रह्मा के पाँचवें शिर को पाँचवें मुख को काट डाला था ।।३०।। देव शम्भु के द्वारा कटे हुए वदन वाला ब्रह्मा मर चुके थे फिर विश्व धृक् ईश ने योग के द्वारा जीवित प्राप्त किया था ।।३१।। इसके अनन्तर मण्डल के अन्तर में सस्थित समासीन महादेवी के साथ सनातन ईशान महादेव को देखा था ।।३२।। वह देव भुजङ्ग राज का विलय धारण करने वाले थे और चन्द्रकला के अवयव के भूषण से विभूषित थे । करोड़ों सूर्यों के सदृश तेज से युक्त तथा जासूसों से युक्त उनका परम सुन्दर स्वरूप था । वे महादेव शार्दूल के चर्म का वसन धारण किये हुए थे तथा दिव्य मालाओं से समन्वित थे । भस्म से विभूषित परम दुष्प्रेक्ष्य योगिराज त्रिशूल पाणि थे । जिनके बीच में योग में निष्ठ हृदीश्वर को

देख रहे थे। ऐसे उन आदि एक ब्रह्मा महादेव का दर्शन उस समय में किया था ॥३३-३५॥

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसञ्ज्ञिता।
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल ॥३६
यस्याशेषजगद्वीजंविलयं याति मोहनम्।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते ॥३७
येऽथ नाचारनिरतास्तद्भक्ताश्चैव केवलम्।
विमोचयतिलोकात्मानायकोदृश्यतेकिल ॥३८
यस्यब्रह्मादयोदेवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः।
अर्चयन्तिसदालिङ्गं स शिवः खलु दृश्यते ॥३९
यस्याशेषजगत्सूर्विज्ञानतनुरीश्वरः।
न मुञ्चति सदा पार्श्वं शङ्करोऽसौ च दृश्यते ॥४०
विद्यासहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम्।
हिरण्यगभपुत्रोसौईश्वरोदृश्यतेपरः ॥४१
पुष्पं वा यदि पत्रं यत्पादयुगले जलम्।
दत्त्वातरति संसारंरुद्रोऽसौदृश्यतेकिल ॥४२

जिसकी वह परमा शक्ति देवी आकाश की संज्ञा वाली है वह अनन्त ऐश्वर्य से योगात्मा महेश दिखलाई देते हैं ॥३६॥ जिसका सम्पूर्ण जगत् का बीज मोहन में विलय को प्राप्त होता है वह रुद्र देव एक बार ही प्रणाम मात्र से निश्चय ही दिखलाई दिया करते हैं ॥३७॥ जो आचार में तो निरत नहीं होते हैं और केवल उनके ही भक्त होते हैं उनको अपने भक्तों को वह विमुक्त कर दिया करते हैं वही लोकात्मा नायक दिखलाई दे रहे हैं ॥३८॥ जिसके लिङ्ग को ब्रह्मा आदिक देवगण—ब्रह्मवादी ऋषि वृन्द सदा ही पूजा करते हैं वह शिव दिखलाई दे रहे हैं ॥३९॥ जिसकी यह सम्पूर्ण जगत् सन्तति है जो विज्ञान के तनु वाला और ईश्वर है और जो सदा ही पार्श्व का त्याग नहीं किया करता है वही यह भगवान् शङ्कर दिखलाई दे रहे हैं ॥४०॥ जिसके मण्डलान्तर में विद्या की सहायता वाला यह भगवान है वही

हिरण्यगर्भ का पुत्र पर ईश्वर दिखलाई दे रहे हैं ।।४१।। पुष्प यदि वा पत्र अथवा केवल जल ही उनके युगल चरणों में समर्पित करके मनुष्य इस संसार को तर जाया करता है वही यह भगवान् रुद्र दिखलाई दे रहे हैं ।।४२।।

तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः ।
कालं किल नियोगात्मा कालः कालो हि दृश्यते ।।४३
जीवनंसर्वलोकानांत्रिलोकस्यैवभूषणम् ।
सोमःसदृश्यतेदेवःसोमोयस्य विभूषणम् ।।४४
देव्या सहसदासाक्षाद्यस्य योगस्वभावतः ।
गीयते परमामुक्तिर्महादेवः स दृश्यते ।।४५
योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखोऽनिशम् ।
योगं ध्यायन्ति देव्यासौ स योगी दृश्यते किल ।।४६
सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम् ।
वरासनेसमासीनमवापपरमांस्मृतिम् ।।४७
लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यांसंस्मृतिंभगवानजः ।
तोषयामासवरदंसोमंसोमार्द्धभूषणम् ।।४८

उसके सन्निधान में सनातन सकल को देता है। काल निश्चय ही नियोग करने के स्वरूप वाला है यह काल ही काल दिखलाई दे रहा है ।।४३।। यह सब लोकों का जीवन और त्रिलोकी का ही भूषण हैं। वह देव सोम दिखलाई देता है जिसका विभूषण सोम होता है ।।४४।। सदा देवी के साथ साक्षात् जिसको योग के स्वभाव से परमा मुक्ति गाई जाती है वही महादेव दिखलाई दे रहे हैं ।।४५।। योग के तत्व के ज्ञाता योगीजन निरन्तर वियोग के अभिमुख हैं—और योग का ध्यान किया करते है देवी के साथ यह योगी दिखलाई दे रहे हैं ।।४६।। वह महा देवी के साथ सनातन महादेव को देखकर जो वरासन पर समासीन ये परम स्मृति को प्राप्त हुए थे ।।४७।। भगवान् अज ने माहेश्वरी परम दिव्य स्मृति को प्राप्त करके सोम के अर्धभाग के भूषण वाले वरदाता सोम को तुष्ट किया था ।।४८।।

नमोदेवाय महते महादेव्यै नमो नमः ।
नमः शिवाय शान्ताय शिवायै सततं नमः ॥४९
ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यंविद्यायै ते नमो नमः ।
महेशाय नमस्तुभ्यंमूलप्रकृतये नमः ५०
नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमोनमः ।
नमोऽस्तुकालकालायईश्वरायै नमो नमः ॥५१
नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमोनमः ।
नमोनमस्तेकालायमायायैते नमोनमः ।५२
नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमोनमः ।
नमोऽस्तुतेप्रकृतये नमोनारायणाय च ॥५३
योगदाय नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः ।
नमः संसारवासाय संसारोत्पत्तये नमः ॥५४
नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्त्तये ।
नमःकार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः ॥५५
ओंकारमूर्त्त तुभ्यंतदन्तः स्थिताय च ।
नमस्ते व्योमसंस्थायव्योमशक्त्यैनमोनमः ॥५६

ब्रह्माजी ने कहा—महान् देव के के लिये नमस्कार है । महादेवी के लिये बारम्बार नमस्कार है । परम शान्त शिव की सेवा में तथा शिवा के लिये निरन्तर नमस्कार है ॥४९॥ ओम स्वरूप ब्रह्मा आपके लिये प्रणाम है । वियास्व रूपिणी आपकी सन्निधि में बारम्बार नमस्कार है । महेश आपके लिये तथा मूल प्रकृति के लिये नमस्कार है ॥५०॥ विज्ञान के देह वाले के लिये तथा चिन्ता रूपिणी के लिये बारम्वार नमस्कार है । काल के भी काल के लिये प्रणाम है तथा ईश्वरी देवीके लिये नमस्कार है ॥५१॥ रुद्र और रुद्राणी की सेवामें बारम्बार प्रणाम समर्पित है । काल स्वरूप आपको तथा मायारूपिणी देवी के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥५२॥ समस्त कार्यों के नियन्त्रण करने वाले प्रभु तथा क्षेमिका देवी की सेवा में नमस्कार है । प्रकृति आपको तथा नारायण प्रभु को मेरा प्रणाम अर्पित है ॥५३॥ योग के प्रदान करने वाले आपको प्रणाम है । योगियों के

गुरु के लिये प्रणाम है। संसार में वास करने वाले तथा इस संसार को समुत्पन्न करने वाले आपकी सेवा में प्रणाम सर्मापित है ॥५४॥ नित्य ही आनन्द स्वरूप—विभु और. आनन्द की मूर्त्ति—कार्य से विहीन तथा विश्व की प्रकृति आपकी सेवा में प्रणाम सर्मापित है। ओङ्कार की मूर्त्ति वाले तथा उसके ही अन्तर में समवस्थित—व्योम में संस्थिति करने वाले एवं व्योम की शक्ति आपके लिये वारम्वार प्रणाम सर्मापित है ॥५५-५६॥

इति सोमाष्टकेनेशं प्रणिपत्य पितामहः।
पतात दण्डवद्भूमौ गृणन्वै शतरुद्रियम् ॥५७
अथ देवो महादेवः प्रणतार्त्तिहरो हरः।
प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतोऽस्मि तव साम्प्रतम् ॥५८
दत्वास्मै परमं योगमैश्वर्यमतुलं महत्।
प्रोवाचाग्रस्थितं रुद्रं नीललोहितमीश्वरम् ॥५९
एषब्रह्मास्यजगतःसम्पूज्यःप्रथमः स्थितः।
आत्मनारक्षणीयस्ते गुणज्येष्ठःपितातव ॥६०
अयम्पुराणःपुरुषो न हन्तव्यस्त्वयाऽनघ।
स योगैश्वर्यमाहात्म्यान्मामेवशरणंगतः ॥६१
अयञ्चयज्ञोगर्वोऽसौसगर्वोभवताऽनघ !।
शासितव्योविरिञ्चस्यधारणीयंशिरस्त्वया ॥६२
ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोके प्रदर्शयन्।
चरस्व सततं भिक्षां संस्थापयसुरद्विजान् ॥६६

इस प्रकार से पितामह ने इस सोमाष्टक स्तोत्र के द्वारा ईश को प्रणिपात करके शत रुद्रिय को जपते हुए भूमि में वह पितामह दण्ड की भाँति गिर गये थे ॥५७॥ इसके अनन्तर महादेव देव जो प्रणत अपने भक्तों की आर्त्ति के हरण करने वाले हर हैं उन्होंने अपने हाथों से ब्रह्मा को उठा कर कहा—हे ब्रह्मन्! मैं अब तुम पर परम प्रसन्न हो गया हूँ ॥५८॥ इनको परमयोग और अतुल तथा महत् ऐश्वर्य प्रदान करके सामने स्थित नील लोहित ईश्वर रुद्र से बोले ॥५९॥ यह ब्रह्मा है जो इस जगत् का पूज्य और प्रथम स्थित है। यह गुण में ज्येष्ठ पितामह

आपके द्वारा रक्षा करने के योग्य है ।।६०।। हे अनघ ! इस-पुराण पुरुष का हनन आपके द्वारा कभी नहीं होना चाहिए । वह योगेश्वर्य के माहात्म्य से मेरे ही शरण में गया हुआ है ।।६१।। हे अनघ ! यह यज्ञ है और गर्व है और आपके ही द्वारा सगर्व है । इसको शासित करना चाहिए । विरञ्जि का शिर आपको धारण करना चाहिए ।।६२।। ब्रह्महत्या के अपने दान करने के लिये व्रत को लोक में प्रदर्शित करते हुए आप निरन्तर भिक्षा का समाचरण करें और सुर तथा द्विजों की संस्थापना करें ।।६३।।

इत्येतदुक्त्वा वचनं भगवान् परमेश्वरम् ।
स्थानं स्वाभिकं दिव्यं ययौ तत्परमम्पदम् ।।६४
ततः स भगवानीशः कपर्द्दी नीललोहितः ।
ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम् ।।६५
चरत्वं पापनाशार्थं व्रतंलोके हितावहम् ।
कपालहस्तोभगवान् भिक्षांगृह्वातु सर्वतः ।।६६
उक्त्वैवं प्राहिणोत्कन्यां ब्रह्महत्येति विश्रताम् ।
दंष्ट्रकरालवदनां ज्वालामालाविभूषणाम् ।।६७
यावद्वाराणसीं दिव्यांपुरीमेषगमिष्यति ।
तावद्विभीषणाकाराह्यनुगच्छत्रिशूलिनम् ।।६८
एवमाभाष्यकालाग्निप्राहलोकमहेश्वरम् ।
अटस्वलोकानखिलान्भैक्षार्थीमन्नियोगतः ।।६९
यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम् ।
तदासौ वक्ष्यतिस्पष्टमुपायं पापशोधनम् ।।७०

भगवान् ने परमेश्वर से यह वचन कह कर फिर वे अपने स्वाभाविक दिव्य स्थान परम पद को चले गये थे ।।६४।। इसके उपरान्त भगवान् ईश नील लोहित कपर्द्दी ने ब्रह्मा के वदन को काल भैरव को ग्रहण करा दिया था । और यह कहा था कि अब आप पापों के नाश करने के लिये लोक में हित का आवह व्रत का समाचरण करो । कपाल हाथ में धारण करके भगवान् सभी ओर से भिक्षा ग्रहण करें ।।६५-६६।। इस प्रकार से

कहकर ब्रह्महत्या—इस नाम से प्रसिद्ध कन्या को प्रेषित किया था। उसका स्वरूप बड़ी भीषण दाढ़ों से कराल मुख वाला था और वह ज्वालाओं के भूषण वाली थी ॥६७॥ जब तक यह रुद्र देव वाराणसी दिव्यपुरी में जायेंगे तब तक अतीव भीषण आकार वाली यह त्रिशूली के पीछे-पीछे ही गमन कर रही थी ॥६८॥ इस प्रकार से कह कर कालाग्नि लोक महेश्वर से कहा—समस्त लोकों का अट न करो और मेरे नियोग से भिक्षा करने वाले रहो ॥६९॥ जिस समय में अनामय देवेश्वर नारायण का दर्शन करोगे तभी यह स्पष्ट रूप से पाप के शोधन का उपाय कहा जायगा ॥७०॥

स देवदेवतावाक्यमाकर्ण्य भगवान् हरः।
कपालपाणिर्विश्वात्मा चचारभुवनत्रयम् ॥७१
आस्थाय विकृतं वेषंदीप्तमानं स्वतेजसा।
श्रीमत्पवित्रं रुचिरं लोचनत्रयसंयुतम् ॥७२
सहस्रसूर्य्यप्रतिमं सिद्धैः प्रथमपुङ्गवै।
भाति कालाग्निनयनो महादेवः समावृतः ॥७३
पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दम्परमेष्ठिनः।
लीलाविलासबहुलोलोकानागच्छतीश्वरः ॥७४
तं दृष्ट्वा कालवदनं शंकरं कालभैरवम्।
रूपलावण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु ॥७५
गायन्ति गीतैर्विविधैर्नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः।
सस्मितं पेक्ष्यवदनञ्चकुर्भ्रूभङ्गमेव च ॥७६
स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक्।
जगाम विष्णोर्भुवनं यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तमः ॥७७

वह भगवान् हर भी देवता के वाक्य का श्रवण करके हाथ में एक कपाल ग्रहण करके तीनों भुवनों में विचरण करने लगे थे ॥७१॥ अपने तेज से परम दीप्यमान विकृत वेष में समावस्थित होकर जो कि श्री से सम्पन्न—पवित्र—रुचिर और तीन लोचनों से संयुत था। सहस्रों सूर्यों के सदृश उनका स्वरूप था। वह कालाग्नि नयन वाले महादेव श्रेष्ठतम प्रमथ

गण और सिद्धों से समावृत होकर अतीव शोभित हो रहे थे ।।७२-७३।। परमेष्ठी प्रभु के दिव्य आनन्दामृत का पान करके लीलाओं के बहुत से विलासों से समान्वित ईश्वर लोकों में आ गये थे ।।७४।। काल वदन काल भैरव तथा रूप और लावण्य से सम्पन्न भगवान् शङ्कर का दर्शन करके नारीगण का समुदाय उनके पीछे चला जाया करता था ।।७५।। नारियाँ विविध प्रकार के गीतों को गाती हुई जाया करती थीं और प्रभु के आगे वे नृत्य भी किया करती थीं । स्मित से युक्त मुख को देख करके भ्रूओं का भृङ्ग भी वे किया करती थीं ।।७६।। उस प्रकार से वह प्रभु देवों और दानवों के देशों में जाकर शूलधृक् भगवान् विष्णु के भुवन में गये थे जहाँ पर साक्षात् प्रभु पुरुषोत्तम विराजमान रहा करते थे ।।७७।।

सम्प्राप्य दिव्यभवनं शंकरो लोकशंकरः ।
सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपचक्रमे ।।७८
अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्पामेश्वरम् ।
न्यवारयत्त्रिशूलांक द्वारपालो महाबलः ।।७९
शंखचक्रगदापाणिः पीतवासामहाभुजः ।
विष्वक्सेनइतिख्यातोविष्णोरंशसमुद्भवः ।।८०
(अथ त शंकरगणं युयुधेविष्णुसम्भवः ।
भीषणो भैरवादेशात्कालवेगइतिस्मृतः) ।।८१
विजित्य तं कालवेगं क्रोधसरक्तलोचनः ।
दुद्रावाभिमुखं रुद्रं चिक्षेप चासुदर्शनम् ।।८२
अथ देवो महादेवस्त्रिरारिस्त्रिशूलभृत् ।
तमापतन्तं सावज्ञमालोकयर्दामित्रजित् ।।८३
तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम् ।
शूलेनोरसिनिर्भिद्य पातयामास तं भुवि ।।
स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वम्परमं बलम् ।
तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधियता इव ।।८४

लोक का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर सब अपने अनुग भूत प्रवरों के साथ ही प्रवेश करने लगे थे ।।७८।। उस पारमेश्वर दिव्य पर-

भाव को समझ कर महाबल द्वारपाल ने त्रिशूल के चिह्नधारी शिव को अन्दर प्रवेश करने से रोक दिया था ।।७६।। शंख—चक्र—गदा हाथों में ये सब आयुधों के धारण करने वाले—पीताम्बर धारी महान् भुजाओं से युक्त विष्णु के अंश से समुद्भव वाले विश्वक्सेन—इस नाम से विख्यात थे ।।८०।। इसके अनन्तर विष्णु संभूत विष्वक्सेन ने उस शंकर के गण से युद्ध किया था । भैरव के समादेश से भीषण काल वेग—ऐसा कहा गया था ।।८१।। क्रोध से संक्तलोचनों वाले ने उस काल वेग विजित कर दिया था । फिर रुद्र के सम्मुख गमन किया था और सुदर्शन अस्त्र को प्रक्षिप्त किया था ।।८२।। इसके उपरान्त त्रिपुराशुर के हनन करने वाले त्रिशूल धारी देव महादेव ने जो सभी शत्रुओं को जीत लेने वाले हैं अपनी ओर अवज्ञा पूर्वक आते हुए उसको देखा था ।।८३।। उस बीच में उन दोनों का युग के अन्त में अग्नि के समान ही बड़ा भारी युद्ध हुआ था । शूल से वक्षः स्थल में निर्भेदन करके उसको भूमि में गिरा दिया था । वह भी शूल से अत्यन्त अभिहत होकर अपने परम बल का त्याग करके व्याधि से आहत मृत्यु की भाँति जीवित को उसने त्याग दिया था ।।८४।।

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्द्धं प्रथतपुङ्गवैः ।
विवेश चान्तरङ्गृहं समादाय कलेवरम् ।।८५
वीक्ष्यतं जगतो हेतुमीश्वरं भगवान्हरिः ।
शिरांललाटात्सम्भिद्य रक्तधारामपातयत् । ८६
गृहाणभिक्षां भगवन् ! मदीयाममितद्युते ।
न विद्यतेऽन्या ह्युचिता तव त्रिपुरमर्द्दन ! ।।८७
न सम्पूर्णं कपालं तद्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु सा च धारा प्रवाहिता ।।८८
अथाब्रवीत्कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः ।
संस्तूय विविधैर्भावैर्बहुमानपुरःसरम् ।।८९
किमर्थमेतद्वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम् ।
प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः ।।९०

समाहूय हृषीकेशोब्रह्महत्यामथाच्युतः ।
प्रार्थयामास भगवान्विमुञ्चेतित्रिशूलिदम् ॥९१

इस प्रकार से विष्णु के पुरुष को निहत करके प्रमथ श्रेष्ठों के साथ ही कलेवर का समादान करके अन्तर गृह में भगवान् शङ्कर ने प्रवेश किया था ॥८५॥ भगवान् श्री हरि ने इस जगत् के हेतु उन ईश्वर को देख कर ललाट से शिर का सम्भेदन करके रक्त की धारा को पातित कर दिया था ॥८६॥ हे अमित द्युति से सम्पन्न ! मेरी भिक्षा को ग्रहण कीजिए । हे त्रिपुर के मर्दन करने वाले ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी आपके लायक समुचित भिक्षा नहीं है ॥८७॥ वह परमेष्ठी ब्रह्मा का कपाल दिव्य एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भी सम्पूर्ण नहीं हुआ था और वह रक्त की धारा तो निरन्तर प्रवाहित होती रही थी ॥८८॥ इसके उपरान्त प्रभु नारायण श्रीहरि ने काल रुद्र से अनेक भावों के द्वारा उनका बहुमान पूर्वक स्तवन करके कहा था ॥८९॥ हे भगवन् ! यह ब्रह्मा का मुख किस लिये किस प्रयोजन की पूर्त्ति करने के निमित्त धारण किया था । तब इस विष्णु देव के प्रश्न करने पर देवों के देव महेश्वर ने सभी घटित घटना का हाल सुना दिया था ॥९०॥ इसके उपरान्त अच्युत हृषीकेश भगवान् ने ब्रह्महत्या को अपने निकट में बुलाकर यह प्रार्थना की थी कि अब तू त्रिशूली प्रभु को छोड़ दे ॥९१॥

न तत्याजाऽथ सा पार्श्वं व्याहृताऽपि मुरारिणा ।
चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शङ्करं प्राह सर्ववित् ॥९२
व्रजस्वदिव्यां भगवन्पुरींवाराणसीं शुभाम् ।
यत्राखिलजगद्दोषात्क्षिप्रन्नाशयतीश्वरः ॥९३
ततः सर्वाणिभूतानितीर्थान्यायतनानिच ।
जगामलीलयादेवोलोकानांहितकाम्यया ॥९४
संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः ।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः ॥९५
तमभ्यधावद्भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः ॥९६

निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः ।
सस्मयोनन्तयोगात्मा नृत्यतिस्म पुनः पुनः ॥९७

भगवान् मुरारि के द्वारा भली भाँति प्रार्थना करने पर भी उस ब्रह्म-हत्या ने उनके पार्श्व का त्याग नहीं किया था। फिर चिरकाल पर्यन्त ध्यान करके सर्व वेत्ता प्रभु ने जगत् की योनि भगवान् शङ्कर से कहा था ॥९२॥ हे भगवन् ! अब आप परम शुभ एवं दिव्य वाराणसी पुरी में चले जाइये जहाँ पर समस्त जगत् के दोषों को शीघ्र ही ईश्वर नष्ट कर दिया करते हैं ॥९३॥ इसके पश्चात् सभी भूत मात्र तीर्थ और आयतन लीला से ही वह देव भी लोकों की हित कामना से वहाँ पर चले गये थे। ॥९४॥ प्रमथ गणों के द्वारा संस्तूयमान होते हुए जो कि महान् योग वाले भगवान् शिव के इधर-उधर थे। वह महान् योगी भी हाथ में कलेवर को ग्रहण किये हुए नृत्यमान हो रहे थे ॥९५॥ हरि प्रभु नारायण भी उनके ही पीछे-पीछे दौड़ लगाकर चल दिये थे उन्होंने अपना पर स्वरूप धारण कर लिया था और उनके हृदय में भी भगवान् शङ्कर के उस आनन्द पूर्ण नृत्य के देखने की लालसा उत्पन्न हो गई थी ॥९६॥ वृषेन्द्र से अङ्कित शासन वाले भगवान् शिव स्वयं साक्षात् गोविन्द को वहाँ पर देखकर उन अनन्त योगात्मा को बड़ा विस्मय हुआ था और वे फिर बारम्बार अपना नृत्य करने लगे थे ॥९७॥

अनु चानुचरो रुद्रं स हरिर्द्धर्मवाहनः ।
भेजे महादेवपुरीं वाराणसीति विश्रुताम् ॥९८
प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्द्दिनि ।
हाहेत्युक्त्वा सनादंवै पातालं प्रापदुःखिताः ॥९९
प्रविश्यपरमं स्नानं कपालं ब्रह्मणो हरः ।
गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शङ्करः ॥१००
स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम् ।
उक्त्वा सजीवमस्त्विति विष्णवेऽसौ वृणानिधिः ॥१०१
ये स्मरन्ति ममाजस्रं कापालं वेषमुत्तमम् ।
तेषांविनश्यतिक्षिप्रमिहामुत्रचपातकम् ॥१०२

आगम्य तीर्थंप्रवरे स्नानंकृत्वा विधानतः ।
तर्पयित्वा पितृन्देवान्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥१०३

इसके पश्चात् धर्म के वहन करने वाले उन भगवान् हरि ने अनुचर होकर ही रुद्रदेव को सेवा की थी वाराणसी—इस नाम से प्रसिद्ध उस महादेव की पुरी का ही समाश्रय ग्रहण किया था ॥६८॥ भगवान् विश्वेश्वर के वाराणसी पुरी में प्रविष्ट होते ही कपर्दि प्रभु में जो ब्रह्महत्या संलग्न हो रही थी वह 'हा हा'—ऐसा कहकर बड़ी ध्वनि के करने के साथ ही परम दुःखिता होती हुई पाताल लोक में चली गई थी ॥६६॥ भगवान् हर ने वाराणसी में प्रवेश करके परम स्नान करके देव शङ्कर ने उन सभी गणों के सामने उस ब्रह्मा के कपाल को संस्थापित कर दिया था ॥१००॥ महादेव ने कपाल को वहाँ स्थापित करके उस कलेवर को 'यह सजीव हो जावे'—ऐसा कहकर कृपा के निधि ने भगवान् विष्णु को दे दिया था ॥१०१॥ जो लोग निरन्तर ही मेरे इस कापाल उत्तम वेष का स्मरण करते हैं उनका ऐहलौकिक और पारलौकिक सम्पूर्ण पातक शीघ्र ही नष्ट हो जाया करता है ॥१०२॥ इस तीर्थों में परमश्रेष्ठ वाराणसी पुरी में आगमन करके और विधि पूर्वक यहाँ पर स्नान करके तथा पितृगण और देवों का तर्पण करके मनुष्य ब्रह्महत्या के दोष से विमुक्त हो जाया करता है ॥१०३॥

अशाश्वतञ्जगज्ज्ञात्वा व्रजध्वं परमाम्पुरीम् ।
दहान्तेतत्परं ज्ञानं ददाति परमम्पदम् ॥१०४
इतीदक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्यजनार्द्दनम् ।
सहैवप्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयत ॥१०५
स लब्ध्वा भगवान्कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः ।
स्वं देशमगमत्तूष्णीं गृहीत्वा परमं बुधः ॥१०६
एतद्वःकथितं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
कपालमोचनंतीर्थं स्थाणोः प्रियकरंशुभम् ॥१०७
यइमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः ।
मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्चप्रमुच्यते ॥१०८

अतएव इस जगत् को निरन्तर न बने रहने वाला जान कर उसी परमश्रेष्ठ पुरी में गमन करना चाहिए। यह पुरी देह के अन्त में परमश्रेष्ठ ज्ञान और परम पद को प्रदान किया करती है। यहाँ श्रेष्ठ ज्ञान और परमोत्कृष्ट पद इन दोनों की प्राप्ति होती है ॥१०४॥ इस प्रकार से इतना कहकर भगवान् शङ्कर ने जनार्दन प्रभु का सानन्द समालिङ्गन करके फिर प्रभ केशानों के साथ ही एक ही क्षण में वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे। ॥१०५॥ वह भगवान् वृष्ण भी त्रिशूली से विष्वक्सेन का ग्रहण करके बुध अपने परम स्वदेश को चुपचाप चले गये थे ॥१०६॥ हमने यह सम्पूर्ण चरित्र जो कि परम पुण्यमय है आप सब लोगों के समक्ष में कह कर सुना दिया है। यह चरित्र बड़े से बड़े महा पातक का नाश करने वाला है। यही भगवान् स्थाणु देव का परम प्रिय करने वाला तथा अत्यन्त शुभ कपाल मोचन तीर्थ है ॥१०७॥ जो इस अध्याय को ब्राह्मणों के समीप में ही पाठ किया करता है वह मानस—वाचिक और कायिक समस्त प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥१०८॥

———

३२—प्रायश्चित्तप्रकरणवर्णन

सुरापस्तु सुरांतप्तामग्निवर्णाम्पिबेत्तदा।
निर्दग्धकायः स तयामुच्यते च द्विजोत्तमः ॥१

गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा।
पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात्ततः ॥२

जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वानारायणं हरिम्।
ब्रह्महत्याव्रतञ्चाथ चरेत्पापप्रशान्तये ॥३

सुवर्णस्तेवकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्माम्भवाननुशास्त्विति ॥४

गृहीत्वामुसलं राजासकृद्धन्यात्तुतंस्वयम्।
वधेतुशुद्ध्यतेस्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा ॥५

स्कन्धेनादायमुसलंलगुडंवापिखादिरम् ।
शक्तिञ्चादायतीक्ष्णाग्रामायसंदण्डमेववा ।।६

राजातेनचगन्तव्यो मुक्तकेशेनधावता ।
आचक्षाणेनतत्पापमेतत्कर्म्मास्मिशाधिमाम् ।।७

महामहिम महर्षि श्री व्यासदेव ने कहा—जो सुरा पीने वाला जो होता है उसे उस समय में तप्त अग्नि के वर्ण के समान सुरा का पान करना चाहिए—यही इसका प्रायश्चित्त है जब वह निर्दग्ध काया वाला होता है तो वह द्विजोत्तम उस मदिरा के पाप से मुक्त हो जाता है ।।१।। अथवा अग्नि के वर्ण के समान एकदम गर्म गोमूत्र या गौ के गोबर का रस—पय—घृत अथवा जल पीवे तो भी इस पातक से मुक्ति हो जाया करती है किन्तु ये सभी अत्यन्त उष्ण होने चाहिए ।।२।। जल से अर्द्र वसन वाला प्रयत होकर हरि श्री भगवान् नारायण का ध्यान करके पाप की प्रशान्ति के लिये ब्रह्महत्या के व्रत का समाचरण करना चाहिए ।।३।। जो विप्र सुवर्ण की चोरी करने वाला हो उसे स्वयं राजा के समीप में उपस्थित होकर अपने किये हुए कर्म को स्थापित करते हुए राजा से प्रार्थना करे कि आप मुझे मेरे किये हुए पाप कर्म का अनुशासन करें ।।४।। राजा को भी मुसल हाथ में लेकर स्वयं उसको कई बार हवन करे । वध करने पर तो स्तेन ब्राह्मण शुद्ध होता है अथवा तप से शुद्ध हो जाता है ।।५।। कन्धे पर मुसल अथवा खदिर का लगुड़ या तीक्ष्ण अग्रभाग वाली शक्ति को अथवा लोहे के दण्ड को लेकर राजा को उसे चलाना चाहिए । उस समय उसके केश खुले हुए होने चाहिए और घोड़ा लगाकर चले । वह अपने किये हुए पाप को भी मुँह से कहता हुआ दौड़े कि मैं ऐसे कर्म के करने वाला हूँ मुझे दण्डाज्ञा प्रदान कीजिए ।।६-७।।

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याऽऽप्नोति किल्विषम् ।।८

तपसापनोत्तुमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद ब्रह्महणो व्रतम् ।।९

स्नात्वाश्वमेधावृथेपूतःस्यादथवाद्विजः ।
प्रदद्याद्वाथविप्रेभ्यःस्वात्मतुल्यंहिरण्यकम् ॥१०
चरेद्वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यपरायणः ।
ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापम्यापनुत्तये ॥११
अधः शयीत नियतोमुच्यते गुरुतल्पगः ।
कृच्छ्रं वाब्दञ्चरेद्विप्रश्चीरवासाःसमाहितः ॥१२
अश्वमेधावभृथके स्नात्वावाशुद्धचतेद्विजः ।
कालेऽष्टमेवा भुञ्जानोब्रह्मचारीसदाव्रती ॥१३
स्थानाशनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयत्नतः ।
अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तद्वचपोहति पातकम् ॥१४

शासन से अथवा विमोक्ष से चोर चोरी के पाप से विमुक्त हो जाया करता है। यदि किसी भी चोर का कुछ भी शासन न करे तो फिर वह राजा भी स्तेन के पाप का भागी हो जाया करता है ॥८॥ सुवर्ण की चोरी के पाप को यदि कोई तपश्चर्या के द्वारा ही अपनोदन करने की इच्छा रखता हो तो उस द्विज को चीरों के वस्त्र धारण कर वन में ब्रह्म-हत्या के अपनोदन वाले व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥९॥ अथवा द्विज अश्वमेधा व भृत में स्नान करके पूत हो जाता है अथवा विप्रों के लिये अपनी आत्मा के तुल्य सुवर्ण का दान देना चाहिए ॥१०॥ अथवा ब्रह्मचर्य व्रत में परायण होकर एक वर्ष पर्यन्य कृच्छ्र व्रत का समाचरण करे। स्वर्ण के हरण करने वाले ब्राह्मण को उसके होने वाले पाप के अपनोदन के लिये ऐसा ही विधान करना आवश्यक है ॥११॥ गुरु की शय्या पर गमन करने वाले को नियत रूप से अधोभाग में ही शयन करना चाहिए तो वह मुक्त हो जाता है। अथवा विप्र को चीरों के वसन वाला होकर एक वर्ष तक परम समाहित होते हुए कृच्छ्र व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥१२॥ अथवा द्विज अश्वमेध यज्ञ के अववृथक में स्नान करके शुद्ध हो जाया करता है। अथवा आठवें काल में भोजन करता हुआ ब्रह्मचारी एवं सदा व्रत वाला रहे ॥१३॥ तीन दिन तक अभ्युप यत्न से स्थान और आसन से विहार करता हुआ तीन वर्ष पर्यन्त अधो-

भाग में शयन करने वाला पुरुष उस पातक का व्यपोहन करा दिया करता है ॥१४॥

चान्द्रायणानि वा कुर्य्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः ।
पतितैः सम्प्रयुक्तात्मा अथ वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥१५
पतितेन षु संसर्गं यो येन कुरुते द्विजः ।
स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत् ॥१६
तप्तकृच्छ्रञ्चरेद्वाथ सम्वत्सरमतन्द्रितः ।
षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्थमाचरेत् ॥१७
एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम् ।
पुण्यतीर्थाभिगमनात्पृथिव्यां वाथ निष्कृतिः ॥१८
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमम् ।
कृत्वातैश्चापि संसर्गं ब्राह्मणः कामचारतः ॥१९
कुर्य्यादनशनं विप्रः पुनस्तीर्थे समाहितः ।
ज्वलन्तम्वा विशेदग्नि ध्यात्वा देवं कपर्द्दिनम् ॥२०
न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्द्धर्म्मवादिभिः ।
तस्मात्पुण्येषु तीर्थेषु दहन्वापि स्वदेहकम् ॥२१

अथवा पातक से मुक्त होने के पाँच या चार चान्द्रायण व्रत करे । जो पतितों के साथ सम्पर्क द्वारा सम्प्रयुक्त आत्मा वाला है अब उसकी निष्कृति के विषय में बतालाया जाता है कि वह किस विधान के करने से शुद्धि प्राप्त करता है ॥१५॥ जो द्विज जिस पतित के साथ संसर्ग रखता है उस पाप के अपनोदन कर शुद्ध होने के लिये उसी के व्रत का समाचरण करना चाहिए क्योंकि वह उसी प्रकार के पाप का भागी हो जाया करता है ।१६। तन्द्रा से रहित होकर उस द्विज को तप्तकृच्छ्र व्रत का समाचरण करना चाहिए । वह व्रत भी पूरे एक वर्ष तक करे । यदि वह पातत के साथ संसर्ग केवल छै मास तक ही रहा हो तो उसका प्रायश्चित्त भी आधा ही करना चाहिए ॥१७॥ इन्हीं व्रतों के द्वारा महा पातकों के करने वाले भी मले का व्यपोहन कर दिया करते हैं । अथवा पृथिवी में जो परम पुण्य तीर्थ हैं उनमें अभिगमन करने से भी ऐसे पातकों की

निष्कृति हुआ करती है ॥१८॥ ब्रह्महत्या—सुरा का पान-—स्तेय (चोरी) और गुरु की पत्नी के साथ गमन करना—इन महापातकों को करके या या ऐसे पातकियों के साथ स्वेच्छा से संसर्ग करके ब्राह्मण पहिले तो विप्र को अनशन करना चाहिए। फिर तीर्थ में समाहित होकर जावे। अथवा भगवान् देव कपर्द्दी का ध्यान करके जलती हुई अग्नि में प्रवेश करे ॥१९-२०॥ धर्म्म के तत्त्व को वताने वाले मुनिगण ने इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन महा पातकियों की शुद्धि होने के लिये निष्कृति नहीं देखा है। इसलिये पुण्य तीर्थों में अपने देह को दग्ध कदुते हुए भी अपनी शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिए ॥२१॥

३३—प्रायश्चित्तकथन

उदक्या गमने विप्रस्त्रिरात्रेण त्रिशुध्यति।
चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदुः ॥१
शुद्धिःसान्तपनेनस्यान्नान्यथानिष्कृतिःस्मृताः।
मातृगोत्रांसमारुह्यसमानप्रवरांतथा ॥२
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मासमाहितः।
ब्राह्मणोब्राह्मणींगत्वा कृच्छ्रमेकंसमाचरेत् ॥३
कन्यकां दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम्।
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु ॥४
रेतःसिक्त्वाजलेचवकृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत्।
वार्द्धिकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेणविशुद्धचति ॥५
वेश्यायांमैथुनं कृत्वाप्रजापत्यंचरेद्द्विजाः।
पतिताञ्च स्त्रियं गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धचति।
पुल्कसीगमने चैव कृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥६
नटींशैलूषकीञ्चैरवजकींवेणुजीविनीम्।
गत्वाचान्द्रायणंकुर्यात्तथा चर्मोपजीविनीम् ॥७

महर्षि प्रवर व्यासजी ने कहा—जो उदकी अर्थात् रजस्वला स्त्री हो उसके साथ गमन करने पर विप्र तीन रात्रि में विशुद्ध होता है। चाण्डाली

के साथ गमन करने पर तो तीन तप्त कृच्छ्र व्रत करने चाहिए ।।१।। अथवा सान्तपन व्रत करे तो भी शुद्धि होजाती है। इनके अतिरिक्त अन्यथा अन्य किसी भी साधन के द्वारा निष्कृति नहीं वतलायी गई है। माता के गोत्र वाली स्त्री तथा समान प्रवर वाली स्त्री पर समारोहण करके चन्द्रायण महाव्रत से ही शुद्धि होती है जो कि परम प्रयत आत्मा वाला अतीव समाहित होकर करे। ब्राह्मण यदि किसी भी ब्राह्मणी का ही अभिगमन करे तो उसे फिर पाप के अपमोदन करने के लिये एक ही कृच्छ्र व्रत का समाचरण प्रर्याप्त होता है ।।२-३।। यदि किसी कन्या का शील भङ्ग करके दूषित करे तो उसको भी चान्द्रायण महाव्रत का ही समाचरण करना चाहिए। कोई पुरुष अमानुषी—उदकी—और अयोनि में तथा जल में अपने वीर्य का सेचन करता है तो उसे शुद्धि के लिये कृच्छ्र सान्तपन व्रत का समाचरण करना चाहिए वार्द्ध की स्त्री के गमन में विप्र तीन रात्रि में विशुद्ध होजाया करता है ।।४-५।। गौ में मैथुन का आसेवन करके चान्द्रायण व्रत को ही करना चाहिए। वेश्या में मैथुन करके द्विज को शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत का समाचरण करना चाहिए। पतिता स्त्री का गमन कर तीन कृच्छ्रों से विशुद्ध हुआ करता है। पुल्कसी के गमन में कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।।६।। नदी—शैलूषकी—रज की—वेणु जीवनी तथा चमोपजीवनी इनका गमन करके चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ।।७।।

ब्रह्मचारी स्त्रियंगच्छेत्कथञ्चित्काममोहितः ।
सप्तागारञ्चरेद्भैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम् ।।८

उपस्पृशेत्त्रिषत्रिषवणं स्वपापम्परिकीर्त्तयन् ।
सम्वत्सरेणचैकेन तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ।।९

ब्रह्महत्याव्रतञ्चापि षण्मासान्विचरन्यमी ।
मुच्यते ह्यवकीर्णीतुब्राह्मणानुमतेस्थितः ।।१०

सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम् ।
रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।।११

ओङ्कारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा ।
सम्वत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तम्भिक्षाशनः शुचिः ।।१२
सावित्रीञ्चजपेन्नित्यंसत्वरःक्रोधवर्ज्जितः ।
नदीतीरेषुतीर्थेषु तस्मात्पापाद्विमुच्यते ।।१३
हत्वातुक्षत्रियंविप्रःकुर्याद्ब्रह्महणोव्रतम् ।
अकामतोवै षण्मासान्दद्यात्पञ्चशतंगवाम् ।।१४

यदि कोई भी ब्रह्मचर्य्य व्रत के धारण करने वाला द्विज कामदेव से मोहित होकर किसी भी तरह किसी स्त्री का गमन कर लेवे तो उसकी विशुद्धि का विधान यही है कि उसे गर्दभ के चर्म का वसन वनाकर सात घरों में भिक्षा का समाचरण करना चाहिए ।।८।। त्रिषगण में अर्थात् तीनों केस्नों में स्नान कर उप स्पर्शन करे और विहित पाप का स्पष्टसन के समक्ष में उसे कीर्त्तन करना चाहिए । इस प्रकार से निरन्तर एक वर्ष पर्य्यन्त करे तो उस पाप से उसकी मुक्ति होती है ।।९।। यमी को ब्रह्म हत्या के मोचन के लिये जो व्रत का विधान है उसे भी छैमास तक करने से ब्राह्मणों के अनुमन में स्थित होकर रहने वाला अवकीर्णी मुक्त हो जाया करता है ।।१०।। सात रात्रि तक भैक्ष चर्य्या और अग्नि देव का पूजन करके भी वीर्य्य का समुत्सर्ग करने पर द्विज को प्रायश्चित्त करना चाहिए ।।११।। ओंकार पूर्वक महाव्याहृतियों से सदा एक सम्वत्सर तक रात्रि में शुचि होकर भिक्षा द्वारा अशन करते हुए सावित्री देवी का नित्य जाप करे तथा सत्वर और क्रोध से वर्जित रहे और नदी के तटों पर तीर्थों में समवस्थित होकर करे तो इस पाप से छुटकारा प्राप्त कर लेता है ।।१२-१३।। विप्र यदि किसी क्षत्रिय का हनन कर डाले तो उसे भी ब्रह्म हत्या के अपनोदन का ही व्रत करना चाहिए और यदि बिना ही इच्छा के ऐसा बन पड़े तो छैमास तक पाँचसौ गौओं का दान करना चाहिए । तब मुक्ति होती है ।।१४।।

अब्दञ्चरेद्ध्यानयुतो वनवासीसमाहितः ।
प्राजापत्यंसान्तपतनं तप्तकृच्छ्रन्तुवास्वयम् ।।१५

प्रमादात्कामतोवैश्यं कुर्यात्सम्वत्सरत्रयम् ।
गोसहस्रन्तुपादन्तुप्रदद्याद्ब्रह्मणोव्रतम् ॥१६

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा ।
सम्वत्सरं व्रतं कुर्य्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादतः ॥१७

गोसहस्रार्धपादञ्च दद्यात्तत्पापशान्तये ।
अष्टौवर्षाणिवात्रीणिकुर्याद् ब्रह्महणोव्रतम् ॥१८
हत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्चैव यथाक्रमम् ॥१९

निहत्यब्राह्मणींविप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतञ्चरेत् ।
राजन्यांवर्षंट्कंतु वैश्यां सम्वत्सरत्रयम् ॥२०

वत्सरेण विशुद्ध्येत शूद्रीं हत्वा द्विजोत्तमः ।
वैश्यां हत्वा द्विजातिस्तु किञ्चिद्दद्याद् द्विजातये ॥२१

ध्यान से युत होकर एक वर्ष पर्य्यन्त वन में निवास करने वाला परम समाहित होकर प्राजापत्य व्रत—सान्तपन व्रत अथवा तप्त कृच्छ्र व्रत ही करे ॥१५॥ प्रमाद के वश में आकर अथवा कामना पूर्वक किसी वैश्य का हनन कर डाले तो तीन सम्वत्सर पर्यन्त करना चाहिए । ब्राह्मण की हत्या के अपनोदन का व्रत करे और एक सहस्र गौओं का तथा इसका चतुर्थ भाग का दान करना चाहिए ॥१६॥ अथवा कृच्छ्र—अतिकृच्छ्र व्रतों को या चान्द्रायण व्रत को करे । एक सम्वत्सर पर्य्यन्त व्रतों का समाचरण शूद्र का हनन करके भी करना चाहिए यदि प्रमाद से ही यह किया गया हो ॥१७॥ और एक सहस्र—तथा अर्द्ध भाग या चतुर्थ भाग गौओं का दान पाप की प्रशान्ति के लिये करे । आठ वर्ष या तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या पनोदन व्रत को करे ॥१८॥ क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र का हनन करके यथा क्रम ही करना चाहिए ॥१९॥ विप्र यदि किसी ब्राह्मणी की हत्या कर डाले तो आठ वर्ष तक उसे व्रत करना चाहिए । क्षत्रिय स्त्री के वध पर छै वर्ष और वैश्य स्त्री के हनन में तीन वर्ष तक करना चाहिए ॥२०॥ यदि विप्र किसी शूद्र स्त्री का वध कर डाले तो उसे विशुद्धि के लिये एक वर्ष पर्य्यन्त व्रत का समाचरण करना चाहिए ।

द्विजाति यदि वैश्या का हनन कर देवे तो उसे द्विजाति के लिये कुछ दान करना चाहिए ॥२१॥

अन्त्यजानाम्वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणंव्रतम् ।
पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः ॥२२
मण्डूकं नकुलंकाकंबिडालं खरमूषकौ ।
श्वानं हत्वाद्विजः कुर्यात्षोडशांशंमहाव्रतम् ॥२३
पयः पिबेत्त्रिरात्रन्तुश्वानं हत्वाह्यतन्द्रितः ।
मार्ज्जारं वाथनकुलं योजनञ्चाध्वनोव्रजेत् ॥२४
कृच्छ्रं द्वादशरात्रन्तुकुर्यादश्ववधेद्विजः ।
अर्च्चांकार्ष्णायसींदद्यात्सर्पंहत्वाद्विजोत्तमः ॥२५
पलालभारकं षण्ढे सीसकञ्चैकमाषकम् ।
घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरे ॥२६
शुकं द्विहायनंवत्स क्रौञ्चंहत्या त्रिहायनम् ।
हत्वा हंसं बलाकाञ्चबकं बर्हिणमेवच ॥२७
वानरं श्येनभासञ्च स्पर्शयेद् ब्राह्मणाय गाम् ।
क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥२८

अन्त्यजों के वध में भी चान्द्रायण व्रत करके ही विशुद्धि का विधान है । भगवान् अज ने यह भी कहा है कि पराक व्रत से भी शुद्धि होजाती है ॥२२॥ मण्डूक—नकुल—काक—विडाल—खर और मूषक तथा श्वान इनकी हत्या करके द्विज को पाप से विशुद्ध होने के लिये महाव्रत का सोलहवाँ भाग अवश्य ही करना उचित है ॥२३॥ किसी श्वान की हत्या कर के तीन रात्रि तक अतन्द्रित होकर पय का पान करे । मार्जार अथवा नकुल का वध करके मार्ग में एक योजन तक गमन करे ॥२४॥ द्विज को अश्व के वध में बारह रात्रि तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए । द्विजोत्तम को सर्प का हनन करके कार्ष्णायसी अर्चा देनी चाहिए ॥२५॥ षण्ठ के वध में एक पलालभारक और एक भाषक शीशा दान करे । वराह में घृत पूर्ण कुम्भ और तीतर के वध में एक द्रोण तिलों का दान करना चाहिए ॥२६॥ शुक के वत्स को मारने पर दोहायन—क्रौञ्ज के

वध में तीन हायन–हंस–वलाका—वक—वर्ही—वानर—श्येन—भास के वध में ब्राह्मण को गौ का स्पर्श कराये। क्रव्याद मृगों का हनन करके पपस्विनी धेनु का दान करना चाहिए ॥२७-२८॥

अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वातुकृष्णलम्।
किञ्चिद्देयन्तु विप्रायदद्यदस्थिमतांवधे ॥२९
अनस्थ्नाञ्चैव हिंसायांप्राणायामेनशुध्यति।
फलदानांतुवृक्षाणां छेदनेजप्यमृकशतम् ॥३०
गुल्मवल्लीलतानांतु पुष्पितानाञ्चवीरुधाम्।
अण्डजानांचसर्वेषां स्वेदजानांचसर्वशः ॥३१
फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम्।
हस्तिनाञ्च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥३२
चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः।
मतिपूर्व्ववधे चाऽस्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३३

अक्रव्याद वत्सतरी, कृष्णल उष्ट्र का हनन करके ब्राह्मण को अस्थि-मानों के वध में कुछ दान अवश्य ही करना चाहिए ॥२९॥ जिनके अस्थियाँ नहीं होती हैं ऐसे प्राणियों के वध में तो केवल प्राणायाम करने से ही द्विज की पाप से शुद्धि होजाया करती है। जो फलों के प्रदान करने वाले वृक्ष हैं उनके काटने पर सौऋचाओं का जप करना चाहिए ॥३०॥ गुल्म, वल्ली, लता और पुष्पों वाली वीरुधों के छेदन करने में तथा सभी अण्डन प्राणियों के एवं स्वेदज जीवों के वध में तथा फल एवं पुष्पों के उद्भव करने वालों के छेदन में घृत का प्राश करलेना ही विशोधन होता है। हाथियों के वध में तो तप्त कृच्छ्र ही विशोधन देखा गया है ॥३१-३२॥ प्रमाद से गौ का वध हो जाने पर चान्द्रायण महाव्रत या पराक व्रत करे। जान बूझ कर बुद्धि पूर्वक गौ के वध करने पर तो कोई भी पाप से शुद्धि पाने का प्रायश्चित्त ही नहीं है। निष्कर्षार्थ यही है कि ज्ञान पूर्वक गोवध एक अत्यन्त ही महान पाप होता है जिससे छुटकारा ही नहीं है ॥३३॥

———

३४—प्रायश्चित्तवर्णन

मनुष्याणांतुहरणंकृत्वास्त्रीणांगृहस्य च ।
वापीकूपजलानाञ्चशुद्धयेच्चान्द्रायणेनतु ॥१
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः ।
चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये ॥२
धान्यान्नधनचौर्यंतु कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः ।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुध्यति ॥३
भक्ष्यभोज्योपहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥४
तृणकाष्ठद्रुमाणाञ्च शुष्कान्नस्यगुडस्यच ।
चैलचर्मामिषाणाञ्चत्रिरात्रंस्यादभोजनम् ॥५
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्यरजतस्य च ।
अयस्कान्तोपलानाञ्चद्वादशाहंकणाशनम् ॥६
कार्पासस्यैव हरणे द्विशफैकशफस्यच ।
पुष्पगन्धौषधीनाञ्च पिबेच्चैव त्र्यहं पयः ॥७

महा महिम महर्षि व्यास देव ने कहा—मनुष्यों के तथा स्त्रियों के के और गृह के हरण को करके तथा वापी कूप और जलों का हरण करके चाद्रायण महा व्रत के करने पर ही शुद्धि होती है ॥१॥ अल्पसार वाले द्रव्यों का अन्य घर से चोरी करके उसका निर्यात करने पर अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये कृच्छ्र सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥२॥ द्विजोत्तम को धान्यान्न—धन की चोरी कामना पूर्वक करके और अपने जातीय घर से ही करने पर अर्धकृच्छ्र व्रत से ही शुद्धि होजाया करती है ॥३॥ भक्ष्य भोज्य—यान—शर्या—आसन—पुष्प—मूल और फलों के अपहरण करने के पाप से विशुद्धि के लिये तो केवल पञ्चगव्य का पान करना ही पर्याप्त होता है ॥४॥ तृण—काष्ठ—द्रुम-शुष्क अन्न गुड—चैल—चर्म—आमिष इनके अपहरण करने पर तीन रात्रि तक भोजन न करना ही विशोधन होता है अर्थात् यही इनका प्रायश्चित्त है

॥५॥ मणि, मोती, प्रवाल, ताम्र, चाँदी, अय (लोहा), कान्तोपल, इनके अपहरण करने पर बारह दिन तक कणों का ही अशन करे ॥६॥ कपास तथा द्विशक और एक शफ वाले पशु, पुष्प, गन्ध, और औषधि, इनके अपहर में तीन रात्रि तक केवल पय का ही पान करना चाहिए यही इनके अपहरण के पाप की विशुद्धि का प्रायश्चित्त होता है ॥७॥

वराहं कुक्कुट वाथ तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ॥८
क्रव्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं मूत्रमेववा ॥९
गोगोमायुकपीनाञ्च तदेव व्रतमाचरेत् ।
शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च ॥१०
उपोष्यद्वादशाहञ्चकूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् ।
नकुलोलूकामार्जाराञ्जग्ध्वासान्तपनञ्चरेत् ॥११
श्वापदोष्ट्रखराञ्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुध्यति ।
प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैवतु ॥१२
वकञ्चैव बलाकाञ्च हंसं कारण्डवांस्तथा ।
चक्रवा कपलं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम् ॥१३
कपोतटिट्टिभांश्चैव शुकं सारसमेवच ।
उलूकं जालपादञ्च चग्ध्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् ॥१४

वराह-कुक्कुट का आमिष खाकर मनुष्य तप्त कृच्छ्र व्रत के करने से शुद्ध होता है। क्रव्यादों के मांस, पुरीष, मूत्र तथा गो, गोमायु और कपियों के माँस के खाने पर भी उसी व्रत का समाचरण करना चाहिए। शिशु मार-चाष तथा मत्स्य माँस का अशन करके बारह दिन तक उपवास करे और इसके अनन्तर कूष्माण्ड और घृत से हवन करना चाहिए। न्यौला, उल्लू, विडाल, इनका भक्षण करके सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥८-११॥ श्वापद खर, उष्ट्र इनको खाकर तप्त कृच्छ्र व्रत करने पर ही विशुद्धि होती है। पूर्व के द्वारा विधि से ही संस्कार करना चाहिए ॥१२॥ वक, वलाका, हंस, कारण्डव, चन्द्रवाक इनके मांस को खाकर बारह दिन तक भोजन का ही त्याग कर देना चाहिए, यही इनका विशुद्धि का प्रायश्चित्त है। क्पोत, टिट्टिभ, शुक, सारस, उलूक, जलपाद का माँस

खाकर भी यही व्रत करना चाहिए ।।१३-१४।। (ये समस्त विधान वर्त्त-मान समय से बहुत प्राचीन समय के हैं जब भीषण अकालों के अवसर पर मनुष्य प्राण रक्षा के लिये अखाद्य वस्तुओं को खा जाते थे । अथवा भूल या किसी ने धोखा देने से ऐसा कृत्य होने पर दस तरह के प्रायश्चित बतलाये जाते थे ।)

शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमासं तथैव च ।
जग्ध्वाचैव कटाहारमेतदेव व्रतञ्चरेत् ।।१५
कोकिलञ्चैवमत्स्यादान्मण्डूकं भुजगं तथा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेनशुद्ध्यति ।।१६
जलेचरांश्चजलजान्प्रणुदानथ विष्किरान् ।
रक्तपादांस्तथाजग्ध्वासप्ताहञ्चैतदाचरेत् ।।१७
शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थञ्च तथाकृतम् ।
भुक्त्वा मासञ्चरेदेतत्तत्पापस्यापनुत्तये ।।१८
वृन्ताकं भूस्तृणे शिग्रुं कुटकञ्चटकं यथा ।
प्राजापत्यञ्चरेज्जग्ध्वा खङ्गं कुम्भीकमेवच ।।१९
पलाण्डुं लशुनञ्चैवधुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत् ।
नालिकां तण्डुलीयञ्च प्राजापत्येनशुध्यति ।।२०
अश्मान्तकं तथा पोतं तप्रकृच्छ्रेण शुध्यति ।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्कुसुम्भस्य च भक्षणे ।।२१

शिशुमार, चाष, मत्स्य माँस को खाकर कराहार ही व्रत का समाचरण करना चाहिए ।।१५।। कोयल, मत्स्याद, मण्डूक और सर्प का भक्षण करके एक मास पर्यन्त गोमूत्र और आवक का आहार कर तभी शुद्धि होती है ।।१६।। जलेचर, जलज, प्रणुद, विष्किर रक्तपाद इनको खाकर एक सप्ताहक इसका ही समाचरण करना चाहिए ।।१७।। कुत्ता का मांस, शुष्क मांस को अपनी आत्मा के लिये उपयोग में लावे तथा खाकर इस पाप की अपनुत्ति के लिये भी यही समाचरण करना चाहिए ।।१८।। वृन्ताक, भूस्तृण, शिग्नु, कुटक, चरक को भक्षण करके तथा खङ्ग और कुम्भीनक का भक्षण करके प्राजापत्य व्रत का समाचरण करे ।।१९।।

पलाण्डु (प्याज) और लशुन (लहसन) का भक्षण करके भी चान्द्रायण व्रत शुद्धि के लिये करना चाहिए। नालिका और तण्डुलीय का भक्षण करके प्राजापत्यव्रत के करने पर ही शुद्धि होती है ।।२०।। अश्मान्तक तथा पीत को खाकर तप्तकृच्छ्र से शुद्ध हुआ करता है कुसुम के भक्षण करने पर प्राजापत्य व्रत से ही शुद्धि होती है ।।२१।।

अलाबुं किंशुकञ्चैव भुक्त्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत् ।
एतेषाञ्चविकाराणिपीत्वा मोहेनवापुनः ।।२२
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुध्यति ।
उदुम्बरञ्च कामेन तप्तकृच्छ्रे शुध्यति ।
भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा ।।२३
चान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणः सुसमाहितः ।
यस्याग्नौहूयतेनित्यमन्नस्याग्रं नदीयते ।।२४
चान्द्रायणञ्चरेत्सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः ।
अभोज्यान्नन्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम् ।।२५
अन्तावसायिनाञ्चैव तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ।
चण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणञ्चरेत् ।।२६
बुद्धिपूर्वन्तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च ।
असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम् ।।२७
अभोज्यान्नन्तुभक्त्वाच प्राजापत्येन शुध्यति ।
विण्मूत्रप्राशनंकृत्वारेतसश्चैतदाचरेत् ।।२८

अलावु—किंशुक को खाकर यही व्रत करना चाहिए मोह से इनके विकारों का पान करके गोमूत्र तथा यावक का आहार करे तो सात रात्रि में शुद्ध हो जाया करता है। यदि इच्छा पूर्वक उदुम्बर (भूला) का भक्षण करे तो तप्तकृच्छ्र व्रत के करने पर ही शुद्धि हुआ करती है ।।२२-२३।। किसी के नवीन श्राद्ध में—मृतक में—सूतक में भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत से ही ब्राह्मण को सुसमाहित होने पर ही शुद्धि होती है। जिसकी अग्नि में नित्य ही हवन किया जाता है उस अन्न का अग्रभाग यदि नहीं दिया जाता है तो द्विज को उसके अन्न के प्राशन में भली-भाँति

चान्द्रायण महाव्रत का समाचरण करना चाहिए। जो अन्न अभोज्य है और जो उपस्कृत अन्न है वह सभी किसी का खाकर के एवं जो अन्ताव-सायी हैं उनका अन्न खाकर के विशुद्धि के लिये तप्तकृच्छ्र व्रत ही करना चाहिए। द्विज किसी भी चाण्डाल का अन्न यदि खा लेवे तो उसे भली-भाँति चान्द्रायण व्रत ही पाप के अपमोदन करने के लिये करना चाहिए ॥२४-२६॥ यदि बुद्धि पूर्वक अर्थात् खूब जान बूझ कर ही भक्षण करे तो फिर उसे एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए और पुनः संस्कार भी करना चाहिए। असुरामद्य पान करने पर भी चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥२७॥ जो भोजन के योग्य अन्न नहीं हैं उसे खाकर प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है। विट्—मूत्र और रेत का प्राशन करके भी यही व्रत करे ॥२८॥

अनादिष्टेतुचैकाहं सर्वत्रतुयथार्थतः।
विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥२६
प्राश्यमूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत्।
अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेवच ॥३०
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजातयः।
क्रव्यादांपक्षिणाञ्चैवप्राश्यमूत्रपुरीषकम् ॥३१
महासान्तपनं मोहात्तथा कुर्याद्द्विजोत्तमः।
भासमण्डूककुररेविष्किरेकृच्छ्रमाचरेत् ॥३२
प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने।
क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद्वैश्ये चैवाऽतिकृच्छ्रकम् ॥३३
शूद्रोच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्।
सुराया भाण्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥३४
समुच्छिष्टंद्विजोभुक्त्वात्रिरात्रेणविशुध्यति।
गोमूत्रयावकाहारःपीतशेषञ्चवागवाम् ॥३५

जनादिष्ट होने पर तो एक दिन और सर्वत्र तो जैसा भी योग्य हो करे। विट्—वरहा—खर—उष्ट्र—गोमायु—कपि काक इनके मूत्र एवं पुरीष को खाकर—द्विज को चान्द्रायण व्रत की विशुद्धि के लिये करना

चाहिए तभी पाप दूर होता है । यदि अज्ञान पूर्वक विट्—मूत्र का प्राशन कर लेवे तथा सुरा का संस्पर्श करें तो भी चान्द्रायण ही करना चाहिए ॥२९-३०॥ द्विजातियों के तीनों ही वर्ण क्रव्याद और पक्षियों के मूत्र पुरीष का प्राशन करके दुवारा संस्कार के योग्य हो जाया करते हैं ॥३१॥ यदि मोहवश ऐसा हो जावे तो द्विजोत्तम को महासान्तपन व्रत करना चाहिए । मास—मण्डूक—कुरर—विष्कर के खाने पर कृच्छ्र व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥३२॥ ब्राह्मण के उच्छिष्ट का भोजन कर लेने पर प्राजापत्य व्रत के करने से शुद्धि हो जाया करती है । क्षत्रिय के उच्छिष्ट में तप्तकृच्छ्र और वैश्य के उच्छिष्ट भोजन करने पर अतिकृच्छ्र व्रत शुद्धि के लिये करे ॥३३॥ शूद्र के उच्छिष्ट का भोजन करके ब्राह्मण को चान्द्रायण महाव्रत करना चाहिए ॥३४॥ समुच्छिष्ट को द्विज खाकर तीन रात्रि में ही शुद्ध हो जाया करता है । गोमूत्र और यावक का आहार करे तथा गौओं के पीने से जो शेष रहे उसे ग्रहण करे ॥३५॥

अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद्यदि ।
तदा सान्तपनं कृच्छ्रं व्रतम्पापविशोधनम् ॥३६

चाण्डालकूपेभाण्डेषुयदिज्ञानात्पिबेज्जलम् ।
चरेत्सान्तपनंकृच्छ्रं ब्राह्मणःपापशोधनम् ॥३७

चाण्डालेनतु संस्पृष्टम्पीत्वावारिद्विजोत्तमः ।
त्रिरात्रव्रतमुख्येनपञ्चगव्येन शुध्यति ॥३८

महापातकिसंस्पर्शेभुक्त्वास्नात्वाद्विजोयदि ।
बुद्धिपूर्वं यदामोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥३९

स्पृष्ट्वा महापातकिनंचण्डालञ्चरजस्वलाम् ।
प्रमादाद्भोजनंकृत्वात्रिरात्रेणविशुध्यति ॥४०
स्नानार्हो यदिभुञ्जीत ह्यहोरात्रेण शुध्यति ।
बुद्धिपूर्वंतु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः ॥४१
भुक्त्वा पर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषिताः ।
भुक्त्वोपवासं कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा ॥४२

जल—मूत्र-पुरीष आदि के द्वारा दूषित पदार्थों का यदि प्राशन करे तो इस पाप के विशोधन करने वाला सान्तपन व्रत ही हुआ करता है ।।२६।। चाण्डाल के कुए में या पात्र में यदि ज्ञान पूर्वक जल का पान कर लेवे तो ब्राह्मण को उस पाप के विशोधन करने के लिये सान्तपन कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ।।३७।। कोई द्विजोत्तम चाण्डाल के द्वारा संस्पर्श किया हुग्रा जल का पान कर लेवे तो उसे तीन रात्रि का प्रमुख व्रत करके पञ्च गव्य का पान करना चाहिए—इसी से उसकी शुद्धि हो जाया करती है ।।३८।। किसी महापात की के द्वारा संस्पर्श किये हुए पदार्थ को खाकर तथा ऐसे ही जल से स्नास करके यदि कोई द्विज ग्रशुद्ध हो जाता है उसे बुद्धि पूर्वक या मोह वश ऐसा करने पर तप्त कृच्छ्र व्रत का समाचरण पाप के ग्रपमोदन करने के लिये करना चाहिए ।।३९।। किसी भी महापात की—चाण्डाल ग्रथवा रजस्वला स्त्री का स्पर्श कर लेने पर फिर प्रमाद से भोजन कर लेवे तो वह तीन रात्रि में विशुद्ध हुआ करता है ।।४०।। स्नान के योग्य यदि भोजन कर लेवे तो एक ग्रहो-रात्र में विशुद्ध हुआ करता है। यदि जान बूझ कर ही ऐसा करे तो भगवान् अज ने कहा है कि वह कृच्छ्र व्रत करके ही विशुद्ध हुग्रा करता है ।।४१।। पर्युषित ग्रादि पदार्थों का प्राशन करके तथा गवादि के द्वारा प्रतिदूषित पदार्थों को खाकर के द्विज को उपवास करना चाहिए ग्रथवा पाप से शुद्धि प्राप्त करने के लिये उसे कृच्छ्र व्रत का चौथा भाग का समाचरण करना चाहिए ।।४२।।

सम्वत्सरान्ते कृछ्रन्तु चरेद्विप्रः पुनः पुनः ।
अज्ञानभुक्तशुद्‌ध्यर्थंज्ञातस्यतुविशेषतः ।।४३
व्रात्यानां याजनं कृत्वापरेषामन्त्यकर्मच ।
अभिचारमहीनञ्चत्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुध्यति ।।४४
ब्राह्मणादिहतानांतु कृत्वादाहादिकं द्विजः ।
गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येनशुध्यति ।।४५
तैलाभ्यक्तोऽथवान्तोवा कुर्यान्मूत्रपुरीषके ।
अहोरात्रेण शुद्ध्येत श्मश्रु कर्मणिमैथुने ।।४६

एकाहेन बिहायाग्निपरिहाप्य द्विजोत्तमः ।
त्रिरात्रेणविशुद्ध्येतत्रिरात्रात्षडहःपरम् ।।४७

दशाहं द्वादशाहं वा परिहाप्य प्रमादतः ।
कृच्छ्रञ्चान्द्रायणंकुर्यात्तत्पापस्योपशान्तये ।।४८

पतितादूद्रव्यमादाय तदुत्सर्गेणशुध्यति ।
चरेच्चविधिनाकृच्छ्रमित्याह भगवान्मनुः ।।४९

एक सम्वत्सर के अन्त में तो उसे वारम्वार कृच्छ्र व्रत का समाचरण करना उचित है । जो अज्ञान से भोजन कर लेवे उसकी शुद्धि तभी होती है और जान-बूझकर बुद्धि पूर्वक यदि भोजन कर लेवे तो उस विप्र को विशेष रूप से व्रतादि का समाचरण करना चाहिए तभी विशुद्धि हुआ करती है ।।४३।। जो व्रात्य होगये हैं उनका याजन तथा परों का अन्त्य कर्म करके एवं अभिचार और अहीन कर्म का सम्पादन करके तीन वार कृच्छ्र व्रत करे तभी पाप से विशुद्धता प्राप्त हुआ करती है ।।४४।। ब्राह्मणादि हतों का द्विज यदि दाह आदि कर्म करे तो उसे पापापनोदन के लिये गोमूत्र और यावक का आहार करना चाहिए तथा प्राजापत्य व्रत भी करे तभी विशुद्ध होता है ।।४५।। तैल से अभ्यक्त अथवा अन्त यदि मूल एवं पुरीष का उत्सर्ग करे तो स्मश्रु कर्म और मैथुन में एक अहोरात्र में शुद्ध हुआ करता है ।।४६।। द्विजोत्तम एक दिन अग्नि—समर्चा का त्याग करके या परिहापन करा कर तीन रात्रि में विशुद्ध होता है अथवा तीन रात्रि से भी पर छः दिन में शुद्धि प्राप्त हुआ करती है ।।४७।। प्रमाद से परिहापन करके दश दिन या बारह दिन में कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत करे तभी उस किये हुए पाप की शान्ति हुआ करती है ।।४८।। किसी भी पतित पुरुष से द्रव्य ग्रहण करके उसके उत्सर्ग करने पर ही शुद्धि होती है । अथवा विधि पूर्वक कृच्छ्र व्रत का समाचरण करे यही श्रीभगवान् अज ने प्रतिपादन किया है ।।४६।।

अनाशकान्निवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा ।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च ।।५०

पुनश्चजातकर्मादिसंस्कारैःसंस्कृताद्विजाः ।
शुद्ध्येयुस्तद्व्रतं सम्यक्चरेयुर्धर्मदर्शिनः।। ५१
अनुपासितसन्ध्यस्तु तदहर्यावके भवेत् ।
अनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद्रात्रिमेव हि ।।५२
अकृत्वा समिदाधानंशुचिःस्नात्वासमाहितः ।
गायत्र्यष्टसहस्रस्यजप्यंकुर्याद्विशुद्धये ।।५३
उपवासी चरेन्सन्ध्यां गृहस्थो हि प्रमादतः ।
स्नात्वा विशुद्ध्यते सद्यः परिश्रान्तश्च संयतः ।।५४
वेदोदितानिनित्यानिकर्माणिचविलोप्यतु ।
स्नातकोव्रतलोपंतुकृत्वाचोपवसेद्दिनम् ।।५५
सम्वत्सरञ्चरेत्कृच्छ्रमन्योत्सदी द्विजोत्तमः ।
चान्द्रायणञ्चरेद् व्रात्यो गोप्रदानेन शुद्ध्यति ।।५६

अनाशक से निवृत्त तथा प्रव्रज्या के लिये अवसित पुरुषों को तीन कृच्छ्र व्रत अथवा तीन महाचान्द्रायण व्रत करने चाहिए ।।५०।। इसके पश्चात् पुनः जात कर्म आदि संस्कार कराकर सुसंस्कृत हुए ही द्विज विशुद्धि को प्राप्त हुआ करते हैं । धर्म के दर्शियों को वह व्रत बहुत ही भली भाँति सम्पन्न करने चाहिए ।।५१।। जिसने सन्ध्या की उपासना जिसदिन भी नहीं की हो उस द्विज को यावक के आहार करके ही रहना चाहिए । कुछ भी अशन न करके परम संयत मन वाला रात्रि में यदि रात्रि को ही अशन किया करे ।।५२।। समिधा का आधान न करके स्नान अति समाहित होकर विशुद्धि के लिये आठ सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिए ।।५३।। यदि कोई गृहस्थाश्रमी प्रमाद से उपवास वाला होकर सन्ध्या का समाचरण करे तो स्नान करके तुरन्त ही शुद्ध होजाया करता है और परिश्रान्त संयत होना चाहिए ।।५४।। वेदों में विहित कर्मों को जो कि नित्य कर्म बताये गये हैं उनका विलोपन करके स्नातक यदि व्रतों का लोप न करे तो उसको एक दिन उपवास करना चाहिए ।।५५।। अन्य को उत्सादन करने वाले द्विज को एक सम्वत्सर पर्यन्त कृच्छ्र व्रत

का समाचरण करना चाहिए व्रात्य पुरुष को, चान्द्रायण व्रत करना चाहिए गौओं के दान से भी उसकी विशुद्धि होजाया करती है ॥५६॥

नास्तिक्यं यदिकुर्वीतप्राजापत्यञ्चरेद्द्विजः ।
देवद्रोहंगुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥५७
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानञ्च कामतः ।
त्रिरात्रेण विशुद्ध्येच्चनग्नोवा प्रविशेज्जलम् ॥५८
षष्ठान्नकालतमासं संहिताजपएव च ।
होमाश्चशाकलानित्यंअपाङ्क्तानांविशोधनम् ॥५९
नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणोवस्त्रमेवहि ।
अहोरात्रोषितःस्नातःपञ्चगव्येनशुद्धचति ॥६०
वेदधर्मपुराणानांचण्डालस्यतुभाषणे ।
चान्द्रायणेनशुद्धिःस्यान्नह्यन्यातस्यनिष्कृतिः ॥६१
उद्बन्धनादिनिहतंसंस्पृश्यब्राह्मणंक्वचित् ।
चान्द्रायणेनशुद्धिःस्यात्प्राजापत्येनवापुनः ॥६२
उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन्स्पृशेद् द्विजः ।
प्रमादाद्वै जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥६३

यदि कोई भी द्विज नास्तिकता की भावना करे तो उसे प्राजापत्य व्रत का समाचरण पाप शुद्धि के लिये करना चाहिए। देवगण से द्रोह और गुरु वर्ग से द्रोह करने पर तप्त कृच्छ्र व्रत के करने पर ही विशुद्धि हुआ करती है ॥५७॥ उष्ट्रों का मान और खरों के यान में स्वेच्छा से समारोहण करके तीन रात्रि में विशुद्ध होता है अथवा नग्न होकर जल में प्रवेश करना चाहिए ॥५८॥ षष्ठान्न कालतामास और संहिता का जप, नित्य शाकल होम अपङ्क्तों के विशोधन करनें वाला है ॥५६॥ ब्राह्मण, नीले वर्ण के तथा रक्त वर्ण वाले वस्त्र को पहिन कर एक अहोरात्र तक, उपवास करके स्नान करे तो फिर वह पञ्चगव्य से शुद्ध हो जाया करता है ॥६०॥ वेद और धर्म शास्त्र तथा पुराणों का चाण्डाल के समक्ष में भाषण करने पर चान्द्रायण व्रत से ही शुद्धि होती है इसके अतिरिक्त अन्य इस पाप की कोई धर्म शास्त्र में निष्कृति नहीं बताई गई है ॥६१॥

उल्लंघन आदि से निहत ब्राह्मण का संस्पर्श करके चान्द्रायण व्रत से अथवा प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है ।।६२।। उच्छिष्ट होते हुए आचान्त न होकर यदि द्विज चाण्डाल आदि का प्रमाद से स्पर्श करे तो स्नान करके आठ सहस्र गायत्री का जाप करना चाहिए । इस विधान से शुद्धि हुआ करती है ।।६३।।

द्रुपदानां शतं वापिब्रह्मचारीसमाहितः ।
त्रिरात्रोपोषितःसम्यक्पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ।।६४
चाण्डालपतितादींस्तु कामाद्यः संस्पृशेद् द्विजः ।
उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये ।।६५
चाण्डालसूतकिशवांस्तथा नारीं रजस्वलाम् ।
स्पृष्ट्वा स्नाय द्विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टपतितांस्तथा ।।६६
चाण्डालसूतकिशवैःसंस्पृष्टंसंस्पृशेद्यदि ।
ततःस्नात्वाथआचम्यजपंकुर्यात्समाहितः ।।६७
तत्स्पृष्टस्पर्शिनंस्पृष्ट्वाबुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः ।
स्नात्वाचामेद्विशद्ध्यर्थंप्राहदेवःपितामहः ।।६८
भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्संस्पृशेद्यदि ।
कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद् व्रतम् ।।६९
चाण्डालन्तु शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद्विशुद्ध्यति ।
स्पृष्ट्वाऽभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्य अहोरात्रेण शुद्ध्यति ।।७०

अथवा "द्रुपदा नाम" इस मन्त्र का समाहित होकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुए एक सौ जाप करे । तीन रात्रि उपवास करके भली-भाँति पञ्चगव्य के सेवन से विशुद्ध हो जाता है ।।६४।। जो द्विज स्वेच्छा से ही चाण्डाल तथा पतितों को संस्पर्श करके उच्छिष्ट होवे तो उसे विशुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ।।६५।। चाण्डाल—सूतकी और शव का एवं रजस्वला नारी का स्पर्श करके तथा उनसे स्पर्श करने वाले पतितों का संस्पर्श करके पाप से विशुद्धि प्राप्त करने के लिये स्नान करना चाहिए ।।६६।। चाण्डाल—सूत की और शव से संस्पर्श होने वाले व्यक्ति से यदि संस्पर्श करे तो स्नान करके आचमन करे और फिर परम समा-

हित होकर जाप करना चाहिए ।।६७।। इनसे स्पृष्ट के स्पर्श करने वाले से स्पर्श करके जो कि जान बूझ कर ही किया जावे तो द्विज को विशुद्धि के लिये स्नान करके आचमन करना चाहिए—ऐसा ही प्रपितामह देव ने कहा है ।।६८।। यदि किसी समय में भोजन करते हुए ब्राह्मण का संस्पर्श कर लेवे तो शौच करके फिर स्नान करना चाहिए और उपवास करके अग्नि में आहुतियाँ देनी चाहिए यही व्रत है ।।६९।। किसी चाण्डाल के शव का स्पर्श करके कृच्छ्र व्रत को विशुद्धि के लिये करना चाहिए। अभ्यक्त होकर असंस्पृश्य का यदि स्पर्श करके एक अहोरात्र में विशुद्ध होता है ।।७०।।

सुरां स्पृष्ट्वा द्विजः कुर्यात्प्राणायामत्रयंशुचिः ।
पलाण्डुं लशुनञ्चैवघृतंप्राप्यततःशुचिः ।।७१

ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायम्पयःपिबेत् ।
नाभेरूर्द्धन्तुदष्टस्य तदेव द्विगुणंभवेत् ।।७२

स्यादेतत्त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम् ।
स्नात्वा जपेद्वा सावित्रीं श्वभिदंष्टो द्विजोत्तमः ।।७३

अनिर्वर्त्त्यमहायज्ञान्यो भुङ्क्तेतुद्विजोत्तमः ।।
अनातुरःसतिधनेकृच्छ्राद्धेनसशुद्ध्यति ।।७४

आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि ।
ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोऽपिकृच्छ्राद्धमाचरेत् ।।७५

विनाद्भिरप्सुनाप्यार्त्तःशरीरंसन्निवेश्यच ।
सचैलोजलमाप्लुत्यगामालभ्यविशुध्यति ।।७६

बुद्धिपूर्वन्त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः ।
गायत्र्यष्टसहस्रन्तु त्र्यहं चोपवसेद्द्विजः ।।७७

द्विज को सुरा का स्पर्श करके शुचि होकर तीन बार प्राणायाम करना चाहिए। पलाण्डु और लहसन का स्पर्श करके घृत का प्राशन करने से शुचि होता है ।।७१।। कुत्ते के द्वारा काटा हुआ ब्राह्मण को तीन दिन तक सायंकाल में पय पीना चाहिए। नाभि से ऊपर के भाग में यदि

दंशन करे तो वही द्विगुण करना चाहिए। यदि बाहुओं में दंशन करे तो तिगुना और मस्तक में काटे तो चौगुना करना चाहिए। कुत्तों के द्वारा काटे हुए द्विज को स्नान करके सावित्री देवी का जाप करना चाहिए ॥७२-७३॥ जो द्विजोत्तम महायज्ञों को न करके भोजन किया करता है। धन होते हुए जो अनातुर होता है वह आधा कृच्छ्र व्रत करने से विशुद्ध होता है ॥७४॥ जो द्विज आहिताग्नि हो और पर्व पर उपस्थान न करे तथा ऋतु काल के उपस्थित होने पर अपनी भार्य्या का अभिगमन न करे उसको भी पाप होता है और उसकी विशुद्धि के लिये उसे कृच्छ्र व्रत का आधा भाग करना चाहिए ॥७५॥ जल के बिना जल में आर्त्त न होकर ही शरीर को संनिवेशित करके वस्त्रों के सहित जल में समाप्लुत होकर गौ का आलभन करने वाला विशुद्ध होता है ॥७६॥ वुद्धि पूर्वक करने पर तो द्विज को अभ्युदित अन्तर जल में जाप करना चाहिए। आठ सहस्र गायत्री का जप तीन दिन करे और द्विज को उपवास भी करना चाहिए ॥७७॥

अनुगम्येच्छया शूद्रं प्रेतीभूतं द्विजोत्तमः।
गायत्र्यष्टसहस्रञ्चजपंकुर्यान्नदीषु च ॥७८
कृत्वातुशपथं विप्रोविप्रस्यावधिसंयुतम्।
स चैवयावकान्नेनकुर्याच्चान्द्रायणंव्रतम् ॥७९
पङ्क्तौ विषमदानं तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति।
छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद् घृतम् ॥८०
ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाऽग्निञ्चन्द्रमेव वा।
मानुषञ्चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्धयति ॥८१
कृत्वा तु मिथ्याध्ययनञ्चरेद्भैक्षन्तु वत्सरम्।
कृतघ्नो ब्राह्मणगृहेपञ्चसंवत्सरन्व्रती ॥८२
हुंकारंब्राह्मणस्योक्त्वात्वङ्कारञ्चगरीयसः।
स्नात्वानाश्नन्नहःशेषंप्रणिपत्यप्रसादयेत् ॥८३
ताडयित्वातृणेनापिकण्ठं बद्ध्वावाथससा।
विवादेचापिनिर्जित्यप्रणिपत्यप्रसादयेत् ॥८४

जो द्विजोत्तम प्रेतीभूत शूद्र का अपनी इच्छा से ही अनुगमन करे उसे शुद्धता सम्पादन करने के लिये नदी में आठ सहस्र सावित्री देवी का जाप करना चाहिए ।।७८।। विप्र विप्र की अवधि से संयुत शपथ करके उसे यावकान्न के द्वारा चान्द्रायण महाव्रत करना चाहिए ।।७९।। जो कोई एक ही पंक्ति में स्थितों को विषम दान करे उसे भी उस पाप से शुद्ध होने के लिये कृच्छ्र व्रत ही करना चाहिए । श्वपाक की छाया समारोहण करके स्नान करे और फिर घृत का प्राशन भी करना चाहिए ।।८०।। अशुचि होकर आदित्य देव का दर्शन करे—अग्नि को तथा चन्द्रदेव को देख कर मानुष की अस्थि संस्पर्श करके स्नान करने पर ही विशुद्धि हो जाती है ।।८१।। मिथ्या अध्ययन करके एक वर्ष पर्यन्त भैक्ष करे । जो किये हुए उपकार का हनन करने वाला कृतघ्न द्विज है उसे ब्राह्मण के घर में पाँच वर्ष तक व्रतधारी होकर रहना चाहिए ।।८२।। ब्राह्मण को हुङ्कार कह कर तथा गुरु को अङ्कार कह कर स्नान करे और अशन न करते हुए दिन के शेष में प्रणिपात करके प्रसन्न करे ।।८३।। एक तृण से भी ताड़न करके वस्त्र से कण्ठ को बाँधकर विवाद में भी विजित होकर प्रणिपात करके प्रसन्न कर लेना चाहिए ।।८४।।

अवगूर्यं (ह्य) चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् ।।८५
गुरोराक्रोशमनृतं कुर्यात्कृत्वा‌त्रिशोधनम् ।
एकरात्रं निराहारः तत्पापस्यापनुत्तये ।।८६
देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते ।
उल्मुकेन दलेज्जिह्वां दातव्यञ्च हिरण्यकम् ।।८७
देवोद्यानेषु यः कुर्यान्मूत्रोच्चारं सकृद् द्विजः ।
छिन्द्याच्छिश्नं विशुध्यर्थञ्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ।।८८
देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद् द्विजोत्तमः ।
शिश्नस्योत्कर्त्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत् ।।८९
देवतानामृषीणाञ्च देवानाञ्चैवकुत्सनम् ।
कृत्वासम्यक्प्रकुर्वीतप्राजापत्यंद्विजोत्तमः ।।९०

तैस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्चयेत् ।
दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्तं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरेत् ॥९१

विप्र को अवगूर्ण करके भी महापाप होता है अतएव इसके विशोधन के लिये कृच्छ्र व्रत करे। यदि हाथापाई कर विप्र को गिरा दिया जावे तो विशुद्धि के लिये अतिकृच्छ्र व्रत करे। यदि विप्र के अङ्ग से रक्तपात का उत्पादन कर देवे तो विशोधनार्थ कृच्छ्र व्रत करना चाहिए ॥८५॥ गुरुदेव का आक्रोश और अनृत करके तो उसका पाप विशोधन एवं अपनोदन के लिये एक रात्रि तक निराहार ही रह कर विताना चाहिए ॥८६॥ देवर्षियों के सम्मुख में ष्ठीवन (थूकना) या उनका आक्रोशन करके उल्मुक के द्वारा जिह्वा को दग्ध करे और सुवर्ण का दान करना चाहिए ॥८७॥ देवों के उद्यानों में जो कोई भी द्विज एक बार भी मूत्रोच्चार कर देवे तो उस पाप के अपनोदन करने के लिये अपने शिश्न को छिन्न कर डाले और चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥८८॥ यदि मोहवश किसी भी देवता के आयतन में कोई भी द्विजोत्तम मूत्र का उत्सर्ग करे देवे तो उस पाप की विशुद्धि तभी होती है जब वह उस अपनी मूत्रेन्द्रिय को काट देवे और फिर चान्द्रायण व्रत का समाचरण करे ॥८९॥ देवों का—ऋषियों का कुत्सन (निन्दा) करके द्विजश्रेष्ठ को भली-भाँति प्राजापत्य व्रत करके पाप का शोधन करना चाहिए ॥९०॥ उनके साथ सम्भाषण करके स्नान करे और देव का समर्चन करना चाहिए। देख कर भगवान् भास्वान् का स्मरण करके विश्वेश्वर प्रभु का स्मरण करे ॥९१॥

यः सर्वभूताधिपतिंविश्वेशानं विनिन्दति ।
न तस्यनिष्कृतिःशक्याकर्त्तुं वर्षशतैरपि ॥९२
चान्द्रायणं चरेत्पूर्वंकृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम् ।
प्रपन्नःशरणंदेवं तस्मात्पापाद्विमुच्यते ॥९३
सर्वस्वदानंविधिवत्सर्वपापविशोधनम् ।
चान्द्रायणंचविधिनाकृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रकम् ॥९४

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविशोधनम् ।
अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद् भवम् ॥९५
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९६
कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथाकृष्णचतुर्दशीम् ।
सम्पूज्य ब्राह्म० मुखे सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥९७
त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम् ।
दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः ॥९८

जो कोई भी समस्त भूतों से अधिपति भगवान् विश्वेशान की विशेष निन्दा करे तो उसके पाप की निष्कृति शक्ति से सैंकड़ों वर्षों में भी नहीं होती है ॥९२॥ पहिले तो उसको चान्द्रायण व्रत का समाचरण करना चाहिए फिर कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए इनके पश्चात् उस पाप से विमुक्त होने के लिये उस को उन्हीं देव की शरणागति में प्रपन्न हो जाना चाहिए तभी पाप से विमुक्त होता है ॥९३॥ अपने पास जो कुछ भी हो उस सभी सर्वस्व का दान कर देवे और उस दान को भी पूर्ण विधि के साथ ही करे। इस तरह करने से सभी तरह के पापों का विशोधन हो जाता है। तथा विधान के साथ महाचान्द्रायण—कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतों को करे ॥९४॥ किसी परम पुण्यमय क्षेत्र में गमन करना भी समस्त प्रकार के पापों का विशोधन करने वाला होता है। अमावस्या तिथि को प्राप्त करके जो कोई भगवान् भव (महादेव) का समाराधन किया करता है और फिर ब्राह्मणों का पूजन करे तो समस्त प्रकार के पापों से प्रयुक्त हो जाया करता है। शिवाराधन और विप्र पूजन पापों के अपनोदन का एक प्रमुख साधन माना गया है ॥९५-९६॥ कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में तथा मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में ब्राह्मण मुख में भली-भाँति पूजन करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाया करता है ॥९७॥ त्रयोदशी तिथि में रात्रि की वेला में उपहारों के सहित भगवान् त्रिलोचन देवेश्वर का दर्शन करके प्रथम प्रहर में उनका समाराधन करे तो सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥९८॥

उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः ।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥९९

वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च ।
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन् ॥१००

स्नात्वा दद्याच्च पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः ।
ब्रह्मचर्यमधः शय्या उपावासो द्विजार्चनम् ॥१०१

व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः ।
अमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम् ॥१०२

ब्राह्मणांस्त्रीन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः ।
षष्ठ्यामुपोषितोदेवंशुक्लपक्षेसमाहितः ॥१०३

सप्तम्यामर्चयेद्भानु मुच्यते सर्वपातकैः ।
भरण्याञ्चचतुर्थ्याञ्च शनैश्चरदिने यमम् ॥१०४

पूजयेत्सप्तजन्मोत्थै मुच्यते पातकैर्नरः ।
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्यजनार्द्दनम् ॥१०५

मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि के दिन उपवास करने वाला और परम समाहित रहने वाला मनुष्य यमराज—धर्मराज—मृत्यु—अन्तक—वैवस्वत—काल और सब के प्राणों के हरण करने व.ले के लिये इन्हीं उक्त नामों का समुच्चारण करके तिलों से समन्वित सात जलाञ्जलि देवे अर्थात् प्रत्येक नाम से ७—७ अञ्जलियों को देवे और दिन के पूर्वाह्न में स्नान करके देवे तो मनुष्य सभी प्रकार के पापों तथा पातकों से मुक्ति पा जाया करता है ॥९९-१००॥ ब्रह्मचर्य व्रत का परिपालन—भूमि में शयन—उपवास और द्विजों का भली-भाँति अर्चन इन सभी व्रतों में करना चाहिए तथा परम शान्त रहे और संयत मन वाला भी रहना चाहिए ॥१०१-१०२॥ अमावस्या तिथि में पितामह ब्रह्माजी का समुद्देश करके तीन ब्राह्मणों का भली-भाँति अर्चन करे तो सभी पापों से छुटकारा हो जाया करता है । षष्ठीतिथि में उपवास करने वाला शुक्लपक्ष में समाहित होकर देव की समाराधना करे ॥१०३॥ सप्तमी तिथि

में भगवान् भुवनभास्कर का अर्चन किया करे तो सभी पातकों से मुक्ति पा जाता है। भरणी नक्षत्र और चतुर्थी तिथि में शनिवार के दिन में यम का पूजन करना चाहिए। ऐसा करने से सात जन्मों के भी समुत्थित पापों से मनुष्य मुक्त हो जाता है। एकादशी तिथि में निराहार व्रत करके भगवान् जनार्दन का पूजन करना चाहिए ॥१०४-१०५॥

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते ।
तपोजपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् ॥१०६
ग्रहणादिषु कालेषुमहापातकशोधनम् ।
यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः ॥१०७
नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकैः ।
ब्रह्मघ्नंवाकृतघ्नं वा महापातकदूषितम् ॥१०८
भर्त्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टासह पावकम् ।
एतदेव परंस्त्रीणाम्प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥१०९
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणे रता ।
न तस्या विद्यतेपापमिहलोके परत्र च ॥११०
(सर्वपापविनिर्मुक्ता नास्ति कार्या विचारणा ।
पातिव्रत्यसमायुक्ता भर्तृशुश्रूषणोत्सुका ।
न यास्तुपातकंतस्यामिहलोके परत्रच) ॥१११
पतिव्रता धर्मरता भद्राण्येव लभेत्सदा ।
नास्याःपराभवंकर्त्तुं शक्नोतीहजनःक्वचित् ॥११२

भगवान् का मास की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि में अर्चन करने से सभी पापों से छुटकारा हो जाया करता है। तपश्चर्या—मन्त्र जाप–तीर्थ–सेवा—देवों तथा ब्राह्मणों का पूजन ये सभी परम धार्मिक कृत्य ग्रहण आदि कालों में यदि किये जावें तो महान् से भी महान् पातकों के शोधन करने वाले होते हैं ॥१०६॥ जो कोई मनुष्य सभी प्रकार के पापों से युक्त भी हो और पुण्य तीर्थों में जाकर अपने प्राणों का परित्याग करे सभी पातकों से उस तीर्थ के माहात्म्य से छूट जाया करता है। चाहे ब्राह्मण की हत्या करने वाला हो या कृतघ्न हो तथा महान् पातकों से

भी दूषित हो ऐसे भी अपने स्वामी को उसके साथ ही पावक में प्रविष्ट होने वाली पतिव्रता नारी उसका उद्धार कर दिया करती है। बुधगण ने स्त्रियों का यही परमश्रेष्ठ प्रायश्चित्त बतलाया है ॥१०७-१०९॥ जो नारी केवल अपने पति की सेवा—सुख और आनन्द के सम्पादन का व्रत धारण करने वाली पतिव्रता है और सदा सर्वदा पति की शुश्रूषा में ही रत रहा करती है उस स्त्री को इस लोक और परलोक में कोई भी पाप होता ही नहीं है ॥११०॥ ऐसी पतिव्रता नारी तो सभी पापों से सदा ही विमुक्त रहा करती है—इस विषय में कुछ भी विचारणा की आवश्यकता ही नहीं है। पातिव्रत्य व्रत से समन्वित और अपने स्वामी की ही सेवा में उत्सुक रहने वाली नारी का कोई भी पातक इस लोक और परलोक में होता ही नहीं है ॥१११॥ पतिव्रता धर्म में रत रहने वाली नारी सदा भद्र ही फल प्राप्त किया करती है। ऐसी नारी का कहीं पर भी कोई जन पराभव कर ही नहीं सकता है ॥११२॥

यथा रामस्य सुभगासीतात्रैलोक्यविश्रुता ।
पत्नीदाशरथेर्देवीजिग्येराक्षसेश्वरम् ॥११३

रामस्य भार्या सुभगां रावणोराक्षसेश्वरः ।
सीतांविशालनयनांचकमे कालनोदितः ॥११४

गृहीत्वा माययावेषं चरन्तीं विजनेवने ।
समाहर्त्तुं मतिं चक्रे तापसःकिलकामिनीम् ॥११५

विज्ञायसा चतद्भावंस्मृत्वादाशरथिम्पतिम् ।
जगामशरणंवह्निमावसथ्यंशुचिस्मिता ॥११६

उपतस्थेमहायोगंसर्वलोकविदाहकम् ।
कृताञ्जलीरामपत्नीसाक्षात्पतिमिवाच्युतम् ॥११७

नमस्यामि महायोगं कृशानुं गह्वरम्परम् ।
दाहकं सर्वभूतानामीशानां कालरूपिणम् ॥११८

प्रपद्ये पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम् ।
योगिनं कृत्तिवसनं भूतेशं परमम्पदम् ॥११९

जिस प्रकार से दाशरथि भगवान् श्रीराम की पत्नी सुभगा सीता जो त्रैलोक्य में प्रसिद्ध हैं उन देवी ने राक्षसों के महान् बलशाली राजा रावण को भी जीत लिया था—यह उनके पूर्ण पातिव्रत का महान् प्रभाव था ॥११३॥ श्रीराम की परम सुभगा भार्या विशाल नयनों वाली सीता को काल से प्रेरित होकर ही राक्षसों के स्वामी रावण ने हरण किया था ॥११४॥ उस रावण ने माया से एक यति का वेष ग्रहण करके ही उस विजन वन में भरण करने वाली देवी के समाहरण की बुद्धि की थी और एक तापस बनकर उस कामिनी का उसने अपहरण करना चाहा था ॥११५॥ उस महादेवी ने उस दुष्ट राक्षस के दूषित भाव को समझ कर उसी समय में अपने स्वामी श्री राघवेन्द्र प्रभु का स्मरण किया था और फिर वह शुचि स्मित वाली देवी आवसथ्य वह्नि की शरण में प्राप्त होगई थीं ॥११६॥ उस सर्व लोकों के विदाहक महायोग का श्रीराम की पत्नी ने हाथ जोड़कर साक्षात् अपने पति अच्युत की ही भाँति उपस्थान किया था—॥११७॥ वह उपस्थान इस प्रकार से है जिसको जानकी ने किया था—परम गह्वर—दाहक–समस्त भूत तथा ईशों का काल रूपी महायोग कृशानु देव को मैं नमस्कार करती हूँ ॥११८॥ शाश्वत—विश्व के रूप वाले—योगी—कृत्ति के वसन को धारण करने वाले—परमपद भूतेश पावक देव की शरण में मैं प्रपन्न हूँ ॥११९॥

आत्मानं दीप्तवपुषंसर्वभूतहृदि स्थितम् ।
तम्प्रपद्ये जगन्मूर्त्ति प्रथमं सर्वतेजसाम् ।
महायोगीश्वरं वह्निमादित्यम्परमेष्ठिनम् ॥१२०

प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम् ।
कालाग्निं योगिनामीशंभोगमोक्षफलप्रदम् ॥

प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भूर्भुवःस्वः स्वरूपिणम् ।
हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम् ॥१२१

वैश्वानरम्प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ।
हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम् ॥१२२

प्रपद्ये तत्परंतत्वंवरेण्यंसवितुः शिवम् ।
स्वर्गमग्निपरं ज्योतिःस्वाक्षयंहव्यवाहनम् ॥१२३
इति वह्निचष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी ।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा ॥१२४
अथावसथ्याद्भगवान्हव्यवाहो महेश्वरः ।
आविरासीत्सुदीप्तात्मा तेजसा निर्दहन्निव ॥१२५
सृष्ट्वा मायामयींसीतां स रावणवधेच्छया ।
सीतामादायरामेष्टां पावकोऽन्तरधीयत ॥१२६

समस्त भूतों के हृदय में समवस्थित—दीर्घ वपुधारी आत्मा—जगत् की मूर्त्ति और सभी तेजस्वियों में प्रमुख उन देव की शरण में मैं प्रपन्न हूँ, कि परमेष्ठी—महायोगीश्वर—आदित्य वह्नि देव है ॥१२०॥ मैं महाग्रास—कालाग्नि—योगियों के ईश—त्रिशूली—भोग और मोक्ष दोनों ही प्रकार के फलों को प्रदान करने वाले भगवान् रुद्रदेव की शरणागति में प्रपन्न हूँ । आप विरूपाक्ष—भूर्भुवः स्वः के रूप वाले—हिरण्मय गृह में गुप्त—महान् और अमित ओज से सम्पन्न की शरणागति में मैं प्रपन्न हूँ ॥१२१॥ जानकी देवी ने प्रार्थना की थी कि मैं भगवान् वैश्वानर देव की शरण में प्रपन्न हूँ जो सभी भूतों में समवस्थित रहा करते हैं । हव्य और कव्य दोनों के वहन करने वाले ईश्वर वह्नि देव की शरण में मैं प्रपन्न हूँ ॥१२२॥ मैं उस परम तत्त्व—सविता वरेण्य शिव—स्वर्ग—पर—अग्नि—ज्योति—स्वाक्षय और हव्य वाहन की शरणागति में समुपस्थित हूँ ॥१२३॥ इस प्रकार से इस वह्निदेव के अष्टक का जाप परम यशस्विनी श्रीराम की पत्नी जानकी ने किया था और उन्मीलित नेत्रों वाली वह देवी मन में श्रीराम का ध्यान करती हुई स्थित हो गई थीं ।१२४। इसके अनन्तर उस आवसथ्य से भगवान् महेश्वर हव्य वाहन देव साक्षात् उसी समय में प्रकट हो गये थे जो परम दीप्त स्वरूप वाले थे और अपने तेज से सबको दग्ध ही कर रहे थे ॥१२५.। उस अग्नि देव ने एक माया से परिपूर्ण बिल्कुल वैसी ही छवि वाली सीता की रचना करके जो कि उस राक्षस राजा रावण के वध की इच्छा से ही रची गयी थी जहाँ पर स्थित करदी थी

और श्रीराम की परमाभीष्ट सीता को ग्रहण करके वह अग्निदेव उसी क्षण में वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे ।।१२६।।

तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः ।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम् ।।१२७
कृत्वातु रावणवध रामोलक्ष्मणसंयुतः ।
समादायाभवत्सीतां शंकाकुलितमानसः ।।१२८
सा प्रत्ययाभूतानां सीतामायामयीपुनः ।
विवेशपावकंक्षिप्रंददाहज्वलनोऽपिताम् ।।१२९
दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुष्णदीधितिः ।
रामायादर्शयत्सीतां पावकोऽभूत्सुरप्रियः ।।१३०
प्रगृह्यभर्त्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा ।
चकारप्रणतिम्भूमौरामायजनकात्मजा ।।१३१
दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः ।
प्रणम्य वह्नि शिरसा तोषयामास राघवः ।।१३२
उवाच वह्नि भगवान् किमेषा वरवर्णिनी ।
दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता ।।१३३

उस प्रकार की विरचित जानकी का ही रावण ने जो राक्षसों का राजा था अपहरण किया था और वह उसको लेकर सागर के मध्य में स्थित अपनी पुरी लङ्का में ले गया था ।।१२७।। इस सीता के अपहरण करने का फल यही हुआ कि लक्ष्मण के सहित वानरी सेना लेकर श्रीराम ने युद्ध में उस दुष्ट रावण का वध कर दिया था और जब जगज्जननी जानकी को लङ्का से वापिस लाया गया था तो श्रीराम शङ्का से समाकुलित मन वाले हो गये थे किन्तु उस देवी ने समस्त समुपस्थित जीवों के प्रत्यय कराने के लिये अग्नि परीक्षा दी थी और उस माया मयी सीता ने बिना किसी सङ्कोच के अग्नि में प्रवेश कर दिया था तथा अग्निदेव ने भी उसको तुरन्त ही जला दिया था ।।१२८-१२९।। फिर भगवान् उष्ण दीधिति अग्निदेव ने उस माया से पूर्ण सीता को दग्ध करके श्री राघवेन्द्र प्रभु की वह असली सीता को लेकर समर्पित किया था और पावक तभी

से समस्त सुरों में परम प्रिय हो गये थे ॥१३०॥ अग्निदेव के द्वारा समर्पित वास्तविक सीता ने जिसका मध्यम भाग बहुत ही सुन्दर था अपने दोनों कर कमलों से स्वामी श्रीराम के चरणों को पकड़ कर स्पर्श किया था। जनक की आत्मजा ने श्रीराम को भूमि पर मस्तक रखकर प्रणाम किया था ॥१३१॥ अपनी प्रिया जानकी को देखकर श्रीराम परम प्रसन्न मन वाले हो गये थे और विस्मय से उनके लोचन समाकुल होगये। श्री राघवेन्द्र ने शिर से अग्निदेव को प्रणाम करके सन्तुष्ट किया था ॥१३२॥ भगवान् श्रीराम ने अग्निदेव से कहा—आपने पहिले तो इस वर वर्णिनी का दाह कर दिया और अब फिर इसको मैंने अपने ही अपने ही समीप में समुपस्थित हुई देखा है यह क्या कारण है जिससे ऐसा हुआ है ॥१३३॥

तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः।
यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव सन्निधौ ॥१३४
इयं सा परमा साध्वी पार्वतीव प्रिया तव।
आराध्य लब्ध्वा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा ॥१३५
भर्त्तुः शुश्रूषणोपेतासुशीलेयं पतिव्रता।
भवानीवेश्वरे गुप्ता माया रावणकामिता ॥१३६
या नीता राक्षसेशेन सीता भगवती हृता।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधेच्छया ॥१३७
तदर्थम्भवता दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः।
मायोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशनः ॥१३८
गृहाण चैतां विमलांजानकींवचनान्मम।
पश्यनारायणंदेवं स्वात्मानम्प्रभवाव्ययम् ॥१३९
इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः।
मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत ॥१४०

उस समय में लोकों के दाहक प्रभु हव्य वाहन अग्निदेव ने श्रीराम से कहा था जबकि भगवान् दाशरथि यथावृत्त समस्त भूतों की सन्निधि में ही समुपस्थित थे ॥१३४॥ अग्नि ने कहा—यही परम साध्वी आपकी

प्रिया जानकी शिव की प्रिया पार्वती की भाँति हैं। जिस प्रकार से आपकी अत्यन्त बल्लभा इसने देवी की तपश्चर्या करके आपको पार्वती की भाँति ही प्राप्त किया है ॥१३५॥ यह भर्त्ता की शुश्रूषा से समुपेत परम सुशीला और पूर्ण पतिव्रता देवी हैं जिस तरह भवानी ईश्वर में गुप्त हैं वैसे ही यह भी हैं। रावण ने जिसकी कामना करके हरण किया था वह तो मायामयी जानकी थी ॥१३६॥ राक्षसेश्वर ने जिस जानकी का हरण करके प्राप्त किया था वह तो भगवती सीता मैंने ही माया से पूर्ण निर्मित कर दी थी क्योंकि रावण की इच्छा उसे हरण कर लेजाने की थी।१३७। यही कारण तो ऐसा बन गया था कि उस जानकी को प्राप्त करने के लिये ही आपने राक्षसेश्वर रावण से युद्ध किया था और वह लोकों के विनाश करने वाला मारा भी गया था। मैंने उस माया को उपसंहृत कर लिया है ॥१३८॥ यह इस समय में परम विमल देवी जानकी है। मेरे वचन से इसको आप ग्रहण कीजिए। यह परम विमल है। अपनी आत्मा प्रभवामय देव नारायण का दर्शन करो। इतना कहकर विश्वार्चिविश्व तोमुख भगवान् चण्ड अग्निदेव राघवेनु के द्वारा सम्मानित हुए तथा समस्त भूतों के साथ वहीं पर अन्तर्हित होगये थे ॥१३९-१४०॥

एतत्पतिव्रतानांवैमाहात्म्यंकथितंमया ।
स्त्रीणांसर्वाघशमनम्प्रायश्चित्तमिदंस्मृतम् ॥१४१
अशेषपापसंयुक्तः पुरुषोऽपि सुसंयुतः ।
स्वदेहंपुण्यतीर्थेषुत्यक्त्वामुच्यतेतकिल्विषात् ॥१४२
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषुस्नात्वापुण्येषु धा द्विजः ।
मुच्यतेपातकैःसर्वैःसञ्चितैरपिपूरुषः ॥१४३
इत्येषमानवो धर्मो युष्माकंकथितोमयाः ।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगश्च शाश्वतः ॥१४४
योगेन विधिनायुक्तो ज्ञानयोगं समाचरेत् ।
स पश्यति महादेवं नान्यःकल्पशतैरपि ॥१४५
स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानंतत्पारमेश्वरम् ।
न तस्मादधिकोलोके स योगीपरमोमतः ॥१४६

य:संस्थापयितु शक्तोनकुर्यान्मोहितोजनः ।
सयोगयुक्तोऽपिमुनिनर्त्यिथ भगवत्प्रियः ।।१४७

मैंने पतिव्रता नारियों का यह माहात्म्य कह दिया है । यह ही स्त्रियों के समस्त अघों का शमन करने वाला प्रायश्चित्त कहा गया है ।।१४१।। अशेष पापों से संयुक्त पुरुष भी सुसंयत होकर अपने देह का त्याग पुण्य तीर्थों में करके किल्विष से मुक्त होजाया करता है ।।१४२।। पृथ्वी मंडल में समस्त पुन्य तीर्थों में द्विज स्नान करके पुरुष सञ्जित हुए भी सब पातकों से छुटकारा पाजाया करता है ।।१४३।। महर्षि व्यासजी ने कहा—यही मानव धर्म है जो मैंने वर्णन करके आपको सुना दिया है । महेश के समाराधन के लिये ज्ञान योग शाश्वत होता है ।।१४४।। विधिपूर्वक योग के द्वारा युक्त होकर ज्ञान योग का समाचरण करना चाहिए । ऐसा ही साधक महादेव के दर्शन प्राप्त किया करता है इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी सौ कल्पों में भी दर्शन नहीं किया करता है ।।१४५।। जो कोई भी पुरुष पारमेश्वर परधर्म तथा ज्ञान की स्थापना करता है । उससे अधिक इस लोक में अन्य कोई भी योगी तथा परम नहीं है ।।१४६।। जो संस्थापना करने की योग्यता तो रखता है मगर मोहित होकर संस्थापना किया नहीं करता है वह चाहे पुरुष योग से मुक्त भी हो तो भी अत्यन्त भगवान् का प्रिय नहीं होता है ।।१४७।।

तस्मात्सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः ।
धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै ।।१४८
यः पठेद्भवतांतित्यं सम्वादं मम चैव हि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमांगतिम् ।।१४९
श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ ।
पठेत नित्यं सुमनाः श्रोतव्यञ्च द्विजातिभिः ।।१५०
योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद्वा द्विजान् शुचीन् ।
स दोषकञ्चुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम् ।।१५१
एतावदुक्त्वाभगवान्व्यासस्सत्यवतीसुतः ।
समाश्वास्यमुनीन्सूतं जगामचयथागतम् ।।१५२

इसलिये सर्वदा ही ब्राह्मणों का दान देना चाहिए। और विशेष करके जो धर्म से युक्त—शान्त स्वभाव वाले और श्रद्धा से संयुत हों उन्हीं विप्रों को देना चाहिए ॥१४८॥ जो कोई पुरुष आपका और मेरा यह सम्वाद नित्य ही पढ़ा करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त किया करता है ॥१४९॥ श्राद्ध में—दैविक कार्य में और ब्राह्मणों की सन्निधि में सुन्दर मन वाला इस सम्वाद को नित्य ही पढ़ता है तथा द्विजातियों के द्वारा सुनना भी चाहिए ॥१५०॥ जो इस के अर्थ का विचार करके युक्त आत्मा वाला परम शुचि द्विजों को इसका श्रवण कराया करता है वह इस दोष के कञ्चुक का त्याग करके महेश्वर देव को प्राप्त किया करता है ॥१५१॥ सत्यवती देवी के सुत भगवान् वेदव्यासजी ने ऋषियों से कहकर उनका समाश्वास न किया था था और सूतजी को आश्वासन प्रदान करके वे जैसे ही आये थे वापिस चले गये थे ॥१५२॥

३५—गयाआदिनानाविधतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन्विश्रुतानि महान्त्यपि ।
तानि त्वं कथयाऽस्माकं रोमहर्षण! साम्प्रतम् ॥१
शृणुध्वंकथयिष्येऽहंतीर्थानिविविधानिच ।
कथितानिपुराणेषुमुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥२
यत्रस्नानञ्जपोहोमः श्राद्धदानादिकंकृतम् ।
एकंकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्नमंकुलम् ॥३
पञ्चयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
प्रयागम्प्रथितं तीर्थं यस्यमाहात्म्यमीरितम् ॥४
अन्यच्च तीर्थं प्रवरं कुरूणां देववन्दितम् ॥
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम् ॥५
तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः ।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम् ॥६

परं गुह्यंगयातीर्थं पितृणाञ्चातिदुर्ल्लभम् ।
कृत्वापिण्डप्रदानन्तु न भूयोजायतेनरः ॥७

ऋषियों ने कहा—हे रोमहर्षणजी ! इस लोक में जो तीर्थ महान और परम प्रसिद्ध हैं उन सबका वर्णन आप हमारे सामने कीजिए। हमारी अब उनके श्रवण करने की इच्छा है ॥११॥ श्री रोमहर्षणजी ने कहा—हे ऋषिवृन्द ! आप श्रवण कीजिए। मैं आपके समक्ष में अब अनेक तीर्थों के विषय में वर्णन करूंगा जिनको ब्रह्मवादी मुनियों ने पुराणों में बताया है ॥२॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! वे ऐसे महा महिमामय तीर्थ हैं जहाँ पर स्नान—जप—होम—श्राद्ध और दानादिक शास्त्रोक्त सत्कर्म किये हुए एक-एक भी सात कुल तक को पावन कर दिया करता है ॥३॥ परमेष्ठी श्री ब्रह्माजी का प्रथित प्रयाग तीर्थ पाँच योजन के विस्तार वाला है जिसका कि माहात्म्य कहा गया है ॥४॥ और तीर्थ प्रवह है जो कुरुओं का है और देवों के द्वारा वन्द्यमान है यह ऋषियों के आश्रम से सेवित है तथा सभी प्रकार के पापों का विशोधन करने वाला है ॥५॥ उस तीर्थ में स्नान करके विशुद्ध आत्मा वाला तथा दम्भ और मत्सरता जैसे दुर्गुणों से वर्जित पुरुष वहाँ पर जो कुछ भी यथा शक्ति दान किया करता है वह अपने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया करता है ॥६॥ गया तीर्थ तो परम गोपनीय तीर्थ है जो पितृगणों को अत्यन्त ही दुर्लभ होता है। वहाँ पर पितृगण के लिये पिण्डों को प्रदान करने वाला पुरुष फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है ॥७॥

सकृद्गयाभिगमनंकृत्वापिण्डंददातियः ।
तारिताःपितरस्तेन यास्यन्तिपरमांगतिम् ॥८
तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना ।
शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितृन्प्रसादयेत् ॥९
गयाभिगमनंकर्तुं यः शक्तोनाधिगच्छति ।
शोचन्तिपितरस्तं वैवृथा तस्यपरिश्रमः ॥१०
गायन्ति पितरो गाथाः कीर्त्तयन्ति महर्षयः ।
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥११

यदि स्यात्पाकोपेतः स्वधर्मपरिवर्जितः ।
गयां यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥१२

एष्टव्याबहवःपुत्राःशीलवन्तोगुणान्विताः ।
तेषान्तुसमवेतानांयद्येकोऽपिगयांव्रजेत् ॥१३

तस्मात्सर्वप्रयत्नेनब्रह्मणस्तुविशेषतः ।
प्रदद्याद्विधिवत्पिण्डान्गत्वासमाहितः ॥१४

एक बार गया में गमन करके जो पिण्डों का निर्वपन किया करता है समझ लेना चाहिए कि उसने अपने समस्त पितरों का तार दिया है जो सब परमगति को प्राप्त हो जाँयगे ॥८॥ वहाँ पर लोकों के हित को सम्पादन करने के लिये परमात्मा रुद्र देव ने शिला के तल पर पद न्यस्त किया है। वहाँ पर ही पितृगण को प्रसन्न करना चाहिए ॥६॥ जो कोई शक्तिशाली होते हुए भी गया का अभिगमन नहीं किया करता है उसके पितृगण उसके विषय में चिन्ता किया करते हैं कि उसकी परिश्रम वृथा है ॥१०॥ पितृगण गाथा का गायन किया करते हैं और महर्षिगण कीर्त्तन किया करते हैं कि जो कोई भी हमारे वंश में ऐसा होगा कि गया तीर्थ में जायगा वही हमको तार देगा ॥११॥ यदि कोई पातक से उपेत हुआ और जपने धर्म से परिवर्जित हुआ तो गया जायगा और हम सबका उद्धार कर देगा ॥१२॥ अतएव बहुत से पुत्रों के समुत्पन्न होने की ही इच्छा करनी चाहिए जो पुत्र गुण गणों से समन्वित और शील वाले होवें। उन समस्त समवेत हुओं में यदि कोई भी एक किसी समय में गया तीर्थ में गमन करे लेवे ॥१३॥ इसीलिये सभी प्रकार के प्रयत्न से विशेष रूप से ब्राह्मण को तो गया तीर्थ में जाकर विधि-विधान के साथ पिण्डों का निर्वपन समाहित होकर अवश्य ही करना चाहिए ॥१४॥

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गयायां पिण्डदायिनः ।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याऽऽप्नुयुः परम् ॥१५

अन्यच्चतीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम् ।
प्रभासमिति विख्यातंयत्रास्तेभगवान्भवः ॥१६

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं ब्राह्मणानाञ्च पूजनम् ।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्राह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम् ॥१७
तीर्थन्त्र्यम्बकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम् ।
पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलंलभेत् ॥१८
सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्द्दिनम् ।
ब्राह्मणान्पूजयित्वाच गांणपत्यंलभेततः ॥१९
सोमेश्वरं तीर्थं वरं रुद्रस्य परमेष्ठिनः ।
सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रमालोक्यकारणम् ॥२०
तीर्थानांपरमं तीर्थं विजयंनामशोभनम् ।
तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयंनामविश्रुतम् ॥२१

वे पुरुष परम धन्य अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं जो गया तीर्थ में जाकर पिण्डों को देने वाले होते हैं वे ऊपर और आगे होने वाले ७-७ कुलों को दोनों ही ओर में तार कर स्वयं भी परम पद की प्राप्ति किया करते हैं ॥१५॥ और अन्य भी तीर्थ प्रवर हैं वह तो सिद्ध पुरुषों का ही आवास बताया गया है। वह प्रभास—इस शुभ नाम से संसार में विख्यात है जहाँ पर भगवान् भव विराजमान रहा करते हैं ॥१६॥ वहाँ पर स्नान और इसके अनन्तर श्राद्ध तथा ब्राह्मणों का अभ्यर्चन करके मनुष्य ब्रह्मा के अक्षय तथा उत्तम लोक की प्राप्ति निश्चित रूप से किया करता है ॥१७॥ एक परम श्रेष्ठ त्र्यम्वक नाम वाला तीर्थ है जिस तीर्थ को सभी देव गण नमस्कार किया करते हैं। उस तीर्थ में विराजमान श्री रुद्र देव का पूजन करके ज्योतिष्टोम नाम वाले यज्ञ करने का फल मनुष्य को मिला करता है ॥१८॥ वहाँ पर सुवर्णाक्ष कपर्द्दी महादेव का समर्चन करके और वहाँ पर स्थित ब्राह्मणों का अभ्यर्चन करके वह मनुष्य गाणपत्य लोक को प्राप्त किया करता है ॥१९॥ एक परमेष्ठी रुद्रदेव का सोमेश्वर नाम वाला तीर्थ प्रवर है। यह तीर्थ समस्त व्याधियों के हरण करने वाला—परम पुण्य मय और रुद्रदेव के साक्षात् दर्शन प्रदान कराने का कारण होता है ॥२०॥ समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठतम तीर्थ विजय नाम

वाला अतीव शोभन तीर्थ है वहाँ पर भगवान् महेश्वर का विजय-नाम वाला ही परम विख्यात लिङ्ग संस्थापित है ॥२१॥

षण्मासनियताहारो ब्रह्मचारी समाहितः ।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमम्पदम् ॥२२
अन्यच्च तीर्थं प्रवरं पूर्वदेशेषु शोभनम् ।
एकान्तं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम् ॥२३
दत्त्वाऽत्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम् ।
सार्वभौमो भवेद्राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात् ॥२४
महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम् ।
ग्रहणेतदुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥२५
अन्याचविरजानामनदीत्रैलोक्यविश्रुता ।
तस्यां स्नात्वा नरोविप्रोब्रह्मलोकेमहीयते ॥२६
तीर्थं नारायणस्यात्यंनान्मा तु पुरुषोत्तमम् ।
तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपुरुषः ॥२७
पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः ।
ब्राह्मणान्पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥२८

छै मास पर्यन्त नियत आहार कहने वाला ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण परिपालन करने वाला ब्रह्मचारी अत्यन्त समाहित होकर निवास करे तो हे विप्रेन्द्र गण ! वह निश्चित रूप से परम पद के पाने का लाभ किया करता है ॥२२॥ और दूसरा परम श्रेष्ठ तीर्थ पूर्व देशों में अतीव शोभन है जो देवों के भी देव के गाणपत्य लोक का एकान्त पद प्रदान कराने वाला होता है ॥२३॥ यहाँ पर शिव के परम भक्त ब्राह्मणों को कुछ थोड़ी-सी भूमि का दान जो दिया करता है वह निश्चित रूप से होने वाले जन्म से एक सार्वभौम चक्रवर्त्ती राजा हुआ करता है यह भोग प्राप्ति का परम श्रेष्ठ लाभ होता है और यदि कोई मुक्ति का इच्छुक मुमुक्षु हो तो वह मोक्ष का लाभ लिया करता है। तात्पर्य यही है कि यह तीर्थ भोगोपभोग और मोक्ष दोनों के प्रदान कराने वाला है ॥२४॥ महानदी का जल परम पुण्यमय एवं सभी तरह के पापों का विनाश कर देने वाला है।

ग्रहण की पवित्र वेला में उस जल में उपस्पर्शन करके सभी पातकों से मनुष्य सदा के लिये छुटकारा पा जाया करता है ।।२५।। इसके अतिरिक्त एक अन्य विरजा नाम धारिणी नदी है जो त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध है। उसमें मनुष्य स्नान करके वह विप्र ब्रह्मलोक प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।।२६।। एक भगवान् नारायण का अन्य तीर्थ है जिसका नाम पुरुषोत्तम तीर्थ कहा जाता है। वहाँ पर साक्षात् प्रभु श्रीमान् परम पुरुष नारायण विराजमान रहा करते हैं ।।२७।। वहाँ पर परम विष्णु का पूजन करके द्विजोत्तम को स्नान भी पहिले ही करना चाहिए तथा वहाँ पर स्थिति करने ब्राह्मणों का पूजन करे तो वह व्यक्ति सीधा ही विष्णु लोक की प्राप्ति किया करता है ।।२८।।

तीर्थानाम्परमं तीर्थं गोकर्णंनाम विश्रुतम् ।
सर्वपापहरं शम्भोर्निवासः परमेष्ठिनः ।।२९
दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णम्परमुत्तमम् ।
ईप्सितांल्लभते कामान्रुद्रस्यदयितोभवेत् ।।३०
उत्तरञ्चापिगोकर्णं लिङ्गंदेवस्य शूलिनः ।
महादेवञ्चार्चयित्वाशिवसायुज्यमाप्नुयात् ।। ३१
तत्र देवो महादेवःस्थाणुरित्यभिविश्रुतः ।
तंदृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणान्मुच्यतेनरः ।।३२
अन्यत्कुब्जाश्रमम्पुण्यं स्थानं विष्णोर्महात्मनः ।
सम्पूज्य पुरुषं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयते ।।३३
यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा ।
कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्यतु विसर्जितः ।।३४
समन्ताद्योजनंक्षेत्रं सिद्धर्षिगणसेवितम् ।
पुण्यमायतनंविष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः ।।३५

अन्य सभी तीर्थों में एक परम श्रेष्ठ गोकर्ण तीर्थ है जो संसार में अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। वह परमेष्ठी भगवान् शम्भु का निवास स्थल है और उसका बड़ा ही प्रभाव यह है कि यह सभी पापों का हरण करने वाला है ।।२९।। वहाँ पर देव के परमोत्तम गोकर्ण लिङ्ग का दर्शन करके

मनुष्य अपने सभी अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति कर लेता है तथा वह रुद्र देव का अतीव प्रिय भक्त भी हो जाया करता है ॥३०॥ लिङ्ग देव भगवान् शूली के उत्तर गोकर्ण के महादेव का अभ्यर्चन करके मनुष्य शिव के सायुज्य को प्राप्त किया करता है ॥३१॥ वहाँ पर देव महादेव ही हैं जो स्थाणु इस नाम से अभिविश्रुत हैं। उन प्रभु का दर्शन करके मनुष्य उसी क्षण में सभी पापों से युक्त हो जाया करता है ॥३२॥ इसके अतिरिक्त एक अन्य परम पुण्यमय कुब्जाश्रम है जो महान् आत्मा वाले भगवान् विष्णु का स्थान है। वहाँ पर महापुरुष भगवान् श्रीविष्णु का पूजन करके मनुष्य श्वेत द्वीप में महिमान्वित होकर समवस्थित हुआ करता है—ऐसा इस तीर्थ का महान् प्रभाव है ॥३३॥ जहाँ पर देव श्रीनारायण ने त्रिपुरारि रुद्र के साथ प्रजापति दक्ष के यज्ञ का मथन करके उसे विसर्जित किया था ॥३४॥ उसके चारों ओर एक योजन का क्षेत्र ऐसा है जो बड़े-बड़े सिद्ध और ऋषिगणों के द्वारा सेवित है। यह भगवान् विष्णु का परम पुण्यमय आयतन है और वहाँ पर साक्षात् पुरुषोत्तम प्रभु विराजमान रहते हैं ॥३५॥

अन्यत्कोकामुखे विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः।
मुक्तोऽत्रपातकैर्मर्त्यो विष्णुसारूप्यताप्नुयात् ॥३६

शालिग्रामं महातीर्थं विष्णोःप्रीतिविवर्द्धनम्।
प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशम्प्रपश्यति ॥३७

अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्।
आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणःस्वयम् ।३८

तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्।
तत्राऽस्ति पुण्यदं तीर्थं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥३९

पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम्।
मनसासंस्मरेद्यस्तु पुष्करम्वैद्विजोत्तमः ४०
पूयते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः ॥४१

उपासतेसिद्धसङ्घा ब्रह्माणंपद्मसम्भवम् ।
तत्र स्नात्वा व्रजेच्छुद्धो ब्रह्माणंपरमोष्ठनम् ॥४२

एक अन्य कोका मुख में अद्भुत कर्मों वाले भगवान् विष्णु का तीर्थ-स्थल है। इस तीथ पर जो भी मानव प्राप्त हो जाता है वह पातकों से मुक्त होकर विष्णु की ही स्वरूपता को प्राप्त कर लिया करता है ॥३६॥ एक शालिग्राम—इस परम शुभ नाम वाला महान् तीर्थ है जो भगवान् विष्णु की प्रीति का वर्धन करने वाला तीर्थ है। यदि इस परम पवित्र स्थल पर मनुष्य अपने प्राणों का परित्याग करता है तो वह साक्षात् भगवान् हृषीकेश के दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य—लाभ किया करता है ॥३७॥ एक अश्वतीर्थ—इस नाम से प्रसिद्ध होने वाला महान् तीर्थ है। यह सिद्ध गणों का आवास स्थल है और अतीव शोभा से सुसम्पन्न हैं। वहाँ पर हम के समान शिर बाले भगवान् नारायण स्वयं नित्य ही विराजमान रहा करते है ॥३८॥ एक तीर्थ त्रैलोक्य नाम से विख्यात है। यह भी परम शोभन सिद्ध पुरुषों के निवास करके स्थित रहने का स्थल है। वहाँ पर एक पुण्य प्रदान करने वाला परमेष्ठी ब्रह्माजी का का तीर्थ है ॥३९॥ पुष्कर तीर्थ समस्त पापों के हनन करने वाला तथा मृत होने वालों को ब्रह्मलोक का प्रदान कराने वाला तीर्थ है। जो कोई भी द्विजों में श्रेष्ठ मन से भी पुष्कर तीर्थ का संस्मरण कर लेता है वह सभी प्रकार के पातकों से छुटकारा पाकर पवित्र हो जाया करता है और फिर इन्द्र देव के साथ में निवास प्राप्त कर आनन्दानन्द का अनुभव प्राप्त किया करता है। वहाँ पर गन्धर्वों के साथ सभी देवगण तथा यक्ष—उरग और राक्षस सभी सिद्धों के संघ पद्म से समुत्पन्न पितामह ब्रह्माजी की उपासना किया करते हैं। वहाँ पर सविधि स्नान करके मनुष्य एक दम विशुद्ध हो जाता है और अन्त में परमेष्ठी ब्रह्माजी का सन्निधान प्राप्त किया करता है ॥४०-४२॥

पूजयित्वा द्विजवरं ब्रह्माणं सम्प्रपश्यति ।
तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहुतमनिन्दितम् ॥४३

तद्रूपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम् ॥४४
पूजयित्वा यत्र रुद्रमश्वमेधफलं भवेत् ।
यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नं परमेश्वरम् ॥४५
आराधयामास शिवं तपसा गोवृषध्वजम् ।
प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा ॥४६
ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समागतम् ।
तं प्राह भगवान्रुद्रः किमर्थं नर्त्तितन्त्वया ॥४७
दृष्ट्वापिदेवमिशानं नृत्यतिस्म पुनः पुनः ।
सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगर्वंगर्वशान्तये ॥४८
स्वकंदेहंविदार्यास्मि भस्मराशिमदर्शयत् ।
पश्येमं मच्छरीरोत्थं भस्मराशिंद्विजोत्तम ॥४९
माहात्म्यमेतत्तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते ।
यत्सगर्वं हि भवता नर्त्तितं मुनिपुंगव ! ॥५०

वहाँ पर द्विजों में परम श्रेष्ठ ब्रह्माजी का पूजन करके उनका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया करता है वहाँ पर परम अनिन्दित देवेश पुरुहूत (इन्द्र) को प्राप्त कर मनुष्य उसी के समान रूप वाला हो जाया करता है और वह फिर अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है। वहाँ सप्त सारस्वत भी एक तीर्थ है जो ब्रह्मा आदि देवगणों के द्वारा परम सेवित है ॥ ४३-४४ ॥ जहाँ पर रुद्र देव का पूजन करके अश्वमेध यज्ञ के करने से प्राप्त होने वाले फल का लाभ अनायास ही हो जाया करता है। जहाँ पर मङ्कणक ने परमेश्वर भगवान् रुद्र की शरणागति में प्रपन्नता प्राप्त की थी ॥४५॥ उस मङ्कणक ने अपनी उग्र तपश्चर्या से गो वृषध्वज प्रभु शिव की समाराधना की थी। उस बेला में मङ्कणक मुनि तप से प्रज्वलित हो गये थे ॥४६॥ भगवान् रुद्र को साक्षात् समागत हुए देख कर वह मुनि हर्षातिरेक के महान् वेग से नृत्य करने लग गये थे। भगवान् रुद्र देव ने उसके समीप में समायात होकर उस मङ्कणक से कहा था—आपने यह नृत्य इस समय में किस प्रयोजन से किया

था ? ।।४७।। उस मुनि ने ईशान देव का अपने ही समक्ष में समुपस्थित साक्षात् दर्शन करके भी वारम्बार नृत्य ही करने वाले वह बने रहे थे। फिर भगवान् ईश गर्व के सहित गर्व की शान्ति के लिये ही अपने देह को विदीर्ण करके उन्होंने इस मङ्कण मुनि को एक भस्म की राशि का दर्शन कराया था और कहा था—हे द्विजोत्तम ! मेरे शरीर में उठी हुई इस भस्म की राशि को तुम देखो ।।४८-४९।। यह इस तपश्चर्या का माहात्म्य हो है और तुम्हारे समान ही अन्य भी विद्यमान हैं। हे मुनिपुङ्गव ! आपको अपनी की हुई इस तपस्या का गर्व हो रहा है कि आप बारम्बार इस तरह से निरन्तर नृत्य ही करते चले जा रहे हैं ।।५०।।

न युक्तं तापसस्यैतत्त्वत्तोऽप्यभ्यधिको ह्यहम् ।
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रोऽखिलविश्वदृक् ।।५१
आख्याय परमं भावं ननर्त्त जगतो हरः ।
सहस्रशीर्षाभूत्वा स सहस्राक्षःसहस्रपात् ।।५२
दन्ष्ट्राकरालवदनो ज्वालामालीभयङ्करः ।
सोऽन्वपश्यदथेशस्यपार्श्वेतस्य त्रिशूलिनः ।।५३
विशाललोचनामेकांदेवीञ्चारुविलासिनीम् ।
सूर्यायुतसमाकारांप्रसन्नवदनांशिवाम् ।।५४
सस्मितंप्रेक्ष्यविश्वेशं तिष्ठन्तममितद्युतिम् ।
दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयो वेपमानोमुनीश्वरः ।।५५
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायञ्जपन्वशी ।
प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बकोभक्तवत्सलः ।।५६

भगवान् रुद्रदेव ने मङ्कण मुनि से कहा था कि एक तापस को ऐसा नृत्य में ही विह्वल हो जाना उचित नहीं जान पड़ता है। तुम से भी अत्यधिक तो मैं ही नृत्य करने वाला हूँ। अखिल विश्व के द्रष्टा उन रुद्रदेव ने उस मुनिश्रेष्ठ से उसी समय में कहा था ।।५१।। भगवान् हर ने अपने परम भाव को जगत् को कहकर उनने भी ताण्डव नृत्य करना आरम्भ कर दिया था। उस समय में भगवान् शिव का स्वरूप सहस्र शिरों वाला

सहस्र ही नेत्र और सहस्र चरणों वाले हो गया था ॥५२॥ दंष्ट्राग्रों से उनका मुख बहुत ही कराल था तथा ज्वालाओं की माला वाला और महान् भयङ्कर स्वरूप था। ऐसा त्रिशूली ईश के समीप में स्थित होकर उस मुनि ने स्वरूप देखा था ॥५३॥ वहीं पर उन्हीं के समीप में परम विशाल लोचनों वाली—चारुविलासिनी देवी का भी दर्शन किया था जो दश सहस्र सूर्यों के समान तेजाकार वाली थी तथा प्रसन्न मुख से युक्ता जगदम्वा साक्षात् शिवा थीं ॥५४॥ विश्वेश प्रभु को स्मित के साथ अमित द्युति वाले और सामने स्थित देखकर वह मुनीश्वर संत्रस्त हृदय वाले होकर कम्पायमान हो रहे थे ॥५५॥ वशी मुनीश्वर ने रुद्राध्याय का जाप करते हुए शिर से भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था। उस समय में भगवान् ईश त्र्यम्बक परम प्रसन्न हो गये थे क्योंकि प्रभु रुद्रदेव तो सदा अपने भक्तों के परम वत्सल हैं ॥५६॥

पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत्।
आलिङ्ग्य भक्तम्प्रणतं देवदेवःस्वयंशिवः ॥५७
न भेतव्यं त्वया वत्स ! प्राहकिन्तेददाम्यहम्।
प्रणम्यमूर्ध्नागिरिशंहरं त्रिपुरसूदनम् ॥५८
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः।
नमोऽस्तुतेमहादेवमहेश्वरनमोऽस्तु ते ॥५९
किमेतद्भगवद्रूपंसुघोरंविश्वतोमुखम्।
का च सा भगवत्पार्श्वेराजमानाव्यवस्थिता ॥६०
अन्तर्हिते च सहसा सर्वमिच्छामिवेदितुम्।
इत्युक्ते व्याजहारेशस्तदामङ्कणकंहरः ॥६१
महेशः स्वात्मनो योगं देवीञ्च त्रिपुरानलः।
अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः ॥६२
दाहकः सर्वपाशानां कालः कालकरोहरः।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम् ॥६३

भगवान् शिव ने पुनः अपना वही पूर्व वाला वेष ग्रहण कर लिया था और वह देवी जो उनके ही समीप में संस्थित थी अन्तर्हित हो गयी

थीं । फिर तो देवों के देव भगवान् शिव ने स्वयं ही अपने चरणों में प्रणत होने वाले भक्त का समालिङ्गन किया था ॥५७॥ भगवान् शिव ने उस मङ्कण मुनि से कहा—हे वत्स ! अब तुमको किसी भी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए । अब तुम मुझसे कहो—मैं तुमको क्या प्रदान करूँ । ऐसा शिव प्रभु के द्वारा कहे जाने पर मुनि ने मूर्द्धा से गिरिश हर को जो कि त्रिपुर असुर के सूदन करने वाले थे प्रणाम करके उस समय में परमहर्षित होकर पूछने की इच्छा वाले मुनि ने विज्ञापित किया था । हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित हो ॥५८-५९॥ मुनि ने प्रार्थना करके प्रभु से पूछा था—हे भगवन् ! आपका यह परम घोर विश्वतोमुख रूप क्या था और आपके पार्श्व भाग में विराजमान होकर व्यवस्थित देवी कौन थी ? ॥६०॥ वह तो सहसा ही अन्तर्हित हो गई है मैं यह सभी जानने की इच्छा कर रहा हूँ । ऐसा पूछने पर हर ईश ने उसी समय में मङ्कण मुनि से कहा था ॥६१॥ अपनी आत्मा के योग को महेश—त्रिपुरानल देवी को—सहस्र नयनों वाला–सर्व की आत्मा और सर्वतोमुख में—समस्त पाशों का दाहक काल और काल करने वाले हर यह सम्पूर्ण चेतन और अचेतन स्वरूप वाला जगत् मेरे ही प्रेरित किया जाता है ॥६२-६३॥

सोऽन्तर्य्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः ।
तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥६४

प्रोच्यते मुनिभिः शक्तिर्जगद्योनीः सनातनी ।
स एष मायया विश्वं व्यामोहयति विश्वकृत् ॥६५

नारायणःपरोऽव्यक्तोमायारूपइति श्रुतिः ।
एवमेतज्जगत्सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम् ॥६६

योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पञ्चविंशकम् ।
तथा वै सङ्गतोदेवः कूटस्थःसर्वगोऽमलः ॥६७

सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्त्तेः प्रकृतेरजः ।

स देवो भगवान्ब्रह्मा विश्वरूपः पितामहः ॥६८

तवैतत्कथितंसम्यक्स्रष्टृत्वंपरमात्मनः।
एकोऽहंभगवान्कालोह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः ॥६९
समास्थायपरम्भावं प्रोक्तोरुद्रोमनीषिभिः।
ममैवसा पराशक्तिर्देवीविद्येति विश्रुता ॥७०

वह अन्तर में यमन करने वाला पुरुष पुरुषोत्तम भी मैं ही हूँ। यह यह त्रिगुणों (सत—रज—तम) के स्वरूप वाली प्रकृति मेरी ही माया है और यह सर्वोपरि विराजमाना माया है ॥६४॥ यही मुनियों के द्वारा इस जगत् के उद्भव करने वाली योनि सनातनी शक्ति कही जाया करती है। वह ही विश्व की रचना करने वाला प्रभु अपनी इस परमा माया के द्वारा इस सम्पूर्ण विश्व को मोहित किया करते हैं ॥६५॥ वह नारायण पर अव्यक्त और माया के रूप वाला है—ऐसा श्रुति का वचन है। इसी प्रकार से मैं इस सम्पूर्ण जगत् को सर्वदा स्थापित किया करता हूँ ॥६६॥ इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति के सहयोग से ही मैं पुरुष को पच्चीस प्रकार वाला योजित किया करता हूँ। तथा कूटस्थ—सबमें गमन करने वाला—अमल देव सङ्गत होता है ॥६७॥ वही अज अपनी हीं मूर्ति प्रकृति से इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया करता है। वह देव भगवान् ब्रह्मा विश्व रूप और पितामह है ॥६८॥ मैंने परमात्मा का सृजन करने का यह समस्त विधान तुमको बतला दिया है। मैं एक ही भगवान् काल हूँ जो कि आदि से रहित और सबका अन्त करने वाला एवं विभु हूँ ॥६९॥ जब मैं परम भाव में समास्थित होता हूँ जो मनीषियों के द्वारा मुझे ही रुद्र कहा गया है। वह देवी विद्या—इस नाम से लोक में प्रसिद्ध है वह भी मेरी ही एक परा शक्ति है ॥७०॥

दृष्टो हि भवतानूनं विद्यादेहः स्वयं ततः।
एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वरः ॥७१
विष्णुर्ब्रह्माचभगवान्रुद्रः कालइतिश्रुतिः।
त्रयमेतदनाद्यन्तंब्रह्मण्येव व्यवस्थितम् ॥७२
तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः।
आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परमम्पदम् ॥७३

आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यन्न विद्यते ।
एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु ॥७४
सम्पूज्योवन्दनीयोऽहं ततस्तंपश्यसीश्वरम् ।
एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शनंहरः ॥७५
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनिः ।
एतत्पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम् ।
संसेव्य ब्राह्मणो विद्वान्मुच्यते सर्वपातकैः ॥७६

तुमने तो स्वयं ही उम विद्या देवी का देह देख लिया है । इस प्रकार से ये तत्त्व ही प्रधान—पुरुष और ईश्वर हैं ॥७१॥ विष्णु—ब्रह्मा और भगवान् रुद्र हैं तथा काल है—यही श्रुति का वचन है । यह तीनों ही आदि और अन्त से रहित हैं तथा ब्रह्म में ही व्यवस्थित हैं ॥७२॥ उस स्वरूप वाला—वह अव्यक्त और वह अक्षर है । आत्मानन्द पर तत्त्व ज्ञान मात्र परम पद है ॥७३॥ आकाश ही निष्कल ब्रह्म है उससे अन्य कुछ भी नहीं है । इसी प्रकार से भक्तियोग के आश्रय के द्वारा आपको विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥७४॥ ऐसा जानकर ही मैं भली भाँति पूजन करने के योग्य हूँ तथा वन्दना करने के भी लायक होता हूँ । इसके पश्चात् ही तुम ईश्वर को देखते हो । इस प्रकार से इतना सब कहकर भगवान् हर अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥७५॥ वहीं पर भक्ति के योग से मुनि ने रुद्रदेव की आराधना करते हुए रहते थे । यह परम पवित्र अतुल तीर्थ ब्रह्मर्षियों के द्वारा सेवित है । इसका विद्वान् ब्राह्मण सेवन करके ही समस्त पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥७६॥

———

३८—रुद्रकोटि-कालञ्जरतीर्थवर्णन

अन्यत्पवित्रंविपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
रुद्रकोटिरितिख्यातं रुद्रस्यपरमेष्ठिनः ॥१
पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्पराः ।
कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमत्परम् ॥२

अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम् ।
अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां विवादोत्भून्महान् किल ॥३
तेषां भक्ति तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरुः ।
कोटिरूपोऽभवद्रुद्रो रुद्रकोटिस्ततोऽभवत् ॥४
ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम् ।
अपश्यन् पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन् ॥५
अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम् ।
दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन् ॥६
अथान्तरिक्षेविमलम्पश्यन्तिस्ममहत्तरम् ।
ज्योतिस्तत्रैवतेसर्वेऽभिलषन्तःपरम्पदम् ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—एक अन्य बहुत अधिक पवित्र और त्रिलोकी में प्रसिद्ध तीर्थ रुद्र कोटि इस नाम से विख्यात है जो कि परमेष्ठी रुद्र का है ॥१॥ पहिले किसी पुण्यतम काल में देवों के दर्शन में परायण करोड़ों ब्रह्मर्षिगण परम दान्त होते हुए उस पर देश को गये थे ॥२॥ उन सबमें पहिले मैं भगवान् पिनाकी गिरिश के दर्शन करूँगा—इस प्रकार से भक्ति से युक्त उन ब्रह्मर्षियों में परस्पर में महान् विवाद उठ खड़ा हुआ था ॥३॥ योगियों के गुरुदेव भगवान् गिरिश ने उनकी भक्ति की भावना को देखकर वे स्वयं रुद्रदेव करोड़ों की संख्या में हो गये थे जिससे सभी पहिले दर्शन प्राप्त कर लेवें। तभी से इस तीर्थ का नाम रुद्र कोटि पड़ गया था ॥४॥ उन सभी ने गिरि गुहाशय महादेव हर का दर्शन किया था उन पार्वती के नाथ का दर्शन करके सब हृष्ट—पुष्ट बुद्धि वाले हो गये थे ॥५॥ उनमें से सबने यही कहा था कि सबसे पूर्व अनाद्यन्त महादेव ईश्वर का मैंने दर्शन किया था—इस तरह से भक्ति भाव से वे सभी भगवान् रुद्र में न्यस्त बुद्धि वाले हो गये थे ॥६॥ इसके अनन्तर अन्तरिक्ष में महत्तर विमल देव का दर्शन करते थे। उन सबसे वहाँ पर ही परम पद की अभिलाषा रखते हुए उस ज्योति का दर्शन किया था ॥७॥

यतःस देवोऽध्युषितस्तीर्थं पुण्यतमं शुभम् ।
दृष्ट्वा रुद्रान्समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयुः ॥८

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्नामधुवनं शुभम् ।
तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत् ॥९

अथान्या पद्मनगरी देशः पुण्यतमः शुभः ।
तत्रगत्वापितृन्पुज्यकुलानां तारयेच्छतम् ॥१०

कालञ्जरं महातीर्थं रुद्रलोके महेश्वरः ।
कालञ्जरं भजन्देवं तत्र भक्तप्रियो हरः ॥११

श्वेतो नाम शिवेभक्तो राजर्षिप्रवरःपुरा ।
तदाशीस्तन्नमस्कारैःपूजयामास शूलिनम् ॥१२

संस्थाप्य विधिनारुद्रं भक्तियोगपुरःसरः ।
जजाप रुद्रमनिशं तत्र सन्न्यस्तमानसः ॥१३

सितंकार्ष्णाजिनं दीप्तं शूलमादायभीषणम् ।
नेतुमभ्यागतोदेशंस राजा यत्रतिष्ठति ॥१४

क्योंकि वही देव वहाँ पर अध्युषित हैं इसीलिये वह परम पुण्यतम शुभ तीर्थ होगया है । वहाँ पर रुद्र देवों का दर्शन करके उनका अभ्यर्चन किया और सबने भगवान् रुद्र का सामीप्य प्राप्त किया था ॥८॥ एक और परम श्रेष्ठ तीर्थ है जो नाम से मधुवन है और शुभ है । उस तीर्थ में जाकर जो नियमों का पालन करने वाला रहता है वह इन्द्रदेव के अर्द्धासन का लाभ प्राप्त किया करता है ॥९॥ इस के उपरान्त एक पद्म नारी देश है जो परम पुण्यतम तथा शुभ है । वहाँ जाकर अपने पितृगणों को पूज कर मनुष्य सौकुलों को तार दिया करता है ॥१०॥ कालंजर भी महातीर्थ है । रुद्र लोक में महादेव कालञ्जर देव का भजन करते हुए वहाँ पर भक्तों के प्रिय हर होगये थे ॥११॥ पहिले प्राचीन समय में श्वेत नाम धारी एक राजर्षियों में बहुत ही श्रेष्ठ शिव का भक्त था । उसके आशीर्वाद और उनके लिये किये हुए नमस्कारों से भगवान् शूली का पूजन किया करता था ॥१२॥ भक्तियोग पुरस्सर होकर विधि के साथ भगवान् रुद्र की संस्थापना करके निरन्तर शिव में ही मन को भलीभाँति लगाकर निरन्तर रुद्र का जप किया करता था ॥१३॥ सित कार्ष्णाजिन

तथा भीषण दीप्त शूल लेकर लेने को उस देश में गया था जहाँ पर राजा स्थित रहता था ॥१४॥

वीक्ष्य राजा विष्टः शूलहस्तं समागतम् ।
कालंकालकरं घोरं भीषणं चण्डदीपितम् ॥१५
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वाऽसौ लिङ्गमुत्तमम् ।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम् ॥१६
जपन्तमाह राजानं नमन्तं मनसा भवम् ।
एह्येहीति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव ॥१७
तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः ।
एकमीशार्च्चनरतं विहायान्यान्निषूदय ॥१८
इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद्भीतमानसम् ।
रुद्रार्च्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति ॥१९
एवमुक्त्वास राजानं कालो लोकप्रकालनः ।
बबन्ध पाशै राजापि जजापशतरुद्रियम् ॥२०
अथाऽन्तरिक्षे विपुलं दीप्यमानं तेजोराशिं भूतभर्त्तुः पुराणम्
ज्वालामालासंवृतं व्याप्यविश्वंप्रादुर्भूतंसंस्थितं संददर्श ॥२१

बैठे हुए राजा ने हाथ में शूल लेने वाले समायात काल का भी कालकर—भीषण—घोर—चण्डदीपित को देखकर इसने दोनों हाथों से इस उत्तम लिङ्ग का स्पर्श करके रुद्र देव को नमस्कार किया था तथा शतरुद्रिय का जाप किया था ॥१५-१६॥ जाप करते हुए तथा मन से भगवान् भव को नमन करते हुए राजा से कहा था आओ—आओ—यह सामने स्थित होकर कृतान्त ने हँसते हुए यह कहा था ॥१७॥ रुद्र में परायण और भय से समाविष्ट राजा ने उससे कहा—केवल एक भगवान ईश के अर्चन में रत को छोड़ कर अन्यों का निषूदन कर डालो ॥१८॥ इस प्रकार से कहने वाले भय से डरे हुए उससे भगवान् ने कहा—जो रुद्र के अर्चन में रत हो व अन्य हो मेरे वश में कौन नहीं रहा करता है ॥१९॥ इतना कहकर लोक का प्रकालन उस काल ने राजा को पाशों से बाँध लिया था और राजा भी शतरुद्रिय का जाप करता ही रहा था

॥२०॥ इसके उपरान्त अन्तरिक्ष में बहुत अधिक—देदीप्यमान—तेज की राशि—भूतों के भर्त्ता का पुराना ज्वाला की मालाओं से संवृत—विश्व को व्याप्त करके प्रादुर्भूति संस्थित देखा था ॥२१॥

तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम् ।
तेजोरूपंपश्यति स्मातिहृष्टो मेने चात्मानमप्यागच्छतीति ॥२२
आगच्छन्तं नाऽतिदूरेति दृष्ट्वा कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम् ।
व्यपेतभीरखिलेशंकनाथं राजर्षिस्तन्नेतुमभ्याजगाम ॥२३
आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्म्मा देवो रुद्रो भूतभर्त्ता पुराणः ।
ऐवं भक्तं सत्वरं मां स्मरन्तं देहीतीमं कालरूपं ममेति ॥२४
श्रुत्वावाक्यंगोपतेरुद्रभावःकालात्मासौमन्यमानःस्वभावम् ।
बद्ध्वा भक्तं पुनरेवाथपाशैरुद्रोरौद्रंचाभिदुद्राववेगात् ॥२५
प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशःसोऽन्वीक्ष्यान्तेविश्वमायाविधिज्ञः ।
सावज्ञं वै वामपादेन कालं त्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान ॥२६
ममार सोऽभिभीषणो महेशपादघातितः ।
विराजते सहोमया महेश्वरः पिनाकधृक् ॥२७
निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम् ।
ननाम वै तमव्ययं स राजपुङ्गवस्तदा ॥२८

उसके मध्य में इसने देवी के साथ सुवर्ण के समान वर्ण वाले तथा चन्द्रमा की लेखा से समुज्जवल अङ्ग वाले तथा तेज के स्वरूप से समन्वित स्वरूप से देखा था । अत्यन्त प्रसन्न होते हुए आत्मा को आते हुए देखा—ऐसा ही मान लिया था ॥२२॥ काल ने अत्यन्त समीप में ही आने वाले देव देवी के साथ भगवान् महेश को देखकर जो कि समस्त लोकों के एक ही नाथ हैं भय से रहित राजर्षि उनको प्राप्त करने को आगे चला गया था ॥२३॥ उग्र कर्मों वाले भूतों के स्वामी—परम पुराण—भगवान रुद्र देव ने इसको देखकर इस प्रकार से भक्ति के करने और शीघ्र ही मेरे स्मरण करने वाले इस काल रूप को मुझे दो—इस गोपति के वाक्य का श्रवण कर रुद्र के भक्त को पुनः भी पाशों से बाँध कर रुद्र रौद्र की ओर

वड़े ही वेग से दौड़े ॥२४-२५॥ इस के अनन्तर ईश ने शैली के राजा की पुत्री को देखकर और आते हुए उसे देखकर अन्त में माया की विधि के ज्ञाता ने अवज्ञा पूर्वक इसके देखते हुए उस काल को वाम पाद से ही मार दिया था ॥२६॥ अत्यन्त भीषण वह महेश के पाद के घात से मर गया था और पिनाक के धारण करने वाले महेश्वर उमा देवी के साथ में ही विराजमान हो रहे थे ॥२७॥ उस वेला में उस परम प्रहृष्ट मन वाले उस श्रेष्ठ राजा ने ईश्वर देव—अव्यय हर का दर्शन किया था और उनको प्रणाम किया था ॥२८॥

नमोभवाय हेतवे हराय विश्वशम्भवे ।
नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने ॥२९
नमो नमो नमो नमोमहाविभूतये नमः ।
विभागहीनरूपिणे नमो नराधियाय ते ॥३०
नमोऽस्तु ते गणेश्वर! प्रपन्नदुःखशासन !।
अनादिनित्यभूतये वराहश्रृंगधारिणे ॥३१
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नमः ।
नमो महानगाय ते शिवाय शङ्कराय ते ॥३२
अथानुगृह्य शङ्करः प्रणामतत्परं नृपम् ।
स्वगाणपत्यमव्ययं स्वरूपतामथो ददौ ॥३३
सहोमया सपार्षदः सराजपुंगवो हरः ।
मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात् ॥३४
काले महेशनिहते लोकनाथः पितामहः ।
अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवित्विति ॥३५

राजा ने स्तवन करते हुए कहा—जगत् के हेतु—विश्व शम्भु हर—भव के लिये नमस्कार है। परम बुद्धिमान भगवान् शिव की सन्निधि में नमस्कार है। अपवर्ग के प्रदान करने वाले प्रभु की सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है ॥२९॥ महान् विभूति प्रभु के लिये बारम्बार मेरा नमस्कार है विभाग से ही न रूप वाले नरों के अधिय आप के लिये नमस्कार है ॥३०॥ हे गणों के स्वामिन् ! आप तो शरणागति में

उपस्थित प्रपन्न भक्त के दुःखों का नाश करने वाले हैं। आपकी सेवा में नमस्कार है। अनादि नित्य विभूति तथा वराह के भृङ्ग को धारण करने वाले आपको मेरा प्रणाम है ।।३१।। वृषध्वज को नमस्कार है तथा कपालों की माला वाले के लिये प्रणाम है। महान् जग के लिये प्रणाम है—शिव एवं शङ्कर के लिये नमस्कार है ।।३२।। इसके अनन्तर भगवान् शङ्कर ने प्रणाम करने में तत्पर उस नृप के ऊपर परम अनुग्रह करके अपना गाणपत्य अव्यय स्वरूपता प्रदान की थी ।।३३।। भगवती उमा के साथ—पार्षदों से युक्त वह राजाओं में श्रेष्ठ और मुनीश तथा सिद्धों से वन्दित भगवान् हर क्षणमात्र में ही अदृश्यता को प्राप्त हो गये थे ।।३४।। महेश के द्वारा काल के निहत किये जाने पर लोकों के नाथ पितामह ने भगवान् रुद्र देव से वरदान की याचना की थी कि यह सजीव हो जावे ।।३५।।

नाऽस्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज !।
कृतान्तस्यैव भविता तत्कार्ये विनियोजितः ।।३६

स देवदेववचनाद्देवदेवेश्वरोहरः ।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत् ।।३७

इत्येतत्परमं तीर्थं कालञ्जरमिति श्रुतम् ।
गत्वाभ्यर्च्य महादेवंगाणपत्यं सविन्दति ।।३८

हे भगवन् वृषध्वज ! हे ईशान देव ! इसमें इस विचारे कृतान्त का लेश मात्र भी दोष नहीं है। इसको तो अपने उस कार्य में आपने ही नियोजित किया था ।।३६।। वह देवों के भी देव के वचन से देवों के भी देव भगवान् हर ने 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कह दिया था। विश्वात्मा वह भी फिर उसी प्रकार के हो गये थे ।।३७।। यह परम-तीर्थ कालञ्जर है ऐसा श्रुत हुआ है। जो कोई वहाँ जाकर महादेव की अभ्यर्चन करता है वह गाणपत्य पद को प्राप्त किया करता है ।।३८।।

३७—महालयादितीर्थमाहात्म्यवर्णन

इदमन्यत्परं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।
महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम् ॥१
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा ।
शिवातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम् ॥२
तत्र पाशुपताः शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहाः ।
उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्पराः ॥३
स्नात्वा तत्र पदं शार्व्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरःसरम् ।
नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात् ॥४
अन्यच्चदेवदेवस्यस्थानं शम्भोर्महात्मनः ।
केदारमितिविख्यातं सिद्धानामालयंशुभम् ॥५
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम् ।
पीत्वा चैवोदकं शुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥६
श्राद्धदानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभतेफलम् ।
द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्जितमानसैः ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—यह एक अन्य गुह्य से भी अत्यधिक गुह्य परम महत् स्थान है। महादेव देव यह महालय है—ऐसा श्रुत होता है ॥१॥ वहाँ पर देवों के भी आदि देव त्रिपुरारि रुद्र ने शिवा के तल में पदन्यस्त किया था जो नास्तिकों का निदर्शन है ॥२॥ वहाँ पर पाशुपत लोग परम शान्त भस्म से उद्धूलित विग्रह वाले तथा वेदों के अध्ययन में तत्पर महादेव की उपासना किया करते हैं ॥३॥ वहाँ पर स्नान करके भक्ति पूर्वक भगवान् शर्व के पद का दर्शन करके तथा शिर से प्रणाम करके रुद्र की समीपता को प्राप्त किया करता है ॥४॥ एक और दूसरा स्थान है जो देवों के भी देव महातमा शम्भु का है। इसका केदार यह शुभ नाम संसार में विख्यात है जो सिद्धों का शुभ आलय है ॥५॥ वहाँ पर स्नाव करके और वृषकेतन महादेव का अभ्यर्चन करके तथा परम शुद्ध जल का पान करके गाणपत्य पद को प्राप्त किया करता है ॥६॥ श्राद्ध

तथा दान आदि करके अक्षय फल की प्राप्ति किया करता है। ऐसा फल वे ही लोग प्राप्त करते हैं जो जिन्होंने अपने मन को जीत लिया है और योगीजन है। यह तीर्थ द्विजातियों में परम श्रेष्ठों के द्वारा सेवित है ॥७॥

तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम् ।
तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते ॥८
अन्यच्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम् ।
अक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वाद्विजोत्तमः ॥९
तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम् ।
यत्र देवेन रुद्रण यज्ञो दक्षस्य नाशितः ॥१०
तत्र गङ्गामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः ।
मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः ॥११
महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम् ।
तत्राऽभ्यर्च्यं हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति ॥१२
अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्नाश्रीपर्वतं शुभम् ।
अत्रप्राणान्परित्यज्य रुद्रस्यदयितो भवेत् ॥१३
तत्र सन्निहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः ।
स्नानपिण्डादिक तत्र दत्तमक्षयमुत्तमम् ॥१४

एक प्लक्षावतरण नाम वाला तीर्थ है जो सभी प्रकार के विनाश करने वाला है। वहाँ पर भगवान् श्रीनिवास का अभ्यर्चन करके मनुष्य विष्णु लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥८॥ एक अन्य मगधारण्य नामक तीर्थ है जो सभी लोकों में गति प्रदान करने वाला है। वहाँ पर पहुँच कर द्विजोत्तम अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है ॥९॥ कनखल नाम का तीर्थ परम पुण्यमय है जो महान् पातकों का नाश करने वाला है जहाँ पर भगवान् रुद्र देव ने प्रजापति दक्ष के यज्ञ का नाश किया था ॥१०॥ वहाँ पर गङ्गा में उपस्पर्शन करके परम शुचि होकर भक्ति की भावना से समन्वित होकर तीर्थ का सेवन करे तो मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है और फिर ब्रह्मलोक में निवास किया करता है ॥११॥ एक

महातीर्थ—इस नाम से विख्यात है जो परम पुण्यमय है और भगवान् नारायण का अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पर भगवान् हृषीकेश की अर्चना करके पूजन श्वेत द्वीप में चला जाया करता है ॥१२॥ एक दूसरा और तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ है जो नाम से शुभ श्री पर्वत कहा जाता है। इस तीर्थ में मनुष्य अपने प्रिय प्राणों का परित्याग करके भगवान् रुद्र का परम प्रिय हो जाया करता है ॥१३॥ वहाँ पर सन्निहित रुद्र देव देवी के सहित ही महादेव विराजमान रहा करते हैं। इस तीर्थ में स्नान और पिण्ड आदि का कर्म तथा दिया हुआ धन स्त्री अक्षय एवं उत्तम हो जाता है ॥१४॥

गोदावरीनदीपुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ।
तत्रस्नात्वापितॄन्देवांस्तर्पयित्वायथाविधि ॥१५
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत् ।
पवित्रसलिला पुण्याकावेरी विपुला नदी ॥१६
तस्यां स्नात्वोदकंकृत्वामुच्यते सर्वपातकैः ।
त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेनवा ॥१७
द्विजातीनां तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम् ।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ ॥१८
अलोलुपोब्रह्मचारीतीर्थानांफलमाप्नुयात् ।
स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥१९
तत्रसन्निहितोनित्यंस्कन्दोऽमरनमस्कृतः ।
स्नात्वाकुमारधारायांकृत्वादेवादितर्पणम् ॥२०
आराध्य षण्मुखं देवंस्कन्देनसह मोदते ।
नदत्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीतिनामतः ॥२१

गोदावरी परम पुण्यमयी नदी है जो सभी पापों के नाश करने वाली है। उस नदी में स्नान करके पितृगण और देवों का तर्पण यथाविधि करना चाहिए ॥१५॥ वह सर्व पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त किया करता है। कावेरी नदी बहुत बड़ी पुण्यमयी और पवित्र जल वाली है ॥१६॥ उसमें स्नान करके तथा

उदक दान करके मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाया करता है। तीन रात्रि उपवास करके अथवा एक रात्रि तक उपवास करके पापों से मुक्ति होती है ॥१७॥ द्विजातियों का यह कथन है कि यहाँ पर तीर्थों का सेवन करना चाहिए। जिसके मन और वाणी शुद्ध हों और हस्त तथा पाद भी संस्थित हों उसे तीर्थ सेवन अवश्य करना चाहिए ॥१८॥ जो मनुष्य लोलुप न हो और ब्रह्मचारी हो वही मनुष्य तीर्थों के शुभ फल किया करता है। स्वामि तीर्थ एक बहुत महान् तीर्थ है और तीनों लोकों में यह परम प्रसिद्ध है ॥१९॥ वहाँ पर भगवान् स्कन्द नित्य ही संस्थित रहा करते हैं जो देवगण के द्वारा नमस्कृत रहते हैं। कुमार धारा में स्नान करके पितृगण और देवों का तर्पण करना चाहिए ॥२०॥ फिर स्कन्द देव की आराधना करे तो इसका यह प्रभाव होता है कि वह पुरुष भगवान् स्कन्द के ही साथ मुदित होकर सुखोपयोग किया करता है। ताम्रपर्णी नदी जिसका नाम है वह त्रैलोक्य में विख्यात नहीं है ॥२१॥

तत्रस्नात्वा पितॄन्भक्त्यातर्पयित्वा यथाविधि।
पापकर्तॄनपि पितॄंस्तारयेन्नात्रसंशयः ॥२२

चन्द्रतीर्थमितिख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम्।
तीर्थं तत्र भवेद्दत्तंमृतानांसद्गतिप्रदम् ॥२३

विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम्।
भक्त्यायेतेनपश्यन्ति यमस्यवदनंद्विजाः ॥२४

देविकायां वृषो नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा योगसिद्धिञ्च विन्दति ॥२५

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्वपापविनाशकम्।
दशानामश्वमेधानां तत्राप्नोति फलं नरः ॥२६

पुण्डरीकं तथा तीर्थं ब्राह्मणैरुपशोभितम्।
तत्राभिगम्ययुक्तात्मापुण्डरीकफलं लभेत् ॥२७

तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमितिस्मृतम्।
ब्रह्माणमर्चयित्वात्र ब्रह्मलोके महीयते ॥२८

उस ताम्रपर्णी में स्नान करके यथाविधि पितृगण का भक्तिभाव से तर्पण करे । वह पाप करने वाले भी पितृगण का भी उद्धार कर दिया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥२२॥ चन्द्रतीर्थ—इस नाम से विख्यात है और वह कावेरी के प्रभव में अक्षय है । उस तीर्थ में दिया हुआ दान भी अक्षय होता है तथा मृत पुरुषों को सद्गति के प्रदान कराने वाला है ॥२३॥ विन्ध्य पाद में देवों के देव सदाशिव का जो दर्शन किया करते हैं । और जो शिव के भक्त होते हैं वे द्विज यमराज का मुख नहीं देखा करते हैं ॥२४॥ देविका में वृष नाम वाला एक तीर्थ है जो सिद्धों के द्वारा निषेवित है । वहाँ उस तीर्थ में स्नान और देव पितृ गण का तर्पण करके मनुष्य योग की सिद्धि को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ दशाश्वमेधिक नाम वाला तीर्थ सभी पापों का विनाश करने वाला है । वहां पर उस तीर्थ का स्नानादि करके मनुष्य दश अश्वमेधों के करने का फल प्राप्त किया करता है ॥२६॥ एक पुण्डरीक नाम वाला तीर्थ है जो ब्राह्मणों के द्वारा उपशोभित है । वहाँ पर जाकर युक्त आत्मा वाला मनुष्य पुण्डरीक का फल प्राप्त किया करता है ॥२७॥ समस्त तीर्थों में परम शिरोमणि तीर्थ ब्रह्मतीर्थ नाम वाला तीर्थ है । यहाँ इस ब्रह्मतीर्थ में पितामह श्री ब्रह्माजी का अभ्यर्चन करके मानव अन्त में ब्रह्मलोक में ही जा करके प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२८॥

सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम् ।
व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकश्च नगोत्तमः ॥२९
यमुनाप्रभवश्चैव सर्वपापविनाशनः ।
पितृणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता ॥३०
तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत् ।
कुबेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम् ॥३१
प्राणांस्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत् ।
उमातुङ्गमितिख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा ॥३२
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत् ।
भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धंदानं तथाकृतम् ॥३३

कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति मतिर्मम ।
काश्यपस्य महातीर्थं काऽसर्पिरितिश्रुतम् ।।३४
तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया ।
दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमं तपो जपः ।।३५

सरस्वती का विनशन और शुभप्लक्ष प्रस्रवण तथा व्यास तीर्थ इस नाम से प्रसिद्ध है और मैनाक सब नामों में उत्तम है ।।२९।। यमुना प्रभव तीर्थ सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है। पितृगण की पुत्री देवी गन्ध काली—इस नाम से प्रसिद्ध थी ।।३०।। उसमें स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में जाया करता है और मृत होकर जाति स्मर होता है। कुवेर तुङ्ग नाम वाला तीर्थ पापों का हनन करने वाला है तथा सिद्ध और चारणों के द्वारा सेवित है ।।३१।। वहाँ पर प्राणों का परित्याग करके यह प्राणी फिर कुवेर के अनुचर होने का अधिकारी हो जाया करता है। एक उमा-तुङ्ग इस नाम से विख्यात तीर्थ है जहाँ पर रुद्र देव की प्रिया निवास किया करती है ।।३२।। वहाँ उस तीर्थ में महादेवी श्री जगदम्बा का अभ्यर्चन करके एक सहस्र गौओं के दान करने से प्राप्त होने वाला प्राप्त हुआ करता है। भृगु तुङ्ग नामक तीर्थ में यदि तपश्चर्या को जावे और श्राद्ध तथा दान आदि सत्कर्मों का सम्पादन करे तो दोनों ओर के सात कुलों का उद्धार कर पवित्र कर दिया करता है—ऐसी मेरो मति है। एक महा मुनीन्द्र काश्यप का महान् तीर्थ है—जिसका शुभ नाम काल-सर्पि—ऐसा सुना गया है ।।३३-३४।। उस तीर्थ में किये गये श्राद्ध—दान नित्य ही पापों के क्षय करने की इच्छा से होते हैं और निश्चय ही वहाँ पापों का नाश हो जाता है। दशार्ण नाम वाले तीर्थ में किये गये श्राद्ध-दान—होम—जप—तप सभी अक्षय हुआ करते हैं ।।३५।।

अक्षयञ्चाव्ययञ्चैव कृतं भवति सर्वदा ।
तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्नावैकुरुजांगलम् ।।३६
दत्त्वा तु दानं विधिवद्ब्रह्मलोके महीयते ।
वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैव च ।।३७

धर्मपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे ।
भरतस्याश्रमे पुण्येपुण्येगृध्रवनेशुभे ॥३८
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम् ।
मुण्डपृष्ठे पदंन्यस्तंमहादेवेन धीमता ॥३९
हिताय सर्वभूतानां नस्तिकानां निदशनम् ।
अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः ॥४०
पाप्मानमुत्सृजात्याशु जीर्णां त्वचमिवोरगः ।
नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥४१
उदीच्यां ब्रह्मपृष्ठस्यब्रह्मर्षिगणसेवितम् ।
तत्रस्नात्वादिवंयान्तिसशरीराद्विजातयः ॥४२

ऐसे महान् तीर्थ का यही एक अति प्रबल प्रभाव होता है इसमें किये गये श्राद्धादि सत्कर्म अक्षय और सर्वदा अव्यय होते हैं । एक द्विजातियों के द्वारा सेवन करने के योग्य या निषेवित कुरु जाङ्गल नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है । इसमें पहुँच कर दिया हुआ दान का महान् प्रभाव हुआ करता है । दान दाता जिसने विधिपूर्वक दान किया है अन्त में वह ब्रह्मलोक में पहुँच कर महिमान्वित हुआ करता है । एक वैतरणी महान् तीर्थ है तथा स्वर्ण वेदी नामक भी उसी भाँति विशाल तीर्थ है ॥३६-३७॥ ब्रह्माजी का परम शुभ धर्म पृष्ठ और धर्म शिर नाम वाले तीर्थ हैं । भरत का आश्रम में जो परम पुण्यमय तीर्थ है तथा पुण्यमय एवं और शुभ गृध्र वन नामक तीर्थ है ॥३८॥ महाह्रद और कौशिका तीर्थ हैं—इसमें किया हुआ दान अक्षय हुआ करता है । मुण्ड पृष्ठ नामक तीर्थ में परम धीमान् देवेश्वर महादेव ने अपने पद का न्यास किया है ॥३९॥ यह चरण का न्यास समस्त प्राणियों के हित के सम्पादन के ही लिये किया गया है । यह तीर्थ नास्तिक जनों के लिये एक निदर्शन ही होता है । नास्तिक वे ही कहे जाते हैं जो ईश्वर की सत्ता और तीर्थों में किये गये सत्कर्मों को कुछ भी नहीं माना करते हैं । यहाँ पर बहुत थोड़े से समय में ही मनुष्य धर्म में परायण हो जाया करता है—यही तीर्थ का प्रबलतम प्रभाव है ॥४०॥ जिस प्रकार से कोई सर्प अपनी कञ्चुली का त्याग कर दिया करता है ठीक उसी भाँति

यहाँ पर अपने विहित पापों को भी शीघ्र उत्सृष्ट कर देता है। कनकनन्दा नाम वाला एक महान् तीर्थ है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥४१॥ उत्तर दिशा में ब्रह्म पृष्ट नामक तीर्थ है जिसका सेवन ब्रह्मर्षिगण किया करते हैं। इस तीर्थ का परम अद्भुत प्रभाव है कि इसमें जो भी द्विजाति गण स्नान कर लेते हैं वे इसी शरीर से दिव लोक में चले जाया करते हैं अन्यथा सशरीर वहाँ गमन करना असम्भव होता है ॥४२॥

दत्तं वापिसदाश्राद्धमक्षयंसमुदाहृतम् ।
ऋणैस्त्रिभिर्नरःस्नात्वामुच्यतेक्षीणकल्मषः ॥४३

मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत् ।
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥४४

तस्मान्निर्वयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम् ।
स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥४५

पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातु विभूषितः ।
योजनानां सहस्राणि साशोतिस्त्वायतो गिरिः ॥४६

सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवितः ।
तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्नानामनामतः ॥४७

तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्ब्रह्महत्यां विमुञ्चति ।
श्राद्धं भवति चाक्षयं तत्र दत्तं महोदयम् ॥४८

तारयेच्च पितॄन्सम्यग्दशपूर्वान्दशापरान् ।
सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गङ्गापुण्यासमन्ततः ॥४९

इस महान् पुण्यशाली तीर्थ में किया हुआ श्राद्ध सर्वदा अक्षय बताया गया है। उस तीर्थ में स्नान करके परमावश्यक जो देव—पितृ और ऋषियों के ऋण होते हैं उनसे मुक्त हो जाया करता है और उसके सब कल्मष क्षीण हो जाया करते हैं ॥४३॥ मानस सरोवर भी एक ऐसा विशाल प्रभावशाली तीर्थ है कि इसमें स्नान करके मनुष्य इन्द्रदेव का आधा आसन ग्रहण कर लिया करता है। उत्तर मानस में तो पहुँच कर मानव परमोत्तम सिद्धि की प्राप्ति किया करता है ॥४४॥ इसीलिये जितनी

भी शक्ति और बल हो उसी के अनुसार श्राद्ध अवश्य ही निर्वपन करना चाहिए। ऐसा श्राद्ध करने वाला व्यक्ति दिव्य कामनों को प्राप्त कर लिया करता है तथा मोक्ष के उपाय भी उसे ज्ञात हो जाया करते हैं ।।४५।। एक हिमवान् नाम वाला परम विशाल पर्वत है जो अनेक प्रकार की महा मूल्यवान् धातुओं से विभूषित है। यह पर्वत राज सहस्रों ही योजनों में फैला हुआ है और अस्सी योजन तो यह आयत वाला है ।।४६।। यह पर्वत बड़े-बड़े सिद्ध और चारणों से सङ्कीर्ण रहा करता है और देवर्षि गण भी इसका सेवन किया करते हैं। वहाँ पर एक अतीव रमणीय पुष्करिणी है जिसका नाम तो सुषुम्ना है ।।४७।। वहाँ पर विद्वान् द्विज जाकर की हुई ब्रह्महत्या के पाप से भी छूट जाता है। वहाँ पर दिया हुआ श्राद्ध तो क्षय से रहित ही हो जाया करता है तथा महान् उदय वाला होता है ।।४८।। वहाँ श्राद्ध का देने वाला पुरुष अपने दश पूर्व में होने वाले और दशवाह में होने पुरखाओं को तार दिया करता है। हिमवान् गिरि सर्वत्र महान् पुण्यशाली है और उसमें भागीरथी गङ्गा तो सभी ओर से पुण्यमयी है ।।४९।।

नद्यःसमुद्रगाः पुण्याःसमुद्रश्चविशेषतः ।
वदर्याश्रममासाद्य मुच्यतेसर्वकिल्विषात् ।।५०

तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः ।
अक्षयं तत्रदानंस्याच्छ्राद्धदानादिकञ्चयत् ।।५१

महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद्विशेषतः ।
तारयेच पितृन्सर्वान्दत्वा श्राद्धं समाहितः ।।५२

देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ।
महता देवदेवेन तत्र दत्तं महेश्वरम् ।।५३

मोहयित्वा मुनीन्सर्वान्समस्तैः सम्प्रपूजितः ।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान् ।।५४

इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा ।
मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ ।।५५

यत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणा: ।
तेषां ददामि परमंगाणपत्यं हि शाश्वतम् ।।५६

समुद्र में गमन करने वाली जो भी नदियाँ हैं वे सभी परम पुण्यमयी हैं और समुद्र तो विशेष रूप पुण्यशाली है । बदरिकाश्रम एक अतीव महान् उत्तराखण्ड में पुण्यमय धाम स्थल है जिसमें पहुँचकर तो मनुष्य सभी प्रकार के किल्विषों से छुटकारा पा जाता है ।।५०।। उस बदरिकाश्रम धाम में साक्षात् देव श्री नारायण जो सनातन हैं नर के साथ में विराजमान हैं । उस धाम में जो भी दान किया जाता है और श्राद्ध आदि किये जाते हैं वे सभी क्षय हीन और सार्वदिक हो जाया करते हैं ।।५१।। महादेव प्रिय तीर्थ विशेष रूप से पावन है । वहाँ पर परम समाहित होकर यदि कोई श्राद्ध देता है तो वह अपने सभी पितृगणों का उद्धार कर दिया करता है ।।५२।। एक देवदारु नाम वाला वहीं पर वन है जिस सिद्ध और और गन्धर्वों के समुदाय रहा करते हैं वहाँ पर महान् देवों के भी देव ने महेश्वर दिया है ।।५३।। समस्त महामुनीन्द्रों के द्वारा भली भाँति पूजन किये गये देव ने उन समस्त मुनिगणों को मोहित करके भगवान् परम प्रसन्न हुए थे तथा ईश ने उन भाव भावित मुनिगणों से कहा था ।।५४।। भगवान् ने मुनियों से कहा था कि आप सब लोग इस परम श्रेष्ठ सुरम्य आश्रम में सर्वदा निवास करोगे । मेरी भावना से समायुक्त होकर ही आप लोग सिद्धि को प्राप्त करेंगे ।।५५।। जहाँ पर धर्म में परायण लोग जहाँ पर मेरा समर्चन किया करते हैं उनको मैं परम शाश्वत गाणपत्य पद प्रदान किया करता हूँ ।।५६।।

अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन तु ।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म चाप्नुयात् ।।५७

संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगताजना: ।
तेषाञ्च सर्वपापानिनाशयामिद्विजोत्तमा: ।।५८

श्राद्धं दानं तपोहोम:पिण्डनिर्वपणं तथा ।
ध्यानं जपश्चनियम:सर्वमत्राक्षयं कृतम् ।।५९

तस्मात्सर्वंप्रयत्नेन द्रष्टव्यंहि द्विजातिभिः ।
देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम् ॥६०
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः ।
तत्र सन्निहितागङ्गा तीर्थान्यायतनानिच ॥६१

ईश ने कहा था कि यहाँ पर नित्य ही भगवान् नारायण के साथ निवास किया करता हूँ। जो मनुष्य यहाँ पर निवास करके यहीं पर अपने प्राणों का त्याग किया करते हैं वे फिर दूसरी बार इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥५७॥ जो अन्य देशों में निवास करने वाले भी मनुष्य इस तीर्थ का संस्मरण किया करते हैं । हे द्विजोत्तमो ! उनके सहस्र पापों का मैं इतने हो से नाश कर दिया करता हूँ ॥५८॥ यहाँ पर किये हुए श्राद्ध—दान—तप—होम तथा पिण्डों का निर्वपन—ध्यान—जाप—नियम सभी कुछ अक्षय जाया करता है ॥५९॥ इसीलिये सब प्रकार के पूर्ण प्रयत्न से द्विजातियों को इस तीर्थ का दर्शन अवश्य ही करना चाहिए । यह देव दारु वन परम पुण्यमय है और महादेव के द्वारा निषेवित है ॥६०॥ जहाँ पर ईश्वर महादेव अथवा भगवान् पुरुषोत्तम विष्णु स्वयं विराजमान हैं वहीं पर गङ्गा सन्निहित रहा करती हैं और तीर्थ सब तथा आयतन भी विद्यमान रहा करते हैं ॥६१॥

३८—दारुवनाख्यानवर्णन

कथं दारुवनम्प्राप्तो भगवान्गोवृषध्वजः ।
मोहयामास विप्रेन्द्रान्सूत ! तद्वक्तुमर्हसि ॥१
पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते ।
सपुत्रदारतनयास्तपश्चेरुः सहस्रशः ॥२
प्रवृत्तं विविधंकर्म प्रकुर्व्वाणा यथाविधि ।
यजन्तिविविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः ॥३
तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलभृत् ।
व्याख्यापयन्सदा दोषं ययौदारुवनंहरः ॥४
कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुंपार्श्वे देवोमहेश्वरः ।
ययौ निवृत्तविज्ञानस्थापनार्थञ्चशङ्करः ॥५

आस्थाय विपुलञ्चैषजनंविंशतिवत्सरम् ।
लीलालसो महाबाहुःपीनाङ्गश्चारुलोचनः ।।६
चामीकरवपुः श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
मत्तमातङ्गगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः ।।७

महर्षिगण ने कहा—उस दारु वन में भगवान् गो वृषध्वज कैसे प्राप्त हुए थे ? हे सूतजी ! वहाँ पर उन्होंने विप्रेन्द्रों को मोहित किया था—इस कथा का आप हमारे समक्ष में वर्णन कीजिए । आप ही इसको बताने के योग्य हैं महामुनीन्द्र सूतजी ने कहा—पहिले प्राचीन समय में देवों और सिद्धों के द्वारा निषेवित परम रम्य दारु वन में सहस्रों विप्रेन्द्रों ने पुत्र दारा आदि के सहित वहाँ पर तपश्चर्या की थी ।।१-२।। वहाँ पर अनेक प्रकार के सत्कर्म प्रवृत्त हो गये थे । सब महर्षिगण विधि पूर्वक उन कर्मों को कर रहे थे और अनेक यज्ञों के द्वारा यजन करते थे तथा तपस्या कर रहे थे ।।३।। इसके अनन्तर भगवान् शूलभृत् कर्म करने में प्रवृत्ति रखने वाले मन से युक्त उनको सदा दोष की व्याख्या करते हुए भगवान् हर दारु वन में गये थे ।।४।। महेश्वर देव भगवान् विष्णु को अपने पार्श्व में करके जो कि विश्व के गुरु हैं शङ्कर निवृत्त हुए विज्ञान की स्थापना करने के लिये वहाँ दारु वन में गये थे ।।५।। बीस वर्ष पर्यन्त इन्होंने बहुत से जनों को आस्थित करके लीला से अलस हुए तथा इनकी महान् बाहुऐं थीं—पीन अङ्ग था और सुन्दर लोचन थे । सुवर्ण के समान इनका शरीर था और यह परम श्रीमान् पूर्ण चन्द्र के सदृश मुख वाले थे । मस्त हाथी के तुल्य गमन करने वाले—दिगम्बर और समस्त जगत् के ईश्वर थे ।।६-७।।

जातरूपमयीं मालांसर्वरत्नैरलंकृताम् ।
दधानो भगवानीशः समागच्छतिसस्मितः ।।८
योऽनन्तः पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययोहरिः ।
स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शोभनम् (शूलिनम्)।।९
सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम् ।
शुचिस्मितं सुप्रसन्नंरणन्नूपुरकद्वयम् ।।१०

सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलञ्चारुलोचनम् ।
उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम् ॥ ११
एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हरः ।
चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत् ॥ १२
दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम् ।
मायया मोहिता नार्योदेवदेवंसमन्वयुः ॥ १३
विस्रस्ताभरणाः सर्वास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः ।
सहैव तेन कामार्त्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥ १४

सुवर्ण की निर्मित तथा सब प्रकार के रत्नों से समलंकृत माला को धारण करने वाले भगवान् ईश स्मित के सहित आ गये थे ॥८॥ जो अन्त से रहित—लोकों के उद्भव करने वाले योनि–अव्यय पुरुष श्री हरि विष्णु थे उन्होंने स्त्री का वेष धारण करके बहुत ही शोभा पूर्वक उनके पीछे आगमन किया था ॥९॥ भगवान् ईश हर इस प्रकार से उस देवदारु वन में विचरण कर रहे थे। उनका मुख पूर्ण चन्द्र के समान उस समय में था—पीन (पुष्ट) और उन्नत पयोधर थे। उन मुख पर परम पवित्र मन्द मुस्कराहट थी और वे परम प्रसन्न थे। दोनों चरणों में दो नूपुर ध्वनि कर रहे थे ॥१०॥ सुन्दर पीला वस्त्र धारण किये हुए थे—दिव्य श्यामल वर्ण था और सुन्दर लोचन थे। उदार हंस के समान गमन था—विलास से युक्त और अत्यन्त मनोहर स्वरूप था। उनके साथ में हरि भी थे जो माया से सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रहे थे ॥११-१२॥ वहाँ पर चरण करते हुए विश्व के ईश पिनाक धारी को वहाँ-वहाँ पर देखकर माया से मोहित नारियाँ देवों के देव पीछे अनुगमन करने लगीं थीं। ॥१३॥ समस्त आभरणों को विस्रस्त कर देने वाली अर्थात् उतार कर डाल देने वाली सब पतिव्रता नारियाँ लज्जा को त्याग कर उन्हीं के साथ काम से अत्यन्त आर्त्त होकर विलासिनी भी विचरण कर रही थीं ॥१४॥

ऋषीणां पुत्रकायेस्युर्युवानोजितमानसाः ।
अन्वागमन्हृषीकेशंसर्वेकामप्रपीडिताः ॥ १५

गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणा नायकमेकमीशम् ।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्तमिष्टं तथालिङ्गितमाचरन्ति ।।१६
ते सन्निपत्य स्मितमाचरन्ति गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः ।
आलोक्यपद्मापतिमादिदेवंशुभांग(भ्रूभंग)मन्येविचरन्तितेन।।१७
आशामथैकामपि वासुदेवो मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्टः ।
करोतिभोगान्मनसिप्रवृत्ति मायानुभूयन्त इतीव सम्यक् ।।१८
विभाति विश्वामरविश्वनाथः समाधवस्त्रीगणसन्निविष्टः ।
अशेषशक्त्या समयं निविष्टो यथैकशक्त्या सह देवदेवः ।।१९
करोति नित्यं परमं प्रधानं तदा विरूढः पुनरेव भूयः ।
ययौ समारुह्य हरिः स्वाभावं तमीदृशं नाम तमादिदेवम् ।।२०
दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्रानपि च केशवम् ।
मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठाः कोपं सन्दधिरे भृशम् ।।२१

ऋषियों के पुत्र जो जवान थे वे भी जित मानस वाले होते हुए सब काम से प्रकृष्ट रूप से पीड़ित होकर हृषीकेश के पीछे अनुगमन करने लग गये थे ।।१५।। विलास से युक्त नारीगण एक ही नायक ईश के पीछे चली जा रहीं थीं और गान तथा नृत्य कर रहीं थीं । अत्यन्त ही सुन्दर अभीष्ट पत्नी के सहित स्थित ईश को देखकर वे नारियाँ उनके साथ काम पीड़ित होती हुई समालिङ्गन भी करती जा रहीं थीं ।।१६।। वे मुनीशों के पुत्र भी वहाँ पर सन्निपतित होकर गीतों का गायन करते थे और स्मित का समाचरण करते थे । परम शुभ अङ्ग वाले—आदि देव पद्मा के स्वामी को देख कर अन्य लोग उनके साथ भ्रूभङ्ग कर रहे थे । अर्थात् नेत्रों से संकेत एवं कटाक्ष कर रहे थे ।।१७।। इसके पश्चात् माया से युक्त वासुदेव मुरारि एक आशा के मन में प्रविष्ट हो गये थे और भोगों को कर रहे थे । इसी भाँति भली-भाँति मन में प्रवृत्ति करके माया का अनुभव कर रहे ।।१८।। विश्व के समस्त देवों के विश्वनाथ माधव के सहित स्त्रीगण से सन्निविष्ट वह देवों के देव एक शक्ति के साथ के समान अशेष शक्ति से उस समय में सन्निविष्ट हो गये थे ।।१९।। उस समय में पुनः विरुढ़ होकर नित्य ही हरि परम प्रधान कर रहे थे । हरि उन आदि देव

के जोकि इस प्रकार के थे स्वभाव पर समारोहण करके चले गये थे ।।२०।। उस समय में मुनि श्रेष्ठ गण इस प्रकार समाचरण करते हुए नारी कुल को—रुद्र को—अपने पुत्रों को तथा केशव को जो सब को मोहित कर रहे थे देखकर अत्यन्त ही कुपित हो गये थे ।।२१

अतीवपरुषं वाक्यं प्रोचुर्देवंकपर्दिनम् ।
शेपुश्चविविधैर्वाक्यैर्माययातस्यमोहिताः ।।२२
तपांसि तेषां सर्वेषांप्रत्याहन्यन्तशङ्करे ।
यथादित्यप्रतीकाशेतारकानभसिस्थिताः ।।२३
तं भर्त्स्य तापसा विप्राः समेत्य वृषभध्वजम् ।
को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिताः ।।२४
सोऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः ।
इदानीं भार्यया देशं भवद्भिरिह सुव्रताः ।।२५
तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुंगवाः ।
ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर ।।२६
अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीललोहितः ।
सम्प्रेक्ष्य जगतां योनिं पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम् ।।२७
कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्सुकैः ।
त्यक्तवा मम भार्येति धर्मज्ञैः शान्तमानसैः ।।२८

मुनिश्रेष्ठ उनकी माया से मोहित होते हुए देव कपर्दी भगवान् से बहुत ही अधिक कठोर वचन कहने लगे थे और अनेक प्रकार के वाक्यों के द्वारा शाप देने लगे थे ।।२२।। उन सब के तप शङ्कर में ही विनष्ट हो गये थे जिस प्रकार से सूर्य देव के प्रतीकाश में आकाश में स्थित तारागण की दशा होती है वैसी दशा उन ऋषियों की भगवान् शङ्कर के समक्ष में उस समय हो गई थी। तापस विप्रों ने उनका भर्त्सित करके फिर वे वृषभध्वज के समीप में पहुँच गये थे। वहाँ पहुंच कर उन्होंने देवेश्वर से यही प्रश्न किया था कि हमको आप यह बतलाइये कि आप कौन हैं। यह देवेश की माया का ही प्रभाव था और वे सब उनकी माया से मोहित हो गये थे ।।२३-२४।। उन्होंने इस विप्रों के प्रश्न का यही उत्तर दिया था

कि हे सुव्रतो ! भवानीश ने कहा मैं तपश्चर्या करने के लिये यहाँ पर उपस्थित हुआ हूँ कि आप लोगों के साथ तप करूं किन्तु इस समय मैं भार्या के आदेश में हूँ ।।२५।। उनके इस वाक्य का श्रवण करके भृगु आदि मुनियों में श्रेष्ठ लोगों ने उनसे कहा था वसन ग्रहण करके भार्या का त्याग कर दो और तप करो ।।२६।। इसके उपरान्त ईशने हँस कर कहा जो कि साक्षात् पिनाकधारी भगवान् नील लोहित थे । उन्होंने जगतों के निर्माता पार्श्व में स्थित भगवान् जनार्दन की ओर देखकर ही ऐसा उत्तर दिया था ।।२७।। आप ऐसा क्यों कहते हैं जबकि आप स्वयं ही अपनी-अपनी भार्याओं के पोषण अत्यन्त समुत्सुक हो रहे हैं ? आप तो धर्म के ज्ञाता हैं और परम शान्त मन वाले भी हैं आपको तो मुझ से ऐसा नहीं कहना चाहिए कि भार्या का त्याग कर दो ।।२८।।

व्यभिचाररता भार्याः सन्त्याज्याः पतिनेरिताः ।
अस्माभिर्भक्ताः सुभगा नेदृशास्त्यागमर्हति ।।२९
न कदाचिदियं विप्रामनसाप्यन्यमिच्छति ।
नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामिकदाचन ।।३०
दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभिः पुरुषाधम ।
उक्तं ह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेवहि ।।३१
एवमुक्ते महादेवः सत्यमेव मयेरितम् ।
भवतां प्रतिभा ह्येषा त्यक्त्वासौ विचचारह ।।३२
सोऽगच्छद्धरिणासार्द्धंमुनीन्द्रस्यमहात्मनः ।
वसिष्ठस्याश्रमंपुण्यंभिक्षार्थीपरमेश्वरः ।।३३
दृष्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती ।
वसिष्ठस्य प्रियक्त्याप्रत्युद्गम्यननामतम् ।। ३४
प्रक्ष्याल्यपादोविमलं दत्वाचासनमुत्तमम् ।
सम्प्रेक्ष्यशिथिलं गात्रमभिघातहतंद्विजैः ।
सन्धयामास भैषज्यैर्विषण्णवदना सती ।।३५

ऋषि मुनियों ने कहा--जो भार्या व्यभिचार में रत हो वे पति के द्वारा भली-भाँति त्याग ही देनी चाहिए और हमारे द्वारा तो भक्ता और

सुभगा हैं जो कि त्याग के योग्य नहीं हैं ।।२९।। महादेवजी ने कहा—हे विप्रगण ! यह भी किसी समय में भी अन्य पुरुष को मन से भी नहीं चाहती है । इसलिये मैं भी इस भार्या को कभी नहीं छोड़ता हूँ ।।३०।। ऋषियों ने कहा—हे पुरुषों में अधम ! यहाँ पर ही व्यभिचार करती हुई इसको हमने देखा है । आपने इस समय में जो भी कुछ कहा है वह बिल्कुल असत्य है । आप यहाँ से शीघ्र ही चले जाइये ।।३१।। इस प्रकार से कहने पर महादेव जी ने कहा था कि मैंने तो बिल्कुल सत्य ही कहा है । यह आप लोगों की प्रतिभा ही है जो यह त्याग करके विचरण कर रही थी ।।३२।। वह फिर हरि के साथ महान् आत्मा वाले महामुनीन्द्र वसिष्ठजी के परम पवित्र आश्रम में भिक्षा की इच्छा वाले होकर परमेश्वर चले गये थे ।।३३।। वहाँ पर वसिष्ठ जी की पत्नी अरुन्धती ने आये हुए भिक्षमाण देव को देखा था और वह उनके सामने प्रत्युद्गमन करके पहुँची एवं उनको प्रणाम किया था ।।३४।। उनके चरणों को धोकर फिर विमल तथा उत्तम आसन उनको दिया था । द्विजों के द्वारा अभिघातों से आहत एवं शिथिल उनका शरीर देखा था । इस तरह से देखकर अरुन्धती बहुत ही विषाद युक्त मुख वाली हो गई थी और सती उस देवी ने औषधों के द्वारा उनका उपचार किया था ।।३५।।

चकार महतींपूजांप्रार्थयामासभार्यया ।
को भवान्कुतआयातः किमाचारो भवानिति ।
उच्यतामाह भगवान्सिद्धानाम्प्रवरो ह्यहम् ।।३६
यदेतन्मण्डलं शुभ्रंभादि ब्रह्ममयंसदा ।
एषवदेवता मह्यंधारयामि सदैव तु ।।३७
इत्युक्त्वाप्रययौश्रीमाननुगृह्यपतिव्रताम् ।
ताडयाञ्चक्रिरेदण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्विजाः ।।३८
दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतिलक्षणम् ।
प्रोचुरेतद्भवल्लिंगमुत्पाटय सुदुर्मते ! ।।३९
तानब्रवीन्महायोगीकरिष्यामीतिशंकरः ।
युष्माकं मामकेलिंगेयदिद्वेषोऽभिजायते ।।४०

उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान्भगनेत्रहा ।
नापश्यंस्तत्क्षणाच्चे शंकेशवं लिंगमेव च ।।४१
तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः ।
न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुनः ।
निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधिः ।।४२

फिर उस अरुन्धती देवी ने उनकी बहुत बड़ी पूजा की थी और उनसे प्रार्थना की थी कि भार्या के साथ आप कौन हैं ? कहाँ से आपने यहाँ पर पदार्पण किया है और आप का यह क्या आचार है ?—यह मुझे बतलाइये ! इस पर भगवान् ने कहा था कि मैं सिद्धों में प्रवर हूँ ।।३६।। जो यह परम शुभ्र सदा ब्रह्ममय मण्डल भाषित होता है । यह ही देवता है जिसको मैं सदा ही धारण किया करता हूँ ।।३७।। इतना कहकर तथा श्रीमान् ने उस पतिव्रता पर पूर्ण अनुग्रह करके वहाँ से फिर वह चले गये थे । द्विजों ने लोष्ठ और मुष्टियों से तथा दण्डों से ताड़ना की थी ।।३८।। इसी भाँति पूर्णतया नग्न और विकृत लक्षणों वाले भगवान् गिरिश को देखकर उन विप्रों ने उनसे कहा था—हे सुदुर्मत ! आप अपने इस चिह्न को उत्पाटित कर दो ।।३९।। महायोगी प्रभु शङ्कर ने उनसे कहा था—मैं ऐसा कर दूँगा । आप लोगों को मेरे इस लिङ्ग में यदि द्वेष होता है तो मैं ऐसा कर डालूँगा ।।४०।। यह कहकर भग के नेत्रों का हनन करने वाले भगवान् ने उसे उत्पाटित कर दिया था । उसी क्षण उन्होंने फिर उन ईश को—केशव को और उस लिङ्ग को नहीं देखा था ।।४१।। उसी समय में लोकों को भय समुत्पन्न करने वाले अर्थात् भय की सूचना देने वाले उत्पात होने लगे थे । सहस्रांशु भी शोभा नहीं दे रहा था तथा फिर पृथिवी भी हिलने लगी थी । समस्त ग्रह प्रभा से हीन होगये थे और समुद्र भी अत्यन्त क्षोभ से मुक्त होगया था ।।४२।।

अपश्यच्चानुसूयात्रेःस्वप्नं भार्यापतिव्रता ।
कथयामासविप्राणांभयादाकुलितेन्द्रिया ।।४३
तेजसा भासयन्कृत्स्नं नारायणसहायवान् ।
भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति ।।४४

तस्या वचनमाकर्ण्य शंकमाना महर्षयः ।
सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम् ॥४५

उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः ।
चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिः सावित्र्यासहितंप्रभुम् ॥४६

आसानमासनेरम्येनानाश्चर्यसमन्विते ।
प्रभासहस्रकलिलेज्ञानैश्वर्य्यादिसंयुते ॥४७

बिभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम् ।
चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं मरम् ॥४८

विलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम् ।
शिरोभिर्द्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम् ॥४९

इधर अत्रि महा मुनि की भार्या अनुसूया ने जो कि परम पतिव्रता थी एक स्वप्न देखा था । उसने उस स्वप्न का सारा हाल भय से आकुलित इन्द्रियों वाली होकर विप्रों से कहा था ॥४३॥ तेज से समस्त विश्व को भाषित करते हुए नारायण प्रभु की सहायता वाले भिक्षाटन करते हुए वह साक्षात् प्रभु शिव ही थे जो निश्चित रूप से हम लोगों के घरों में देखे गये थे ॥४४॥ उस अनुसूया देवी इस वचन का श्रवण करके सभी महर्षि गण परम शंका से युक्त मन वाले होते हुए महायोग विश्व सम्भव ब्रह्माजी के समीप पहुंचे थे ॥४५॥ वहाँ पर ब्रह्माजो निर्मल ब्रह्म के वेत्ता योगियों के द्वारा उपास्यमान थे तथा मूर्तिमान् चारों वेदों के द्वारा भी समुपासित हो रहे थे । ब्रह्माजी सावित्री देवी के साथ में विराजमान । तथा अनेक आश्चर्यों से समन्वित अति सुरम्य आसन पर विराजमान थे । सहस्रों प्रभा की धाराओं से कलिल एवं ज्ञान और आश्चर्य आदि से संयुत वह आसन था । अपने वपु से विभ्राजमान—स्मित से युक्त—शुभ्रलोचनों वाले—चार मुखों से युक्त—महान बाहुओं से संयुत—छन्दोमय परम अज थे । ऐसे देव वपु वाले—शुचि और प्रसन्न मुख से युक्त ब्रह्माजी का दर्शन करके उन समस्त विप्रगणों ने भूमि पर अपना शिर लगाकर ईश्वर को तुष्ट किया था ॥४६-४९॥

तान्प्रसन्नोमहादेवश्चतुर्मूर्त्तिश्चतुर्मुखः ।
व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम् ॥५०
तत्तस्य वृत्तमखिलंब्रह्मणःपरमात्मनः ।
ज्ञापयाञ्चक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसिचाञ्जलिम् ॥५१
कश्चिद्दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः ।
भार्य्ययाचारुसर्वांगया प्रविष्टो नग्नएवाह ॥५२
मोहयामास वपुषा नारीणांकुलमीश्वरः ।
कन्यकानांप्रियोयस्तुदूषयामासपुत्रकान् ॥५३
अस्माभिर्विविधाः शापाः(वाताःप्रदत्ताः) प्रवृत्तास्ते पराहताः ।
ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिंगन्तु विनिपातितम् ॥५४
अन्तर्हितश्च भगवान्सभार्यो लिंगमेव च ।
उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयंकराः ॥५५
क एष पुरुषो देवः भीताः स्मः पुरुषोत्तम !।
भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत !॥५६

उन पर परम प्रसन्न होकर चार मुखों वाले—चार मूर्त्ति से युक्त महादेव ने कहा—हे श्रेष्ठ मुनि गणो ! यहाँ पर आप लोगों के आगमन करने का क्या कारण है—वह मुझे बतलाओ । उन परमात्मा ब्रह्मा का सम्पूर्ण वृत्त सभी ने मस्तक पर अपनी अञ्जलि करके ज्ञापित किया था ॥५०-५१॥ ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! परम पुण्यमय दारुवन में कोई अत्यन्त शोभा से सुसम्पन्न पुरुष परम सुन्दर अङ्गों वाली भार्या के साथ नग्न स्वरूप वाला प्रविष्ट हुआ था ॥५२॥ उस ईश्वर ने अपने सुन्दर वपु के द्वारा वहाँ की समस्त नारियों के कुल को मोहित कर दिया था । वह कन्याओं का भी प्रिय होगया था और उसने पुत्रों को भी दूषित कर दिया था ॥५३॥ हम लोगों ने उनको अनेक प्रकार के शाप दिये थे । वे पराहत होते हुए प्रवृत्त हुए थे । हम लोगों ने उनको ताड़ित भी किया था तथा उनका लिङ्ग विनिपातित कर दिया था ॥५४॥ वहाँ से वह भगवान् अपनी भार्या के सहित ही अन्तर्धान होगये थे और वह लिङ्ग भी अन्तर्हित होगया था । इसके अनन्तर वहाँ पर परम घोर तथा समस्त

प्राणियों को भयंकर अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे थे ॥५५॥ हे पुरुषोत्तम ! यह देव कौन थे ? हम सभी लोग अत्यन्त भीत होरहे हैं। हे अच्युत ! अब हम सभी आपकी ही शरणागति में समुपस्थित हुए हैं। ॥५६॥

त्वंहिवेत्सिजगत्यस्मिन्यत्किञ्चिदिह चेष्टितम् ।
अनुग्रहेण युक्तेन तदस्माननुपालय ॥५७

विज्ञापितोमुनिगणैर्विश्वात्माकमलोद्भवः ।
ध्यात्वादेवं त्रिशूलांकं कृताञ्जलिरभाषत ॥५८

हा कष्टम्भवतामद्य जातंसर्वार्थनाशनम् ।
धिग्बलंधिक्तपश्चर्या मिथ्यैव भवतामिह ॥५९

सम्प्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनांपरमंनिधिम् ।
उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिहनोहितैः ॥६०

कांक्षन्तेयोगिनोनित्यंयतन्तोयतयोनिधिम् ।
यमेव तं समासाद्यहाभवद्भिरुपेक्षितम् ॥६१

यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्तेर्वेदवादिनः ।
सहानिधि समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम् ॥६२

यमर्चयित्वासततंविश्वेशत्वमिदंमम ।
स देवोपेक्षितो दृष्ट्वा निधानम्भाग्यवर्जिताः ॥६३

आप तो इस जगत् में जो भी कुछ चेष्टित होता है उस सभी को भली भाँति जानते ही हैं। अब आप हमारे ऊपर अतीव अनुग्रह से युक्त होकर हम सबका अनुपालन करिए ॥५७॥ वह विश्व की आत्मा कमल से समुत्पन्न प्रभु ब्रह्माजी इस प्रकार से उन मुनिगणों के द्वारा जब विज्ञापित किये गये थे तो उन्होंने त्रिशूल के चिह्न वाले प्रभु देव का ध्यान करके हाथ जोड़कर के यह कहा था ॥५८॥ ब्रह्माजी ने कहा—हाय-हाय ! बड़े ही कष्ट की बात है। आज आप लोगों का सभी अर्थ का नाश होगया है। आप की इस तपश्चर्या को भी धिक्कार है धिक्कार है। यह तपस्या करना भी सब आपका मिथ्या ही है। इसमें कोई भी सार वाली बात

नहीं है ॥५९॥ परमाधिक पुण्यों के संस्कार से ही निधियों के भी परम निधि को आप लोगों ने प्राप्त करके भी वृथा आचार वाले तथा मोहित होकर आप लोगों ने उस महानिधि की उपेक्षा कर दी थी ॥६०॥ बड़े-बड़े यति लोग योगाभ्यास करने वाले नित्य ही अत्यन्त यत्न करते हुए भी जिनके प्राप्त करने के तथा दर्शन करने के लिये इच्छा किया करते हैं उन्हीं महाप्रभु को आप लोगों ने अनायास ही प्राप्त करके भी बड़े ही दुःख की बात है कि उनकी इस तरह उपेक्षा करदी थी ॥६१॥ वेदों का पाठ एवं अध्ययन करने वाले मनीषीगण जिनकी प्राप्ति के लिये विविध प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं। ऐसी उस महान् निधि को अनायास ही अपने ही घरों तथा आश्रमों में प्राप्त करके आप लोगों ने उनकी उपेक्षा कर दी थी—हाय ! यह बहुत ही दुःख की बात है ॥६२॥ जिन महाप्रभु का ही अभ्यर्चन करके मेरा यह विश्वेशत्व वह मुझे प्राप्त हुआ है। उसी देव की आप लोगों ने स्वयं दर्शन पाकर भी जो महानिधि स्वरूप है उपेक्षा करदी है। यह ज्ञात होता है कि आप सभी लोग बहुत ही भाग्य हीन अभागे हैं ॥६३॥

यस्मिन्समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत्तदव्ययम् ।
तमासाद्य निधिं ब्रह्म हा भवद्भिर्वृथाकृतम् ॥६४
एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः ।
न तस्य परमं किञ्चित्पदं समभिगम्यते ॥६५
देवतानामृषीणां वा पितॄणाञ्चापिशाश्वतः ।
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम् ॥६६
संहरत्येष भगवान्कालो भूत्वा महेश्वरः ।
एष चैव प्रजाः सर्वाः सृजत्येष स्वतेजसा ॥६७
एष चक्री चक्रवर्त्ती श्रीवत्सकृतलक्षणः ।
योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ एव च ।
द्वापरे भगवान्कालो धर्मकेतुः कलौ युगे (भव) ॥६८
रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम् ।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वंविष्णुरिति स्मृतिः ॥६९

मूर्त्तिरन्यास्मृताचास्य दिग्वासा च शिवा ध्रुवा ।
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम् । ७०

जिस महापुरुष में यह सम्पूर्ण विश्व एवं दिव्य ऐश्वर्य समाहित है और जो अव्यय स्वरूप वाला है, हा ! हा ! उस महानिधि को भी आप लोगों ने प्राप्त करके वृथा कृत कर दिया है—यह अत्यन्त ही कष्ट की बात है ।।६४।। यह देव महादेव महेश्वर ही समझना चाहिए । उनके परम पद को कोई भी नहीं पा सकता है ।।६५।। देवों का—ऋषियों का और पितृगणों का भी जो शाश्वत पद है एक सहस्र युग पर्यन्त प्रलय काल में समस्त देह धारियों को यह महेश्वर भगवान् काल स्वरूप होकर संहार कर दिया करते हैं और यह ही समस्त प्रजा को अपने तेज से सृजन किया करते हैं ।।६६-६७।। यह ही श्रीवत्स द्वारा कृत लक्षण चक्रधारी चक्रवर्त्ती हैं । कृतयुग में योगी देव और त्रेतायुग में यज्ञ ही यह हैं ।।६८।। द्वापर में भगवान काल तथा कलियुग में धर्म केतु हैं ।।६८।। भगवान् रुद्र की तीन मूर्त्तियाँ हैं जिनके द्वारा ही यह सम्पूर्ण विश्व विस्तृत हो रहा है । तम अग्नि है—रजोगुण ब्रह्मा हैं और सत्त्व गुण विष्णु हैं—ऐसा स्मृति का कथन है ।।६९।। अन्य भी एक मूर्त्ति इनकी दिगम्बर बतायी गयी है वह ध्रुव तथा शिव है । जहां पर योग से समन्वित वह ब्रह्म स्थित रहा करता है ।।७०।।

याचास्य पार्श्वगा भार्याभवद्भिरभिभाषिता ।
सहिनारायणोदेवः परमात्मासनातनः ।।७१
तस्मात्सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयंव्रजेत् ।
स एषमोचयेत्कृत्स्नं स एषच परागतिः ।।७२
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
एकश्रृंगो महानात्मानारायण इतिश्रुतिः ।।७३
रेतोऽस्यगर्भोभगवानापोमायातनुःप्रभुः ।
स्तूयतेविविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्मोक्षकांक्षिभिः ।।७४
संहृत्यसकलं विश्वं कल्पान्ते पुरुषोत्तमः ।
शेते योगामृतं पीत्वा यत्र विष्णोः परम्पदम् ।।७५

न जायते न म्रियते वर्द्धते न च विश्वदृक् ।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता गीयते वैदिकैरजः ।।७६
ततो निशायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलञ्जगत् ।
अजनाभौतुतद्बीजंक्षिपत्येषमहेश्वरः ।।७७

जो इनके पार्श्व में इनकी भार्या जो आप लोगों के द्वारा अभिभाषिता है । वह ही नारायण देव हैं जो परमात्मा और सनातन हैं ।।७१।। इस लिये यह सब वहाँ पर ही समुत्पन्न हुआ है और वहीं पर लय को प्राप्त होगा । वही यह सबका मोचन किया करता है और वह ही सब की परा-गति भी है ।।७२।। यह भगवान् नारायण सहस्र शीर्षों वाले हैं ऐसे पुरुष हैं । इनके एक सहस्र नेत्र हैं तथा एक सहस्र पाद भी हैं । यह एक ही भृंग वाले महान् आत्मा हैं—ऐसा श्रुति कहती हैं ।।७३।। इनका रेत (वीर्य) गर्भ तया भगवान् है जिनका माया तनु है और प्रभु हैं । यह अनेक प्रकार के मन्त्रों के द्वारा स्तूयमान होते हैं जिनका स्तवन मोक्ष की आकाङ्क्षा रखने वाले ब्राह्मण लोग ही किया करते हैं ।।७४।। कल्प के अन्त में इस समस्त विश्व का संहार करके भगवान् पुरुषोत्तम योगामृत का पान करके शयन किया करते हैं जहाँ पर कि भगवान् विष्णु का परम पद है ।।७५।। यह सम्पूर्ण विश्व का द्रष्टा है और न तो यह कभी जन्म लिया करते हैं—न इनकी कभी भी मृत्यु ही होती है और न वर्द्धित होते हैं । यह मूल प्रकृति गायी जाया करती है तथा वैदिक लोगों के द्वारा इनको अज कहा जाता है । इसके पश्चात् जब निशा काल इनका समाप्त हो जाता है और जिस समय में इस सम्पूर्ण जगत् के सृजन करने की इच्छा वाले यह होते हैं तो यही भगवान् महेश्वर उस अज की नाभि में बीज को प्रक्षिप्त कर दिया करते हैं ।।७६-७७।।

तं मां वित्त महात्मानं ब्रह्माणंविश्वतोमुखम् ।
महान्तं पुरुषं विश्वमपांगर्भमनुत्तमम् ।।७८
न तं जानीत जनकं मोहितास्तस्य मायया ।
देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम् ।।७९

एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान्हरः ।
विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च ॥८०
न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद्विद्यते परम् ।
स वेदान्प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम ॥८१
स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च ।
तमेवमुक्तयेज्ञात्वा व्रजध्वंशरणंशिवम् ॥८२
इतीरिता भगवतामरीचिप्रमुखाविभुम् ।
प्रणम्य देवं ब्रह्माणंपृच्छन्तिस्मसमाहिताः ॥८३

उसको आप लोग मुझ को ही समझिये जो ब्रह्मा और मैं विश्वतोमुख हूँ । महान्—पुरुष—विश्व-अपांगर्भ और उत्तम हूँ ॥७८॥ उसकी माया से मोहित हुए उसको जनक नहीं जानते हैं वह देवों के देव—भूतों के ईश्वर हर महादेव हैं ॥७९॥ यही देव महादेव अनादि भगवान् हर हैं । यह विष्णु के साथ संयुक्त होकर रचना किया करते हैं और उसे विकृत भी कर दिया करते हैं ॥८०॥ उनका कुछ भी कार्य नहीं है और उनसे पर भी कोई नहीं है । योग माया के वपु वाले उन्होंने पूर्व में मुझ को वेदों को दिया था ॥८१॥ वह बहुत ही अद्भुत माया से समन्वित हैं । अपनी माया के द्वारा ही वह सभी कुछ बनाता—बिगाड़ता है । उनको ही मुक्ति प्राप्त करने के लिये जान कर अर्थात् उनके गुण स्वरूप पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके उन्हीं शिव की शरणागति में जाना चाहिए ॥८२॥ इस प्रकार से यह भगवान् के द्वारा कहे गये मरीचि प्रमुख ऋषिगण विभु देव ब्रह्मा को प्रणाम करके परम समाहित होते हुए उन से पूछने लगे थे ॥८३॥

३९—देवदारुवनप्रवेशवर्णन

कथं पश्येम तं देवं पुनरेवपिनाकिनम् ।
ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम् ॥१
यद्दृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम् ।
तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम् ॥२

पूजयध्वं सपत्नीकाः सादरं पुत्रसंयुताः ।
वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिणः ॥३
संस्थाप्यशाङ्करैर्म्मन्त्रैऋग्यजुःसामसम्भवैः ।
तपःपरंसमास्थायगृहन्तःशतरुद्रियम् ॥४
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः बन्धुभिः ।
सर्वे प्राञ्जलयोभूत्वा शूलपाणिप्रपद्यथ ॥५
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्द्दर्शमकृतात्मभिः ।
यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति ॥६
ततः प्रणम्य वरदं ब्रह्माणममितौजसम् ।
जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः ॥७

मुनिगण ने कहा—हे विश्व के अमरों के देव ! आप तो शरणागति में आने की इच्छा रखने वालों के त्राण करने वाले हैं। अब कृपा कर हम लोगों को यह बतलाइये उन पिनाक के धारण करने वाले देव को पुनः हम लोग कैसे देखें उनके दर्शन का अब क्या साधन हो सकता है ॥१॥ ब्रह्माजी ने कहा—आप लोगों ने जो निपातित भूमि में उनके लिङ्ग को देखा है उसी लिङ्ग के अनुकरण वाला एक उत्तम लिङ्ग की रचना कराइये ॥२॥ फिर आप सभी लोग अपनी पत्नियों को साथ में लेकर तथा पुत्रों से भी समन्वित होकर आदर के साथ वैदिक विविध नियमों के द्वारा ब्रह्मचारी रहकर अभ्यर्चन करें ॥३॥ ऋग्वेद—यजुर्वेद और साम वेद के शङ्कर मन्त्रों से संस्थापन करके परोत्कृष्ट तप में समस्थित होवे और गृह के भीतर शतरुद्रिय करे। पुत्रों के सहित तथा समस्त बन्धु वर्ग के साथ परम समाहित होकर पूजा करिये। सभी लोग प्राञ्जलि हो जावें और शलपाणि प्रभु की शरण में प्रपन्न हो जाइये ॥४-५॥ इसके पश्चात् ही आप लोग अकृतात्माओं के द्वारा बहुत ही दुर्दर्श देवेश्वर का दर्शन प्राप्त करेंगे। जिन प्रभु का दर्शन करके सम्पूर्ण अज्ञान और अधर्म का विनाश हो जाया करता है ॥६॥ इसके अनन्तर वरदान के प्रदान करने वाले अपरिमित ओज वाले ब्रह्मा को वे सब लोग प्रणाम करके पुनः दारुवन को बहुत ही प्रसन्न मन वाले होते हुए चले गये थे ॥७॥

आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा ।
अजानन्तःपरं भावं वीतरागाविमत्सराः ॥८
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानांगुहासु च ।
नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषुच ॥९
शैवालभोजनाः केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः ।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादांगुष्ठे ह्यधिष्ठिताः ॥१०
दन्तोऽलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथापरे ।
शाकपर्णाशिनाः केचित्सम्प्रक्षाला मरीचिपाः ॥११
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे ।
कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तोमहेश्वरम् ॥१२
ततस्तेषां प्रसादार्थं प्रपन्नार्त्तिहरो हरः ।
चकार भगवान्बुद्धिं बोधयन्वृषभध्वजः ॥१३
देवः कृतयुगे ह्यस्मिच्छृङ्गे हिमवतः शुभे ।
देवदारुवनम्प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः ॥१४

उन सभी ऋषियों ने फिर जिस प्रकार से ब्रह्माजी ने बतलाया था उसी विधि-विधान से आराधना करना आरम्भ कर दिया था । यद्यपि ये सब उस परम भाव को नहीं जानते थे किन्तु सभी वीतराग और मात्सर्य का त्याग करके समाराधन करने लगे थे ॥८॥ विचित्र प्रकार के स्थण्डिलों में और पर्वतों की गुहाओं में तथा नदियों के परम एकान्त स्थानों में और शुभ पुलिनों में समवस्थित होकर आराधना कर रहे थे ।९। कुछ लोग तो केवल शैवाल ही का अशन किया करते थे कुछ जल के अन्दर स्थित होकर आराधना करने वाले थे । कुछ अभ्रावकाश वाले थे तो कतिपय लोग पैर के अँगूठे के बल पर ही अधिष्ठित होकर करनें वालें थे ॥१०॥ कुछ उनमें दन्तों के ही उलूखल वाले थे और दूसरें पाषाण कुट्ट थे । कतिपय लोग केवल शाक तथा पत्रों का ही अशन करने वाले थें कुछ सम्प्रक्षाल मरीचि पान करने वाले थे ॥११॥ वे सभी वृक्षों के मूल में निकेत बना कर रहा करते थे तथा कुछ दूसरें ऐसे थे जो शिलाओं की शय्या पर शयन किया करते थें । इसी प्रकार सें काल का यापन करते

हुए तपश्चर्या के द्वारा भगवान् महेश्वर का पूजन कर रहे थे ।।१२।। इसके उपरान्त प्रपन्नों की आर्त्ति का हरण करने वाले भगवान् हर ने उन सबके ऊपर प्रसाद करने के लिये वृषभध्वज ने बोधित होते हुए ऐसी मति की थी ।।१३।। हिमवान् गिरिराज के शुभ इस शृङ्ग पर कृतयुग में देवेश्वर परमेश्वर ने प्रसन्न होते हुए देव दारुवन में प्राप्ति की थी ।।१४।।

भस्मपाण्डुरदिग्धाङ्गो नग्नो विकृतलक्षणः ।
उल्मूकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिङ्गललोचनः ।। १५
क्वचिच्च हसतेरौद्रं क्वचिद्गायतिविस्मितः ।
क्वचिन्नृत्यतिशृङ्गारीक्वचिद्रौतिमुहुर्मुहुः ।।१६
आश्रमे ह्यटते भिक्षुर्याचते च पुनः पुनः ।
मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागतः ।।१७
कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पार्श्वेदेवः पिनाकधृक् ।
साचपूर्ववद्देवेशी देवदारुवनङ्गता ।।१८
दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्दिनम् ।
प्रणेमुः शिरसा भूमौतोषयामासुरीश्वरम् ।।१९
वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैःर्माहेश्वरैः शुभैः ।
अथर्वशिरसाचान्ये रुद्राद्यैरर्चयन्भवम् ।।२०
नमो देवाधिदेवाय महादेवाय ते नमः ।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे ।।२१

जिस समय में यह प्रभु उस देव दारुवन में पदार्पण कर रहे थे इनका सम्पूर्ण अङ्ग भस्म से पाण्डुर वर्ण वाला था—नग्न स्वरूप था और अतीव विकृत लक्षणों से युक्त थे । यह उल्मूक से व्यग्र हाथों वाले थे और इनके लोचन रक्त एवं पिङ्गल वर्ण वाले हो रहे थे ।।१५।। कभी-कभी तो यह हँसते थे—कभी परम विस्मित होकर रौद्र गायन किया करते थे । किसी समय में शृङ्गारी प्रभु नृत्य करने लगते थे और कभी-कभी बारम्बार रुदन करने लगते थे ।।१६।। इसी जाति–विधि से महेश्वर भिक्षु के स्वरूप में पुनः पुनः आश्रम में अटन करते थे और याचना किया करते थे । इस

रीति से अपने रूप को माया से बनाकर वह देवेश्वर उस वन में समागत हुए थे ॥१७॥ पिनाक धारी देव ने गिरि की सुता गौरी को अपने पार्श्व में कर रक्खा था। वह देवेशी भी पहिली ही भाँति उस देव दारुवन में प्राप्त हुई थी ॥१८॥ इस रीति से समायात देवी के साथ कपर्द्दी देव का दर्शन करके सबने भूमि में शिर का स्पर्श कराकर प्रणाम किया था तथा ईश्वर का स्तवन भी किया था ॥१९॥ अनेक प्रकार के वैदिक मन्त्रों से—स्तोत्रों से तथा माहेश्वर परम शुभ मन्त्रों से उनकी स्तुति की थी। अन्य लोग अथर्ववेद के शिर से तथा रुद्रादि के द्वारा भगवान् भव का अर्चन करते थे ॥२०॥ स्तवन का प्रकार यही था—देवों के भी अधिदेव महादेव आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित है। त्र्यम्बक तथा त्रिशूल वरधारो आपके लिये नमस्कार है ॥२१॥

नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने।
सर्वप्रणतदेवाय स्वयमप्रणतात्मने ॥२२
अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च।
नमोऽस्तु नृत्यलीलाय नमो भैरवरूपिणे ॥२३
नरनारीशरीराय योगिनां गुरुवे नमः।
नमो दान्ताय शान्ताय तापसाय हराय च ॥२४
विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमस्ते लेलिहानाय श्रीकण्ठाय च ते नमः ॥२५
अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः।
नमः कनकमालाय देव्या प्रियकराय च ॥२६
गङ्गासलिलधाराय शम्भवे परमेष्ठिने।
नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः ॥२७
प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्माङ्गधारिणे।
नमस्ते हव्यवाहायदंष्ट्रिणे हव्यरेतसे ॥२८

दिशाओं के ही वसन धारण करने वाले अर्थात् नग्न स्वरूपी—विकृत और पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले आपको प्रणाम है। सभी देवगण जिनके समक्ष में प्रणत हैं और स्वयं अप्रणत आत्मा

वाले प्रभु के लिये प्रणाम है ।।२२।। अन्त यमक भी अन्त कर देने वाले तथा सभी का संहार कर देने वाले आपको नमस्कार है । नृत्य की लीला करने वाले प्रभु की सेवा में नमस्कार है तथा भैरव रूप वाले को हमारा प्रणाम है ।।२३।। नर और नारी दोनों के अर्ध नारीश्वर स्वरूप वाले तथा योगियों के परम गुरुदेव के लिये प्रणाम है । परम दान्त—अत्यन्त ही शान्त और सर्वोत्कृष्ट तापस हर के लिये नमस्कार है ।।२४।। विभीषण तथा चर्म का वसन धारण करने वाले रुद्र के लिये नमस्कार है । लेलिहान को प्रणाम है । श्री कण्ठ आपकी सेवा में प्रणाम अर्पित है ।।२५।। अघोर घोर रूप वाले वामदेव प्रभु को नमस्कार है । कनक की माला वाले और देवी के प्रिय का समाचरण करने वाले प्रभु को नमस्कार है ।।२६।। गङ्गा के सलिल को धारण करने वाले—शम्भु—परमेष्ठी—योग के अधिपति तथा भूतों के अधिपति प्रभु के लिये नमस्कार है ।। २७ ।। प्राण स्वरूप आपके लिये नमस्कार है । अपने सम्पूर्ण अङ्गों पर भस्म धारण करने वाले आपको नमस्कार है । हव्यवाह—दंष्ट्री और हव्यरेता आपकी सेवा में प्रणाम अर्पित है ।।२८।।

ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे ।
आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैवच ।।२९
विश्वेश्वर! महादेव! योऽसि सोऽसि नमोऽस्तुते ।
नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसम्पदाम् ।।३०
कतालपाणये तुभ्यं नमोजुष्टतमाय ते ।
नमः कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः ।।३१
नमो वह्न्यर्कलिंगाय ज्ञानलिंगाय ते नमः ।
नमो भुजङ्गहाराय कर्णिकारप्रियाय च ।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः ।।३२
महादेव ! महादेव ! देवदेव ! त्रिलोचन ! ।
क्षम्यतां यत्कृतं मोहात्त्वमेव शरणं हि नः ।।३३
चरितानि विचित्राणि गुह्यानिगहनानि च ।
ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयोहिशङ्करः ।।३४

अज्ञानाद्यदि वाज्ञात्किञ्चिद्यः कुरुते नरः ।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया ॥३५

ब्रह्मा के शिर का हरण करने वाले काल रूपी आपको हमारा प्रणाम है । हम लोग आपकी आगति का ज्ञान नहीं रखते हैं और आपकी गति को भी हम नहीं जानते है ॥२९॥ हे विश्वेश्वर ! हे महादेव ! आप जो भी कोई स्वरूप वाले हों सो होवें हमारा आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित है । प्रमथों के नाथ तथा शुभ सम्पदाओं के दाता प्रभु आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है ॥३०॥ हाथ में कपाल रखने वाले आप को नमस्कार है और जुष्टतम अर्थात् परमोत्कृष्ट सेवित आपको हमारा नमस्कार है । कनक के समान पिङ्गल वर्ण वाले और वारिलिङ्ग आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है ॥३१॥ वह्नि और सूर्य के लिङ्ग वाले तथा ज्ञान के चिह्न वाले आपको नमस्कार है । भुजङ्गों का हार धारण करने वाले और कर्णिकार को प्रिय मानने वाले आपकी सेवा में हमारा प्रणाम अर्पित है ॥३२॥ किरीट धारी और कुण्डलों के पहिनने वाले तथा काल के भी काल आपके लिये हम सबका प्रणाम समर्पित है । हे देव ! हे महादेव ! हे देवों के भी देव ! हे त्रिलोचन ! हम लोगों ने मोह के वशीभूत होकर जो कुछ भी आपका अपराध किया था और अवमान कर चुके थे उसे अब आप कृपा करके क्षमा कर दीजिए । हमारे आप ही शरण अर्थात् त्राता हैं । ॥३३॥ हे भगवन् ! आपके चरित्र तो परम अद्भुत हैं—अत्यन्त गुह्य (गोपनीय) है और अतीव गहन है । हम लोग तो विचारे वस्तु ही क्या हैं आप तो भगवान् शङ्कर ऐसे हैं जो ब्रह्मा से आदि लेकर बड़े-बड़े सबके ही दुर्विज्ञेय हैं ॥३४॥ यदि अज्ञान से अथवा ज्ञान से जो कुछ भी मनुष्य किया करता है वह सब कुछ भगवान् ही अपनी योग माया के द्वारा किया करते हैं मनुष्य की तो कुछ भी शक्ति नहीं है ॥३५॥

एवं स्तुत्वा महादेवं प्रविष्टैरन्तरात्मभिः ।
ऊचुःप्रणम्यगिरिशंपश्यामस्त्वांयथापुरा ॥३६
तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोमः सोमविभूषणः ।
स्वयमेव परंरूपं दर्शयामास शङ्करः ॥३७

तं ते दृष्ट्वाथगिरिशंदेव्यासह पिताकिनम् ।
यथापूर्वस्थिता विप्राःप्रणेमुर्हृष्टमानसाः ॥३८

ततस्तेमुनयः सर्वे संस्तूय च चहेश्वरम् ।
भृग्वङ्गिरा वसिष्ठस्तुविश्वामित्रस्तथैवच ॥३९

गौतमोऽत्रिः सुकेशश्चपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ।
मरीचिःकश्यपश्चापिसम्वर्त्तकमहातपाः ।
प्रणम्य देवदेवशमिदं वचनमब्रुवन् ॥४०

कथं त्वां देवदेवेश ! कर्मयोगेनवा प्रभो ।
ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सदैव हि ॥४१

केन वा देवमार्गेण सम्पूज्योभगवानिहः ।
किं तत्सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद्ब्रवीहिनः ॥४२

इस प्रकार से प्रविष्ट अन्तरात्माओं के द्वारा महादेव की स्तुति करके उन्होंने भगवान् गिरिश को प्रणाम किया था और कहा था—हम सब आपको पहिले की भाँति ही देख रहे हैं ॥३६॥ उन सबके इस प्रकार संस्तव का समाकर्ण न करके सोम के विभूषण वाले सोम शङ्कर प्रभु ने स्वयमेव ही अपना पर स्वरूप उनको दिखला दिया था ॥३७॥ उन सबने देवी के साथ पिनाकधारी गिरिश का दर्शन प्राप्त करके जिस प्रकार से पहिले स्थित थे विप्रों ने परम प्रसन्न मन वाले होकर पुनः उनको प्रणाम किया था ॥३८॥ इसके अनन्तर उन समस्त मुनियों ने महेश्वर की भली भाँति स्तुति की थी । फिर भृगु—अङ्गिरा—वसिष्ठ—विश्वामित्र–गौतम–अत्रि—सुकेश—पुलस्त्य—पुलह—क्रतु–मरीचि–कश्यप और महातपस्वी सम्वर्त्तक इन सबने प्रणाम करके देवदेवेश से यह वचन कहा था ॥३९-४०॥ हे प्रभो ! हे देवदेवेश ! हम सब कर्म योग से अथवा ज्ञान से या योग से सदैव ही कैसे आपकी पूजा किया करें ॥४१॥ इस लोक में आप किस देव मार्ग से सम्पूज्य होते हैं । आपका क्या तो सेवन करने योग्य है और क्या नहीं सेवन के योग्य है—यह सभी कुछ हमको कृपा करके आप बतलाइये ॥४२॥

एतद्वः सम्प्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम् ।
ब्रह्मणा कथितम्पू महादेवेवं महर्षयः ।।४३
साङ्ख्ययोगाद् द्विधा ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम् ।
योगेन सहितं साङ्ख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम् ।।४४
न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुषः परः ।
ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम् ।।४५
भवन्तःकेवलं योगं समाश्रित्यकिमुक्तये ।
विहाय साङ्ख्यं विमलमकुर्वतपरिश्रमम् ।।४६
एतस्मात्कारणाद्विप्रा नृणां केवलकर्मणाम् ।
आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन्मोहसम्भवम् ।।४७
तस्माद्भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम् ।
ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च ।।४८
एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रकः ।
आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै साङ्ख्यदर्शनम् ।।४९

देवों के देव ने कहा—यह सब मैं परम गूढ़ गहन तथा उत्तम विषय आपको बतलाऊंगा । हे महर्षिगणो ! पहिले ब्रह्माजी ने महादेव के विषय में कहा था ।।४३।। सांख्य और योग से पुरुषों का साधन दो प्रकार का हो गया है । ऐसा ही जानना चाहिए । योग के साथ जो साङ्ख्य योग के सहित ही पुरुषों को विमुक्ति का प्रदान करने वाला ऐसा है ।।४४।। केवल योग से पर पुरुष के दर्शन नहीं हुआ करते हैं । ज्ञान तो केवल अपवर्ग के फल का ही प्रदान करने वाला है ।।४५।। आप सभी लोग तो केवल योग का ही समाश्रय लेकर विमुक्ति की प्राप्ति करना चाहते हैं । आप लोग सांख्य का परित्याग करके विमल परिश्रम किया है । हे विप्रगण ! इसी कारण से केवल कर्म सेवी नरों के ज्ञान के लिये ही मेरा यहाँ आगमन है ।।४६।। मैं इस देश में मोह के हो जाने वाले को जताने के लिये ही आया हूं ।।४७।। इसलिये आप लोगों के द्वारा किया विमल ज्ञान कैवल्य का ही साधन है वह भी प्रयत्न पूर्वक जानना चाहिए और श्रवण भी करना चाहिए तथा देखना भी चाहिए ।।४८।। यह आत्मा एक ही है

जो सर्वत्र ही गमन करने वाला है और केवल चिन्मात्र ही होता है। यह आनन्द स्वरूप है—निर्मल है—नित्य है—यही सांख्य दर्शन होता है ॥४६॥

एतदेव परं ज्ञानमथ मोक्षोऽनुगीयते ।
एतत्कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णितः ॥५०
आश्रित्य चैतत्परमं तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम् ॥५१
एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम् ।
अहं हि वेद्यो भगवान्मम मूर्त्तिरियं शिवा ॥५२
बहूनिसाधनानीह सिद्धये कथितानि तु ।
तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गवाः ॥५३
ज्ञानयोगरताःशान्तामामेवशरणङ्गताः ।
ये हि मां भस्मनि रता ध्यायन्ति सततंहृदि ॥५४
मद्भक्तितत्परा नित्यंयतयः क्षीणकल्मषाः ।
नाशयाम्यचिरात्तेषां घोरं संसारगह्वरम् ॥५५
निर्म्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं शुभम् ।
गुह्याद्गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये ॥५६

यही पर ज्ञान है। इसके अनन्तर अब मोक्ष के विषय में अनुगान किया जाता है। यह अमल कैवल्य है और ब्रह्मभाव तो वर्णित कर दिया गया है ॥५०॥ इसका ही परम समाश्रय ग्रहण करके उसमें ही निष्ठा रखने वाले तथा उसी में तत्पर रहने वाले महान् आत्मा वाले यति लोग विश्वरूप ईश्वर मुझ को देखा करते हैं अर्थात् मेरा दर्शन प्राप्त करते हैं ॥५१॥ यह परम उसका ज्ञान केवल सन्निरञ्जन है। मैं ही भगवान् जानने के योग्य हूँ और मेरी मूर्त्ति यही शिवा है ॥५२॥ यहाँ पर सिद्धि की प्राप्ति के लिये बहुत-से साधन कहे गये हैं। हे द्विज श्रेष्ठो ! उन समस्त साधनों में मुझ से सम्बन्ध रखने वाला अर्थात् मेरा जो ज्ञान होता है वही सब से अधिक महत्त्व पूर्ण होता है ॥५३॥ जो पुरुष ज्ञान—योग में रत—शान्त स्वभाव वाले होते हैं वे मेरी ही शरण में गत हुआ करते

हैं। जो मुझ को ही भस्म में रति रखने वाले होते हैं वे निरन्तर अपने हृदय में मेरा ध्यान किया करते हैं ।।५४।। मेरी भक्ति में तत्पर यति लोग नित्य.ही क्षीण कल्मष वाले होकर स्थित हो जाते हैं। मैं उनके परम घोर संसार के गह्वर को बहुत ही शीघ्र अर्थात् तुरन्त ही नष्ट कर दिया करता हूँ ।।५५।। मैंने सबसे पूर्व पाशुपत शुभ व्रत का निर्माण किया था जो कि गोपनीय से भी गोपनीय तम है तथा परम सूक्ष्म और वेदों का सार स्वरूप है जो विमुक्ति के लिये होता है अर्थात् पाशुपत से विमुक्ति हो जाया करती है ।।५६।।

प्रशान्तः संयतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः।
ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतञ्चरेत् ।।५७

यद्वाकौपीनवसनःस्यादेकवसनोमुनिः।
वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पशुपतिंशिवम् ।।५८

एषपाशुपतोयोगःसेवनीयोमुमुक्षुभिः।
तस्मिन्स्थितैस्तुपठितंनिष्कामैरितिहिश्रुतम् ।।५९

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः ।।६०
अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु।
वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु ।।६१
वामं पाशुपतं सोमं लाकुरञ्चैव भैरवम्।
असेव्यमेतत्कथितं वेदवाह्यं तथेतरम् ।।६२
वेदमूर्त्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः।
ज्ञायते मत्स्वरूपन्तु मुक्त्वा देवं सनातनम् ।।६३

पाशुपत व्रत को करने के लिये सब से प्रथम तो मानव को परम प्रशान्त होना चाहिए तथा संयत मन वाला होकर भस्म से उद्धूलित शरीर वाला—ब्रह्मचर्य व्रत में रत रहने वाला एवं नग्न होकर इस पाशुपत व्रत का समाचरण करना चाहिए ।।५७।। अथवा पूर्ण नग्न न रहे तो केवल एक ही कौपीन का वस्त्र रखने वाला होकर रहे। ऐसा एक ही

वस्त्र धारण करने वाला मुनि वेदों के अभ्यास में रति रखने वाला होकर विद्वान् पुरुष को पशुपति भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए ।।५८।। जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले हों ऐसे मुमुक्षाओं को यही पाशुपत योग सेवन करना चाहिए । उसमें स्थित तथा कामना से रहितों के द्वारा ही पाठ करना चाहिए यही श्रुत है ।।५९।। राग और क्रोध का त्याग कर देने वाले—मुझ में ही पूर्णतया संलग्न—मेरा ही उपाश्रय ग्रहण करने वाले लोग इस योग के द्वारा पवित्र हो गये थे और मेरे ही भाव को प्राप्त हो गये थे ।।६०।। अन्य जो बहुत से शास्त्र हैं वे सब इस लोक में मोहने वाले ही होते हैं जो वेदों के वाद के विरुद्ध हैं वे भी मेरे ही कथित हैं ।।६१।। वाम—पाशुपत—सोम—लकुट—भैरव—ये सब असंख्य हैं ऐसा कहा गया है तथा जो इतर भी वेदों के बाहिर होने वाले हैं—वे सब सेवन करने के योग्य नही हैं ।।६२।। हे विप्रगण ! मैं ही वेद मूर्ति हूँ—यह अन्य शास्त्रों के अर्थ को जानने वालों के द्वारा नहीं जाना जाता है वे लोग तो मेरे सनातन देव स्वरूप को छोड़ ही दिया करते हैं अर्थात् उनको मेरा सनातन स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता ही नहीं होती है ।।६३।।

स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम् ।
ततोऽचिराद्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति नसंशयः ।।६४

मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः !।
ध्यानमात्रं हि सान्निध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः ।।६५

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ।
तेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शङ्करम् ।।६६

ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः ।
समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः ।।६७

विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान् ।
किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि ।।६८

कोऽपिस्यात्सर्वभावानांहेतुरीश्वरएवच ।

इत्येवंमन्यमानानांध्यानमार्गावलम्बिनाम् ।
आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा ॥६९
कोटिसूर्यप्रताकाशा ज्वालामालासमावृता ।
स्वभाभिर्निर्मलाभिः सा पूरयन्ती नभस्तलम् ॥७०

अतएव इसी मार्ग की स्थापना करो और महेश्वर प्रभु का पूजन करो। इसका प्रभाव यह होगा कि फिर शीघ्र ही परम श्रेष्ठ ज्ञान समुत्पन्न हो जायगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६४॥ हे श्रेष्ठतमो ! आप लोगों में मेरी विपुल भक्ति होवे। हे मुनि श्रेष्ठो ! ध्यानमात्र से ही मैं अपना सन्निध्य दूंगा। इतना मात्र कह कर भगवान् सोम वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये थे। और फिर वे सब मुनीन्द्र गण भी उस दारुवन में समवस्थित होकर भगवान् शङ्कर की समर्चना किया करते थे ॥६५-६६॥ ब्रह्मचर्य व्रत में निरत होकर परम शान्त भावना से समन्वित और ज्ञान में परायण रहने वाले ब्रह्मवादी वे समस्त महान् आत्मा वाले मुनिगण एकत्रित होकर अपनी आत्मा के ज्ञान के समाश्रय वाले बहुत से वादों को किया करते थे कि इस जगत् का मूल क्या है और हम लोगों की आत्मा का क्या स्वरूप है ॥६७-६८॥ इन समस्त प्रकार के भावों का कोई स्वामी ईश्वर अवश्य ही होना चाहिए इसी प्रकार से मानने वाले तथा ध्यान मार्ग का अवलम्बन करने वालों के समक्ष में इसके उपरान्त ही गिरिवर की आत्मजा महादेवी वहाँ पर ही आविर्भूत हो गई थीं। इन देवी का स्वरूप करोड़ों सूर्यों के सदृश था और यह ज्वालाओं की माला से समावृत थीं तथा अपनी निर्मली आभाओं से पूर्ण नभस्तल को पूरित कर रहीं थीं ॥६९-७०॥

तामन्वपश्यद्गिरिजाममेयांज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम् ।
प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं जानन्ति चैतत्परमस्य बीजम् ॥७१
अस्माकमेषा परमस्य पत्नो गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना ।
पश्यन्त्यथात्मानमिदञ्च कृत्स्नं तस्यामथैते मुनयः प्रहृष्टाः ॥७२
निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या तदन्तरे देवमशेषहेतुम् ।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम् ॥७३

आलोक्य देवीमथ देवमीशं प्रणेमुरानन्दमवापुरग्रयम् ।
ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादादाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु ॥७४
इयं या सा जगतो योनिरेका सर्वात्मिका सर्वनियामिका च ।
माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा व्योमाभिधाना दिवि राजतीव ॥७५
अस्यां महान्परमेष्ठी परस्तान्महेश्वरः शिव एकः स रुद्रः ।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं मायामथारुह्य च देवदेवः ॥७६
एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च ।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति ॥७७

उस अमेय और सहस्रों ज्वालाओं के अन्दर सन्निविष्ट गिरिजा को उन सब मुनियों ने देखा था और फिर उन अखिलेश्वर प्रभु की पत्नी को सबने प्रणाम किया था क्योंकि इसको परम का बीज जानते थे ॥७१॥ यह हमारी परम की पत्नी—गति तथा गगन के अभिधान वाली आत्मा है। ये सब मुनिगण परम प्रहृष्ट होते हुए उसमें इस सम्पूर्ण को तथा आत्मा को देखते थे ॥७२॥ उन परमेश की पत्नी ने उन सब को देखा था और उसी बीच में इन सब ने अशेष के हेतु—कवि—ईशिता-वृहत्—पुराण पुरुष रुद्र देव शम्भु को देख लिया था ॥७३॥ इसके उपरान्त उन्होंने देवी और ईश देव को देख कर इनको प्रणाम किया था और बहुत ही उतम आनन्द को प्राप्त किया था। भगवान् की कृपा से (प्रसाद से) उनको ईश सम्बन्धी ज्ञान का आविर्भाव हो गया था जो कि जन्म के विनाश का हेतु होता है ॥७४॥ यह जो देवी है वह सम्पूर्ण जगत् की योनि अर्थात् उद्भव का स्थान है—यह एक ही है तथा सब की आत्मा और मन की नियामिका है। यही माहेश्वरी साक्षात् शक्ति है। यह अनादि सिद्ध—व्योम के अभिधान वाली दिव लोक में मानो विराजमान होकर शोभित हो रही है ॥७५॥ इसमें महान् परमेष्ठी—महेश्वर—परजात्—शिव—एक वह रुद्र हैं। वह देवों के देव ने माया में समारोहण करके इस परशक्ति निष्ठ विश्व की रचना की थी ॥७६॥ वह एक ही देव समस्त प्राणियों में गूढ़ रहा करते हैं—यह माया वाले हैं—रुद्र—कला से युक्त और निष्कल हैं वह ही देवी के भी स्वरूप में भी हैं उनसे

विभिन्न नहीं हैं—यह ही जान कर अमृतत्व को प्राप्त हुआ करते हैं ॥७७॥

अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो देव्या तयासह देवाधिदेवः ।
आराधयन्ति स्म तमादिदेवं वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम् ॥७८
एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम् ।
देवदारुवने पूर्वं पुराणेयन्मया श्रुतम् ॥७९
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः ।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्च्छान्तान्स याति परमां गतिम् ॥८०

वह देवों के अधिदेव भगवान् महेश उस देवी के साथ ही अन्तर्हित हो गये थे । फिर वनवासी गण आदि देव उनकी ही समाराधना करने लगे थे ॥७८॥ यह हमने भगवान् देवों के देव का सम्पूर्ण चेष्ठित आप लोगों को बतला दिया है जो पहिले देव दारुवन में हुआ था और जो मैंने पुराण में श्रवण किया था ॥७९॥ जो कोई भी मनुष्य इस दारुवन में किये गये रुद्र देव के चरित्र को पढ़ता है या नित्य ही श्रवण किया करता है वह मानव सभी प्रकार के पातकों से छुटकारा पा जाया करता है । अथवा जो कोई परम शान्त द्विजों को श्रवण कराता है वह परम गति को प्राप्त हुआ करता है ॥८०॥

४०—मार्कण्डेययुधिष्ठिरसम्वादमेंनर्मदामाहात्म्यवर्णन

एषा पुण्यमता देवी देवगन्धर्वसेविता ।
नर्मदालोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी ॥१
तस्याः शृणुध्वंमहात्म्यंमार्कण्डेयेन भाषितम् ।
युधिष्ठिरायतुशुभं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२
श्रुतास्ते विविधा धर्म्मास्तत्प्रसादान्महामुने !।
माहात्म्यञ्च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च ॥३
नर्म्मदासर्वतीर्थानांमुख्याहिभवतेरिता ।
तस्यास्त्विदानींमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिसत्तम ॥४

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता ।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥५

नर्मदायास्तुमाहात्म्यंपुराणे यन्मयाश्रुतम् ।
इदानींतत्प्रवक्ष्यामिश्रृणुष्वैकमनाःशुभम् ॥६

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥७

महर्षि सूतजी ने कहा—यह परम पुण्य शालिनी देवी है जो देवों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित है । यह समस्त लोकों में अति विख्यात और सब तीर्थों में अत्युत्तम नर्मदा नदी है ॥१॥ अब आप लोग सब उसी नर्मदा का माहात्म्य सुनो जिसको कि महामुनीन्द्र मार्कण्डेयजी ने कहा था और इसको राजा युधिष्ठिर को सुनाया था । यह नर्मदा का माहात्म्य परम शुभ तथा समस्त पापों को विनाश करने वाला है ॥२॥ राजा युधिष्ठर ने कहा—हे महामुने ! आपके प्रसाद से मैंने अनेक प्रकार के धर्मों का श्रवण किया है और प्रयाग राज का माहात्म्य भी श्रवण किया था तथा नाना तीर्थों के विषय में भी सुन लिया था ॥३॥ आपने यह कहा था कि नर्मदा नदी समस्त तीर्थों में प्रमुख एवं शिरोमणि तीर्थ है । हे श्रेष्ठ-तम ! अब इस समय में आप उस नर्मदा का माहात्म्य वर्णन करने के योग्य होते हैं अर्थात् उसका वर्णन कीजिए ॥४॥ महर्षिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह नर्मदा नदी सभी सरिताओं में परम श्रेष्ठ है और रुद्र के देह से ही यह विनिःसृत हुई है । यह समस्त प्राणियों को चाहे वे स्थावर हों या चर हों तार दिया करती है ॥५॥ पुराण में मैंने जो नर्मदा का माहात्म्य सुना है उसी को इस समय में मैं बतलाऊँगा । इस शुभ माहात्म्य को एक निष्ठ चित्त वाले होकर तुम श्रवण करो ॥६॥ कनखल में गङ्गा भागीरथी परम पुण्यमयी है और कुरुक्षेत्र में सरस्वती परम पुण्यशीला है । ग्राम में अथवा अरण्य में सर्वत्र ही नर्मदा पुण्यमयी होती है ॥७॥

त्रिभिः सारस्वतंतोयं सप्ताहाद्यामुनं जलम् ।
सद्यः पुनाति गांगेयंदर्शनादेव नार्मदम् ॥८

कलिंगदेशपश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्या त्रिषु त्रिलोकेषु रमणीया मनोरमा ॥९
सद्देवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः ।
तपस्तप्त्वातु राजेन्द्र सिद्धिं तु परमांगताः ॥१०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः ।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम् ॥११
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा ।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता ॥१२
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोटचस्तथैव च ।
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके ॥१३
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
सर्व्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्व्वभूतहिते रतः ॥१४
एवंशुद्धसमाचारोयस्तु प्राणान्परित्यजेत् ।
तस्यपुण्यफलं राजन्च्छ्रणुष्वावहितोऽनघ ॥१५

सरस्वती नदी का जल तीन दिन तक सेवन करने तथा स्नानोपस्पर्शनादि के द्वारा पवित्र किया करता है। सात दिन तक सेवन से यमुना का जल पवित्र करता है। गङ्गा भागीरथी का जल सेवन करते ही तुरन्त पवित्र करता है और नर्मदा के जल के दर्शन मात्र से शुद्धि होजाया करती है ॥८॥ कलिंग देश के पश्चार्द्ध में अमर कण्टक पर्वत में तीनों लोकों में पुण्यमयी—रमणीय और मनोरमा है ॥९॥ देव—असुर—गन्धर्वों के सहित ऋषि वृन्द तथा तापस लोग हे राजेन्द्र ! तपश्चर्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥१०॥ हे राजन् ! नियमों में स्थित इन्द्रियों को जीत कर अपने वश में रखने वाला मनुष्य उसमें वहाँ पर स्नान करके और एक रात्रि उपवास करके सौ कुलों को तार दिया करता है ॥११॥ यह उत्तम सरिता ऐसी है जिसका साग्र सौ योजन सुना जाया करता है। हे राजेन्द्र ! विस्तार से तो यह दो योजन आयत है ॥१२॥ उस अमर कण्टक पर्वत में साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ पर्वत के चारों ओर स्थित रहा करते हैं ॥१३॥ ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्ण परिपालन करने वाला जो

शुचि होकर रहता है वह और जो क्रोध को जीत लेने वाला है तथा समस्त इन्द्रियों को नियमित रखने वाला—सर्व प्रकार की हिंसा से अलग रहने वाला एवं सब ही प्राणियों की भलाई में रति रखने वाला पुरुष इस में निवास करे ॥१४॥ इस प्रकार से परम शुद्ध समाचरण शील पुरुष जो कोई वहाँ तीर्थ में अपने प्राणों से परित्याग कर देता है तो हे राजन् ! उसको जो पुण्य का फल होता है हे अनघ ! उसे परम सावधान् होकर श्रवण करो ॥१५॥

शतंवर्षसहस्राणिस्वर्गे मोदतिपाण्डव !।
अप्सरोगणसन्कीर्णोदिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥१६
दिव्यागन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः ।
क्रीडतेदिव्यलोके तुविबुधैः सहमोदते ॥१७
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टोराजाभवतिधार्मिकः ।
गृहंतु लभतेऽसौवैनानारत्नसमन्वितम् ॥१८
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम् ।
आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीशतसमन्वितम् ॥१९
राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवलभः ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं तत्र भोगसमन्वितः ॥२०
अग्निप्रवेशेऽथ जले वाथवानशने कृते ।
अनिर्वर्त्तिकागतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा ॥२१

हे पाण्डव ! ऐसा शुद्धाचरण वाला पुरुष जो इस परम पुण्यमय तीर्थ में प्राणत्याग करता है वह सौ सहस्र वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है । वहाँ स्वर्ग में उसे अप्सराओं तथा दिव्य स्त्रियों के द्वारा वह संकीर्ण और परिवारित रहा करता है ॥१६॥ उसका शरीर दिव्य गन्धों से अनुलिप्त और परम दिव्य पुरुषों से उप शोभित रहता है । दिव्य लोक में देव गणों से क्रीड़ा किया करता है और परम सुख को प्राप्त करता है ॥१७॥ फिर स्वर्गीय सुख के उपभोग की अवधि पूर्ण होती है तो वहाँ से परिभ्रष्ट होकर संसार में परम धार्मिक राजा होकर जन्मग्रहण करता है । यहाँ पर भी उसको ऐसा ही अत्युत्तम गृह मिलता है जो अनेक

प्रकार के रत्नों से समन्वित होता है ।।१८।। सांसारिक घर भी मणिमय दिव्य स्तम्भों से युक्त और हीरा एवं वैदूर्य मणियों से विभूषित ही प्राप्त होता है जिसमें शुभ्र आलेखा वाहन होते हैं तथा सैकड़ों दासियाँ रहा करती हैं जो परिचर्या किया करती हैं ।।१९।। यहाँ पर वह राजराजेश्वर श्री से सुसम्पन्न—समस्त स्त्री जन का बल्लभ होकर सभी भोगों से संयत रहकर साग्र सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है ।।२०।। अग्नि प्रवेश में जल में अथवा अनशन करने पर अम्बर में पवन की भाँति ही उसकी अनिर्वत्तिका गति हुआ करती है ।।२१।।

पश्चिमे पर्वततटेसर्वपापविनाशनः ।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।।२२
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा ।
दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्न संशयः ।।२३
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्यामहानदी ।
सरसार्जुनसञ्छन्नानातिदूरे व्यवस्थिता ।।२४
सा तु पुण्यामहाभागात्रिषुलोकेषुविश्रुता ।
तत्रकोटिशतंसाग्रंतीर्थानान्तुयुधिष्ठिर ।।२५
तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात् ।
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमांगतिम् ।।२६
द्वितीयातुमहाभागाविशल्यकरणीशुभा ।
तत्रतीर्थेनरःस्नात्वाविशल्योभवतिक्षणात् ।।२७
कपिला च विशल्या च श्रूयेते सरिदुत्तमे ।
ईश्वरेण पुराप्रोक्ते लोकानांहितकाम्यया ।।२८

उसी पर्वत के पश्चिम तट पर सभी पापों का विनाश करने वाला एक जलेश्वर नाम वाला ह्रद है जो तीनों लोकों में बहुत ही अधिक प्रसिद्धि प्राप्त किया हुआ है ।।२२।। वहाँ उस ह्रद पर पिंडों का प्रदान करने से तथा सन्ध्योपासना आदि कर्म करने से पितृगण दश सहस्र वर्ष तक तृप्त रहा करते हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।२३।। उस परम पुन्यमयी नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर एक कपिला नाम धारिणी महा

नदी है जो सरस अर्जुन वृक्षों से संच्छन्न है और निकट ही में व्यवस्थित रहती है ॥२४॥ वह नदी भी अतीव पुण्यमयी तथा महान् भाग वाली है और तीनों लोकों में इसका नाम भी विश्रुत है । हे युधिष्ठिर ! वहाँ पर साग्र सौ करोड़ तीर्थ हैं ॥२५॥ उस तीर्थ में जो वृक्ष भी समय की समाप्ति होजाने पर गिर जाया करते हैं और नर्मदा नदी के जल से उनका संस्पर्श प्राप्त होजाता है तो उन स्थावर वृक्षों की भी परम सुन्दर गति हो जाया करती है ॥२६॥ दूसरी भी एक वहीं पर महाभागा एवं परम शुभ नदी है जिसका नाम विशल्प करणी है । उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसी क्षण में विगत शल्य वाला होजाया करता है ॥२७॥ वहाँ पर कपिला और विशल्या ये दोनों अत्युत्तम नदियाँ सुनी जाती हैं ईश्वर के द्वारा प्राचीन समय में पहिले ही इनकी रचना लोगों के हित की कामना से कर दी गयी थी और बतला दिया था ॥२८॥

अनाशकन्तुयः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप !।
सर्वपापविशुद्धात्मारुद्रलोकेसगच्छति ॥२९
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत् ।
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्तिते ॥३०
सरस्वत्याञ्च गंगायांनर्मदायांयुधिष्ठिर !।
समं स्नानञ्च दानञ्च यथामेशङ्करीऽब्रवीत् ॥३१
परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके ।
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते ॥३२
नर्मदायां जलं पुण्यं फेनोर्मिसफलीकृतम् ।
पवित्रं शिरसा धृत्वासर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३३
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी ।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥३४
जालेश्वरं तीर्थं वरं सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र गत्वा नियमवान्सर्वकामांल्लभेन्नरः ॥३५

हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई अनाशक कर्म किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पाकर विशुद्ध आत्मा हो जाता है

और फिर वह रुद्र लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२६॥ हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य स्नान करके अश्वमेध यज्ञ करने के फल को प्राप्त किया करता है । जो उत्तर कूल पर निवास किया करते हैं उनको इस का यही फल मिलता है कि वे रुद्र लोक में जाकर फिर निवास प्राप्त किया करते हैं ॥३०॥ हे युधिष्ठिर ! सरस्वती में—भागीरथी गङ्गा में और नर्मदा में किया हुआ स्नान तथा दान समान ही होता है । भगवान् शङ्कर ने मुझसे ऐसा ही कहा था ॥३१॥ जो पुरुष अमर कंटक पर्वत में निवास करके वहीं पर अपने प्राणों का उत्सर्ग किया करता है वह साग्र सौ करोड़ वर्ष तक रुद्र लोक में महिमान्वित होकर रहा करती है ॥३२॥ नर्मदा में जल परम पुण्यमय है जो फेनों और ऊर्मियों (तरंगों) से सफलीकृत होता है । यह जल परम पवित्र है । इसको शिर से धारण करके मनुष्य सभी तरह के पापों से प्रमुक्त होजाया करता है ॥३३॥ नर्मदा नदी सब प्रकार से पुण्यमयी थी और ब्रह्महत्या कर देने वाली थी । वहाँ पर एक अहोरात्र पर्यन्त उपवास करते हुए निवास करते हुए निवास करने पर मनुष्य ब्रह्म-हत्या के महान् पातक से छुटकारा पा जाया करता है तथा परम विशुद्ध होजाता है ॥३४॥ जालेश्वर एक तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ है जो सभी पापों का विनाश कर देने वाला है । उस तीर्थ में पहुंच कर जो पुरुष नियमों से युक्त होकर निवास किया करता है वह मनुष्य अपने सभी अभीष्ट कामनाओं की सफलता प्राप्त करने का लाभ लेता है ॥३५॥

चन्द्रसूर्य्योपरागे च गत्वा ह्यमरकण्टकम् ।
अश्वमेधाद्दशगुणं पुण्यमाप्नोति मानवः ॥३६

एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः ।
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः ॥३७

तत्र सन्निहितो राजन्देव्या सहमहेश्वरः ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथारुद्रो विद्या धरगणैःसह ॥३८

प्रदक्षिणन्तुयःकुर्यात्पर्वतेऽमरकण्टके ।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्यफलम्प्राप्नोति मानवः ॥३९

कावेरी नाम विख्यातानदी कल्मषनाशिनी ।
तत्रस्नात्वामहादेवमर्कयेद्वृषभध्वजम् ।
संगमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते ॥४०

चन्द्र या सूर्य के ग्रहण की वेला उपस्थित होने पर जो कोई उस समय में अमर कंटक पर्वत पर गमन किया करता है वह मानव अश्वमेध यज्ञ का जो पुंय फल होता है उससे भी दश गुना पुंय फल प्राप्त किया करता है ॥३६॥ यह परम पुंयमय गिरिश्रेष्ठ है जो देव और गन्धर्व गणों के द्वारा सेवित होता है अर्थात् जिसमें देवता लोग गन्धर्वों के सहित निवास किया करते हैं । इस पर्वत का सौन्दर्य भी परम अद्भुत है । यहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष और लताऐं हैं जिनसे यह संकीर्ण रहता है और विविध भाँति के एक से एक सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से भी यह उप शोभित रहता है ॥३७॥ हे राजन् ! वहाँ पर अपनी प्रिय पत्नी देवी पार्वती को साथ में लेकर भगवान् महेश्वर सन्निहित रहा करते हैं । ये ही नहीं अपितु वहाँ पर ब्रह्मा—विष्णु और रुद्र देव भी विद्याधरों के गणों के साथ ही निवास किया करते है । सभी देवगणों को निवास प्रिय लगता है ॥३८॥ उस अमर कंटक पर्वत में जो कोई उसकी प्रदक्षिणा किया करता है वह मानव पौंडरीक यज्ञ करने का पुंय फल प्राप्त किया करता है ॥३९॥ वहाँ पर एक कावेरी नाम वाली परम प्रसिद्ध नहीं है जो मनुष्यों के समस्त कलमषों का नाश करने वाली है वहाँ उस कावेरी नदी में स्नान करके वृषभ ध्वज महादेव का अभ्यर्चन करना चाहिए । नर्मदा नदी के संगम में जो स्नान किया करता है वह रुद्र लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥४०॥

———

४१—नर्मदामाहात्म्यवर्णन में नानातीर्थमाहात्म्यवर्णन

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी ।
मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुना ॥१
मुनिभिःसंस्तुताह्येषानर्मदाप्रवरानदी ।
रुद्रगात्राद्विनिष्क्रान्तालोकानांहितकाम्यया ॥२

सर्वपापहरानित्यंसर्वदेवनमस्कृता ।
संस्तुतादेवगन्धर्वरप्सरोभिस्तथैव च ॥३

उत्तरें चैव कूले च तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते ।
नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरंशुभम् ॥४

तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ॥५

तत्रस्नात्वा नरोराजन्गोसहस्रफलंलभेत् ।
ततोऽङ्गारकेश्वरंगच्छेन्नियतोनियताशनः ॥६

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! केदारं नाम पुण्यदम् ॥७

महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—यह नर्मदा नदी सभी सरिताओं में श्रेष्ठ है और सभी पापों के विनाश करने वाली है। पहिले समय में मुनियों के कहने पर ईश्वर स्वयम्भू ने ही इसे प्रकट किया था ॥१॥ मुनियों के द्वारा संस्तवन की गयी यह परमश्रेष्ठ नर्मदा नदी समस्त लोकों के हित के सम्पादन की कामना से भगवान् रुद्र के अंग से ही यह निकली थी ॥२॥ यह सभी पापों के नित्य ही हरण करने वाली है तथा समस्त देवों के द्वारा वन्द्यमाना है। सभी ओर से देवों तथा गन्धर्वों के द्वारा एवं अप्सरागणों के द्वारा संस्तुत हो रही थी ॥३॥ इस नर्मदा नदी के उत्तर दिशा की ओर वाले तट पर जो तीर्थ त्रैलोक्य में विश्रुत है एक भद्रेश्वर नाम वाला परम पुण्यमय तीर्थ है जो सभी तरह के पापों का हरण करने वाला तथा परम शुभ है ॥४॥ हे राजन् ! उस भद्रेश्वर तीर्थ में मनुष्य स्नान करके देवगणों के साथ मोद प्राप्त किया करता है। हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त फिर अतीव उत्तम विमलेश्वर नाम वाले तीर्थ में जाना चाहिए। इस तीर्थ के स्नान का भी महान् फल होता है। हे राजन् ! एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है। इसके पश्चात् फिर एक अन्य तीर्थ अंगारकेश्वर नाम वाला है उस में परम नियत और नियत अशन वाला होकर ही गमन करना चाहिए ॥५-६॥

इस तीर्थ में स्नान करने से समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर अन्त में रुद्र लोक में जाकर प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है. इसके पश्चात् हे राजेन्द्र ! केदार नामक पुण्य प्रदान करने वाले तीर्थ में जाना चाहिए ॥७॥

तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
निष्फलेशं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ॥८
तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! बाणतीर्थमनुत्तमम् ॥९
तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात् ।
ततः पुष्करिणीं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ॥१०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सिहासनपतिर्भवेत् ।
शक्रतीर्थं ततो गच्छेत्कूलेचैवतुदक्षिणे ॥११
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनंलभेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्रशूलभेदइतिश्रुतिः ॥१२
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचगोसहस्रफलंलभेत् ।
उपोष्यरजनीमेकांस्नानंकृत्वायथाविधि ॥१३
आराधयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः ।
गोसहस्रफलम्प्राप्य विष्णुलोकंसगच्छति ॥१४

इस केदार नाम वाले महान् तीर्थ में स्नान करके और जलपान करके मनुष्य अपने सभी मनोरथों की सफलता प्राप्त कर लिया करता है। इसके उपरान्त दूसरे निष्कलेश नामक तीर्थ में गमन करे। यह भी तीर्थ सब पापों के क्षय कर देने वाला है ॥८॥ वहाँ पर अवगाहन करके हे महाराज ! मनुष्य रुद्र लोक में पहुँच कर महिमा सम्पन्न हुआ करता है। हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ के पश्चात् परम उत्तम बाण तीर्थ में गमन करना चाहिए। इस तीर्थ में निवास करते हुए अपने प्राणों का परित्याग करके मनुष्य रुद्र लोक की प्राप्ति करने का लाभ पाया करता है। इसके अनन्तर पुष्करिणी नाम वाले तीर्थ में गमन करना चाहिए और वहाँ पर स्नान करने का समाचरण करे ॥९-१०॥ हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करके हे

राजन् ! मनुष्य सिंहासन का स्वामी बन जाया करता है। इसके उपरान्त दक्षिण कूल में ही शुक्र तीर्थ नामक स्थल पर गमन करना चाहिए ।।११।। वहाँ पर केवल स्नान मात्र के करने ही से मनुष्य हे राजन् ! इन्द्र के आधे आसन का स्वामी बन जाया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! शूल भेद जिसका नाम श्रुति कहती है वहाँ पर गमन करना चाहिए। इस तीर्थ में अवगाहन करके तथा इसका जलपान करके एक सहस्र गौओं के दान का पुण्य फल प्राप्त होता है। वहाँ पर उपवास करके एक रात्रि निवास करे तथा विधि के अनुरूप स्नान चाहिए ।।१२-१३।। अमल मनुष्य का देवों के देव महायोग की आराधना करनी चाहिए। वह आराधना करने वाला पुरुष एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करके अन्त में विष्णु लोक में गमन किया करता है ।।१४।।

ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोकेमहीयते ।।१५
नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ।।१६
यत्रतप्तंतपः पूर्वंनारदेन सुरर्षिणा ।
प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः ।।१७
ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम् ।
यत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते ।।१८
ऋणतीर्थं ततोगच्छेदृणान्मुच्येन्नरो ध्रुवम् ।
वटेश्वरं ततोगच्छेत्पर्याप्तं जन्मनःफलम् ।।१९
भीमेश्वरं ततोगच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैःप्रमुच्यते ।।२०
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् ।
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात् ।।२१

इसके उपरान्त ऋषि तीर्थ में गमन करे जो मनुष्यों के समस्त पापों के हरण करने वाला तीर्थ है। उस तीर्थ में केवल स्नान मात्र से ही मनुष्य शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।।१५।। वहाँ पर ही नारद का एक

परम शोभा सम्पन्न तीर्थ है। उसमें भी केवल स्नान मात्र से ही एक सहस्र गो दानों का फल पाता है ।।१६।। जिस तीर्थ में पहिले देवर्षि नारद जी ने तपश्चर्या की थी परम प्रसन्न होकर देवों के देव महेश्वर प्रभु ने उनको योग प्रदान किया था ।।१७।। श्री ब्रह्माजी के द्वारा निर्मित जो लिंग है वह ब्रह्मेश्वर है—ऐसा श्रुत है जहाँ पर स्नान करके नर हे राजन्! ब्रह्म लोक में निवास करने का महत्त्व प्राप्त किया करता है ।।१८।। इसके उपरान्त ऋण तीर्थ में जाना चाहिए। वहाँ उस तीर्थ के सेवन करने से मनुष्य निश्चय ही ऋण से मुक्ति पा जाया करता है। इसके अनन्तर वटेश्वर तीर्थ में जावे जहाँ जाने से जन्म ग्रहण करने का मनुष्य पर्याप्त फल प्राप्त कर लिया करता है ।।१९।। फिर भी परमेश्वर नामक तीर्थ में जाना चाहिए जो समस्त व्याधियों का विनाश कर देने वाला है। इसमें मनुष्य पहुँच कर केवल स्नान भर ही कर लेवे समस्त प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा जाता है ।।२०।। हे राजेन्द्र! इसके पीछे अत्युत्तम तीर्थ पिंगलेश्वर जाना चाहिए। वहाँ पर पहुँच कर एक अहोरात्र तक उपवास करके तीन रात्रि के पुण्य-फल को प्राप्त किया करता है ।।२१।।

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र! कपिलां यः प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ।।२२
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते।
यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप! ।।२३
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठन्ति मानवाः ।।२४
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।
ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम् ।।२५
निर्वर्त्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।
हुङ्कारिता तु व्यासेन तत्क्षणेनततोगता ।।२६
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर!।
प्रीतस्तत्र भवेद्व्यासो वाञ्छितं लभते फलम् ।।२७

ततो गच्छेत राजेन्द्रइक्षुनद्यास्तुसंगमम् ।
त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्रसन्निहितःशिवः ॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गणपत्यमवाप्नुयात् ।
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥२८

हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में जो कोई एक कपिला गो का दान दिया करता है इसका पुण्य-फल ऐसा होता है कि जितने भी रोम उस गो के होते हैं उतनी ही उसके कुल की प्रसूतियाँ उतने ही सहस्र वर्षों तक रुद्र-लोक में प्रतिष्ठित रहा करती हैं। हे नराधिप ! जो कोई भी वहाँ पर अपने प्राण त्याग करता है अर्थात् जिसकी मृत्यु वहाँ पर होती है वह अक्षय काल तक मोद प्राप्त करता है अर्थात् जिस दिन तक चन्द्र और सूर्य लोक में विद्यमान रहा करते हैं उतने समय तक आनन्दानुभव किया करता है। जो मनुष्य नर्मदा के तट का समाश्रय ग्रहण करके वहाँ पर निवास किया करते हैं वे मृत हो जाने पर एक परम सन्त एवं सुकृती पुरुषों की भाँति ही स्वर्ग में जाया करते हैं। इसके पश्चात् दीप्तेश्वर व्यास तीर्थ तपोवन को चले जाना चाहिए ॥२२-२५॥ प्राचीन काल में वहाँ पर यह महा नदी व्यासजी से भयभीत होकर निवर्तित हो गई थी। व्यास देव ने जब हुङ्कारित किया था तो फिर उसी क्षण में वहाँ से गयी थी ॥२६॥ हे युधिष्ठिर ! उस तीर्थ में जो कोई पुरुष प्रदक्षिणा करता है तो वहाँ पर उस मानव पर श्री व्यास देव परम प्रसन्न हो जाया करते हैं और वह मनुष्य अपना वाञ्छित फल प्राप्त किया करता है ॥२७॥ हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त वहाँ से इक्षु नदी के सङ्गम पर जाना चाहिए। यह सङ्गम का स्थल तीनों लोकों में विश्रुत है और परम पुण्यमय है। वहाँ पर भगवान् शिव स्वयं सन्निहित रहा करते हैं। उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य हे राजन् ! गाणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है। इसके अनन्तर स्कन्द तीर्थ में जाना चाहिए जो सब तरह के महान् से भी महान् पातकों का नाश कर देने वाला होता है ॥२८॥

आजन्मनः कृतम्पापंस्नातस्तत्र व्यपोहति ।
तत्रदेवाः सगन्धर्वा भर्गात्मजमनुत्तमम् ॥२९

उपासतेमहात्मानं स्कन्दंशक्तिधरम्प्रभुम् ।
ततोगच्छेदाङ्गिरसं स्नानंतत्रसमाचरेत् ।।३०
गोसहस्रफलम्प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति ।
अङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम् ।।३१
तपसाऽऽराध्य विश्वेशं लब्धवान्योगमुत्तमम् ।।३२
कुशतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ।।३३
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत् ।
कोटितीर्थं ततोगच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम् ।।३४
आजन्मनः कृतम्पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति ।
चन्द्रभागां ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।।३५

जन्म से लेकर किया हुआ पाप इस तीर्थ में मानव विनष्ट कर दिया करता है जबकि वह यहाँ आकर स्नान कर लेता है। वहाँ पर गन्धर्वों के सहित देवगण परमोत्तम भर्गात्मज महात्मा स्कन्द शक्तिधर प्रभु की उपासना किया करते हैं। इसके उपरान्त वहाँ से ही आंगिरस नामक तीर्थ में जाना उचित है और वहाँ पहुँच कर भी स्नान का समाचरण करना चाहिए ।।२६-३०।। वहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य-फल जो होता है उसे प्राप्त करके वह सीधा रुद्र लोक को चला जाया करता है। जहाँ पर ब्रह्माजी के पुत्र अंगिरा ने देवेश्वर वृषध्वज की तपस्या के द्वारा आराधना करके उत्तम प्रकार के योग प्राप्त करने का लाभ लिया था ।।३१-३२।। इसके पश्चात् तीर्थार्थी पुरुष को कुश तीर्थ में चले जाना चाहिए जो सब पापों का विनाश कर देने वाला है ।।३३।। वहाँ पर स्नान करे तो अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। फिर वहीं से कोटितीर्थ को चले जाना चाहिए। यह तीर्थ भी सभी पापों के नाश कर देने में परम प्रसिद्ध है ।।३४।। जन्म से आरम्भ करके जीवन भर में जितने भी बड़े से बड़े पाप किये गये हों उन सभी पातकों का व्यपोहन इस तीर्थ में स्नान कर लेने से ही हो जाया करता है। इसके अनन्तर चन्द्रभागा नामक तीर्थ पर पहुँच

जाना चाहिए और वहाँ गमन करके उस तीर्थ में स्नान का समाचरण करे ॥३५॥

स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ।
नर्मदादक्षिणे कूले संगमेश्वरमुत्तमम् ॥३६
तत्रस्नात्वा नरो राजन्सर्वयज्ञफलंलभेत् ।
नर्म्मदाचोत्तरेकूले तीर्थ परमशोभनम् ॥३७
आदित्यायतनं रम्यमीश्वरेणतुभाषितम् ।
तत्रस्नात्वा तु राजेन्द्रदत्त्वादानंतु शक्तितः ॥३८
तस्य तीर्थप्रभावेण लभतेचाक्षयफलम् ।
दरिद्रा व्याधितायेतु येतु दुष्कृतकर्मिणः ॥३९
मुच्यतेसर्वपापेभ्यःसूर्यलोकंप्रयान्तिच ।
मातृतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्रसमाचरेत् ॥४०
स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।
ततः पश्चिमतो गच्छन्मरुताशयमुत्तमम् ॥४१
तत्रस्नात्वातु राजेन्द्रशुचिर्भूत्वासमाहितः ।
काञ्चनञ्चयतेर्द्द्याद्यथाविभवविस्तरम् ॥४२

इस उपर्युक्त तीर्थ के स्नान करने का बहुत बड़ा प्रभाव है कि केवल इस में अवगाहन करने मात्र से ही मानव सोमलोक में जाकर प्रतिष्ठित होजाया करता है। नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर परम उत्तम सङ्गमेश्वर नाम वाला महान् तीर्थ स्थित है ॥३६॥ हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य सम्पूर्ण प्रकार के होने वाले यज्ञों का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। वहीं पर नर्मदा महा नदी के उत्तर दिशा की ओर वाले तट पर एक अत्यन्त शोभन तीर्थ स्थित है ॥३७॥ इस पवित्र तीर्थ का शुभ नाम आदित्यायतन है जिस को साक्षात् ईश्वर ने ही भाषित किया है। वहाँ पर उस तीर्थ में स्नान करके हे राजेन्द्र ! और अपनी शक्ति से दान देकर उस महान् तीर्थ के प्रभाव से अक्षय फल प्राप्त किया करता है। जो भी कोई दीन–दरिद्र हैं तथा व्याधियों से प्रपीड़ित हैं और दुष्कृत कर्मों के करने वाले हैं वे सभी समस्त पापों से

मुक्त होजाया करते हैं और अन्त में सूर्य लोक में गमन करते हैं। इस तीर्थ का सेवन करने के पश्चात् मातृ तीर्थ को गमन करना उचित है और वहाँ पहुंच कर स्नान करना चाहिए। इस महान् तीर्थ में स्नान भर कर लेने ही से मनुष्य स्वर्ग लोक पाने का अधिकारी बन जाया करता है। इससे पश्चिम की ओर मरुत्ताशय अत्युत्तम तीर्थ में गमन करना चाहिए ॥३८-४१॥ हे राजेन्द्र ! उसमें स्नान करके परम शुचिता सम्पन्न एवं समाहित होकर अपने वैभव के विस्तार के अनुसार यति को सुवर्ण का दान करना चाहिए ॥४२॥

पुष्पकेणविमानेनवायुलोकं स गच्छति ।
ततो गच्छेतराजेन्द्र! अहल्यातीर्थमुत्तमम् ।
स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमुत्तमम् (मक्षयम्) ॥४३
चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी ।
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तुपूजयेत् ॥४४
यत्र तत्र समुत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियोभवेत् ।
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः ॥४५
सरिद्वरां समासाद्यतीर्थं शक्रस्यविश्रुतम् ।
स्नातमात्रोनरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत् ॥४६
सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४७
सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत् ।
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम् ॥४८
यस्तु चान्द्रायणंकुर्यात्तत्रतीर्थेसमाहितः ।
सर्वपापविशुद्धात्मासोमलोकंसगच्छति ॥०९

इस स्नान और वहाँ पर किये गये सुवर्णदान का यह फल होता है कि वह मनुष्य पुष्पक विमान के द्वारा वायुलोक को गमन किया करता है। हे राजेन्द्र ! अतीव उत्तम अहल्या तीर्थ पर गमन करना चाहिए। इस तीर्थ में केवल स्नान भर ही कर लेने से मनुष्य अप्सराओं के साथ में उत्तम कालपर्यन्त आनन्द मनाया करता है ॥४३॥ चैत्र मास के

सम्प्राप्त होजाने पर शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी के दिन में जो कि कामदेव का दिन होता है। उस दिन में जो भी कोई अहल्या का अभ्यर्चन किया करता है वह मनुष्य जहाँ-तहाँ कहीं पर भी समुत्पन्न क्यों न हुआ हो किन्तु इस तीर्थ के महान् प्रभाव से अत्यन्त ही प्रिय होजाया करता है। यह श्री से सम्पन्न दूसरे कामदेव के ही तुल्य स्त्रियों का वल्लभ होजाया करता है। इस श्रेष्ठतमा सरित का समासादन कर जोकि इन्द्रदेन का एक विशुद्ध तीर्थ है। वहाँ पर केवल स्नान भर कर लेने से एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। इसके उपरान्त सोम तीर्थ पर गमन करे और वहाँ पर स्नान करने का समाचरण करना चाहिए। वहाँ पर भी केवल स्नान करने ही से मनुष्य सब पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ।।४४-४७।। हे राजेन्द्र ! सोम ग्रह में तो यह पापों के क्षय करने वाला होता है। हे राजन् ! त्रिलोकी में परम प्रसिद्ध यह सोम तीर्थ महान् फल वाला होता है ।।४८।। जो कोई भी पुरुष उस तीर्थ में समाहित होकर चान्द्रायण महाव्रत किया करता है वह समस्त पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर सीधा सोम लोक को चला जाया करता है ।।४९।।

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्सोमतीर्थे नराधिप !।
जले चानशनम्वापिनासौमर्त्योहिजायते ।।५०
स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत् ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते ।।५१
ततो गच्छेत राजेन्द्र! विष्णुतीर्थमनुत्तमम् ।
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् ।।५२
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः ।
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीकोभवेदिह ।।५३
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् ।।५४
कामतीर्थमितिख्यातं यत्र कामोऽर्चयद्धरिम् ।
तस्मिस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः ।।५५

कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थं मनुत्तमम् ॥५६

हे नराधिप ! इस सोम तीर्थ में जो कोई अग्नि में प्रवेश करता है अथवा अनशन करता है ऐसा मनुष्य फिर इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं किया करता है।५०। इसके अनन्तर फिर स्तम्भ तीर्थ में गमन करे और वहाँ स्नान भर करे। वहाँ स्नान मात्र कर लेने ही से मनुष्य सोम लोक में महत्त्व पूर्ण पद की प्राप्ति किया करता है ॥५१॥ हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् अत्युत्तम विष्णु तीर्थ में गमन करे। वह भगवान् विष्णु का जो उत्तम स्थान है उसका नाम योधनीपुर-इस नाम से समाख्यात है ॥५२॥ वहाँ पर करोड़ों असुरों ने वासुदेव के साथ युद्ध किया था। वहाँ पर यह तीर्थ समुत्पन्न होगया था। यहाँ पर स्नान करने वाला मनुष्य विष्णु के समान श्री वाला होजाया करता है। एक अहोरात्र के उपवास से मनुष्य ब्रह्महत्या का व्यपोहन (निवारण) कर दिया करता है। नर्मदा नदी के दक्षिण कूल में एक परम शोभा वाला तीर्थ है, इस तीर्थ का नाम कामतीर्थ कहागया है जहाँ पर कामदेव ने स्वयं ही भगवान् श्रीहरि का अभ्यर्चन किया था। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करे और उपवास करने में परा-रहे ॥५३-५५॥ वह पुरुष कुसुमायुध के स्वरूप वाला होकर रुद्र लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे राजेन्द्र ! फिर तीर्थाटन करने वाले पुरुष को सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मतीर्थ में गमन करना चाहिए ॥५६॥

उमाहकमिति ख्यातं तत्र सन्तर्पयेत्पितॄन्।
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥५७
गजरूपाशिलातत्रतोयमध्येव्यवस्थिता।
तस्मिस्तुदापयेत्पिण्डान्वैशाखेतुसमाहितः ॥५८
स्नात्वासमाहितमनादम्भमात्सर्यवर्जितः।
तृप्यन्तिपितरस्तस्यतावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥५९
विश्वेश्वरंततोगच्छेत्स्नानंतत्रसमाचरेत्।
स्नातमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत् ॥६०

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! लिंगो यत्र जनार्दनः ।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुलोकेमहीयते ।।६१
यत्र नारायणोदेवो मुनीनां भावितात्मनाम् ।
स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत्परमम्पदम् ।।६२
अकोल्लन्तु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ।
स्नानंदानञ्चतत्रैवब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।।६३

यह तीर्थ उमाहक—इस नाम से विख्यात है । वहाँ पर गमन करके पहुंचने वाले तीर्थार्थी पुरुष को अपने पितृगण का तर्पण करना चाहिए । पूर्णमासी तिथि में या अमावस्या तिथि में इसी तीर्थ में विधि—विधान पूर्वक पितृगण का श्राद्ध भी करना चाहिए ।।५७।। वहाँ पर जल के मध्य में एक गज के स्वरूप वाली शिला व्यवस्थित है । उसी शिला पर वैशाख मास में परम समाहित होकर पिण्डों का निर्वपन कराना चाहिए ।।५८।। इस प्रकार से वहाँ पर श्राद्ध में पिंडों का प्रदान स्नान करके अत्यन्त सावधानी के साथ दम्भ और मात्सर्य से रहित होकर करना चाहिए । इस विधि से श्राद्ध करने वाले के पितृगण परम संतृप्त होजाया करते हैं और तबतक तृप्त रहते हैं जब तक यह मेदिनी स्थित रहा करती है ।।५९।। इसके उपरान्त विश्वेश्वर नामक तीर्थ में गमन करे और वहाँ पर भी स्नान करना चाहिए । इस तीर्थ में केवल स्नान मात्र कर लेने ही से मनुष्य को ऐसा परम पुण्य के फल का लाभ होता है कि वह गणपत्य पद की प्राप्ति कर लिया करता है ।।६०।। हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ के उपसेवन करने के पश्चात् मनुष्य को वहाँ पर जाना चाहिए जहाँ पर जनार्दन लिङ्ग है । वहाँ उस तीर्थ में भक्ति भाव से स्नान न करके मनुष्य विष्णु लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।।६१।। यह वह स्थल है जहाँ पर साक्षात् नारायण देव ने भावित आत्मा वाले मुनि गण को अपनी आत्मा का दर्शन कराया था वही लिङ्ग उनका परम पद है ।।६२।। इसके पश्चात् अङ्कोल तीर्थ पर जाना चाहिए जो समस्त पापों के विनाश करने वाला तीर्थ है । वहीं पर स्नान—दान और ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए ।।६३।।

पिण्डप्रदानञ्च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम् ।
त्रियम्बकेन तोयेन यश्चरुं श्रपयेद्द्विजः ॥६४
अङ्कुल्लमूलेदद्याच्चपिण्डांश्चैवयथाविधि ।
तारिताःपितरस्तेनतृप्यन्त्याचन्द्रतारकम् ॥६५
ततो गच्छेतराजेन्द्रतापसेश्वरमुत्तमम् ।
तत्रस्नात्वा तु राजेन्द्रप्राप्नुयात्तपसःफलम् ॥६६
शुक्लतीर्थं ततोगच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ।
नास्ति तेनसमंतीर्थं नर्मदायांयुधिष्ठिर ॥६७
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य स्नानाद्दानात्तपोजपात् ।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत्फलम् ॥६८
योजनंतत्स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम् ।
शुक्लतीर्थमितिख्यातं सर्वपापविनाशनम् ॥६९
पादपाग्रेण दृष्टेनब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शङ्करः ॥७०

जो पिंड का प्रदान किया जाता है वह मरने के पश्चात् अनन्त फल का प्रदान करने वाला होता है । जो द्विज त्रियम्बक जल से चरु का श्रपण किया करता है ॥६४॥ अंकुल के मूल में पिंडों को यथाविधि देना चाहिए । जो पुरुष इस रीति से यहाँ पर पिंडों का निर्वपन करता है उसने अपने पितरों को तार दिया है । इससे पितृगण जब तक चन्द्र और तारे आकाश में स्थित रहा करते हैं तब तक तृप्त रहा करते हैं ॥६५॥ हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् परमोत्तम तापसेश्वर नामक तीर्थ में गमन करना चाहिए उस में स्नान करके हे राजेन्द्र ! तपस्या के फल की प्राप्ति किया करता है ॥६६॥ इसके अनन्तर शुक्ल तीर्थ में गमन करे जो तीर्थ सभी पापों के विनाशक है । हे युधिष्ठिर ! नर्मदा में उसके समान अन्य कोइ भी तीर्थ नहीं है ॥६७॥ इस तीर्थ के दर्शन से स्पर्श करने से— स्नान से—दान से—तपस्या से—जप से—होम से—उपवास से महान पुन्य फल हुआ करता है ॥६८॥ देवों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित एक

योजन पर्यन्त इस तीर्थ का क्षेत्र कहा गया है। इसका नाम शुक्ल तीर्थ हैं कहा गया है और यह सभी प्रकारों के पापों का विनाश करने वाला है ॥६९॥ पादप के अग्रभाग के देखने से ब्रह्महत्या का व्यपोहन होता है। वहाँ पर देवी जगदम्बा के साथ सदा भर्ग भगवान् शंकर स्थित रहा करते हैं ॥७०॥

कृष्णपक्षेचतुर्द्दश्यांवैशाखेमासिसुव्रत।
लोकात्स्वकाद्विनिष्क्रम्यतत्रसन्निहितोहरः ॥७१
देवदानवगन्धर्वाःसिद्धविद्याधरास्तथा।
गणाश्चाप्सरसोनागास्तत्रतिष्ठन्तिपुङ्गवाः ॥७२
रञ्जितं हि यथावस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा।
आजन्मजनितं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति ॥७३
स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्तु दृश्यते।
शुक्लतीर्थात्परं तीर्थंनभविष्यतिपावनम् ॥७४
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वापापानिमानवः।
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थेव्यपोहति ॥७५
कार्त्तिकस्यतु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्द्दशी।
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम् ॥७६
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात्।
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः॥७७॥

हे सुव्रत! वैशाख मास में कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में भगवान् हर अपने लोक से निकल कर वहाँ पर ही सन्निहित होगये थे ॥७१॥ देव—दानव —गन्धर्व—सिद्ध—विद्याधर—गण—अप्सराऐं—नाग और श्रेष्ठ पुरुष वहाँ पर समवस्थित रहा करते थे ॥७२॥ जिस प्रकार से रंगा हुआ वस्त्र जल से शुक्ल होजाया करता है। जन्म से आरम्भ करके ही समुत्पन्न हुआ पाप जो होता है वह शुक्ल तीर्थ में व्यपोहित होजाया करता है ॥७३॥ वहाँ पर किया हुआ स्नान—दान—तप—श्राद्ध यह सभी वहाँ पर अनन्त दिखलाई देता है। शुक्ल तीर्थ से परमोत्तप तीर्थ दूसरा पावन नहीं होगा ॥७४॥ पहिली अवस्था में मानव पाप कर्मों को

करके एक अहोरात्र तक उपवास करके शुक्र तीर्थ में व्यपोहन होता है ॥७५॥ कार्त्तिक मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि के दिन उपवास करके परमेश्वर प्रभु को घृत से स्नान करना चाहिए ॥७६॥ तप—ब्रह्मचर्य्य-यज्ञ और दानों के द्वारा भी ऐसी उत्तम गति नहीं होती है जो इस तीर्थ में होजाती है। इस तीर्थ का सेवी इक्कीस कुलों से युक्त ईश्वर के आलय से च्युत नहीं हुआ करता है ॥७७॥

न तांगतिमवाप्नोतिशुक्लतीर्थेलतुयां लभेत् ।
शुक्लतीर्थंमहातीर्थं मृषिसिद्धनिषेवितम् ॥७८
तत्रस्नात्वानरोराजन्पुनर्ज्जन्म नविन्दति ।
अयने वा चतुर्द्दश्यांसंक्रान्तौविषुवेतथा ॥७९
स्नात्वा तु सोपवासःसन्विजितात्मा समाहितः ।
दानं दद्याद्यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशंकरौ ॥८०
एकतीर्थ प्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम् ।
अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा ॥८१
उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु ।
यावत्तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥८२
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र! यमतीर्थ मनुत्तमम् ॥८३
कृष्णपक्षे चतुर्द्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर !॥
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद्योनिसङ्कटम् ॥८४

उस प्रकार की उत्तम गति जो शुक्ल तीर्थ में जाने से हुआ करती है अन्य किसी भी साधनों से नहीं हो सकती है। यह शुक्ल तीर्थ एक परम महान् तीर्थ है और ऋषि तथा सिद्धों के द्वारा निषेवित है ॥७८॥ हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य फिर दूसरा जन्म कभी भी ग्रहण नहीं किया करता है। अयन में—चतुर्दशी में—संक्रान्ति में—विषुव में स्नान करके उपवास करता हुआ—विजितात्मा एवं समाहित मनुष्य दान देता है तो उस पर हरि और भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो

जाते हैं ।।७६-८०।। एक ही इस तीर्थ का ऐसा प्रभाव है जिससे सभी अक्षय हो जाता है । किसी अनाथ—कुरीगति वाले विप्र को अथवा किसी नाथ वाले को भी जो कोई इस तीर्थ में उद्वाहित कर देता है उसके होने वाले पुण्य-फल का श्रवण करो । जितने भी रोमों की संख्या होती है उतने ही सहस्र वर्ष पर्यन्त उसकी प्रसूति के कुलों में हुए पुरुष रुद्र लोक में प्रतिष्ठित हुआ करते हैं । हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर अतीव उत्तम यम तीर्थ में गमन करना चाहिए । कृष्ण पक्ष में हे युधिष्ठिर ! माघ मास में चतुर्दशी तिथि के दिनमें इस तीर्थ में स्नान करके रात्रि को भोजन करे अर्थात् पूरे दिन उपवास करे तो वह मनुष्य फिर योनि से समुत्पन्न होने का सङ्कट कभी नहीं देखा करता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म ही नहीं होता है ।।८१-८४।।

ततो गच्छेत राजेन्द्र! एरण्डीर्थमुत्तमम् ।
संगमे तु नरः स्नात्वाउपवासपरायणः ।।८५
ब्राह्मणं भोजयेकं कोटिर्भवतिभोजिताः ।
एरण्डीसङ्गमेस्नात्वाभक्तिभावात्तुरञ्जितः ।।८६
मृत्तिकांशिरसिस्थाप्यअवगाह्य चतज्जलम् ।
नर्मदोदकसंमिश्रं पुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ।।८७
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! तीर्थं कल्लोलकेश्वरम् ।
गंगाऽवतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः ।।८८
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्वा चैव यथाविधि ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ।।८९
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानंसमाचरेत् ।
प्रीयते तत्र नन्दीशःसोमलोकेमहीयते ।।९०
ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं त्वनरकं शुभम् ।
तत्र स्नात्वानरोराजन्नरकं नैव पश्यति ।।९१

इस तीर्थ के पश्चात् हे राजेन्द्र ! उत्तम एरण्डी तीर्थ में जावे । वहाँ पर उपवास परायण होकर सङ्गम में मनुष्य अवगाहन करे और केवल एक ही ब्राह्मण को भोजन करावे तो उस एक का ही एक करोड़ विप्रों

के भोजन कराने के तुल्य पुण्य—फल हुआ करता हैं। एरण्डी के सङ्गम में स्नान करके भक्तिभाव से रञ्जित होकर रहे। उस तीर्थ की मृत्तिका को शिर में रखकर नर्मदा महानदी के जल से संमिश्रित उसके जल में अवगाहन करने वाला पुरुष समस्त किल्विषों से मुक्त हो जाया करता है ॥८५-८७॥ हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त कल्लोलकेश्वर तीर्थ में गमन करे। वहाँ पर पुण्य दिन में गङ्गा का अवतरण हुआ करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥८८॥ वहाँ पर स्नान करके तथा वहाँ के जल का पान करके और यथाविधि दान देकर मनुष्य समस्त पापों से विनिर्मुक्त हो जाया करता है और विशुद्ध होकर फिर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है यह इस तीर्थ का प्रभाव है ॥८९॥ इसके पश्चात् नन्दि तीर्थ में गमन करे और वहाँ पर स्नान करने से नन्दीश प्रभु परम प्रसन्न होते हैं और उनकी कृपा से वह मनुष्य सोम लोक में प्रतिष्ठित हो जाया करता है ॥९०॥ हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर अनरक नामक परम शुभ तीर्थ में जाना चाहिए। उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य फिर नरक को कभी भी नहीं देखा करता है ॥९१॥

तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत् ।
रूपवाञ्जायते लोके धनभोगसमन्वितः ॥९२

ततोगच्छेतराजेन्द्रकपिलातीर्थमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलंलभेत् ॥९३

ज्यैष्ठमासे तु सम्प्राप्तेचतुर्दश्यां विशेषतः ।
तत्रोपोष्य नरोभक्त्यादत्त्वा दीपंघृतेनतु ॥९४

घृतेन स्नापयेद्रुद्रं ततो वै श्रीफलं लभेत् ।
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां वै प्रदापयेत् ॥९५

सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः ।
शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत्क्रीडते सदा ॥९६
अंगारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः ।
स्नापयित्वा शिवं दद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम् ॥९७

सर्वदेवसमायुक्तो विमाने सर्वकामिके।
गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते ।।९८

हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में अपनी अस्थियों का निक्षेप करे तो वह मनुष्य रूप सम्पन्न होकर समुत्पन्न हुआ करता हैं तथा धन के भोग के समन्वित होता है ।।९२।। इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! उत्तम कपिला तीर्थ में गमन करे। हे राजन् ! वहाँ पर मनुष्य अवगाहन करके एक सहस्र गौओं के दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है ।।९३।। ज्येष्ठ मास के सम्प्राप्त होने पर विशेष रूप से चतुर्दशी तिथि के दिन में वहाँ पर उपवास करके भक्ति की भावना से घृत के द्वारा दीपक का दान करे। फिर घृत से ही भगवान् रुद्रदेव का स्नपन करावे इसके पश्चात् श्रीफल का लाभ करे। घण्टाभरण से समन्वित कपिला गौ का दान करावे ।।९४-९५।। समस्त आभरणों से संयुक्त होकर सभी देवगण के द्वारा वन्द्यमान होता हुआ वह मनुष्य भगवान् शिव के तुल्य बल वाला होकर सदा शिव की ही भाँति क्रीड़ा किया करता है ।।९६।। मङ्गल वार दिन के प्राप्त होने पर विशेष रूप से चतुर्थी तिथि में शिव का स्नपन कराकर ब्राह्मणों को भोजन देना चाहिए। ।९७।। समस्त देवगणों से समायुक्त होकर सर्व कामिक अर्थात् सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले विमान में स्थित होकर इन्द्रदेव के भवन को चला जाया करता है और वहाँ पर शक्रदेव के साथ ही आनन्द का उपभोग करता है ।।९८।।

ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टोधृतिमान्भोगवान्भवेत् ।
अंगारकनवम्यांतु अमावास्यांतथैवच ।।९९
स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! गणेश्वरयनुत्तमम् ।।१००
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोकेमहीयते ।।१०१
पितृणां तर्पणं कृत्वा मुच्यतेसऋणत्रयात् ।
गंगेश्वरसमीपे तु गंगावदनमुत्तमम् ।।१०२

अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः ।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।।१०३
तस्य वै पश्चिमे भागे समीपेनातिदूरतः ।
दशाश्वमेधिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषुविश्रुतम् ।।१०४
उपोष्य रजनोमेकां मासिभाद्रपदे शुभे ।
अमावस्यां हरं स्नाप्यपूजयेद्गोवृषध्वजम् ।।१०५
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना ।
गत्वा रुद्रपुरं रम्यं रुद्रेण सह मोदते ।।१०६
सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत् ।
पितृणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलंलभेत् ।।१०७

जब स्वर्गीय सुख के उपभोग की नियत अवधि समाप्त हो जाती है तो वह स्वर्ग से परिभ्रष्ट होकर संसार में जन्म ग्रहण किया करता है और यहाँ पर धृतिमान् तथा भोगवान् होता है । भौमवार से युक्त नवमी तिथि में तथा अमावस्या में वहाँ पर देवेश्वर का यत्न पूर्वक स्नपन करावे तो इसका यह प्रभाव होता है कि वह रूपवान् एवं सुभग हुआ करता है । हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त सर्वोतम तीर्थ गणेश्वर नामक को गमन करना चाहिए ।।९९-१००।। श्रावण मास के सम्प्राप्त होने पर कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि के दिन में केवल स्नान मात्र कर लेने वाला मनुष्य रुद्र-लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ।।१०१।। वहाँ इस तीर्थ में पितृगणों का तर्पण करके मनुष्य तीनों प्रकार के ऋणों से छुटकारा पा जाया करता है । गंगेश्वर के समीप में ही गङ्गा के ही समान एक अत्युत्तम तीर्थ है । ।।१०२।। कामना से रहित होकर अथवा कामनाओं से संयुत होकर यदि मानव वहाँ पर अवगाहन करता है तो जन्म ग्रहण करने के समय से ही जितने भी पाप किये गये हैं उन सब पापों से मनुष्य मुक्ति पा जाया करता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ।।१०३।। उस तीर्थ के पश्चिम दिशा के भाग में अत्यन्त दूर न होकर समीप में ही दशाश्वमेधिक नाम वाला तीर्थ है जो तीनों लोकों में परम प्रसिद्ध है ।।१०४।। एक रात्रि तक शुभ भाद्र पद मास में उपवास करके अमावस्या तिथि में भगवान् हर का

स्नपन कराकर गोवृषध्वज का पूजन करना चाहिए ।।१०५।। इसका यह पुण्य-फल होता है कि वह सुवर्ण से निर्मित किङ्किणीयों के जालों की मालाओं से शोभा सम्पन्न विमान में समवस्थित होकर रुद्रपुर में गमन किया करता है जो कि परम रम्य है । वहाँ पर वह फिर भगवान् रुद्रदेव के साथ निवास करता हुआ आनन्दोपभोग किया करता है ।।१०६।। सर्वत्र अर्थात् सभी तीर्थों में सभी दिनों में स्नान करना चाहिए । इसका यह पुण्य-फल होता है कि वह मनुष्य वहाँ पर पितृगणों का तर्पण करके अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है ।।१०७।।

४२—नर्मदा तथा अन्यान्यतीर्थमाहात्म्य वर्णन

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! भृगुतीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र देवो भृगुः पूर्वं रुद्रमाराधयत्पुरा ।।१
दर्शनात्तस्य देवस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते ।
एतत्क्षेत्रं सुविपुलंसर्वपापप्रणाशनम् ।।२
तत्रस्नात्वादिवंयान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ।
उपानहौतथायुग्यं देयमन्नञ्चकाञ्चनम् ।।३
भोजनञ्च यथाशक्ति तस्याप्यक्षयमुच्यते ।
क्षरन्ति सर्वदःनानि यज्ञदानं तपःक्रिया ।।४
अक्षय्यं तत्तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर ।
तस्यैव तपसोग्रेण रुद्रेण त्रिपुरारिणा ।।५
सान्निध्यं तत्र कथितंभृगुतीर्थे युधिष्ठिर ।
ततो गच्छेत राजेन्द्रगौतमश्वरमुत्तमम् ।।६
यत्राराध्यत्रिशूलाङ्कं गौतमःसिद्धिमाप्तवान् ।
तत्र स्नात्वानरो राजन्नुपवासपरायणः ।।७

श्री महामहर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त सर्वोत्तम भृगुतीर्थ को गमन करे । उस तीर्थ में प्राचीन समय में महामुनीन्द्र भृगु ने भगवान् रुद्रदेव का समाराधन किया था ।।१।। वहाँ पर उन

देवेश्वर के दर्शन मात्र से ही तुरन्त ही मानव सब पापों से मुक्त होकर विशुद्धात्मा हो जाया करता है। यह तीर्थ का क्षेत्र बहुत ही विपुल है तथा समस्त प्रकार के महान् पातकों का भी विनाश कर देने वाला है ।।२।। उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य सीधे ही स्वर्ग लोक में चले जाया करते हैं। जो मनुष्य उस तीर्थ में प्राणों का परित्याग करके मृत हो जाते हैं वे तो फिर इस संसार में दूसरा जन्म ही ग्रहण नहीं किया करते हैं। वहाँ पर उपानहों का जोड़ा—अन्न और सुवर्ण का दान करना चाहिए ।।३।। अपनी शक्ति के अनुसार विप्रों को भोजन भी करावे तो पुण्य फल अक्षय होता है—ऐसा कहा जाता है। सभी प्रकार के दान जैसे यज्ञ दान और तप की क्रिया आदि क्षरित हो जाया करते हैं ।।४।। हे युधिष्ठिर ! इस भृगु तीर्थ में जो भी तपश्चर्या की जाती है उसका कभी भी क्षरण नहीं होता है और वह सर्वदा अक्षय ही होती है। उसके ही अति उग्र तप से भगवान् त्रिपुरारि रुद्रदेव ने हे युधिष्ठिर ! भृगु तीर्थ में अपना सान्निध्य बतलाया है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम गौतमेश्वर तीर्थ में गमन करे ।।५-६।। जहाँ पर गौतम ऋषि ने भगवान् त्रिशूलाङ्क की समाराधना कर सिद्धि की प्राप्ति की थी। हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य को उपवास करने में तत्पर होना चाहिए ।।७।।

काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ।
वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात् ।।८
न जानन्तिनरा मूढाविष्णोर्मायाविमोहिताः ।
धौतपापंततो गच्छेद्धौतंयत्रवृषेणतु ।।९
नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम् ।
तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा ब्रह्महत्यांविमुञ्चति ।।१०
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र! प्राणत्यागं करोति यः ।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्चहरतुल्यबलोभवेत् ।।११
वसेत्कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः ।
कालेनमहता जातः पृथिव्यामेकराड्भवेत् ।।१२

ततो गच्छेत राजेन्द्र! हस्ततीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकेमहीयते ।।१३
ततो गच्छेत राजेन्द्रयत्रसिद्धोजनार्द्दनः ।
वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम् ।।१४

इस महान् तीर्थ के सेवन करने का ऐसा पुण्य फल होता है कि मनुष्य सुवर्ण निर्मित विमान के द्वारा गमन करके ब्रह्मलोक में महिमान्वित होकर स्थित रहा करता है। इसके पश्चात् वृषोत्सर्ग नामक तीर्थ में गमन करे जिसका फल यह होता है कि वह मानव शाश्वत पद की प्राप्ति किया करता है ।।८।। जो मनुष्य महा मूढ होते हैं वे भगवान् विष्णु की माया से विमोहित होते हुए इस तीर्थ का महत्त्व नहीं जाना करते हैं। इसके उपरान्त धौत पाप नाम वाले तीर्थ में गमन करे जिसमें भगवान् वृष ने धौत किया था ।।९।। नर्मदा में स्थित हे राजन् ! तीथ सभ पापों का विनाश करने वाला है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके ब्रह्महत्या के पाप का भी विमोचन कर दिया करता है ।।१०।। हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में जो भी कोई मनुष्य अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह चार भुजाओं वाला तथा तीन नेत्रों वाला होकर भगवान् हर के ही बल वाला हो जाया करता है ।।११।। साग्र दश सहस्र कल्प पर्यन्त वह शिव के तुल्य पराक्रम वाला होकर निवास किया करता है। महान् काल से समुत्पन्न हुआ वह पृथिवी पर एक ही राजा होता है ।।१२।। हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त मनुष्य को जिससे उत्तम अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है ऐसे सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हस्त तीर्थ नाम वाले में जाना चाहिए। वहाँ पर हे राजन् ! मनुष्य स्नान करके ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ।।१३।। इसके पश्चात् हे राजेन्द्र ! जहाँ पर सिद्ध जनार्दन हैं वह गमन करना चाहिए। इसका नाम वाराह तीर्थ है जो विष्णु लोक में गति प्रदान करने वाला है ।।१४।।

ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम् ।
पौर्णमास्यां विशेषेणस्नानंतत्र समाचरेत् ।।१५

स्नातमात्रो नरस्तत्रपृथिव्यामेकराट्भवेत् ।
देवतीर्थं ततोगच्छेत्सर्वंतीर्थंनमस्कृतम् ॥१६
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र! दैवतैःसह मोदते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र! शङ्खितीर्थमनुत्तमम् ॥१७
यत्तत्र दीयतेदानं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र! तीर्थं पैतामहं शुभम् ॥१८
यत्तत्रदीयतेश्राद्धंसर्वंतस्याक्षयं भवेत् ।
सावित्रीतीर्थमासाद्ययस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥१९
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोकेमहीयते ।
मनोहरं तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम् ॥२०
तत्र स्नात्वा नरोराजन्रुद्रलोके महीयते ।
ततो गच्छेत राजेन्द्रकन्यातीर्थमनुत्तमम् ॥२१

हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर सर्वोतम चन्द्र तीर्थं में जाना चाहिए । विशेष करके पूर्णमासी तिथि में वहाँ पर स्नान का समाचरण करना चाहिए । ॥१५॥ वहाँ पर स्नान मात्र करने वाला ही इतना विशेष पुण्य भागी हो जाता है कि वह मनुष्य पृथ्वी पर एक छत्र राज्य का स्वामी बन जाया करता है । इसके उपरान्त देवतीर्थं में गमन करना चाहिए जो सभी तीर्थों के द्वारा नमस्कृत अर्थात् वन्द्यमान है ॥१६॥ हे राजेन्द्र ! उस तीर्थं में अवगाहन करके मनुष्य देवगणों के साथ मोह का लाभ उठाया करता है । हे राजेन्द्र ! इस तीर्थं के सेवन के बाद में परमश्रेष्ठ शंखि तीर्थं में गमन करे ॥१७॥ इस तीर्थं में जो कुछ भी दान दिया जाता है करोड़ गुना हो जाया करता है । इसके उपरान्त हे राजेन्द्र ! पैतामह नामक परम शुभ तीर्थं में गमन करे ॥१८॥ जहाँ पर जो भी कोई श्राद्ध दिया जाता है उसका वह सब अक्षय हो जाया करता है । सावित्री नाम वाले तीर्थं में पहुँच कर जो पुरुष अपने प्राणों का परित्याग किया करता है ॥१९॥ वह मनुष्य अपने सभी पापों विधूनन करके अन्त समय में ब्रह्मलोक के निवास को प्राप्त कर वहाँ पर ही प्रतिष्ठा का लाभ लेता है । वहाँ पर ही एक परम शोभा से सुसम्पन्न मनोहर तीर्थं है ॥२०॥ हे राजन् ! उस तीर्थं में

स्नान करके मनुष्य रुद्रलोक में महिमान्वित पद पर समासीन हुआ करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम कन्या तीर्थ नाम वाले तीर्थ में गमन करना चाहिए ॥२१॥

स्नात्वा तत्र नरो राजन्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
शुक्लपक्षेतृतीयायांस्नानमात्रं समाचरेत् ॥२२
स्नातमात्रोनरस्तत्रपृथिव्यामेकराड्भवेत् ।
सर्गविन्दुं ततोगच्छेत्तीर्थं देवनमस्कृतम् ॥२३
तत्र स्नात्वानरोराजन्दुर्गतिं वैन पश्यति ।
अप्सरेशततोगच्छेत्स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥२४
क्रीडते नाकलोकस्थोह्यप्सरोभिःस मोदते ।
ततोगच्छेतराजेन्द्र!भारभूतिमनुत्तमम् ॥२५
उपोषितो यजेतेशंरुद्रलोके महीयते ।
अस्मिस्तीर्थे मृतोराजन्गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥२६
कार्त्तिके मासि देवेशमर्चयेत्पार्वतीपतिम् ।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२७
वृषभं यः प्रयच्छेततत्र कुन्देन्दुसप्रभम् ।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं सगच्छति ॥२८

हे राजन् ! इस कन्या तीर्थ में मनुष्य अवगाहन करके समस्त पातकों से प्रमुक्त होजाया करता है। यहाँ पर मास के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि में केवल स्नान करें ।२२। इसमें सिर्फ स्नान भर ही कर लेने वाला मनुष्य इस भूमि पर एक छत्रधारी सम्राट हुआ करता है—इतना अधिक यहाँ के केवल स्नान करने का महान् पुण्य—फल हुआ करता है। इसके पश्चात सर्ग विन्दु नामक तीर्थ में गमन करना चाहिए। जिस तीर्थ को सभी देवगण नमस्कार किया करते हैं ॥२३॥ हे राजन् उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य कभी भी अपनी दुर्गति नहीं देखा करता है अर्थात् उसकी दुर्गति तो कभी हो ही नहीं सकती है। इसके बाद में अप्सरेश नाम वाले तीर्थ में चले जाना चाहिए और वहाँपर स्नान करे ॥२४॥ इस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य स्वर्ग लोक के समवास्थित होकर

अप्सराओं के साथ आनन्द का उपभोग करते हुए क्रीड़ा किया करता है। इसके अनन्तर हे राजेन्द्र ! भारभूति नामक उत्तमोत्तम तीर्थ में चलाजावे ॥२५॥ वहां पर उपवास करके ईश का यजन करे तो मनुष्य इन्द्र लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । हे राजन ! यदि कोई वहाँ पर निवास करके मृत होजाता है तो उसे गाणपत्य पद की प्राप्ति हुआ करती है । ॥२६॥ कार्त्तिक मासमें पार्वती के स्वामी देवेश का अभ्यर्चन करना चाहिए । इस अर्चनका जो पुण्य फल होता है वह अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से भी दशगुना हुआ करता है—ऐसाही मनीषीगण कहा करते हैं ॥२७॥ वहाँ पर यदि कोई कुन्दकुसुम तथा इन्द्र के समान प्रभावाले एक दम शुक्ल वर्ण के वृषभ का दान करता है तो वह वृप युक्त दान के द्वारा इन्द्र लोक में ही गमन किया करता है ॥२८॥

एतत्तीर्थं समासाद्ययस्तुप्राणान् परित्यजेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकंसगच्छति ॥२९
जलप्रवेशं यः कुर्यात्तास्मिस्तीर्थे नराधिप ।
हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं सगच्छति ॥३०
एरण्डया नर्मदायास्तुसङ्गमंलोकविश्रुतम् ।
तच्च तीर्थं महापुण्यं सवपापप्रणाशनम् ॥३१
उपवासकृतो भूत्वा नित्यं व्रतपरायणः ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्रमुच्यतेब्रह्महत्यया ॥३२
ततो गच्छेत राजेन्द्र !नर्मदोदधिसंगमम् ।
जमदग्निमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्द्दनः ॥३३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदोंदधिसंगमे ।
त्रिगुणञ्चाश्वमेधस्य फलम्प्राप्नोति मानवः ॥३४
ततो गच्छेत राजेन्द्र पिंगलेश्वमुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोकेमहीयते ॥३५

इस तीर्थ को सौभाग्य से प्राप्त करके कहीं ऐसा अवसर आजावे कि वहीं पर कोई अपने प्राणों का परित्याग करे तो वह सभी प्रकार के छोटे—बड़े पापों से विमुक्त होकर सीधा रुद्र लोक में ही गमन किया

करता है ।।२९।। हे नराधिप ! यदि कोई उस तीर्थ में जल प्रवेश करे तो वह हंसों से समन्वित विमान के द्वारा सीधा स्वर्ग लोक को चला जाया करता है ।।३०।। एरण्डी और महानदी नर्मदा इन दोनों नदियों का सङ्गम लोक में परम प्रसिद्ध है और वह तीर्थ महान पुण्यमय है एवं सभी पापों के विनाश करने वाला है ।।३१।। उपवास करने वाला और नित्य ही व्रतों में तत्पर रहने वाला मनुष्य वहाँ पर स्नान करके ब्रह्म हत्या जैसे महान पाप से भी विमुक्त हो जाया करता है ।।३२।। इसके पश्चात हे राजेन्द्र ! तीर्थाटन करने वाले मनुष्य को नर्मदा और उदधि के सङ्गम पर गमन अवश्य ही करना चाहिए । इस तीर्थ का शुभ नाम जमदाग्नि प्रसिद्ध है जहाँ पर सिद्ध जनार्दन हैं ।।३३।। हे राजन् ! वहाँ पर नर्मदोदधि संगम में मनुष्य अवगाहन कर के अश्वमेध यज्ञ के पुण्य से तिगुना पुण्य प्राप्त किया करता है ।।३४।। इस संगम के सेवन के उपरान्त हे राजेन्द्र ! सर्वोत्तम पिङ्गलेश्वर नामक तीर्थ में गमन करना चाहिए । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में महिमान्वित पद पर समासीन हुआ करता है ।।३५।।

तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत विमलेश्वरम् ।
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम् ।।३६

ततो गच्छेत राजेन्द्र अलितीर्थमनुत्तमम् ।
उपोष्य रजनीमेकां नियतोनियताशनः ।।३७

अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यतेब्रह्महत्यया ।
एतानि तव सङ्क्षेपात्प्राधान्यात्कथितानि च ।।३८

न शक्या विस्तराद्वक्तं संख्या तीर्थेषु पाण्डव !।
एषा पवित्रा विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता ।।३९

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा ।
मनसा संस्मरेद्यस्तुनर्मदां वै युधिष्ठिर! ।।४०

चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः ।
अश्रद्दधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः ।।४१

पतन्ति न'के घोर इत्याह परमेश्वरः ।
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः ।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी ॥४२

वहाँ पर जो कोई भी पुरुष भगवान विमलेश्वर का दर्शन किया करता है वह अपने पिछले सात जन्मों में किए हुए भी समस्त पापों का विनाश कर के परम विशुद्धात्मा होकर सीधा शिवालय में ही प्राप्त हो जाता है ॥३६॥ हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर फिर तीर्थ से भी मनुष्य को उत्तम अतितीर्थ को गमन करना चाहिए । वहाँ पर एक रात्रि तक उपवास करके नियत होकर तथा नियत अशन वाला रहे ॥३७॥ इस तीर्थ का माहात्म्य ही ऐसा है कि इसके प्रभाव से मनुष्य ब्रह्महत्या के महापातक से भी मुक्त हो जाया करता है इतने तीर्थों का हाल मैंने तुमको परम संक्षेप से ही सुना दिया है जोकि परम प्रधान तीर्थ थे उन्हीं का नाम कहा गया है ॥३८॥ हे पाण्डव ! वहाँ पर तो इतने अधिक तीर्थ हैं कि उन्हें सबको कहना तथा प्रधान तीर्थ का भी विस्तार के सहित वर्णन करना अशक्य है । यह महानदी नर्मदा विपुला है तथा तीनों लोकों में भी परम प्रसिद्ध है ॥३९॥ यह नर्मदानदी सभी नदियों में परम श्रेष्ठ नदी है और भगवान महादेव की तो यह परम प्रिया नदी है । हे युधिष्ठिर ! यदि कोई मन से भी इस नर्मदा का स्मरण करलेता है तो वह साग्रशन चान्द्रायण महा व्रतों का पुण्य-फल प्राप्त करलिया करता है इसमे लेशमात्र भी संशय करने का अवसर ही नहीं होता है । जो पुरुष श्रद्धा नहीं करने वाले हैं तथा घोर नास्तिकता का समाश्रय किये हुए हैं वे सभी लोग परम घोर नरक में ही पतित हुआ करते हैं—ऐसा स्वय ही भगवान् परमेश्वर ने कहा है । नमंदा महापुण्यमयी नदी को तो स्वयं ही देव महेश्वर नित्य ही सेवन क्रिया करते हैं । इससे यह नर्मदा नदी परपुण्यमय नदी ही समझनी चाहिए जो कि ब्रह्म हत्या के महापाप का भी विनाश कर देने वाली है ॥४०-४२॥

———

४३—जप्येश्वरमाहात्म्यवर्णन

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम् ।
महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम् ॥१
महादेवंदिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिना ।
ब्रह्मणा निर्मितंस्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः ॥२
मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा ।
भृगवोऽगिरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥३
समेत्यसर्वंवरदंचतुर्म्मूर्त्ति चतुर्म्मुख ।
पृच्छन्तिप्रणिपत्यैनंविश्वकर्माणमव्ययम् ॥४
भगवम्देवमीशानं तमेवैकं कर्पादिनम् ।
केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देव! नमस्तव ॥५
सत्रं सहस्रामासध्वंवाड्मनोदोषवर्जिताः ।
देशञ्चवःप्रवक्ष्यामियस्मिन्देशेचरिष्यथ ॥६
मुक्त्वा मनोमयं चक्रं संस्पृष्ट्वा तनुवाच ह ।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत माचिरम् ॥७

महामहर्षि सूतदेवजी ने कहा—यह अत्युत्तम नैमिष तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है और यह श्री महादेव जी परम प्यारा तीर्थ है तथा महान् से भी महान् पातकों का विनाश करने वाला है ॥१॥ हे द्विजोत्तमो ! श्री महादेवजी के दर्शन करने की इच्छा वाले ऋषियों का पितामह परमेष्ठी ब्रह्माजी ने तपश्चर्या का तप न करने के लिये ही इस स्थान का निर्माण किया था ॥२॥ प्राचीन समय में छै कुलों में समुत्पन्न ऋषियों ने जिनमें मरीच—अत्रय—वसिष्ठ—क्रतु-भृग—अङ्गिरस थे कमल से समुद्भूत ब्रह्माजी से सब ने एकत्रित होकर चार मूर्तियों वाले—चार मुखों से युक्त—सभी प्रकार के वरदान देने वाले ब्रह्माजी को प्रणिपात करके पूछा था जो कि इस विश्व की रचना करने वाले विश्वकर्मा तथा अव्यय स्वरूप थे ॥३-४॥ षट्कुलीय ऋषियों ने कहा—हे देव ! हे भगवन् ! उन ईशान एक देव भगवान् कपर्दी का दर्शन किस उपाय से

हम लोग कर सकते हैं वही उपाय हमको इस समय में आप बतला दीजिएगा। हमारे ऊपर आपका बड़ा ही अनुग्रह होगा। हम सब आपको नमस्कार करते हैं ॥५॥ ब्रह्माजी ने कहा था—वाणी और मन के दोषों से रहित होकर एक सहस्र सत्र करो। यह जिस देश या स्थल में आप लोगों को इसका समाचरण करना चाहिए वह स्थान एवं देश हम आपको बतला देंगे ॥६॥ यह कथन करने के पश्चात् उन्होंने मनोमय चक्र का संस्पर्श करके इसको मोचन किया था और उन समस्त ऋषियों से कहा था कि मैंने इस चक्र को प्रक्षिप्त कर दिया है अब आप सब लोग इसी चक्र के पीछे-पीछे अनुगमन करो और इसमें विलम्ब मत करो ॥७॥

यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपसः शुभः।
ततो मुमोच तच्चक्रं तेचतत्समनुव्रजन् ॥८
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्रनेमिरशीर्यत।
नैमिषं तत स्मृतंनाम्नापुण्यं सर्वत्रपूजितम् ॥९
सिद्धचारणसम्पूर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्।
स्थानं भगवतः शम्भोरेतन्नैमिषमुत्तमम् ॥१०
अत्र देवाः सगन्धर्वाःसयक्षोरगराक्षसाः।
तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरेप्रवरान्वरान् ॥११
इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः।
सत्रेणाऽऽराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम् ॥१२
अत्रदानं तपस्तप्तं श्राद्धयागादिकञ्च यत्।
एकैकं साशयेत्पापं सप्तजन्मकृतं तथा ॥१३
अत्र पूर्वं स भगवानृषीणांसत्रमासताम्।
स वै प्रोवाचब्रह्माण्डपुराणं ब्रह्मभावितम् ॥१४

जिस स्थल या देश में इस चक्र की नेमि शीर्य्यमाण हो जावे वही देश आप लोगों की तपश्चर्या करने के लिये परम शुभ है। इतना कथन करके ब्रह्माजी ने वह मनोगय चक्र छोड़ दिया था और उन समस्त ऋषि-वृन्दों ने उस चक्र का अनुव्रजन किया था ॥८॥ उस चक्र को गमन करते हुए शीघ्र ही इसकी नेमि जिस जगह पर शीर्ण हो गई थी उसी स्थल

का नाम नैमिष कहा गया है यह परम पुण्यमय स्थान है जोकि सर्वत्र ही पूजित है। यह स्थल सिद्ध और चारणों से परिपूर्ण है तथा यक्ष और गन्धर्वों के द्वारा भी सेवित है। भगवान् शम्भु का यह स्थान नैमिष उत्तम है ॥९-१०॥ यहाँ पर ही पहिले परम प्राचीन काल में गन्धर्वों—यक्षों—उरगों और राक्षसों के सहित देव गणों ने तपस्या का तपन करके परम प्रवर वरदान प्राप्त किये थे ॥११॥ इसी देश का समाश्रय ग्रहण करके छै कुलों में समुत्पन्न षट् कुलीय ऋषियों ने परम समाहित होकर सत्र के द्वारा भली-भांति आराधना करके देवेश्वर महेश का दर्शन प्राप्त किया था ॥१२॥ यह एक ऐसा ही अतीव पुण्यमय परम पवित्र स्थल है जहाँ पर किया हुआ तप—दान—श्राद्ध और याग आदि सभी सत्कर्म एक-एक ही सात पुराने जन्मों में किये हुए पाप का भी विनाश कर दिया करता है ॥१३॥ यहाँ पर पहिले उन्हीं भगवान् ने ऋषियों का सत्र कराया था और उन्होंने ही ब्रह्म की भावना से भावित ब्रह्माण्ड पुराण का कथन भी किया था ॥१४॥

अत्र देवो महादेवोरुद्राण्याकिल विश्वदृक् ।
रमतेऽद्यापिभगवान्प्रमथैः परिवारितः ॥१५
अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः ।
ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते ॥१६
अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमितिश्रुतम् ।
जजाप रुद्रमनिशं यत्रनन्दी महागणः ॥१७
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सहपिनाकधृक् ।
ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च ।।१८
अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित् ।
आराधयन्महादेवं प्रसादार्थं वृषध्वजम् ॥१९
तस्यवर्षसहस्रान्तेतप्यमानस्य विश्वधृक् ।
शर्वःसोमोगणवृतोवरदोऽस्मीत्यभाषत ॥२०
सवव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम् ।
अयोनिजं मृत्युहीनं याचे पुत्रं त्वया समम् ॥२१

पितामहाय शुद्धाय युगादौ लोकधारिणे ।
पितामहश्च दक्षाय धर्ममेतं पुरा ददौ ॥ ४९ ॥
ततो ज्येष्ठे तु दौहित्रे प्रादाद्दक्षो नृपोत्तम ।
आदित्ये सवितुर्ज्येष्ठे विवस्वान् जगृहे ततः ॥ ५० ॥
त्रेतायुगादौ च ततो विवस्वान्मनवे ददौ
मनुश्च लोकभूत्यर्थं सुतायेक्ष्वाकवे ददौ ॥ ५१ ॥
इक्ष्वाकुणा च कथितो व्याप्य लोकानवस्थितः ।

इत्यादिना 'इमं विवस्वते योग' मिति गीतोक्तदिशा सात्त्वतधर्मस्य परम्पराप्राप्तत्वं त्रेतायुगेऽपि व्याप्तिम् ॥

कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः ॥ ५३ ॥
नारदेन तु संप्राप्तः सरहस्यस्ससंग्रहः ।
एष धर्मो जगन्नाथात्साक्षान्नरायणान्नृप ॥ ५ ॥
एवमेष महान्धर्म आद्यो राजन्सनातनः ।
दुर्विज्ञेयो दुष्करश्च सात्त्वतैर्धार्यते सदा ॥ ५५ ॥
धर्मज्ञानेन चैतेन सुप्रयुक्तेन कर्मणा ।
[1] अहिंसाधर्मयुक्तेन प्रीयते हरिरीश्वरः ॥ ५६ ॥

---

[1] अहिंसेति कृतयुगाभिप्रायम् । वस्तुतस्तु 'यज्ञानांजपयज्ञोस्मीति' गीतैकार्थ्याज्जपयज्ञ एवात्र विवक्षितः । अत्रैव (ना. ७ अ) धर्मराजादीनामेतदाख्यानश्रवणानन्तरं 'नित्यं जप्यपराभूत्वा' इति जपयज्ञनिष्ठत्वोक्तेः । त्रेतायुगे—

प्रोक्षितायत्रपशवोवधं प्राप्स्यन्तिवैमखे । (ना. ८-८२).

इति प्रत्यक्षपशुवधस्य, अत्रैतद्धर्मस्य व्याप्तेश्चाभिधानेन पशुहिंसानिषेधविवक्षायाः वक्तुमशक्यत्वाच्च । अत्र 'इतरेषु यज्ञेषु हिंसादिप्रसङ्गोऽधिकारिविशेषादिना

[1] एकव्यूहविभागो वा क्वचिद्द्विव्यूहसंज्ञितः ।
त्रिव्यूहश्चापि संख्यातश्चतुर्व्यूहश्च दृश्यते ॥ ५७ ॥
हरिरेव हि क्षेत्रज्ञो निर्ममोनिष्कलस्तथा ॥ ५८ ॥
यद्येकान्तिभिराकीर्णं जगत्स्यात्कुरुनन्दन ॥ ६२ ॥
अहिंसकैरात्मविद्भिः सर्वभूतहितेरतैः ।
भवेत्कृतयुगप्राप्ति राशीःकर्मविवर्जिता ॥ ६३ ॥
एवं स भगवान्व्यासो गुरुर्ममविशांपते ।
कथयामासधर्मज्ञो धर्मराजे द्विजोत्तमः ॥ ६४ ॥
ऋषीणां सन्निधौ राज ञ्शृण्वतोः कृष्ण भीष्मयोः ॥ ६५ ॥

इत्यनेन गीतायां सङ्ग्रहेणोक्तस्य पञ्चरात्रे विस्तृतस्य चातुरात्म्य वासुदेवाराधनधर्मस्य सात्वतैर्धार्यत्वं । त्रेतादौ पर्वक्रमेण अनुष्ठातृविरलत्वं च—

एवं प्रविरलम् धर्मं प्रतिबुद्धैर्निषेवितम् ।

विषयव्यवस्थापनं इत्यादिमहान्क्लेशः । जपयज्ञे तु तत्प्रसङ्गाभावात् अव्याक्षेपेणार्थप्रतीत्यासहजयोगद्वारा सहसासमाधौ निवेशनाच्च यज्ञान्तरेभ्यो जपयज्ञः प्रशस्ततमः' । इत्यादि तात्पर्यचन्द्रिकासूक्तिरनुसन्धेया ॥

[1] वासुदेव एकोव्यूहः, वासुदेव नारायणौद्वौव्यूहौ, सत्याच्युतपुरुषाः त्रयोव्यूहाः इति पाद्मसंहितायां क्रियापादे (१८ अध्याये ५६, ५७ श्लो). सङ्कर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धास्त्रय एवव्यूहा इति अहिर्बुध्न्य संहितादौ च व्यक्तम् । एकः परवासुदेवः वासुदेवसङ्कर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धाः चत्वारोव्यूहा इति लक्ष्मीतन्त्रादौ स्फुटम् ! तदनेन गीतायास्सङ्ग्रहत्वमुपपादितं भवति ॥

इत्यादिवचनानि एतच्छ्रुतितात्पर्यं विशदयन्ति । एतत्तात्पर्येणैव "निरुपाधिक-मैश्वर्यादिक" मित्यादिभट्टार्योक्तिः अधिपत्नी भोगपत्नीभूताभ्यां भूनीळाभ्या-मधिकमहिमवती पत्नी, एतच्छ्रुतितात्पर्यनिर्णायकानि च—

"स्वातन्त्र्येण स्वरूपेण विष्णुपत्नीयमद्भुता ।
यतो जगद्भविष्यन्ती काचिदुन्मेषमृच्छति"। (अ. सं. ३. २६) इति ।
भगवद्यज्ञसंयोगात्पत्नी भगवतो ह्यहम् । ल. तं. ४. ४८ ।
निरुपाधि स्वतन्त्रा च स्वामिनी नःकृपानिधिः ॥५० ॥२१८॥ इति ॥
तथा लक्ष्म्यास्स्वरूपञ्च श्रुणु वक्ष्ये समाहितः । वि. सं ।
गुणतश्च स्वरूपेण व्याप्तिस्साधारणी मता ॥
यथा मया जगद्व्याप्तं स्वरूपेण स्वभावतः ।
तया व्याप्तमिदं सर्वं नियन्त्री च तथेश्वरी ॥
मया व्याप्ता तथा साऽपि तया व्याप्तोऽहमीश्वरः ।
मम तस्याश्च सेनेश वैलक्षण्यमिदं श्रुणु ॥
मच्छेषभूता सर्वेषामीश्वरी वल्लभा मम ।
तस्याश्च जगतश्चाहमीश्वरो वेदविश्रुतः ।
अस्या मम च शेषं हि विभूतिरुभयात्मिका ।
इति श्रुतिशिरस्सिद्धं मच्छास्त्रेष्वपि मानद ॥
तथा भूमिश्च नीळा च शेषभूते मते मम ।
तथाऽऽत्मनाञ्च सर्वेषां ज्ञानतो व्याप्तिरिष्यते ॥
स्वरूपतस्तु न तयोर्व्याप्तिर्वेदान्तपारग ॥ इति ॥
युवां तु विश्वस्य विभू जगतःकारणं परम् ॥

इत्यहिर्बुध्न्यसंहिता लक्ष्मीतन्त्रविष्वक्सेनसंहिताभागवतादिवचनानि । वचनार्थस्त्वन्यत्र विचारितः । अत्र लक्ष्म्या अधिपत्नीत्वकथनेन पतिवत्पत्न्या अपि सृष्ट्यादियज्ञाधिकारः सृष्ट्यादियज्ञकर्तृत्वञ्च बोधितम् ॥

पूर्वतन्त्रे "जातिन्तु बादरायणोऽविशेषात्तस्मात् स्त्र्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्" (६-१-३-८) "स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात्" (६-१-४-१७) इति सूत्रद्वये पत्न्या अपि यज्ञाधिकारः पतिपत्न्योरेकमेव यागकर्तृत्वम्, इत्यादिकं स्फुटम्। अत्र ऐककर्म्यपदं प्रयुञ्जता जैमिनिना पत्न्या अनुमतिकर्तृत्वादिकमेवेति वदन्तः प्रत्युक्ताः। तदुक्तं भाट्टदीपिकायां भट्टकुमारिलानुयायिना खण्डदेवेन—"यदपि तत्स्वारस्यात्पुंस एव त्यागे कर्तृत्वं तस्या अप्यनुमतिद्वारा तदिति केषाञ्चिन्मतम्। तत् अनुमतेः फलसम्बन्धाश्रवणात् तद्द्वारकत्वे प्रमाणाभावेन पूर्वाधिकरणव्युत्पादिताधिकारभङ्गापत्तेरुपेक्षितम्। यत्तु आख्यातोपात्तमेकत्वं सहाधिकारे नावकल्पत इति तन्न। एकवचनश्रवणादेव व्यासज्यवृत्त्यैककर्तृत्वस्य कल्पनात्। इतरथा कर्तृभेदात्सत्रवद्द्विवचनाद्यापत्तेः" इति। अत्र 'जातिन्तु बादरायण' इति पूर्वाधिकरणसिद्धान्तसूत्रानुसारेण "स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात्" इत्युत्तराधिकरणसिद्धान्तसूत्रे कर्मण्येकत्वमेकजातीयत्वमेवेति न तिरोहितं विदुषाम्। अत एव शास्त्रदीपिकाव्याख्याने सोमनाथीये दम्पत्योरेकजातीयत्यागकर्तृत्वप्रतिपादनं सङ्गच्छते। यत्र तु विषयविशेषे एककर्तृत्वांशे विरोधादिकं तत्र त्वगत्या प्रमाणान्तरेण च प्रेरणानुमतिनिबन्धनमेव कर्तृत्वमित्यादिकं सुधीभिरूह्यम्। एवं स्थिते वेदव्यासापरनामबादरायणसिद्धान्ते केषाञ्चिन्मीमांसकैकदेशीनां सर्वत्र यागकर्तृत्वस्य प्रेरणानुमतिनिबन्धनत्वोक्तिरनुपादेया। तथा च सकलार्थसङ्ग्राहिका श्वेताश्वतरद्वितियाध्यायगा श्रुतिः "मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः युजे वां ब्रह्मपूर्व्यं नमोभिः" इति अत्र 'वां ब्रह्म' इति समानाधिकरणनिर्देशः एतेन श्वेताश्वतरप्रथमाध्याये "क्षरात्मानावीशते देव एक" इत्यत्र लक्ष्मीपतिरेव विवक्षितः पुंस्त्वञ्चाविवक्षितमिति सिद्धम्। "युजे वां ब्रह्मपूर्व्यं नमोभि" रिति श्रुतितात्पर्यं लक्ष्मीतन्त्रे—

नमो नित्यानवद्याय जगतस्सर्वहेतवे।
ज्ञानाय निस्तरङ्गाय लक्ष्मीनारायणात्मने॥

यहाँ नैमिष क्षेत्र में देवेश्वर महादेव भगवती रुद्राणी के साथ विश्व के द्रष्टा प्रभु भगवान् आज भी प्रमथ गणों से परिवारित होते हुए रमण किया करते हैं ।।१५।। यहाँ पर द्विजातिगण नियम पूर्वक निवास करके अन्त में यहीं पर अपने प्राणों का परित्याग किया करते हैं और फिर वे सीधे ही ब्रह्मलोक को गमन किया करते हैं जहाँ पर पहुंच कर प्राणी फिर दुवारा जन्म ही ग्रहण नहीं किया करता है ।।१६।। यहाँ पर एक दूसरा भी परम श्रेष्ठ तीर्थ है जिसका नाम जाप्येश्वर सुना गया है। यह वह स्थल है जहाँ पर भगवान् महादेव के महान् गण नन्दी ने निरन्तर स्थित रहकर रुद्रदेव का जाप किया था ।।१७।। इस जाप के करने पर पिनाकधारी प्रभु महादेव अपनी प्रिया देवी के साथ ही उस नन्दी पर परम प्रसन्न हुए थे और उसको अपनी ही समानता प्राप्त करने का तथा मृत्यु से रहित होने का सर्वश्रेष्ठ वरदान प्रदान किया था ।।१८।। वह परम धर्मात्मा एवं धर्म के तत्त्व का श्रेष्ठ ज्ञाता शिलाद नाम वाला ऋषि हुआ था जिसने वृषभध्वज प्रभु महादेव के प्रसाद प्राप्त करने के लिये ही उनकी समाराधना की थी ।।१९।। उसको तपश्चर्या करते हुए जब एक सहस्र वर्ष समाप्त हो गये थे तब इसके अन्त में भगवान् विश्वदृक् ने सोम गणों से समावृत होकर शर्व देव ने प्रसन्न होकर उससे यह कहा था कि मैं वरदान देने वाला हूँ ।।२०।। जब प्रसन्न होकर वरदान का प्रदान करने के लिये प्रभु प्रस्तुत हो गये थे तो उसने उन वरेण्य—गिरिजा के पति ईशान देव से यही एक वरदान माँगा था कि मैं आपसे यही वर प्राप्त करने की याचना करता हूँ कि मुझे ऐसा हो एक पुत्र प्राप्त होवे जो योनि से समुत्पन्न न हो तथा मृत्यु से रहित हो और आपके ही समान हो ।।२१।।

तथास्त्वित्याह भगवान्देव्या सहमहेश्वरः ।
पश्यतस्तस्यविप्रर्षेरन्तर्दधानं गतोहरः ।।२२

ततो युयोज तां भूमिंशिलादोधर्मवित्तमः ।
चक्रषलाङ्गलेनोर्वी भित्वादृश्यतशोभनः ।।२३

संवर्त्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव ।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन्दिशः ।।२४
कुमारतुल्योऽप्रतिमोमेघगम्भीरया गिरा ।
शिलादं तात तातेतिप्राह नन्दी पुनःपुनः ।।२५
तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे ।
मुनीनां दर्शयामास तत्राश्रमनिवासिनाम् ।।२६
जातकर्म्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह ।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम् ।।२७
अधीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुत्तमाम् ।
चक्रे महेश्वरं दृष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिव प्रभुम् ।।२८

इस याचित वरदान का श्रवण कर जगदम्बा भगवती के सहित भगवान् महेश्वर ने 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होवेगा यह अपने मुख से कह दिया था और फिर उस विप्रर्षि के देखते-देखते ही वहीं पर भगवान् अन्तर्धान को प्राप्त हो गये थे ।।२२।। इसके अनन्तर धर्म के तत्त्व के महान् ज्ञाता शिलाद ने उसी भूमि की योजना बनाई थी और हल के द्वारा उस भूमि का कर्षण किया था । उस भूमि का भेदन करके परम शोभा से सुसम्पन्न संवर्त्तक—अग्नि के तुल्य महान् तेजस्वी हँसते हुए एक कुमार को देखा था जो रूप लावण्य से सम्पन्न था और अपने अनुपम महान् तेज के द्वारा समस्त दिशाओं को भासित कर रहा था ।।२३-२४।। कुमार के तुल्य अप्रतिम उस बालक ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से शिलाद को उस नन्दो ने बारम्बार हे तात् ! हे तात् ! यह कह कर पुकारा था ।।२५।। शिलाद ने भी उस समुद्भूत नन्दन को देखकर बड़ी ही प्रीति के साथ उसको उठाकर उसका परिषजन किया था । फिर उस शिलाद ने उस कुमार को ले जाकर उस आश्रम में निवास करने वाले समस्त मुनियों को भी उसे दिखलाया था ।।२६।। इसके अनन्तर उस कुमार को जात कर्म्म आदि सभी शास्त्रोक्त संस्कार वाली सत्क्रियाएं सम्पन्न की थीं । शास्त्र की पद्धति के अनुसार उस बालक का उपनयन संस्कार कराकर स्वयं ही उसको वेदों का अध्यापन भी किया था ।।२७।।

जब भगवान् नन्दी ने समस्त वेद—वेदाङ्गों का पूर्णतया अध्याय समाप्त कर लिया था उसने बहुत ही उत्तम प्रकार की अपनी मति स्थिर की थी कि मैं भगवान् महेश्वर का दर्शन प्राप्त करके मृत्यु की भाँति प्रभु के ऊपर विजय प्राप्त करूंगा ॥२८॥

स गत्वा सागरं पुण्यमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः ।
जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः ॥२९

तस्य कोटचाञ्च पूर्णायां शङ्करोभक्तवत्सलः ।
आगतः सर्वसगणो वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥३०

स वव्रे पुनरेवेशं जपेयं कोटिमीश्वरम् ।
भवदाहं महादेवं देहीति परमेश्वरम् ॥३१

एवमस्त्विति सम्प्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत ।
जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः ॥३२
द्वितीयायाञ्चकोटचांवैपूर्णायाञ्चवृषध्वजः ।
आगत्यवरदोऽस्मीतिप्राहभूतगणैर्वृतः ॥३३
तृतीयाञ्जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शंकर !।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देव्या चान्तरधीयत ॥३४
कोटित्रयेऽथसम्पूर्णे देवः प्रीतमानाभृशम् ।
आगत्यवरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः ॥३५

वह फिर एक परम पुण्यमय सागर पर जाकर एकाग्र मन वाला होकर श्रद्धा से समन्वित बन कर महेश में ही अपने मन को पूर्ण रूप से समासक्त करते हुए निरन्तर रुद्र का ही जाप करने लगा था ॥२९॥ जब उस मन्त्र के जाप की संख्या एक करोड़ पूर्ण होगई थी तब भक्तों पर प्यार एवं अनुकम्पा करने वाले भगवान् शङ्कर समस्त अपने गणों के सहित वहाँ पर समागत हुए थे और आकर उससे कहा था कि मैं वरदान देने के लिये समुत्सुक हूँ ॥३०॥ उसने पुनः ईश्वर से यही कहा था कि मैं इसी मन्त्र का दुवारा एक करोड़ जाप करूँगा। उसने परमेश्वर महादेव से यही कहा था कि भवदाह दीजिए ॥३१॥ "एवमस्तु"—अर्थात्

ऐसा ही होवे—यह कह कर देव भी अन्तर्हित होगये थे। तद्गत मानस होकर देवेश्वर में मन को समासक्त करके पुनः भगवान् उसने एक करोड़ जाप किया था ।।३२।। जब दूसरा करोड़ मन्त्र का जाप पूर्ण होगया तो वृषध्वज भगवान् भूत गणों से परिवृत होकर वहाँ समागत हुए थे और उन्होंने कहा था—कि मैं वरदान प्रदान करने वाला उपस्थित होगया हूँ। तात्पर्य यही था कि मुझसे अब तुम चाहे जो वरदान माँगलो ।।३३।। उसने उसके उत्तर में यही अभ्यर्चना की थी कि हे शङ्कर ! मैं तो फिर भी तीसरा करोड़ और जाप करना चाहता हूँ। देवी के सहित विश्वात्मा प्रभु ने कहा "तथास्तु"—अर्थात् ऐसा ही होवे और यह कहकर वह अन्तर्हित होगये थे ।।३४।। जिस समय में तीनों करोड़ मन्त्र का जाप समाप्त होगया था तब देवेश्वर अत्यन्त प्रीतियुक्त मन वाले होगये थे और फिर वहाँ पर समायात होकर भूतगणों से परिवृत शिव ने कहा था कि मैं वरदान देने वाला हूँ, याचना करलो ।।३५।।

जपेयं कोटिमन्यां वै भूयोऽपि तवतेजसा।
इत्युक्तेभगवानाह न जप्तव्यं त्वयापुनः ।।३६

अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वे गतः सदा।
महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भवमहेश्वरः ।।३७

योगेश्वरो महायोगी गणानामीश्वरेश्वरः।
सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वयज्ञमयोहितः ।।३८

ज्ञानं तन्नामकं दिव्यं हस्तामलकसञ्ज्ञितम्।
आभूतसंप्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम् ।।३९

एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शङ्करः।
अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत् ।।४०
उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक्।
मरुताञ्च शुभां कन्यां स्वयमेति च विष्णुताम् ।।४१
एतज्जप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः।
यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते ।।४२

उसने कहा था कि मैं अभी एक करोड़ और जाप करूँगा और आपके तेज से फिर भी समायुक्त होना चाहता हूँ। इस प्रकार से कहने पर भगवान् ने उससे कहा—अब आपको पुनः जाप नहीं करना चाहिए ॥३६॥ जरा से रहित होकर अमर बन कर सदा मेरे पार्श्व में ही गत हो जाओ। महेश्वर देवो का पुत्र महा गणपति हो जाओ ॥३७॥ योग का ईश्वर—महान् योगी—गणों के ईश्वर के भी ईश्वर—सर्व लोकों के अधिप—समस्त यज्ञों से परिपूर्ण-हितकारी तथा श्रीमान् होजाओ ॥३८॥ तन्नामक दिव्य ज्ञान हस्तामलक संज्ञित होगा। जब तक समस्त भूतों का प्लव (प्रलय) होगा तब तक स्थायी रहकर फिर उसी पद पर प्राप्त हो जायगा ॥३९॥ इतना कहकर महादेव शङ्कर ने अपने गणों को बुला कर समुचित अभिषेक के द्वारा नन्दीश्वर को योजित किया था ॥४०॥ पिनाकधारी ने स्वयमेव उसको उद्वाहित किया था और मरुओं की परम शुभा कन्या थी जिसके साथ विवाह किया गया था और स्वयं विष्णुना को प्राप्त होजाता है ॥४१॥ यही देवों के भी देव भगवान् शूली का जप्येश्वर स्थान पर जो भी मनुष्य मृत होजाता है वह फिर सीधा ही रुद्र लोक में गमन करके वहीं पर प्रतिष्ठित होजाता है ॥४२॥

४४—विविधतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जप्येश्वरसमीपतः।
नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१
त्रिरात्रमुषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते ॥२
अन्यच्च तीर्थं प्रवरं शक्रस्यामिततेजसः।
महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम् ॥३
तीर्थानाञ्च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी।
सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेवगिरीन्द्रजा ॥४
तीर्थं पञ्चतपो नाम शम्भोरमिततेजसः।
यत्र देवाधिदेवेन शक्रार्थं पूजितो भव ॥५

पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्दसुखप्रदम् ।
मृतस्तत्राथ नियमाद्ब्रह्मलोके महीयते ॥६
कायावरोहणं नाम महादेवालयंशुभम् ।
यत्र माहेश्वराधर्म्मामुनिभिः सम्प्रवर्त्तिताः ॥७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा था—इस जप्येश्वर के समीप में ही एक अन्य भी परम श्रेष्ठ तीर्थ है इस का नाम पञ्जनद है और यह पुंय मय है तथा समस्त पापों का विनाश करने वाला है ।।१।। तीन रात्रि तक उपवास करके वहाँ पर महेश्वर भगवान् का अभ्यर्चन करना चाहिए । वह फिर सभी पापों से विशुद्ध होकर रुद्र लोक में महिमान्वित पद पर प्रतिष्ठित होजाता है ।।२।। एक अपरिमित तेज वाले इन्द्रदेव का और परम प्रवर तीर्थ है जो महाभैरव इस नाम से कहा गया है तथा महान से भी महान पातकों का विनाश करने वाला है ।।३।। सभी तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ तो अत्युत्तम वितस्ता नाम वाली नदी है । यह सरिता समस्त प्रकार के पापों का हरण करने वाली—परम पुंयमयी और स्वयं ही गिरीन्द्र से जन्म ग्रहण करने वाली है ।।४।। एक अमित तेज से सम्पन्न भगवान् शम्भु का पञ्चतप नामक तीर्थ है जहाँ पर देवों के अधिदेव ने इन्द्र देव के हित का सम्पादन करने के लिये भगवान् भव का अभ्यर्चन किया था ।।५।। इस तीर्थ में किया हुआ पिंडदान आदि भरने के उपरान्त परम सुख प्रदान करने वाला होता है । उस तीर्थ में ही निवास करके मृत्यु को प्राप्त होजाने वाला पुरुष तो यदि नियम पूर्वक रहा हो तो ब्रह्मलोक में महत्त्व पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित हुआ करता है ।।६।। वहीं पर कायावरोहण नाम वाला परम शुभ महा देवालय है जहाँ पर मुनिगण ने माहेश्वर धर्मों का सम्प्रवर्त्तन किया था ।।७।।

श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः ।
परित्यजति यः प्राणान्रुद्रलोकं स गच्छति ।।८
अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र गत्वा त्यजेत्प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान् ।।९

जामदग्न्यस्य चशुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
तत्रस्नात्वा तीर्थवरेगोसहस्रफलं लभेत् ॥१०

महाकालमितिख्यातं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम् ।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥११

गुह्याद्गुह्यतमंतीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम् ।
तत्र सन्निहितःश्रीमात् भगवान्नकुलीश्वरः ॥१२

हिमवच्छिखरेरम्ये गङ्गाद्वारे सुशोभने ।
देव्या सहमहादेवोनित्यंशिष्यैश्च सम्भृतः ॥१३

इस पुंयमय महातीर्थ में सम्पादित दान श्राद्ध—तप—होम तथा उपवास सभी सत्कर्म अक्षय हो जाया करता है । यहाँ पर जो भी कोई निवास करके अपने प्राणों का परित्याग किया करता है वह सीधा ही रुद्र लोक में गमन किया करता है ॥८॥ एक और भी श्रेष्ठतम तीर्थ है जिसको सर्वोत्तम कहा जाता है और उसका नाम कन्या तीर्थ है । उस तीर्थ में जाकर यदि अपने प्राणों का परित्याग करता है तो उसका फल यह होता कि वह परम शाश्वत लोकों की प्राप्ति का लाभ लिया करता है ॥९॥ अक्लिष्ट कर्म वाले जमदग्नि महर्षि के पुत्र राम का अर्थात् परशुराम का एक शुभ तीर्थ है जिसमें अवगाहन करके एक सहस्र गौओं के दान करने का पुंय—फल प्राप्त हुआ करता है । यह सब में श्रेष्ठ तीर्थं है ॥१०॥ एक महाकाल नाम वाला समस्त लोकों में परम प्रसिद्ध तीर्थ है । इस तीर्थ में गमन करके निवास करता हुआ अपने प्राणों का वहीं पर त्याग करने वाला मनुष्य गाणपत्य पद को प्राप्त किया करता है ॥११॥ एक परम गुप्त से भी अत्यधिक गोपनीय सर्वोत्तम नकुलीश्वर नाम से संयुत श्रेष्ठ तीर्थ है । उस तीर्थ में श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वर स्वयं सन्निहित रहा करते हैं ॥१२॥ हिमालय गिरिवर के परम सुरम्य शिखर पर अति शोभा से सुसम्पन्न गङ्गाद्वार में नित्य ही अपने सभी शिष्यों से सम्भृत महादेव जगज्जननी देवी के साथ निवास किया करते हैं ॥१३॥

तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम् ।
सर्वपापैर्विशुद्ध्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात् ॥१४
अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम् ।
भीमेश्वरमितिख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम् ॥१५
तथान्यश्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः ।
तत्रस्नात्वाचपीत्वाचमुच्यतेब्रह्महत्यया ॥१६
सर्वेषामपिचंतेषांतीर्थानांपरमापुरी ।
नाम्नावाराणसीदिव्याकोटिकोटचयुताधिका ॥१७
तस्याःपुरस्तान्माहात्म्यंभाषितंवोमयात्विह ।
नान्यत्रलभतेमुक्तियोगेनाप्येकजन्मना ॥१८
एतेप्राधान्यतःप्रोक्ता देशाःपापहरा नृणाम् ।
गत्वा सङ्क्षालयेत्पापं जन्मान्तरशतैरपि ॥१९
यः स्वधर्मान् परित्यज्यतीर्थसेवां करोति हि ।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ॥२०

वहाँ पर स्नान करके वृषभध्वज महादेव का अभ्यर्चन करने से मनुष्य सभी पापों से विशुद्ध हो जाया करता है। यदि वहीं पर मृत होजावे तो उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया करता है ॥१४॥ एक और भी देवों के देव का परम पुण्यतम एवं अतीव शुभ स्थान है जिसका शुभ नाम भीमेश्वर प्रसिद्ध है। वहाँ पर मनुष्य पहुंच कर पातकों का त्याग कर विशुद्धात्मा हो जाया करता है ॥१५॥ इसके अतिरिक्त एक अन्य भी तीर्थ है जो चण्डवेगा का सम्भेद है और यह भी पापों का नाश करने वाला है। उस तीर्थ में स्नान करके तथा उसके जल का पान करके मनुष्य ब्रह्महत्या के पाप से भी मुक्ति पाजाया करता है ॥१६॥ ये सभी तीर्थ परम श्रेष्ठ हैं—इसमें कोई भी संशय नहीं है किन्तु इन सभी तीर्थों में परम श्रेष्ठ एक पुरी है जिसका नाम वाराणसी है और यह अति दिव्य है तथा करोड़ों से भी करोड़ दश सहस्र से भी अधिक यह पुरी है ॥१७॥ उस पुरी का माहात्म्य तो पहिले ही हमने आप लोगों को बतला दिया है। अन्य स्थलों तथा परम शुभ तीर्थों में एक ही जन्म में योग के द्वारा

भी मुक्ति का लाभ मनुष्य नहीं किया करता है ॥१८॥ ये सब प्रधानतया देश मनुष्यों के पापों के हरण करने वाले ही बताये गये हैं। इनमें गमन करके मनुष्य अन्य सौ जन्मों के भी पापों का संक्षालन किया करता है और विशुद्धि प्राप्त कर लिया करता है ॥१९॥ जो कोई अपने धर्मों का परित्याग करके केवल तीर्थ की सेवा में रत रहा करता है इस लोक और परलोक में तीर्थ कभी भी फल नहीं दिया करता है ॥२०॥

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथायायावरोगृही।
प्रकुर्यात्तीर्थसंसेवांयश्चान्यस्तादृशोजनः ॥२१
सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात् ॥२२
ऋणानित्रीण्यपाकुर्यात्कुर्वन्वातीर्थसेवनम्।
विधायवृत्तिपुत्राणांभार्यांतेषुविधायच ॥२३
प्रायश्चित्तप्रसङ्गेनतीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४

प्रायश्चित्त करने वाला—विधुर—यायावर तथा गृहस्थ को तीर्थ की भली भाँति सेवा करनी चाहिए तथा जो कोई अन्य भी उसी प्रकार का मनुष्य हो वह तीर्थ सेवन करे ॥२१॥ सहाग्नि अथवा सपत्नीक को यत्न पूर्वक तीर्थों में गमन करना चाहिए। वहाँ पर वह सभी प्रकार के पापों से निर्मुक्त होकर यथोक्त गति को प्राप्त किया करता है ॥२२॥ मनुष्य का परम कर्तव्य है कि तीर्थों का सेवन करके अपने ऊपर चढ़े हुए प्रमुख तीनों ऋणों को दूर करे। अपने पुत्रों की जीवन निर्वाह की वृत्ति का भली भाँति विधान करके उन्हीं पुत्रों के ऊपर ही अपनी भार्या के पोषण भार को छोड़कर तीर्थों का संसेवन करना चाहिए ॥२३॥ प्रायश्चित्तों के ही प्रसङ्ग से यहाँ पर तीर्थों का माहात्म्य वर्णित कर दिया गया है। इस तीर्थों के माहात्म्य का भी जो कोई पाठ करता है या श्रवण किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥२४॥

———

४५—चतुर्विधप्रलयवर्णन

एतदाकर्ण्यविज्ञानं नारायणमुखेरितम् ।
कूर्मरूपधरंदेवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम् ॥१
कथितोभवताधर्मोमोक्षज्ञानंसविस्तरम् ।
लोकानांसर्गविस्तारोवंशोमन्वन्तराणि व ॥२
इदानींदेवदेवेश! प्रलयं वक्तुमर्हसि ।
भुतानां भूतभव्येश! यथा पूर्वं त्वयोदितम् ॥३
श्रुत्वातेषां तदावाक्यंभगवान् कूर्मरूपधृक् ।
व्याजहारमहायोगीभूतानांप्रतिसञ्चरम् ॥४
नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतोऽत्यन्तिकस्तथा ।
चतुर्द्धाऽयं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चरः ॥५
योऽयंसंदृश्यतेनित्यंलोकेभूतक्षयस्त्विह ।
नित्यःसङ्कीर्त्त्यतेनाम्नामुनिभिप्रतिसञ्चरः ॥६
ब्रह्मनैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति ।
त्रैलोकस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः ॥७

श्री सूतजी ने कहा—भगवान् श्रीनारायण के मुखारविन्द से वर्णित इस विज्ञान का श्रवण करके मुनिगण ने कूर्मरूप के धारण करने वाले देव प्रभु से पूछा था ॥१॥ मुनियों ने कहा था—हे भगवन् ! आपने परम कृपा करके विस्तार के सहित मोक्ष प्राप्त करने का ज्ञान—धर्म—लोकों के सर्ग का विस्तार-—वंश और मन्वन्तर इन सबका वर्णन कर दिया है। इस समय में तो हे देवों के भी देवेश्वर ! आप प्रलय काल के विषय में बताने के योग्य होते हैं। हे भूत और भव्य के ईश ! समस्त भूतों का लय कैसे होता है यही बतलाइये। जैसा कि आपने पहिले ही कहा था ॥२-३॥ श्री सूतजी ने कहा—भगवान् कूर्म्म के स्वरूप को धारण करने वाले प्रभु ने उस समय में उन मुनियों के वचन का श्रवण कर उन महायोगी भगवान् ने भूतों का प्रतिसञ्चर का वर्णन करना आरम्भ कर दिया था ॥४॥ भगवान् कूर्म देव ने कहा—भूतों का प्रतिसञ्चर (प्रलय)

इस पुराण में नित्य—नैमित्तिक—प्राकृत और आत्यन्तिक यह चार प्रकार का ही कहा जाता है ॥५॥ जो यह यहाँ परलोक में नित्य ही भूतों का क्षय होता हुआ दिखलाई दिया करता है यही मुनियों के द्वारा नामं से प्रतिसञ्चर नित्य ही कहा जाया करता है क्यों यह नित्य ही वटा होता ही रहा करता है ॥६॥ ब्रह्मा ही जिसका निमित्त होता है ऐसा जो कल्प के अन्त में प्रतिसञ्चर हुआ करता है उसको मनीषियों ने इस त्रैलोक्य का प्रतिसर्ग कहा है ॥७॥

महदाद्यंविशेषान्तं यदासंयाति संक्षयम् ।
प्राकृतःप्रतिसर्गोऽयंप्रोच्यतेकालचिन्तकैः ॥८
ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि ।
प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः ॥९
आत्यन्तिकस्तुकथितःप्रलयोज्ञानसाधनः ।
नैमित्तिकमिदानींवःकथयिष्येसमासतः ॥१०
चतुर्व्यूहसहस्रान्तेसम्प्राप्तेप्रतिसञ्चरे ।
स्वात्मसंस्थाःप्रजाःकर्त्तुम्प्रतिपेदेप्रजापतिः ॥११
ततोऽभवत्त्वनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी ।
भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयङ्करी ॥१२
ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीपते ! ।
तानि चाग्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥१३
सप्तरश्मिरथो भूत्वासमुत्तिष्ठन्दिवाकरः ।
असह्यरश्मिर्भवतिपिवन्नम्भोगभस्तिभिः ॥१४

जो विद्वान् इस काल के विषय में भली भाँति चिन्तन किया करते हैं उन्होंने कहा है कि जो महत्तत्त्व से आदि का आरम्भ करके विशेष के अन्त पर्यन्त सभी संक्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं इस प्रतिसर्ग को प्राकृत इस नाम से उनके द्वारा बतलाया गया है ॥८॥ इस काल के ही चिन्तन करने में परायण रहने वाले द्विजगणों के द्वारा वह प्रतिसर्ग आत्यन्तिक

प्रलय का नाम कहा गया है जो योगीजन परमात्मा में ज्ञान से किया करते हैं ॥९॥ आत्यन्तिक जो प्रलय होता है वह ज्ञान के साधन वाला कहा गया है। अब हम इस समय में अति संक्षेप से आप लोगों को नैमित्तिक प्रलय के विषय में वर्णन करेंगे ॥१०॥ सतयुग—त्रेता—द्वापर और कलियुग इस चतुर्व्यूह को एक सहस्र संख्या जिस समय में पूरी हो जाती है उसके अन्त में इस प्रतिसञ्चर के सम्प्राप्त होने पर प्रजापति इस सम्पूर्ण प्रजा को अपनी ही आत्मा में संस्थित करने के लिये प्रतिपन्न हुआ करते हैं ॥११॥ इस प्रलय के होने के आरम्भ में एक सौ वर्ष तक निरन्तर ही रहने वाली लोक में अनावृष्टि (वर्षा का एकदम अभाव) ही हुआ करती है। यह समस्त प्राणियों के क्षय करने वाली और सभी भूतों के संक्षय करने वाली होती है जल के बिल्कुल अभाव में प्राणी पिपासा बुभूक्षा से मरण को प्राप्त होते हैं ॥१२॥ हे पृथिवीपते ! इसके उपरान्त जो सत्त्व अत्यल्प सार वाले होते हैं वे सबसे आगे प्रलीन हुआ करते हैं और भूमिसात् हो जाया करते हैं ॥१३॥ फिर सूर्यदेव सप्तरश्मि वाले होकर समुदित हुआ करते हैं। इनकी ये तीव्रतम किरणें असह्य हो जाया करती हैं और इन तीखी किरणों से ही वह लोक में रहे जल को पान सा कर लिया करता है ॥१४॥

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे ।
तेनाऽऽहारेण ता दीप्त्वा सप्तसूर्य्या भवन्त्युत ॥१५

ततस्तेरुश्मयः सप्त शोषयित्वा चतुर्द्दिशम् ।
चतुर्लोकमिमंसर्वंदहन्ति शिखिनोयथा ॥१६

व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊर्द्ध्वञ्चाधः स्वरश्मिभिः ।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिताः ॥१७

ते सूर्यावारिणादीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः ।
खं समावृत्यतितिष्ठन्तिप्रदहन्तो वसुन्धराम् ॥१८

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा ।
साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निःस्नेहा सम्प्रपद्यते ॥१९

दीप्ताभिः सन्तताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्ततः ।
अधश्चोर्द्ध्वश्च लग्नाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम् ॥२०

सूर्याग्निनाप्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम् ।
एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ॥२१

उस सूर्य्य की जो कि सात रश्मियों से सुसम्पन्न अपना स्वरूप उस प्रलय काल में धारण किया करता है वे सात रश्मियाँ इस महार्णव के जल का पान किया करती हैं। उस आहार से वे अत्यन्त ही दीप्त हो जाया करती हैं और वे सात सूर्य ही हो जाते हैं ॥१५॥ इसके अनन्तर वे सात रश्मियाँ (किरणें) चारों दिशाओं में जल का शोषण करके इस सब चतुर्लोक को अग्नि के ही समान दाह से युक्त कर दिया करती हैं ॥१६॥ ऊपर और नीचे वे अत्यन्त दीप्त होकर व्यापक होती हुई स्थित हो जाया करती हैं। उन अपनी रश्मियों से युगान्ताग्नि से प्रदीपित सात भास्कर ही दीप्यमान होकर दिखलायी दिया करते हैं ॥१७॥ जल से अत्यन्त ही दीप्त बहुत-सी सहस्रों संख्या वाली वे रश्मियाँ समावृत होकर इस वसुन्धरा को प्रदग्ध करती हुई स्थित रहा करती हैं ॥१८॥ इसके उपरान्त उन सूर्यदेव की प्रखर तम किरणों के प्रताप से यह सम्पूर्ण वसुन्धरा दह्यमान हो जाया करती है। पर्वत—नदी—सागर और द्वीप सभी स्नेह से शून्य अर्थात् जल के अभाव में एकदम शुष्क हो जाया करते हैं ॥१९॥ अग्नि के समान अत्यन्त दीप्त और निरन्तर संतप्त चारों ओर उन रश्मियों से नीचे और ऊपर तथा तिरछी ओर संलग्न होकर सब समावृत हो गया था ॥२०॥ सूर्य की अग्नि से प्रमृष्ट तथा परस्पर में संसृष्ट होकर एकत्व भाव को प्राप्त होने वाले सबकी एक ही ज्वाला हो गई थी ॥२१॥

सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली ।
चतुर्लोकमिमंसर्वंनिर्दहत्याशुतेजसा ॥२२

ततःप्रलीनेसर्वास्मिञ्जङ्गमे स्थावरे तथा ।
निर्वृक्षानिस्तृणाभूमिःकूर्मपृष्ठा प्रकाशते ॥२३

अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत् ।
सर्वमेवतदर्च्चिर्वै पूर्णं जाज्वल्यते पुनः ॥२४

पाताले यानि सत्त्वानिमहोदधिगतानिच ।
ततस्तानिप्रलीयन्तेभूमित्वमुपयान्तिच ॥२५

द्वीपांश्च पर्वतांश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन् ।
तान् सर्वान् भस्मसाच्चक्रे सप्तात्मा पावकः प्रभुः ॥२६

समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च आपःशुष्काश्च सर्वशः ।
पिबन्नपः समृद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रियो ज्वलन् ॥२७

ततः संवर्त्तकः शैलानतिक्रम्यमहांस्तथा ।
लोकान्दहतिदीप्तात्मामारुतेयोविजृम्भितः ॥२८

इस सम्पूर्ण लोक का प्रणाश करने वाला वह अग्नि मण्डली होकर चारों लोकों में बहुत ही शीघ्र तेज से निर्दग्ध कर दिया करता है ॥२२॥ इसके अनन्तर यहाँ पर जङ्गम और स्थावर सभी प्रकार की सृष्टि के प्रलीन हो जाने पर अर्थात् प्रखर तम किरणों के तेज से भस्मसात होने पर यह भूमि उस समय में बिना वृक्षों वाली तृणों से रहित कूर्म के पृष्ठ की ही भाँति प्रकाशित हो रही थी ॥२३॥ यह सम्पूर्ण आपूरित जगत् अम्बरीष की भाँति ही शोभित हो रहा था । सूर्य की अर्चियों से सभी परिपूर्ण होकर एकदम जाज्वल्यमान हो गया था ॥२४॥ जो जीव पाताल में थे तथा जो जीव थे महासागर में भी जो जीव गत हो गये थे या वहीं पर रहते थे वे सभी प्रलीन हो गये थे और भूमि में ही सब मिल गये थे इन सात रश्मियों के द्वारा सात स्वरूपों वाले प्रभु पावक ने सब द्वीपों को—समस्त पर्वतों को—सम्पूर्ण वर्षों को और महोदधियों को इन सभी को भस्म के समान जला कर बना दिया था ॥२५-२६॥ सभी समुद्रों से और समस्त नदियों से सभी ओर में जल तो एकदम शुष्क हो गया था । मानों वह अग्नि उस सम्पूर्ण जल को पीकर ही अत्यन्त समृद्ध हो गया था और जलता हुआ पृथिवी में ही समाश्रित हो गया था ॥२७॥ इसके अनन्तर उस महान् संवर्तक समस्त शैलों का अतिक्रमण करके वह विजृम्भित

मारुतेय अत्यन्त दीप्त आत्मा वाला होकर लोकों का दाह कर देता है ॥२८॥

स दग्ध्वा पृथिवीं देवो रसातलमशोभयत् ।
अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा दिवमूर्द्ध्वं दहिष्यति ॥२९
योजनानां शतानीहसहस्राण्ययुतानिच ।
उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्यवह्नेःसंवर्त्तकेस्यतु ॥३०
गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान् ।
तदा दहत्यसौदीप्तः कालरुद्रप्रणोदितः ॥३१
भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं महर्ल्लोकं तथैव च ।
दहेदशेषंकालाग्निः कालाविष्टतनुः स्वयम् ॥३२
व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्द्ध्वमथाग्निना ।
तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः ॥३३
अतो गूढमिदं सर्वं तदेवैकम्प्रकाशते ।
ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलङ्कृताः ॥३४
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्त्तका घनाः ।
केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः ॥३५

वह देव इस प्रकार से पृथिवी को दग्ध करके रसातल में जाकर उसे शोभित करने लगे थे । नीचे के भाग में भी पृथ्वी को दग्ध करके ऊर्ध्व मार्ग में दिवलोक को दग्ध कर रहे थे ॥२९॥ उस संवर्त्तक अग्नि की ज्वालाऐं ऐसा महान् भीषण रूप धारण करके स्थित हो रहा था कि उन ज्वालाओं का विस्तार दश हजार सौ सहस्र योजन पर्यन्त था और इतनी ऊँचाई तक वे ज्वालाऐं ऊपर की ओर बड़ी भीषणता से उठ रही थीं ॥३०॥ काल रुद्र से प्रणोदित होकर यह अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि उस समय में गन्धर्वों को—पिशाचों को—यक्षों को—उरगों को और राक्षसों को सभी का दाह कर रहा था ॥३१॥ वह काल से समाविष्ट प्रवाला वह कालाग्नि स्वयं भूर्लोक—भुवर्लोक सब को दग्ध कर रहा था ॥३२॥ इस कालाग्नि के द्वारा तिरछा और ऊपर इन समस्त लोकों व्याप्त हो जाने पर वह तेज पूर्ण रूप से धीरे-धीरे इस सम्पूर्ण जगत् में समनुप्राप्त

हो गया था ॥३३॥ इसीलिये यह सब उस समय में गूढ़ होता हुआ एक ही प्रकाशित हो रहा था। इसके अनन्तर जबकि उस कालाग्नि ने समस्त लोकों को जला कर अङ्गार के समान बना दिया था फिर हाथियों के समूह के समान आकार वाले परम विशाल एवं घने तथा विद्युत् से समलंकृत होकर मेघ आये थे ॥३४॥ उस समय में अत्यन्त घोर एवं महान् भीषण कराल सम्वर्त्तक घन आकाश में उठ आये थे। इनमें से कुछ तो नील कमलों की आभा के सदृश आभा वाले थे और कतिपय मेघ कुमुद के तुल्य थे ॥३५॥

धूम्रवर्णास्तथा केचित्केचित्केचित्पीताः पयोधराः ।
केचिद्रासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभाः परे ॥३६
शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा ।
मनः शिलभाश्च परे कपोतसदृशाः परे ॥३७
इन्द्रगोपनिभाःकेचिद्धरितालनिभास्तथा ।
इन्द्रचापनिभाःकेचिदुत्तिष्ठन्तिघनादिव ॥३८
केचित्पर्वतसङ्काशाः केचिद्गजकुलोपमाः ।
कूटाङ्गारनिभाश्चान्ये केचिन्मीनकुलोद्वहाः ॥३९
बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः ।
तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभस्तलम् ॥४०
ततस्ते जलदाघोरा राविणो भास्करात्मजाः ।,
सप्तधा संवृतात्मानं तमग्नि शमयन्त्युत (शमयेत्पुनः) ॥४१
ततस्ते जलदा वर्षंमुञ्चन्तीह महौघवत् ।
सुघोरमशिवं वर्षं नाशयन्ति च पावकम् ॥४२
अतिवृद्धस्तदात्यर्थमम्भसा पूर्य्यते जगत् ।
अद्भिस्तेऽम्भोऽभिभूतत्वात्तदग्निः प्रविशत्यपः ॥४३

ये प्रलय काल के मेघ विभिन्न वर्णों वाले थे। कुछ का वर्ण धूम्र के समान था और कतिपय मेघ पीत वर्ण के थे। कुछ का वर्ण गधे के सदश था और कुछ लाक्षा रस के तुल्य वर्ण वाले थे ॥३६॥ कुछ शङ्ख और कुन्द के पुष्प के समान श्वेत वर्ण वाले थे तथा जाति अञ्जन

के तुल्य कृष्ण वर्ण वाले थे। कुछ मैंने शिल के समान वर्ण वाले थे और दूसरे कपोत के सदृश रंग वाले थे ॥३७॥ इन्द्र (गोप वीर वहूटी) के समान वर्ण वाले थे तथा कुछ हरि ताल के सदृश पीत वर्ण के थे। कतिपय मेघ इन्द्र धनुष के समान वर्णों वाले थे कुछ घन दिवि लोक में उत्थित होरहे थे ॥३८॥ कुछ मेघ पर्वत सदृश विशाल थे और कुछ गन्जों के समुदाय के तुल्य थे। कतिपय कूटांगार के समान थे और अन्य कुछ मीन कुल के उद्वहन करने वाले थे ॥३६॥ इस प्रकार से वहुत से स्वरूप वाले—घोर रूप रेखा से संयुत तथा घोर ध्वनि के निनाद करने वाले थे। उस समय में सब जलधरों ने नभस्तल को पूरित कर दिया था ॥४०॥ इसके पश्चात् घोर—ध्वनि करने वाले—भास्करात्मज वे जलद थे। सात प्रकार से संवृत आत्मा वाले उस अग्नि को इन मेघों ने शमित कर दिया था ॥४१॥ इसके अनन्तर मेघ महान् ओघ के समान वर्षा का त्याग कर रहे थे। वह वृष्टि सुघोर अशिव—उस पावक का नाश कर रही थी ॥४२॥ अति वृद्धि को प्राप्त उसने उस समय में अत्यर्थ जल के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को पूरित कर दिया था। वर्षा के जल से जलाभिभूत होकर वह अग्नि जल में प्रवेश करने लगा था ॥४३॥

नष्टे चाग्नौ वर्षशतैः पयोदाः क्षयसम्भवाः।
प्लावयन्तो जगत्सर्वं महाजलपरिस्रवैः ॥४४
धाराभिः पूरयन्तीदं नोद्यमानाःस्वयम्भुवा।
अत्यन्तसलिलौघास्तुवेलाइवमहोदधेः ॥४५
साद्रिद्वीपा ततःपृथ्वीजलैःसञ्छाद्यतेशनैः।
आदित्यरश्मिभिःपीतज़लमभ्रेषुतिष्ठति ॥४६
पुनःपततितद्भूमौपूर्यन्तेतेनचार्णवाः।
ततःसमुद्राःस्वांवेलामतिक्रान्तास्तुकृत्स्नशः ॥४७
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे ॥४८
योगनिद्रांसमास्थाय शेते देवः प्रजापतिः।
चतुर्युगसहस्रान्तं कल्पमाहुर्मनीषिणः ॥४९

लगभग एक सौ वर्ष तक वर्षा के होते रहने से वह अग्नि नष्ट होजाने पर क्षय से सम्भूत मेघों ने महान जल के परिस्रवों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का प्लावन करने वाले हो रहे थे ।।४४।। स्वयम्भू प्रभु के द्वारा प्रेरित हुए मेघ धाराओं के द्वारा इस जगत् को पूरित कर रहे थे । ये अत्यन्त जल के औघ वाले मेघ समुद्र की वेला की भाँति ही थे ।।४५।। अद्रि (पर्वत) द्वीपों के सहित सम्पूर्ण पृथ्वी फिर धीरे संच्छादित हो गई थी । सूर्य्य की रश्मियों के द्वारा पीया हुआ सम्पूर्ण जल मेघों में ही स्थित होगया था ।।४६।। फिर वह जल मेघों से भूमि पर पतित होता है और उससे फिर सागर परिपूर्ण हो जाया करते हैं । इस के अनन्तर समुद्र अपनी वेला का अतिक्रमण करने वाले पूर्णतया हो जाया करते हैं ।।४७।। पर्वत विलीन हो जाते हैं और यह पृथ्वी जल में निमग्न हो जाती है । उस समय में संसार में परम घोर एक सागर ही—सागर होता है और स्थावर तथा जङ्गम सम्पूर्ण सृष्टि का नाश हो जाया करता है ।।४८।। जब ऐसी दशा हो जाती है तो उस काल में प्रजापति देव योग निद्रा में समास्थित होकर शयन किया करते हैं । मनीषीगण एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त होता है तो उसे एक कल्प कहा करते हैं ।।४९।।

वाराहो वर्त्तते कल्पो यस्य विस्तर ईरितः ।
असंख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ।।५०

कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः ।
सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ।।५१

तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषुप्रजापतेः ।
योयं प्रवर्त्तते कल्पो वाराहः सात्त्विकोमतः ।।५२

अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः ।
ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा ते योगिनः परम् ।।५३

आराध्य तञ्च गिरिशं यान्ति तत्परमम्पदम् ।
सोऽहं तत्त्वं समास्थाय मायी मायामयीं (यीं) स्वयम् ।।५४

एकार्णवेजगत्यस्मिन्योगनिद्रांव्रजामि तु ।
मां पश्यन्तिमहात्मानःसप्तकालेमहर्षयः ॥५५
जनलोके वर्त्तमानास्तापसायोगचक्षुषा ।
अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवःप्रभवो विभुः ॥५६
सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात ।
मन्त्रोऽहं ब्राह्मणा गावः कुशोऽथ समिधो ह्यहम् ॥५७

यह वाराह कल्प है जिसका यह विस्तार कहा गया है। इस तरह से कल्प भी एक दो नहीं हैं प्रत्युत इनकी कोई संख्या ही नहीं कही जा सकती है येअसंख्यात है जो ब्रह्मा—विष्णु और शिव स्वरूप हैं ॥५०॥ जो इस काल के चिन्तन करने वाले मुनिगण हैं उन्होंने पुराणों से इनका कथन किया है। जो कल्प सात्त्विक हैं उनमें ही भगवान हरि का अत्यधिक माहात्म्य कहा गया है ॥५१॥ जो कल्प तामस हैं अर्थात् तमो गुण की प्रधानता जिनके हुआ करती है उनमें हर का माहात्म्य वर्णित है तथा राजस कल्पों में प्रजापति का माहात्म्य कहा गया है। जो यह कल्प इस समय में प्रवृत्त हो रहा है वह वाराह कल्प है और यह सात्त्विक कल्प है ॥५२॥ अन्य जो सात्त्विक कल्प हैं उनमें मेरा परिग्रह होता है। वे योगी लोग परम ध्यान—तप और ज्ञान का लाभ करके और गिरिश प्रभु की समाराधना करके उसी परम पद की प्राप्ति किया करते हैं। वह मैं तत्त्व मायामयी माया से मेरे समास्थित होकर स्वयं मायी वन जाता हूँ ॥५३-५४॥ उस एकार्णव जगत् में अर्थात् ऐसे संसार में जिसमें केवल एक समुद्र ही है मैं योग निद्रा में प्राप्त होता हूँ। उस समय में मुझको सप्त काल में महान् आत्मा वाले महर्षिगण ही देखा करते हैं ॥५५॥ जन लोक में वर्त्तमान रहने वाले तापस जन योग की चक्षु के ही द्वारा मेरा दर्शन किया करते हैं। मैं परम पुराण पुरुष हूँ और भूर्भुवः प्रभवविभु हूँ ॥५६॥ सहस्र चरणों वाला—सहस्र नेत्रों से सम्पन्न तथा सहस्र पादों से संयुत श्रीमान् मैं ही मन्त्र हूँ। ब्राह्मण—गो—कुश और समिधा मैं ही हूँ ॥५७॥

प्रोक्षणीयं स्वयञ्चैवसोमोव्रतमथाऽस्म्यहम् ।
संवर्त्तकोमहानात्मा पवित्रं परमंयशः ॥५८
मेधाप्यहं प्रभुर्गोप्तागोपतिर्ब्राह्मणोमुखम् ।
अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतांवरः ॥५९
हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्त्तिः सनातनः ।
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम् ॥६०
माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यो न विद्यते ।
आदित्यवर्णा भुवनस्य गोप्ता नारायणः पुरुषो योगमूर्त्तिः ।
तं पश्यन्ते यतयोयोगनिष्ठा ज्ञात्वात्मानंममतत्त्वं व्रजन्ति ॥६१

मैं ही स्वयं प्रोक्षणीय तथा सोमव्रत हूँ । सम्वर्त्तक महान् आत्मा—पवित्र परम यश भी मैं हूँ ॥५८॥ मैं ही मेधा—प्रभु—गोप्ता—गोपति—ब्राह्मण मुख—अनन्त—तारक–योगी—गति वालों में श्रेष्ठ भी मैं ही हूँ ॥५९॥ हंस—प्राण—कपिल—विश्वमूर्त्ति—सनातन—क्षेत्रज्ञ—प्रकृति—काल—जगत् का बीज और अमृत मैं ही हूँ ॥६०॥ माता—पिता—महादेव मुझसे अन्य दूसरा कोई भी नहीं है । अर्थात् सभी कुछ मैं ही हूँ । आदित्य के समान परम तेजस्वी वर्ण वाला—भुवन का गोप्ता अर्थात् रक्षा करने वाला—नारायण—पुरुष—योग मूर्त्ति मैं हूँ । योग में पूर्ण निष्ठा रखने वाले यति लोग ही उस मेरा दर्शन किया करते हैं तथा आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके मेरे वास्तविक तत्त्व को प्राप्त किया करते हैं ॥६१॥

———

४६—प्रतिसर्गवर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम् ।
प्राकृतं तत्समासेन शृणुध्वं गदतो मम ॥१
गते परार्द्धद्वितये कालेलोकप्रकालनः ।
कालाग्निर्भस्मसात्कर्त्तुं चरतेचाखिलंजगत् ॥२
स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वादेवो महेश्वरः ।
दहेदशेषं ब्रह्माण्डं सदेवासुरमानुषम् ॥३

तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहितः ।
करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमाश्रितः ॥४

प्रविश्य मण्डलंसौरंकृत्वाऽसौ बहुधापुनः ।
निर्दहत्यखिलं लोकं सप्तसप्तिस्वरूपधृक ॥५

स दग्ध्वा सकलं विश्वमस्त्रं ब्रह्मशिरोमहत् ।
देवतानां शरीरेषुक्षिपत्यखिलदाहकम् ॥६

दग्धेष्वशेषदेवेषुदेवीगिरिवरात्मजा ।
एषा सासाक्षिणीशम्भोस्तिष्ठतेवैदिकीश्रुतिः ॥७

भगवान् कूर्म ने कहा—इसके आगे मैं अब सर्वोत्तम प्रति सर्ग का वर्णन करूंगा । कथन करने वाले मुझ से प्राकृत उसका श्रवण संक्षेप से आप लोग करिए ॥१॥ द्वितीय परार्द्ध के गत हो जाने पर उस काल में लोक का प्रकालन कालाग्नि सम्पूर्ण जगत् को भस्मसात् करने के लिये चरण किया करता है ॥२॥ अपनी आत्मा में आत्मा को आविष्ट करके महेश्वर देव होकर देव–असुर मानवों के सहित इस समस्त ब्रह्माण्ड का दाह किया करते हैं ॥३॥ भगवान् नील लोहित महादेव उसमें आविष्ट होकर महान् भीषण रूप का समाश्रय लेने वाले लोक का संहार किया करते हैं ॥४॥ सौर मण्डल में प्रवेश करके यह पुनः बहुत प्रकार का होकर सप्त सप्ति के स्वरूप को धारण करने वाले यह पूर्ण लोक को निर्दग्ध कर दिया करते हैं ॥५॥ वह इस सकल विश्व को दग्ध करके महान् ब्रह्मशिर अस्त्र को जो अखिल का दाह करने वाला है देवताओं के शरीरों में क्षिप्त कर दिया करते हैं ॥६॥ समस्त देवों के दग्ध हो जाने पर गिरिवर की पुत्री देवी जो यह भगवान् शम्भु की साक्षिणी है वहाँ पर स्थित रहा करती है—यह वैदिकी श्रुति है ॥७॥

शिरःकपालैर्देवानां कृतस्रग्वरभूपणः ।
आदित्यचन्द्रादिगणैः पूरयन्व्योममण्डलम् ॥८
सहस्रनयनो देवः सहस्राक्ष इतीश्वरः ।
सहस्रहस्तचरणः सहस्रा [illegible] ॥९

दंष्ट्राकरालवदनः प्रदीप्तानललोचनः ।
त्रिशूलकृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थितः ॥१०

पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम् ।
करोति ताण्डवं देवीमालोक्यपरमेश्वरः ॥११

पीत्वा नृत्यामृतंदेवीभर्त्तुः परममङ्गलम् ।
योगमास्थाय देवस्यदेहमायातिशूलिनः ॥१२

स भुक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक् ।
ज्योतिःस्वभावं भगवान्दग्ध्वा ब्रह्माण्डलम् ॥१३

संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मा विष्णुः पिनाकधृक् ।
गुणैरशेषैः पृथिवी विलयं याति वारिषु ॥१४

देवों के शिरों के कपालों के द्वारा माला और भूषण की रचना करने वाले आदित्य और चन्द्र आदि गणों के द्वारा व्योम मण्डल को पूरित करने वाले हैं ॥८॥ सहस्र नयनों वाले देव और सहस्राक्ष इस नाम वाले ईश्वर—सहस्र हाथों तथा चरणों वाले—सहस्र अर्चियों वाले—महान् भुजाओं से सम्पन्न हैं ॥६॥ दंष्ट्रा से कराल मुख वाले—प्रदीप्त अग्नि के तुल्य लोचनों वाले—त्रिशूलधारी तथा व्याघ्र चर्म को वस्त्र के स्थान पर धारण करने वाले प्रभु ईश्वरीय योगमें समास्थित हो जाते हैं ॥१०॥ उस परम आनन्द स्वरूपी प्रभूत अमृत का स्वयं ही पान करके परमेश्वर देवी को देखकर ताण्डव नृत्य किया करते हैं ॥११॥ उधर देवी अपने स्वामी का परम मङ्गल स्वरूप नृत्यामृत का पान करके देह माया त्रिशूली देव के योग में समास्थित हो गई थीं। पिनाकधारी वह ताण्डव नृत्य के रस का उपभोग करके अपनी ही इच्छा से भगवान् ने ज्योति के स्वभाव वाले ब्रह्माण्ड को दग्ध कर दिया था ॥१२-१३॥ ब्रह्मा-विष्णु और पिनाकधृक्-इन देवों के संस्थित रहने पर यह पृथिवी सम्पूर्ण गुणों से युक्त जल में विलय को प्राप्त हो जाती है ॥१४॥

स वारितत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहनः ।

तेजः स्वगुणसंयुक्तं वायौ संयाति सङ्क्षयम् ॥१५

आकाशे सगुणोवायुःप्रलयंयातिविश्वभृत् ।
भूतादौ चतथाकाशेलीयतेगुणसंयुतः ॥१६
इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे यान्ति संक्षयम् ।
वैकारिको देवगणैः प्रलयं याति सत्तमाः ॥१७
त्रिविधोऽयमहंकारोमहति प्रलयेव्रजेत् ।
महान्तमेभिः सहितंब्रह्माणममितौजसम् ॥१८
अव्यक्तञ्जगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम् ।
एवं संहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वरः ॥१९
वियोजयति चान्योऽन्यम्प्रधानं पुरुषम्परम् ।
प्रधानपुंसोरजयोरेष संहार ईरितः ॥२०
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्यते लयः ।
गुणसाम्यं तदव्यक्तं प्रकृतिःपरिगीयते ॥२१

हव्य वाहन (अग्नि) गुणों के सहित जल के तत्त्व का ग्रास कर जाया करता है और अपने गुणों से संयुक्त वह तेज तत्त्व भी वायु में संक्षय को प्राप्त हो जाया करता है ॥१५॥ विश्व का भरण करने वाला वायु अपने गुणों से समन्वित हो आकाश में प्रलय को प्राप्त हो जाता है । तथा भूतादि आकाश में गुणों से संयुत लीन हो जाया करता है ॥१६॥ समस्त इन्द्रियाँ तैजस तत्त्व में संक्षय को प्राप्त हो जाया करती हैं । हे सत्तमो ! वैकारिक देवगणों के साथ प्रलय को प्राप्त हो जाता है ॥१७॥ यह तीन प्रकार का अहङ्कार महत्त्व में पुलीन होता है । इन सबके सहित महान् अमित ओज वाले अव्यय ब्रह्मा को जगत् का योनि अव्यक्त एक ही संहार किया करता है । इस प्रकार से महेश्वर प्रभु भूतों को और तत्त्वों को संहृत किया करते हैं ॥१८-१९॥ प्रधान और परम पुरुष को परस्पर में वियोजित कर देता है । प्रधान और पुरुष का यह अजय संहार कहा गया है ॥२०॥ महेश्वर की इच्छा से जनित तप स्वयं नहीं है । गुणों की समता वाला वही अव्यक्त प्रकृति—इस नाम से परिगीत होता है ॥२१॥

प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम् ।
कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवलं पञ्चविंशकः ॥२२

गीयते मुनिभिः साक्षी महानेषपितामहः ।
एवं संहारशक्तिश्च शक्तिर्माहेश्वरीध्रुवा ॥२३
प्रधानाद्यं विशेषान्तं देहेरुद्र इतिश्रुतिः ।
योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानविन्यस्तचेतसाम् ॥२४
आत्यन्तिकञ्चैव लयं विदधातीह शंकरः ।
इत्येष भगवान्रुद्रः संहारं कुरुते वशी ॥२५
स्वापिका मोहिनी शक्तिर्नारायण इति श्रुतिः ।
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगत्सदसदात्मकम् ॥२६
सृजेदशेषं प्रकृतेस्तन्मयः पञ्चविंशकः ।
दुर्बलाः सर्वगाः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ।
शक्तयो ब्रह्मविष्णवीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥२७
सर्वेश्वराः सर्वबन्धाःशाश्वतानन्तभोगिनः ।
एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुम्प्रधानेश्वरात्मकम् ॥२८

प्रधान ही इस जगत् की योनि अर्थात् उद्भव स्थल है । यह माया तत्त्व है और चेतना से शून्य ही होता है । आत्मा कूटस्थ और चिन्मय अर्थात् ज्ञान से परिपूर्ण होता है । इस तरह केवल पच्चीस तत्त्वों वाला है ॥२२॥ मुनियों के द्वारा महान् यह पितामह साक्षी गाया जाता है । इसी प्रकार से संहार शक्ति और माहेश्वरी ध्रुवा शक्ति है ॥२३॥ प्रधान से आदि लेकर अर्थात् प्रारम्भ करके विशेष के अन्त पर्यन्त देह में रुद्र है—ऐसा श्रुति का कथन है । ज्ञान में विन्यस्त चित्त वाले सभी योगियों का आत्यन्तिक लय भगवान् शङ्कर ही किया करते हैं । इस प्रकार से यह भगवान् रुद्रदेव वशी संहार किया करते हैं ॥२४-२५॥ स्वपन कराने वाली मोहिनी शक्ति ही नारायण प्रभु हैं—यह श्रुति का कथन है । सत् और असत् के स्वरूप वाला यह जगत् ही भगवान् हिरण्यगर्भ हैं ॥२६॥ तन्मय पञ्च विंशक अर्थात् पच्चीस तत्त्वों का समुदाय ही प्रकृति के इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया करता है । सर्वत्र गमन शील—दुर्बल और शान्त अपनी आत्मा में ये सब व्यवस्थित रहा करते हैं । ब्रह्मा-विष्णु और ईश से शक्तियाँ भुक्ति और मुक्ति इन दोनों के फलों को प्रदान करने

वाली हैं ।।२७।। सबके ईश्वर—सब बन्धों वाले—शाश्वत और अनन्त भोगी ये शक्तियाँ हैं और केवल एक ही तत्त्व पुमान् और प्रधान ईश्वरात्मक अक्षर है ।।२८।।

अन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः ।
इत्येते विवधैर्यज्ञैः शक्त्यादित्यादयोऽमराः ।
एकैकस्याः सहस्राजि देहानां वै शतानि च ।।२९
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा ।
तां शक्ति स्वयमास्थाय स्वयं देवो महेश्वरः ।।३०
करोति विविधान्देहान्दृश्यते चैव लीलया ।
इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभः ।।३१
सर्वकामप्रदो रुद्र इत्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।३२
प्राधान्येनस्मृता देवाःशक्तयःपरमात्मनः ।
आभ्यःपरस्ताद्भगवान् परमात्मासनातनः ।।३३
गीयते सर्वमायात्माशूलपाणिर्महेश्वरः ।
एकमेवे वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे ।।३४
इन्द्रमेके परे प्राणं ब्रह्माणमपरे जगुः ।
ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वेदेवास्तथर्षयः ।।३५

और अन्य दिव्य शक्तियाँ वहाँ पर सहस्रों की संख्या में विद्यमान हैं। ये सब शक्ति-आदित्य और अमर विविध भाँति के यज्ञों के द्वारा ही हैं। इनमें एक-एक के देहों की संख्या सैकड़ों तथा सहस्रों हो हैं ।।२९।। इस तरह से ये सब कही जाती हैं किन्तु माहात्म्य से एक ही निर्गुणा शक्ति है। उसी एक शक्ति में स्वय देव महेश्वर समास्थित होते हैं ।।३०।। वह देव फिर अनेक प्रकार के देहों की रचना किया करते हैं जो कि लीला के द्वारा दिखलाई दिया करते हैं। वेदों के वादी ब्राह्मणों के द्वारा वह समस्त यज्ञों में यजन किये जाया करते हैं ।।३१।। रुद्र देव समस्त कामनाओं को पूर्ण कर प्रदान कर देने वाले हैं—यह एक वैदिकी श्रुति का

कथन है। इन सम्पूर्ण शक्तियों में ही ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर ये ही शक्तियाँ हैं ।।३२।। ये ही शक्तियाँ प्रधान रूप से कही गयी हैं जो कि देव स्वरूप वाली शक्तियाँ होती हैं। इन सब उपर्युक्त शक्तियों से भी पर भगवान् सनातन प्रभु परमात्मा हैं ।।३३।। वही सर्व मायात्मा—शूल-पाणि महेश्वर—इस नाम से परिगीत किये जाते हैं। इस प्रकार से एक लोग तो इन्हीं को अग्नि कहा करते हैं और अन्य दूसरे नारायण नाम से पुकारा करते हैं ।।३४।। कतिपय मनीषी इन्द्र तथा कुछ प्राण और अन्य लोग ब्रह्मा कहते हैं। ब्रह्मा-विष्णु—अग्नि—वरुण आदि समस्त देवगण तथा सब ऋषि वृन्द ये सब विभिन्न स्वरूप जो दिखलाई दिया करते हैं वस्तुतः ये सभी एक ही शक्ति के स्वरूप हुआ करते हैं ।।३५।।

एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्तेपरिकीर्त्तिताः।
यंयंभेदंसमाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम् ।।३६
तत्तद्रूपं समास्थायप्रददातिफलं शिवः।
तस्मादेकतरं भेदंसमाश्रित्यापि शाश्वतम् ।।३७
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम्।
किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्ति सनातनम् ।।३८
आराधयेह गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम्।
मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः ।।३९
आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत्परमेश्वरम्।
पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम् ।।४०
रुक्माभंवासहस्राकर्चिचिन्ततेद्वैदिकीश्रुतिः।
एषयोग.समुद्दिष्टः सबीजोमुनिपुङ्गवाः ।।४१

ये सभी स्वरूप एक ही रुद्र देव के विविध भेद कहे जाया करते हैं अर्थात् रुद्र ही विभिन्न रूपों में रहते हैं। जिस-जिस भेद का समाश्रय ग्रहण करके परमेश्वर का यजन किया करते हैं उसी-उसी रूप में समा-स्थित होकर प्रभु शिव फल को प्रदान किया करते हैं। इसलिये कोई से भी भगवान् शिव के एक भेद का जो कि परम शाश्वत है समाश्रय ग्रहण करके महादेव का समाराधन करने वाला पुरुष उनके ही परम पद क

प्राप्ति किया करता है। किन्तु सर्वशक्तिमय देव महादेव सनातन प्रभु का यहाँ आराधन करो। वह गिरिश प्रभु चाहे सगुण रूप से समुपासित किये जावें या निर्गुण स्वरूप में उनकी उपासना की जावे। ये दोनों ही देवोपासना के मार्ग हैं और दोनों ही से भली-भाँति उपासना करने से फल मिलना है। किन्तु मैंने आप लोगों को पहिले ही निर्गुण योग बतला दिया है ।।३६-३९।। जो सगुण प्रभु की पूजा करने की इच्छा रख कर ही समुच्च पद पर समारूढ़ होना चाहता है उसे परमेश्वर का अभ्यर्चन इसी रूप में करना चाहिए। प्रभु पिनाक धनुष के धारी हैं—तीन नेत्रों युक्त हैं—मस्तक पर जटाजूट रक्खे हुए हैं और व्याघ्र चर्म को वस्त्र के स्थान पर धारण करने वाले हैं। सुवर्ण के तुल्य आभा से सम्पन्न हैं और सहस्र सूर्य के समान उनका परम तेजस्वी स्वरूप है। इस प्रकार से सगुण स्वरूप का चिन्तन करना चाहिए—यह वैदिकी श्रुति का वचन है। हे मुनिश्रेष्ठो ! हमने यह योग बीज के सहित ही समुद्दिष्ट कर दिया है ।।४०-४१।।

अत्राप्यशक्तोऽथ हृदंविश्व ब्रह्माणमर्चयेत् ।
अथ चेदसमर्थः स्यात्तत्रापि मुनिपुङ्गवाः ।।४२
ततो वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद्भक्तिसंयुतः ।
तस्मात्सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ।।४३
आराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम् ।
भक्तियोगसमायुक्तः स्वध (क) र्मनिरतः शुचिः ।।४४
तादृशं रूपमास्थाय आसाद्यात्यन्तिकं शिवम् ।
एष योगः समुद्दिष्टः सबीजोऽत्यन्तभावनः ।।४५
यथाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरम्पदम् ।
द्वे चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह ।।४६
अथापि कथितो योगो निर्बीजश्चसबीजकः ।
ज्ञानं तदुक्तंनिर्बीजंपूर्वं हिभवतांमया ।।४७
विष्णुं रुद्रं विरञ्चि (ञ्च) ञ्च सबीजे साधयेद् बुधः ।
अथ वाय्वादिकान्देवान्तत्परो नियतात्मवान् ।।४८

पूजयेत्पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्त्तिधरं हरिम् ।
अनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम् ॥४९

नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमम्पदम् ।
तल्लिङ्गधारी नियतं यद्युक्तस्तदुपाश्रयः ॥५०

इस रीति से भी उपासना करने में यदि असमर्थता हो तो हर विश्व ब्रह्मा का अर्चन करे । हे मुनिं पुङ्गव गण ! यदि इसमें भी अशक्तता हो तो फिर भक्ति से समन्वित होकर अग्नि—इन्द्र आदि का पूजनोपासन करना चाहिए । इसलिये तात्त्विक बात तो यह है कि सभी देवों के पूजन करने का परित्याग करके जो कि ब्रह्मा आदि प्रमुख देव हैं केवल आदि—मध्य और अन्त में स्थित भगवान् विरूपाक्ष का ही समाराधन करे । तथा स्वधर्म में निरत और परम शुचि होकर भक्ति योग में समायुक्त होकर ही आराधना करनी चाहिए ॥४२-४४॥ उसी प्रकार के स्वरूप में समास्थित होकर आत्यन्तिक शिव को प्राप्त करके ही करे । यह अत्यन्त भावना वाला सबीज योग समुद्दिष्ट करा दिया गया है ॥४५॥ इस योग को पूर्ण विधि के साथ करने वाला मनुष्य ईश्वरीय पद की प्राप्ति किया करता है । अन्य दो शुद्ध भावनाएं आप लोगों को बतला दी गयी हैं ॥४६॥ फिर भी निर्बीज और सबीज योग कहा दिया गया है । मैंने पहिले आप लोगों के समक्ष में कहा था वह निर्बीज ज्ञान है । विष्णु—रुद्र और विरञ्चि का बुध पुरुष को सबीज हो साधन करना चाहिए । इसके अनन्तर वायु आदि देवों का नियत आत्मा वाला तत्परायण होकर ही साधन करे ॥४७-४८॥ चार मूर्त्ति धारी हरि विष्णु पुरुष का पूजन करें जो देव अनादि निधन—सनातन वासुदेव हैं तथा नारायण—जगयोनि—आकाश और परम्पद हैं । उसी के लिङ्गों को धारण करने वाला—नियत और उसका ही उपाश्रय वाला होकर करे ऐसा ही कहा गया है ॥४९-५०॥

एष एव विधिर्ब्राह्मे भावने चान्तिमे मतः ।
इत्येतत्कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयम्परम् ॥५१

इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं यन्मयापुरा ।
अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेचनं जगत् ॥५२
तदीश्वरं परं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्ममयं जगत् ।
ऐतावदुक्त्वा भगवान्विराम जनार्द्दनम् ।
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णुंशु (श) क्रेण सह माधवम् ॥५३

नमस्ते कूर्म्मरूपाय विष्णवे परमात्मने ।
नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः ॥५४

नमोनमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ।
माधवायच ते नित्यं नमो यज्ञेश्वरायच ॥५५

सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः ।
नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च ॥५६

यही विधि अन्तिम ब्राह्म भावन में मानी गयी है । यह भावना का संश्रय करने वाला परम ज्ञान वर्णित कर दिया गया है ॥५१॥ मैंने पहिले इन्द्रद्युम्न मुनि को यही ज्ञान कहा था । यह अव्यक्तात्मक ही होता है यह जगत् चेतनाचेतन है । वह ईश्वर परंब्रह्म है इसीलिये यह सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्ममय है । श्री सूतजी ने कहा—इतना भर कहकर भगवान् विरत हो गये थे । फिर मुनिगण इन्द्र के साथ माधव प्रभु विष्णु का स्तवन करने लगे थे ॥५२-५३॥ मुनिगण ने कहा—परमात्मा विष्णु कूर्म रूप वाले के लिये नमस्कार है । नारायण—विश्वरूप—वासुदेव आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥५४॥ श्रीकृष्ण आपको सेवा में वारम्वार नमस्कार है । गोविन्द के लिये प्रणाम समर्पित है । माधव आपके लिये तथा यज्ञेश्वर के लिये नित्य ही हमारा नमस्कार समर्पित है ॥५५॥ सहस्र शिर वाले और सहस्र नेत्रों वाले आपको नमस्कार है । सहस्र हाथों वाले तथा सहस्र चरणों से युक्त आपकी सेवा में हमारा नमस्कार अर्पित है ॥५६॥

ॐ नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने ।
आनन्दाय नमस्तुभ्यंमायातीताय ते नमः ॥५७

नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तुते ।
पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे ॥५८

नमः साङ्ख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तुते ।
धर्मध्या(ज्ञ)नाभिगम्यायनिष्कलायनमोऽस्तुते(नमोनमः) ॥५९

नमस्ते योगतत्त्वाय महायोगेश्वराय च ।
परावराणां प्रभवे वेदवेद्यायते नमः ॥६०

नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे ।
नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नमः ॥६१

नमोऽस्तुते वराहाय नारसिंहाय ते नमः ।
वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः ॥६२

स्वर्गापवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने ।
नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने ॥६३

ओं ज्ञान रूप आपको तथा परमात्मा विष्णु एवं माया से अतीत और आनन्द स्वरूप आपकी सेवा में प्रणाम अर्पित किया जाता है ॥५७॥ परम गूढ़ शरीर वाले निर्गुण आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है । पुराण पुरुष और सत्तामात्र स्वरूप वाले आपको नमस्कार है ॥५८॥ सांख्य—योग और केवल आप के लिये नमस्कार है । धर्म ध्यान से अभिगमन करने के योग्य निष्कल आपके लिये हमारा नमस्कार अर्पित है ॥५९॥ योग तत्व स्वरूप महायोगेश्वर—परावर के प्रभव तथा वेदों के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करने के योग्य आपके लिये प्रणाम हैं ॥६०॥ बुद्ध के लिये नमस्कार है—शुद्ध तथा युक्त और हेतु के लिये बारम्बार नमस्कार अर्पित है । मायी और वेधा आपके लिये नमस्कार है ॥६१॥ वराह आपकी सेवा में तथा नारसिंह आपको नमस्कार है । वामन स्वरूप धारी आपको सेवा में प्रणाम है और हृषीकेश प्रभु के लिये नमस्कार है ॥६२॥ स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) दोनों के दान करने वाले की सेवा में प्रणाम है । अप्रतिहत आत्मा वाले के लिये नमस्कार है । योग के द्वारा जानने के योग्य—योगी और योग के देने वाले के लिये नमस्कार है ॥६३॥

देवानां पतये तुभ्यं देवार्त्तिशमनायते ।
भगवंस्त्वत्प्रसादने सर्वसंसारनाशनम् ।।६४
अस्माभिर्विदतं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
श्रुताश्च विविधा धर्म्मावंशा मन्वन्तराणि च ।।६५
सर्गश्चप्रतिसर्गश्चब्रह्माण्डस्यास्यविस्तरः ।
त्वंहिसर्वंजगत्साक्षीविश्वोनारायणःपरः ।।६६
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणं गताः ।
एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम् ।।६७
कौर्म्मंपुराणमखिलंयज्जगादगदाधरः ।
अस्मिन्पुराणेलक्ष्म्यास्तुसम्भवःकथितःपुरा ।।६८
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजितः ।
प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णधर्माश्चवृत्तयः ।।६९

देवों के स्वामी तथा देवताओं की आर्ति (पीड़ा) के शमन करने वाले आपकी सेवा में हमारा प्रणाम समर्पित है। हे भगवन् ! आपके ही प्रसाद से इस संसार के भय का विनाश हुआ करता है ।।६४।। हम लोगों ने ज्ञान को प्राप्त कर लिया है जिस ज्ञान का लाभ करके प्राणी अमृतत्व का उपभोग किया करता है। हमने आपकी अनुकम्पा से विविध धर्मों का श्रवण किया है तथा अनेक वंश और मन्वन्तरों का भी श्रवण कर चुके हैं ।।६५।। सर्ग तथा प्रतिसर्ग और इस ब्रह्माण्ड का विस्तार भी हमने भलीभाँति सुन लिया है। आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के साक्षी—विश्व रूप और परात्पर साक्षात् नारायण हैं ।।६६।। आप अनन्त आत्मा हैं और आप हम सब का त्राण करने के योग्य हैं। हम सब लोग आपकी ही शरणागति में प्राप्त हो गये हैं। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! हमने आप सबके समक्ष में यह वर्णित कर दिया है जो भोग और मोक्ष कें प्रदान करने वाला है ।।६७।। यह सम्पूर्ण कूर्म पुराण भगवान् गदाधर ने ही कहा था। इस पुराण में पहिले लक्ष्मी देवी की उत्पत्ति बतलाई गई है ।।६८।। इसको भगवान् वासुदेव ने भूतों के मोह के लिये ही योजित किया है। प्रजापतियों के सर्ग, वर्णधर्म और वृत्तियाँ भी वर्णित की हैं ।।६९।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम् ।
पितामहस्यविष्णोश्चमहेशस्यचधीमतः ॥७०
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषश्चोपवर्णितः ।
भक्तानांलक्षणम्प्रोक्तं समाचारश्चभोजनम् ॥७१
वर्णाश्रमाणांकथितं यथावदिह लक्षणम् ।
आदिसर्गस्ततः पञ्चादण्डावरणसप्तकम् ॥७२
हिरण्यगर्भः सर्गश्चकीर्त्तितोमुनिपुङ्गवाः ।
कालसङ्ख्याप्रकथनंमाहात्म्यञ्चेश्वरस्यच ॥७३
ब्रह्मणः शयनञ्चाप्सु नामनिर्वचनं तथा ।
वराहवपुषो भूयो भूमेरुद्धरणम्पुनः ॥७४
मुख्यादिसर्गकथनं मुनिसर्गस्तथापरः ।
व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापसः ॥७५
धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात्पूर्वमेव तु ।
ब्रह्मविष्णोर्विवादः स्यादन्तर्देहप्रवेशनम् ॥७६
पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्यच धीमतः ।
दर्शनञ्चमहेशस्यमाहात्म्यंविष्णुनेरितम् ॥७७

धर्म-अर्थ—काम और मोक्ष—इनका ठीक-ठीक शुभं लक्षण वर्णन किया है। पितामह—विष्णु और श्रीमान् महेश का एकत्व तथा पृथकत्व (इन सबका एक ही स्वरूप होना एवं भिन्न २ रूपों का धारण करना) विशेष रूप से उपवर्णित हुआ है। इसमें भक्तों का लक्षण-सुन्दर आचार और भोजन वर्णों तथा आश्रमों का यथावत जैसा ही लक्षण होता है इसमें वर्णन किया गया है। पहिले आदि सर्ग का वर्णन और फिर अण्डावरण सप्तक का—हिरण्य गर्भ और सर्ग इन सबका कीर्तन किया गया है। हे मुनि पुङ्गव वृन्द ! काल की संख्या का प्रकथन और ईश्वर का माहात्म्य—ब्रह्मा का जल में शयन तथा नाम-निर्वचन—फिर वराह के प्रकार तथा भूमि का उद्धार वर्णित किया गया है ॥७०-७४॥ मुख्यादि सर्ग का कथन तथा दूसरा मुनि सर्ग—रुद्र सर्ग और ऋषि सर्ग की व्याख्या की गई है। तापस सर्ग और धर्म का सर्ग तथा तामस से

पूर्व प्रजा सर्ग ब्रह्मा और विष्णु का विवाद तथा अन्तर्देह में प्रवेश-देव का पद्म से उद्भव होना और श्रीमान् उसका मोह हो जाना महेश का दर्शन और माहात्म्य विष्णु भगवान् के द्वारा ही कहा गया है ।।७५-७७।।

दिव्यदृष्टिप्रदानञ्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
संस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।।७८

प्रसादो गिरिशस्याथ वरदानं तथैव च ।
सम्वादे विष्णुनासार्द्धं शङ्करस्य महात्मनः ।।७९
वरदानं तथा पूर्वमन्तर्द्धानं पिनाकिनः ।
वधश्च कथितो विप्रा मधुकैटभयोः पुरा ।।८०

अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात् ।
एकीभावश्च देवेन ब्रह्मणाकथितःपुरा ।।८१

विमोहो ब्रह्मणश्चाथ संज्ञानात्तु हरेस्ततः ।
तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः ।।८२
प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात्कथितस्ततः ।
रुद्राणां कथिता सृष्टिर्ब्रह्मणः प्रतिषेधनम् ।।८३
भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ ।
अन्तर्द्धानञ्च देवस्य तपश्चर्याण्डजस्य च ।।८

परमेष्ठी ब्रह्माजी को दिव्य दृष्टि का प्रदान तथा परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा देवी के भी देव का संस्तवन । भगवान् गिरीश का प्रसाद तथा वरदान देना—महात्मा शंकर का विष्णु भगवान् के साथ सम्वाद में वरदान देना तथा पहिले ही पिनाकधारी का अन्तर्हित हो जाना । हे विप्रगण ! पहिले मधु और कैटभ दोनों का वध वर्णित किया गया है । क्षीरसायी भगवान् नारायण की नाभि से समुत्पन्न कमल से देवेश्वर ब्रह्मा का अवतार तथा देवेश्वर ब्रह्माजी के द्वारा पहिले एकीभाव भी बतला दिया गया है । ब्रह्माजी को व्यामोह का होना और फिर हरि के संज्ञान से तपश्चर्या करने का देवों के भी देव श्रीमान् का वर्णन किया गया है । ।।७८-८२।। इसके उपरान्त ललाट से महेश के प्रादुर्भाव का वर्णन किया

गया है। रुद्रों की सृष्टि का कथन हुआ है तथा ब्रह्माजी के प्रतिषेधन का भी वर्णन है ॥८३॥ देवदेवकी भूति—वरदान और उपदेश—देव का अन्तर्धान तथा अण्डज की तपश्चर्य्या का भी दर्शन इसमें किया गया है ॥८४॥

दर्शनं देवदेवस्य नरनारी शरीरता।
देव्या विभागकथनं देवदेवात्पिनाकिनः ॥८५
देव्याश्च पश्चात्कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च।
हिमवद्दुहितृत्वञ्चदेव्या याथात्म्यमेवच ॥८६
दर्शनं दिव्यरूपस्य विश्वरूपाक्षदर्शनम्।
नाम्नां सहस्रं कथितं पित्राहिमवतास्वयम् ॥८७
उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च।
भृग्वादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः ॥८८
प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्द्दनम्।
दधीचस्य च यज्ञस्य विवादः कथितस्तदा ॥८९
ततश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुङ्गवाः।
रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्द्धानं पिनाकिनः ॥९०

देवों के भी देव का दर्शन होना तथा उनके शरीर में नर और नारी दोनों की स्वरूपता तथा देवों के देव पिनाकी प्रभु से देवो के विभाग का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् देवी का प्रजापति दक्ष की पुत्री होकर जन्म लेना और फिर देवी का हिमवान् की दुहिता होना तथा याथात्म्य का कथन इसमें भली भांति हुआ है ॥८५-८६॥ दिव्य स्वरूप का दर्शन—विश्व रूपाक्ष का दर्शन और पिता हिमवान् के द्वारा स्वयं सहस्र नामों का कथन वर्णित है। महादेवी का उपदेश तथा वरदान—भृगु आदि का प्रजासर्ग—राजाओं के वंश का विस्तार—दक्ष का प्राचेतसत्व होना और दक्ष के यज्ञ का विध्वंस—उसी समय के दधीच और यक्ष का विवाद भी कहा गया है। हे मुनि पुङ्गवो! इस के अनन्तर मुनियों के शाप का कथन हुआ है। रुद्रागति, उनका प्रसाद और पिनाकधारी का अन्तर्धान होने का वर्णन किया गया है ॥८७-९०॥

पितामहोपदेशःस्यात्कीर्यंतेवै रणाय तु ।
दक्षस्यचप्रजासर्गः कश्यपस्यमहात्मनः ॥९१
हिरण्यकशिपोर्नाशोहिरण्याक्षवधस्तथा ।
ततश्चशापः कथितो देवदारु वनौकसाम् ॥९२
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम् ।
प्रह्लादनिग्रहश्चाथ बलेः संयमनंत्वथ ॥९३
बाणस्य निग्रश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिनः ।
ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञां वंशाः प्रकीर्त्तिताः ॥९४
वसुदेवात्ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः ।
दर्शनञ्चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च ॥९५
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वासाम्बंत्रिलोचनम् ।
कैलासगमनञ्चाथनिवासस्तस्यशार्ङ्गिणः ॥९६
ततश्च कथ्यतेभीतिर्द्वारवत्यांनिवासिनाम् ।
रक्षणं गरुडेनाथ जित्वाशत्रून्महाबलान् ॥९७
नारदागमनञ्चैव यात्राचैव गरुत्मतः ।
ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामाश्रमस्ततः ॥९८

पितामह का उपदेश और रण के लिए कीर्तन किया जाता है—दक्ष का प्रजासर्ग तथा महात्मा कश्यप की प्रजा का सर्ग—हिरण्यकशिपु का विनाश तथा हिरण्याक्ष का वध—इसके उपरान्त देवदारु वन में निवास करने वालों का शाप कथित किया गया है ॥९१-९२॥ अन्धक दैत्य का निग्रह—शूली प्रभु का प्रसाद—ऋषियों के वंश का विस्तार तथा राजाओं के वंशों का प्रकीर्त्तन किया गया है इसके उपरान्त वसुदेव से हरिविष्णु भगवान् की स्वेच्छा से समुत्पत्ति—उपमन्यु को दर्शन तथा तपश्चरण—महादेव साम्ब त्रिलोचन का दर्शन करके वर का लाभ—कैलास में गमन और इसके उपरान्त वहाँ पर उन शार्ङ्गी प्रभु का निवास—इसके अनन्तर द्वारकापुरी के निवास करने वालों की नीति का कथन किया गया है। फिर महान् बलशाली शत्रुओं के ऊपर विजय पाकर गरुड़ के द्वारा रक्षा का करना—देवर्षि नारदजी का आगमन और गरुत्मान्

की यात्रा—इसके उपरान्त कृष्णागमन और मुनियों के आश्रमों का वर्णन इसमें किया गया है ॥९१-९८॥

नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा ।
मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम् ॥९९
लिङ्गार्च्चननिमित्तञ्च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः ।
याथात्म्यकथनञ्चाथ लिङ्गाद्वै भीतिरेव च ॥१००
ब्रह्मविष्णोस्तथा मध्ये कीर्त्तिता मुनिपुङ्गवाः ।
मोहस्तयोर्वै कथितो गमनञ्चोद्र्ध्वतो ह्यधः ॥१०१
संस्तवोदेवदेवस्यप्रसादःपरमेष्ठिनः ।
अन्तर्द्धानञ्च लिङ्गस्य साम्वोत्पत्तिस्ततः परम् ॥१०२
कीर्त्तिता चाऽनिरुद्धस्य समुत्पत्ति.द्विजोत्तमाः ।
कृष्णस्य गमने बुद्धिऋ षीणमागतिस्तथा ॥१०३
अनुशासनञ्च कृष्णेन वरदानं महात्मनः ।
गमनञ्चैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम् ॥१०४
कृष्णद्वैपायनस्योक्तं युगधर्माः सनातनाः ।
अनुग्रहोऽथपार्थस्य वाराणस्यांगतिस्ततः ॥१०५

भगवान् वासुदेव का नैत्यिक कर्म तथा शिव लिङ्ग का अभ्यर्चन और इसके अनन्तर मार्कण्डेय मुनि के द्वारा किये गये प्रश्न का कथन है । ९९॥ लिङ्गार्चन का निमित्त—सालिङ्गी के लिङ्ग का भी यथात्म्य कथन और लिंग से भीति का होना वर्णित किया गया है ॥१००॥ हे मुनि पुङ्गव वृन्द ! मध्य में ब्रह्मा और विष्णु की भीति कथित की गई है । उन दोनों के मोह का वर्णन किया गया है । ऊपर और नीचे की ओर गमन करने का वर्णन किया गया है ॥१०१॥ देवों के देव की स्तुति—परमेष्ठी का प्रसाद—लिङ्ग का अन्तर्धान और इसके पश्चात् साम्व प्रभु की समुत्पत्ति का वर्णन इसमें किया गया है ॥१०२॥ हे उत्तम द्विज गण ! इसके उपरान्त अनिरुद्ध की उत्पत्ति का कीर्त्तन किया गया है । फिर भगवान् श्रीकृष्ण की गमन करने में बुद्धि का होना तथा ऋषि गणों का वहाँ पर आगमन का होना वर्णित किया है ॥१०३॥ श्रीकृष्ण के द्वारा

अनुशासन—महात्मा का वरदान और श्री कृष्ण का गमन एवं पार्थ अर्जुन का दर्शन इस में बताया गया है ।।१०४।। इसके पश्चात् इसमें श्रीकृष्ण द्वैपायन मुनि का कथन तथा सनातन युगों के धर्मों का वर्णन और पार्थ के ऊपर अनुग्रह और वाराणसी पुरी में गति का होना बतलाया गया है ।।१०५।।

पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम् ।।१०६
व्यासस्य तीर्थयात्राच देव्याश्चैवाथ दर्शनम् ।
उद्वासनञ्च कथितं वरदानं तथैव च ।।१०७
प्रयागस्यचमाहात्म्यं क्षेत्राणामथकीर्त्तनम् ।
फलञ्चविपुलंविप्रामार्कण्डेयस्यनिर्गमः ।।१०८
भुवनानांस्वरूपञ्चज्योतिषाञ्चनिवेशनम् ।
कीर्त्तितश्चापिवर्षाणां नदीनाञ्चैवनिर्णयः ।।१०९
पर्वतानाञ्चकथनंस्थानानिच दिवौकसाम् ।
द्वीपानांप्रविभागश्चश्वेतद्वीपोपवर्णनम् ।।११०
शयनं केशवस्याथ माहात्म्यञ्चमहात्मनः ।
मन्वन्तराणांकथनंविष्णोर्माहात्म्यमेवच ।।१११
वेदशाखाप्रणयनं व्यासानां कथनं ततः ।
अवेदस्य च वेदस्य कथितं मुनिपुंगवाः ।।११२

फिर इस पुराण में अत्यन्त अद्भुत कर्मों वाले पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास के द्वारा वाराणसी पुरी का माहात्म्य और अन्य तीर्थों का वर्णन किया गया है ।।१०६।। महर्षि व्यासजी की तीर्थ यात्रा और देवी का दर्शन तथा उद्वासन और वरदान का वर्णन हुआ है ।।१०७।। फिर प्रयाग राज तीर्थ का माहात्म्य और अन्य क्षेत्रों का कीर्त्तन किया गया है एवं विपुल फल बताया गया है । हे विप्रो ! इसके अनन्तर मार्कण्डेय मुनि का निर्गम कीर्त्तित किया गया है ।।१०८।। भुवनों का वर्णन और उनका स्वरूप का कथन तथा ज्योतिषों अर्थात् तारादि का निवेशन—वर्षों का

कथन और वहुत-सी नदियों का निर्णय कहा गया है ॥१०९॥ इसके उपरान्त इसमें पर्वतों का कथन और देव गणों के स्थानों का वर्णन—द्वीपों का विभाग और श्वेत द्वीप का उप वर्णन किया गया है ॥११०॥ भगवान् केशव का शयन करना तथा महान् आत्मा वाले का माहात्म्य वर्णन—मन्वन्तरों का कथन तथा भगवान् विष्णु का माहात्म्य का वर्णन लिखा गया है ॥१११॥ वेदों की शाखाओं का प्रणयन करना—हे मुनिश्रेष्ठो ! व्यास देव का कथन तथा अवेद और वेद का कथन बताया गया है ॥११२॥

योगेश्वराणाञ्च कथा शिष्याणाचाथ कीर्त्तनम् ।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्त्तिताः ॥११३
वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः ।
कपालित्वञ्चरुद्रस्य भिक्षाचरणमेवच ॥११४
पतिव्रतानामाख्यानं तीर्थानाञ्च विनिर्णयः ।
तथा मङ्कणकस्याथ निग्रहः कीर्तितो द्विजाः ॥११५
वधश्च कथितो विप्राः कालस्यचसमासतः ।
देवदारुवने शम्भोः प्रवेशो माधवस्यच ॥११६
दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः ।
वरदानञ्च देवस्य नन्दने तु प्रकीर्तितम् ॥११७
नैमित्तिकश्च कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम् ।
प्राकृतः प्रलयश्चोद्ध्वं सबीजो योग एव च ॥११८
एवं ज्ञात्वा पुराणस्य सङ्क्षेपं कीर्त्तयेत्तु यः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥११९

इसके उपरान्त योगेश्वरों की कथा का वर्णन और शिष्यों का कीर्त्तन किया गया है। विविध भाँति के ईश्वर के गुह्यों का कीर्त्तन इसमें किया है ॥११३॥ वर्णों तथा आश्रमों के आचारों का वर्णन और इसके पीछे प्रायश्चित्तों के करने की विधि का वर्णन है। भगवान् रुद्र देव का कपाली होना और उनका भिक्षाचरण करना—पतिव्रताओं का आख्यान—तीर्थों का विशेष निर्णय और इस पुराण में हे द्विजगण ! मङ्कण का निग्रह

वतलाया गया है ॥११४-११५॥ हे विप्रगण ! काल का अत्यन्त संक्षेप से वध वर्णित हुआ है तथा देवदारु वन में भगवान् शम्भु और माधव के प्रवेश का वर्णन है ॥११६॥ षट् कुलीय ऋषियों का दर्शन तथा धीमान् देवदेव का वरदान और देव का नन्दन में प्रकीर्त्तन किया गया है ॥११७॥ इसके अनन्तर नैमित्तिक प्रतिसर्ग—प्राकृत प्रलय और ऊर्ध्वं सवीज योग कहा गया है ॥११८॥ इस प्रकार से इस महापुराण में जो कुछ भी वर्णन हुआ है उसका संक्षेप बता दिया गया है। इस संक्षिप्त वर्णन का जो कोई नित्य ही कीर्त्तन किया करता है वह सव पापों से छूटकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥११९॥

एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादय पुरुषोत्तमः।
सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं प्रजगाम हरस्तदा ॥१२०
देवाश्चसर्वेमुनयः स्वानिस्थानानिभेजिरे।
प्रणम्यपुरुषंविष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतंद्विजाः ॥१२१
एतत्पुराणं सकलं भाषितंकूर्मरूपिणा।
साक्षाद्देवाधिदेवेनविष्णुना विश्वयोनिना। १२२
यः पठेत्सततं विप्रा नियमेन समासतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते। ।१२३
लिखित्वा चैत्र यो दद्याद्वैशाखे कार्त्तिकेऽपि वा।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत ॥१२४
सर्वपापविनिर्मुक्तः सवश्वर्यसमन्वितः।
भुक्त्वा तु विपुलान्मर्त्यो भोगान्दिव्यान् सुशोभनान् ॥१२५
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो विप्राणां जायते कुले।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद् ब्रह्म विद्यामवाप्नुयात् ॥१२६

इस प्रकार से कह कर पुरुषोत्तम श्री देवी का लेकर और कूर्म्म संस्थान का त्याग करके वहाँ से चले गये। उसी समय में भगवान् हर—देवगण और मुनिवृन्द भी अपने अपने स्थानों को चले गये थे। हे द्विज-गण ! सव ने अमृत का ग्रहण किया था और पररूपुरुष विष्णु को प्रणाम किया था ॥१२०-१२१॥ इस तरह से यह सम्पूर्ण पुराण साक्षात् देवों

के अधिदेव–विश्वयोनि–कूर्म स्वरूप धारी भगवान् विष्णु ने ही भाषित किया है ॥१२२॥ जो इस पुराण का नियम पूर्वक संक्षेप में भी निरन्तर पाठ किया करता है वह मानव सभी पातकों से विमुक्त होकर ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठित होता है ॥१२३॥ इस अपने हाथ से लेख वद्ध करके वैशाख में तथा कार्त्तिक मास में किसी वेदों के ज्ञाता विप्र को दान करता है उसके पुण्य—फल को समझ लो ॥१२४॥ वह दान दाता पुरुष सर्व प्रथम तो समस्त पापों से विमुक्त होता है। फिर सब ऐश्वर्यों से समन्वित हो जाया करता है और वह मानव बहुत से भोगों के सुख का उपभोग करता है जो कि परम दिव्य और अतीव शोभन भोग हुआ करते हैं ॥१२५॥ इसके पश्चात् स्वर्ग का सुख भोग करके उसकी अवधि समाप्त होने पर वहाँ से परिभ्रष्ट भी होकर संसार में विप्र के कुल में जन्म ग्रहण किया करता है फिर पहिले जीवन के सुदृढ़ संस्कारों के माहात्म्य के बने रहने के कारण यहाँ पर भी वह ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया करता है ॥१२६॥

पठित्वाध्यायमेवैकंसर्वपापैः प्रमुच्यते ।
योऽर्थंविचारयेत्सम्यक्प्राप्नोतिपरमम्पदम् ॥१२७
अध्येतव्यमिदं पुण्यं विप्रैः पर्वणिपर्वणि ।
श्रोतव्यञ्च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम् ॥१२८
एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानिकृत्स्नशः ।
एकत्र परमं वेदमेतदेवातिरिच्यते ॥१२९
इदं पुराणं मुक्त्वैकं नान्यत्साधनकम्परम् ।
यथावदत्र भगवान्देवो नारायणो हरिः ॥१३०
कीर्त्यतेहियथा विष्णुर्नतथान्येषुसुव्रताः ।
ब्राह्मीपौराणिकीचेयंसंहितापापनाशनी ॥१३१
अत्र तत्परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः ।
तीर्थानां परमं तीर्थं तपसाञ्च परन्तपः ॥१३२
ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम् ।
नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च सन्निधौ ॥१३३

इस कूर्म्म पुराण की एक भी अध्याय के पाठ करने की इतनी वड़ी महिमा है कि वह सभी पापों से प्रमुक्त हो जाता है। जो केवल पाठ मात्र ही न करके इसके अर्थ का भी भली भाँति विचार किया करता है वह फिर परम पद की प्राप्ति किया करता है ।।१२७।। विप्रों के द्वारा पर्व—पर्व पर इस परम पुण्य मय पुराण का अध्ययन अवश्य ही करना चाहिए । हे द्विज श्रेष्ठो ! इसका स्रवण भी करना ही चाहिए जिससे महापातकों का नाश होता है ।।१२८।। एक तरफ तो पूर्ण रूप से समस्त पुराण इतिहास के सहित हों और एक तरफ परम वेद हों तो यह पुराणों का पलड़ा ही अधिक होगा ।।१२९।। इस पुराण को छोड़ कर अन्य कोई भी परमोत्तम साधन नहीं है क्यों कि इसमें भगवान् देव हरि नारायण यथावत् रीति से जिस प्रकार से कीर्त्तित किये गये हैं हे सुव्रतो ! इस भाँति भगवान् विष्णु का कीर्त्तन अन्य किसी में भी नहीं किया गया है । यह ब्राह्मी और गायित्री संहिता है जो सभी पापों का नाश करने वाली है ।।१३०-१३१।। इस पुराण में उस परम ब्रह्म का यथार्थ रूप से कीर्त्तन किया गया है । तीर्थों में परम तीर्थ और तपों में परम तप—ज्ञानों में परम ज्ञान तथा व्रतों में परम व्रत यही है कि भगवान् के इस पुराण का कभी भी किसी वृषल की सन्निधि में अध्ययन नहीं करना चाहिए ।।१३२-१३३।।

योऽधीते चैत्र मोहात्मा स याति नरकान् बहून् ।
श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्रावणीयंद्विजातिभिः ।।१३४
यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम् ।
मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः ।।१३५
श्रोतव्यञ्चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम् ।
ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान् ।।१३६
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।
योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा ।।१३७
सम्प्रेत्यगत्वानिरयान्शुनांयोनिंव्रजत्यधः ।
नमस्कृत्यहरिंविष्णुंजगद्योनिंसनातनम् ।।१३८

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा ।
इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ।।१३९
पाराशर्यस्यविप्रर्षेर्व्यासस्यच महात्मनः ।
श्रुत्वा नारायणाद्देवान्नारदो भगवानृषिः ।।१४०

जो कोई मोहात्मा इसका अध्ययन करता है वह बहुत से नरकों में जाया करता है। द्विजातियों के द्वारा इस का श्रवण श्राद्ध तथा किसी दैविक कार्य में कराना चाहिए ।।१३४।। किसी भी यज्ञ के अन्त में यह विशेष रूप से समस्त दोषों का विशोधन करने वाला होता है। जो मुमुक्षु गण हैं उनको तो इस शास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिए। ।।१३५।। यह वेदों के ही अर्थ का परिवृहण है अर्थात् उसी को परि-वर्द्धित करने वाला है अतएव इसका श्रवण अवश्य ही करना चाहिए और मनन भी करे। पहिले स्वयं इसका यथावत् ज्ञान प्राप्त करके ही फिर अन्य भक्तिभाव से समन्वित विप्रों को इसका श्रवण कराना चाहिए ।।१३६।। इस तरह से श्रवण कराने वाला विप्र सब पापों से विमुक्त होकर ब्रह्म सायुज्य की प्राप्ति किया करता है । जो कोई श्रद्धा से हीन पुरुष को तथा अधार्मिक पुरुष को इसका ज्ञान देता है वह देने वाला पुरुष मर कर नरकों में जाता है और फिर कुत्ते की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है। इसका जब भी अध्ययन करे तब प्रथम जगत् की योनि-हरि विष्णु सनातन प्रभु को नमस्कार करना चाहिए ।।१३७-१३८।। फिर भगवान् श्री कृष्ण द्वैपायन को भी प्रणिपात करे और इसके उप-रान्त इसका अध्ययन आरम्भ करे । यही देवों के देव अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु की आज्ञा है ।।१३९।। इस संहिता को पराशर मुनि के पुत्र महात्मा विप्रर्षि श्रीव्यास ने नारदजी से श्रवण किया था और नारद जी ने देवाधिदेव नारायण से श्रवण किया था ।।१४०।।

गौतमाय ददौपूर्वं तस्माच्चैव पराशरः ।
पराशरोऽपिभगवान् गंगाद्वारे मुनीश्वराः ।।१४१
मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते ।।१४२

सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् ।
सनकाद्भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः ।।१४३
अवाप्तवान्पञ्चशिखो देवलादिदमुत्तमम् ।
सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवतीसुतः ।।१४४
एतत्पुराणंपरमंव्यासः सर्वार्थसञ्चयम् ।
तस्माद्व्यासादहं श्रुत्वा भवतांपापनाशनम् ।।१४५
ऊचिवान्वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने ।
तस्मै व्यासाय मुनये सर्वज्ञाय महर्षये ।।४६
पाराशर्य्याय शान्ताय नमोनारायणात्मने ।
तस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्रचैवप्रवलीयते ।
नमस्तस्मै सु (प) रेशाय विष्णवे कूर्म्मरूपिणे ।।१४७

महा मुनि ने सर्व प्रथम इसको गौतम के लिये दिया था और उससे फिर पराशर ने प्राप्त किया था । फिर पराशर भगवान् ने गंगा के द्वार पर जो मुनीश्वर थे उन मुनीश्वरों को इसका श्रवण कराया था जो कि धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों के प्रदान करने वाला है । इससे भी पूर्व ब्रह्माजी ने परम श्रीमान् सनक से इसको कहा था ।१४१-१४२। साक्षात् देवत ने जो योग के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ थे सनकसे इसका ज्ञान प्राप्त किया था । यह सनत्कुमार को भी प्रदान किया गया था जो कि समस्त पापों का विनाशक है ।।१४३।। पञ्चशिख ने देवत से प्राप्त किया था । सनत्कुमार से सत्यवती के पुत्र मुनि ने प्राप्त किया था सभी अर्थों के सञ्चय वाला यह परम महा पुराण है जिसको व्यासजी ने प्राप्त किया था । उन्हीं व्यासजी से इसका मैंने श्रवण किया है जो आपके पापों का नाश करने वाला है । मैंने आपको सुना दिया है और अब आप को भी किसी धार्मिक जन को ही इसका श्रवण करना चाहिए । उन सर्वज्ञ—महर्षि मुनि पराशर के पुत्र परम शान्त नारायण स्वरूप भगवान् व्यास देव के लिये सादर नमस्कार है क्यों कि उन्हीं से सब का उद्भव होता है और उन्हीं में सब प्रलीन होजाया करते हैं, उन सुरेश कूर्म स्वरूप धारी विष्णु के लिये सादर प्रणाम है ।।१४४-१४७।।

'कूर्म पुराण' में अध्यात्म वर्णन

अध्यात्म भारतीय-धर्म का सार है। यों संसार में जीवन निर्वाह के अनेक मार्ग हैं। हमारे और अन्य देशों के प्रसिद्ध मनीषियों ने अपनी सूझ और देश काल के अनुसार 'भौतिक वाद' 'उपयोगिता वाद' 'सुख वाद' 'विवेक वाद' आदि अनेक सिद्धान्त मानव-जीवन को सार्थक और सुखी बनाने की दृष्टि से प्रचलित किये हैं। वर्तमान समय में भूमण्डल के अधिकांस प्रदेशों में उन्हीं का प्रचार है और वर्तमान युग के 'शिक्षित' कहे जाने वाले व्यक्ति उन्हीं का पक्ष समर्थन भी करते हैं। उनके ख्याल से पुराने जमाने के विद्वान जिन्होंने किसी न किसी रूप में सबसे अधिक जोर 'धर्म' पर दिया, भ्रान्त अथवा काल्पनिक भावनाओं से प्रेरित थे। पर आज संसार भर में मची हुई अभूतपूर्व हल-चल और तरह-तरह की विकट समस्याओं को देख कर हमको इन तथाकथित 'ज्ञान-विज्ञान के ज्ञाताओं' की बुद्धिमत्ता पर सन्देह होने लगता है। यद्यपि भारत की अध्यात्म वादी संस्कृति भी नाल प्रभाव से बहुत विकृत हो गई है, फिर भी भारत की सामूहिक जन-आत्मा का झुकाव अब भी 'धर्म' और 'अध्यात्म' की तरफ है और इस कारण यहाँ हमको सर्वनाश की वह विभीषिका नहीं दिखाई पड़ रही है जो पश्चिमीय देशों के सिर पर नगी तलवार की तरह लटकती दिखाई दे रही है। इसका वास्तविक रहस्य स्वामी विवेकानन्द ने निम्न शब्दों में प्रकट किया था—

"यदि पश्चिमी देशों के लोगों के सामने कोई योजना रखी जाती हैं, तो उनका पहला प्रश्न यह होता है—'क्या इससे मेरी आय में वृद्धि होगी ?' पर जब ऐसा ही अवसर भारतीय के सामने आता है तो वह पूछता है 'क्या इससे मुझे मोक्ष—पुण्य की प्राप्ति हो सकेगी ?'

इसका यह तात्पर्य नहीं कि भारतीय-धर्म के अनुयायी सदा से केवल

भजन—ध्यान, त्याग–तपस्या में ही लगे रहते हैं और सांसारिक उद्देश्यों के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। इसके विपरीत यहाँ के सभी शास्त्र-कारों ने जन साधारण को धर्म-अर्थ काम-मोक्ष की सिद्धि के लिए उद्योग करने का उपदेश दिया है। उसकी महत्ता इसी में है कि वे धर्म को अर्थ और काम के ऊपर स्थान देते हैं। इसके विपरीत पश्चिमी देशों के उप-देशकों ने सर्वोपरि स्थान अर्थ और काम को दे रखा है, उनके पीछे अगर 'धर्म' भी किसी रूप में आ जाय तो कोई हर्ज नहीं। यही कारण है कि संसार की सम्पदा के स्वामी वन जाने पर भी उनकी तृष्णा शान्त नहीं होती। उनमें से प्रत्येक दुनियाँ का एक मात्र अधिपति बनने का स्वप्न देखता रहता है और उसका परिणाम यह है कि सर्वसाधन सम्पन्न होने पर भी आज उनको सोने की लंका की तरह अपने भस्म हो जाने का भय सामने दिखाई पड़ रहा है।

यही कारण है कि वर्तमान समय में भारतीय अध्यात्म, जो कुछ काल पहले विदेशी संस्कृति के आक्रमणों से बहुत निस्तेज हो चुका था, फिर चमकने-दमकने लगा है। अध्ययन और मनन करने वाले प्राचीन धार्मिक साहित्य में से आत्म ज्ञान को प्रदीप्त करने वाली उत्तम कृतियों को ढूंढ़कर नये रूप में निकाल रहे हैं और उनका प्रचार पूर्वापेक्षा अधिक हो रहा है। यद्यपि पुराणों का मुख्य विषय सृष्टि, प्रलय, मन्वन्तर, युग, राजवंशों का इतिहास आदि है, पर उनमें स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक चर्चा भी की गई है। बहुत से पुराणों में 'भगवद्गीता' के ढंग पर कोई गीता ही सम्मिलित करदी गई है।

'महाभारत' में ही 'भगवत् गीता' के अतिरिक्त 'कपिल, गीता' 'वशिष्ठ गीता' 'पराशर गीता' 'मंकि गीता' 'पिंगल गीता' 'शंपाक गीता' 'वोध्य गीता' 'विचरव्युगीता' 'हारति गीता' 'वृत्र गीता' 'हंस गीता' आदि अनेक गीताऐं हैं। 'भागवत' में भी एक हंस 'गीता' है और दूसरी भिक्षु गीता है। 'अवधूत गीता' 'अष्टावक्र गीता' 'शिव गीता' तथा 'गणेश गीता' भी काफी बड़ी हैं। 'स्कन्द पुराण' में 'ब्रह्मगीता' और 'सूत गीता' सम्मिलित हैं। 'यम गीता' तीन पुराणों में पाई जाती है—'विष्णु

पुराण', 'अग्नि पुराण' और 'नृसिंह पुराण' में। एक 'रामगीता' भी है जो 'अध्यात्म रामायण' के उत्तरकाण्ड में है। 'देवी भागवत' में एक 'देवी गीता' पाई जाती है।

इन सब पुराणों की तरह 'कूर्म पुराण' में भी (१) 'ईश्वर गीता' और (२) व्यास गीता पाई जाती है। 'व्यास गीता' में विशेष रूप से कर्मकाण्ड, चारों आश्रमों के धर्म, श्राद्ध विधि, प्रायश्चित विधान आदि धार्मिक नियम उपनियम हैं। 'ईश्वर गीता' का मुख्य विषय अध्यात्म है। ईश्वर का स्वरूप क्या है, जीव की विशेषतायें क्या हैं, दोनों में क्या सम्बन्ध है? जीव किस उपाय से इस संसार सागर से पार हो सकता है? इसके लिए 'शिव योग' का साधन किस प्रकार करना आवश्यक है? इन सब बातों का विवेचन इसमें अध्यात्म शास्त्र तथा शैव सिद्धान्त के अनुसार किया है। जैसा लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीता रहस्य' में लिया है "इन सब गीताओं की रचना तथा विषय विवेचन को देखने से यही मालूम होता है कि ये सब ग्रन्थ, 'भगवद्गीता' के जगत प्रसिद्ध होने के बाद ही बनाये गए हैं। इन गीताओं के सम्बन्ध में यह कहने से भी कोई हानि नहीं कि वे इसीलिए रची गई हैं कि किसी विशिष्ट पंथ या विशिष्ट पुराण में 'भगवद्गीता' के समान एक आध गीता के रहे बिना उस पंथ या पुराण की पूर्णता नहीं हो सकती थी। इनमें से कई गीताओं में तो 'भगवद्गीता' के अनेक श्लोक ज्यों के त्यों नकल कर लिए गये हैं। जिन श्लोकों को कुछ शब्द 'भगवद् गीता' के लेकर और कुछ अपने मिलाकर बनाया गया है, उनकी संख्या तो बहुत अधिक है।

आत्मा का स्वरूप—

जिस प्रकार 'भगवद् गीता' में अध्यात्म शास्त्र का विवेचन श्रीकृष्ण ने स्वयं को सर्व शक्तिमान और सर्वव्यापी ईश्वर मानते हुए किया है, उसी प्रकार 'ईश्वर गीता' के कथन करने वाले साक्षात् भगवान महेश्वर माने गये हैं, जो बदरिकाश्रम में समस्त मुनि ऋषियों की प्रार्थना करने पर आत्मोपदेश करने के लिए प्रकट हुए थे। उन्होंने मुनियों के सम्मुख

आत्मा का जो स्वरूप प्रकट किया वह अध्यात्म शास्त्र की दृष्टि से बहुत बोधगम्य और स्पष्ट है। उन्होंने समझाया कि आत्मा भौतिक पदार्थों से सर्वथा अलग है। संसार के अधिकांश व्यक्ति जिस प्रकार शरीर और आत्मा को एक समझ कर व्यवहार करते रहते हैं वह गलत है और उसी के कारण जीवात्मा का पतन होता है। आत्मा का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—

आत्माय केवलः स्वच्छ शुद्धः सूक्ष्मः सनतनः।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः॥
न चाप्ययं संसरति न संसारमयः प्रभुः।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नमः॥
न प्राणो न मानोऽव्यक्तं न शब्द स्पर्श राव च।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्त्ता न वागपि।
न पाणि पादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः।
न च कर्त्ता नभोक्तावान च प्रकृतिपूरुषौ॥
न माया नैवच प्राणा न चैव परमार्थतः।
यथा प्रकाश तमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते॥

अर्थात—"यह आत्मा सब से अलग और निराला ही है। यह स्वच्छ, शुद्ध, सूक्ष्म और सनातन है। यह सबके अन्तर में है और केवल ज्ञान स्वरूप तथा तम से परे है। वह कभी चलायमान नहीं होता और न कभी संसार रूप बनता है। वह भूमि, जल, अग्नि, वायु आदि स्थूल पंच तत्वों से सर्वथा पृथक है। इसी प्रकार इन पंच भूतों के जो गुण हैं, जैसे रूप, रस, गन्ध, शब्द आदि उनसे भी वह भिन्न है। वह हमारे शरीर से भी सर्वथा पृथक है, उसे न हाथ पैर कह सकते हैं और न गुदा, उपस्थ आदि। वह न कर्त्ता है और न भोक्ता, वह न प्रकृति है और न पुरुष है। वह न माया है और न प्राण है। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार कभी एक नहीं हो सकते उसी तरह परमात्मा और जगत को भी एक किसी प्रकार नहीं कहा जा सकता।"

वास्तव में आत्मा का यह परिचय बहुत बोधगम्य और स्पष्ट है।

क्योंकि परमात्म तत्व हमारे जाने हुए समस्त स्थूल पदार्थों से सर्वथा भिन्न है। इसीलिए महाज्ञानी ऋषि-मुनियों ने भी 'नेति-नेति' कहकर उसका वर्णन किया है। अर्थात् वह ऐसा विषय है जिसका वर्णन शब्दों द्वारा पूर्णतः नहीं किया जा सकता 'भगवद् गीता' में इस आत्म स्वरूप का तात्विक वर्णन दो चार श्लोकों में ही कर दिया गया है—

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयम विकार्योऽयमुच्यते।

गीताकार कहते हैं कि यह आत्मा तो अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अव्यय है। इसको न किसी शास्त्र से काटा जा सकता है, न आग में जलाया जा सकता है, न जल से इसको भिगोया जा सकता है और न वायु के द्वारा इसे सुखाया जा सकता है। इस प्रकार यह सर्वथा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। यह निःसन्देह नित्य सर्वव्यापक, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता, इसको विचार में भी नहीं लाया जा सकता और इसमें कभी किसी प्रकार का विकार भी नहीं हो सकता।"

यद्यपि ईश्वरगीता और 'भगवत गीता' की वर्णन शैली पृथक है, भाषा में भी काफी अन्तर है, पर आशय दोनों का एक ही है। दोनों ने ही आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक, भिन्न और अद्वितीय विषय माना है। इसी तथ्य को 'अवधूत गीता' में विभिन्न दृष्टिकोण से कहा गया है—

वेदान्त सार सर्वस्वं ज्ञान-विज्ञान मेव च।
अहमात्मानिराकारः सर्व व्यापी स्वभावतः॥
यो वै सर्वात्मको देवो निष्फलो गगनोपमः।
स्वभाव निर्मल शुद्धः स एवाहं न संशयः॥

अहमेवाव्ययोऽनन्तः शुद्ध विज्ञान विग्रहः ।
सुखं दुःखं न जानामि कथं कस्यापिवर्ततते ।।
आत्मानं सततं विद्धि सर्वत्रैकं निरन्तरम् ।
अहं ध्याता परं ध्येयमखण्डं खण्ड्यते कथम् ।।
न जातो न मतोऽसित्त्वं न ते देहःकदाचन ।
सर्वं ब्रह्मेति विख्यातं ब्रवीति बहुधा श्रुतिः ।।

अर्थात् "समस्त वेदान्त शास्त्र का सार यही है और यही समस्त ज्ञान-विज्ञान का तत्त्व है कि मैं सर्व व्यापी और निराकार आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूं । जो 'देव' सब की आत्मा है, कला रहित है, आकाश के समान आकार रहित है, स्वभाव से ही निर्मल और शुद्ध है, वही निश्चय रूप से मैं भी हूं । मैं ही अविनाशी और अनन्त, शुद्ध ज्ञान रूप हूं । ऐसी दशा में सुख और दुःख का तो मेरे लिये कोई प्रश्न ही नहीं उठता । आत्मा सब जगह है और इसका कभी नाश नहीं होता । इस लिये इसको 'ध्याता' और 'ध्येय' दो रूपों में वर्णन करना एक अखण्डनीय तत्त्व को खंडिन के समान अज्ञान मूलक है । यह न जन्म लेता है, न मरता है और न किसी प्रकार देह रूप कहा जा सकता है यह सब कुछ ब्रह्म ही है, यही मत श्रुति (वेद) में अनेक प्रकार से प्रकट किया गया है ।"

'भागवत महा पुराण' के ग्यारहवें स्कन्ध के अन्तर्गतवर्णन की गई 'हंस गीता' में भी आत्मा का स्वरूप सबसे पृथक और अव्यक्त कहा गया है—

मनसा वचसा दृष्टया गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः ।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ।।
गुणोष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसिचप्रजाः ।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ।।
जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धि वृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षि त्वेन विनिश्चितः ।।

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः।
मयि तुर्ये स्थितो जह्यात् त्यागस्तद् गुणचेतसाम् ॥
असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्न दृशो यथा ॥

सनकादि ऋषियों के द्वारा आत्म स्वरूप की जिज्ञासा करने पर हंस रूप धारी भगवान् ने कहा—मन से, वाणी से, दृष्टि से तथा अन्य इन्द्रियों से भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। आप अच्छी तरह इस तत्त्व को समझ लें कि जगत में मेरे (परमात्म तत्त्व) के सिवाय कहीं और कुछ नहीं है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—जिन तीन अवस्थाओं का अनुभव मनुष्य सदैव किया करता है, वे सब बुद्धि की वृत्तियाँ हैं, सच्चिदानन्द आत्मा के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं। जीव तो उनसे सर्वथा भिन्न और उनका साक्षी-मात्र है। बुद्धि वृत्तियों द्वारा होने वाला यह बन्धन ही आत्मा में त्रिगुणमयी अनुभूति उत्पन्न करता है। इस लिये साधक को उचित है कि वह तीनों अवस्थाओं को त्याग कर केवल तुरीय में स्थित होने की चेष्टा न करे। इससे विषय और चित्त का अन्त हो जायगा। वास्तव में आत्मा के अतिरिक्त देह तथा अन्य जितने भी सांसारिक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं उनका कुछ भी अस्तित्त्व नहीं है। इस लिये उनके कारण होने वाले समस्त कर्म और सांसारिक व्यवहार उसी प्रकार मिथ्या है, जैसे स्वप्न में दिखाई देने वाले सब पदार्थ।"

परब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप का परिचय—

परमात्मा के अज्ञेय और अचिन्तनीय होने पर भी विद्वानों ने तरह-तरह के वर्णन द्वारा उसका कुछ आभास देने का प्रयत्न किया है। इस विषय में सब से अधिक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण वर्णन उपनिषदों का माना जाता है। 'ईश्वर गीता' में भी इसी मार्ग का अनुसरण करके कहा गया है—

एको देवः सर्वं भूतेषु गूढः सर्वव्यापीसर्वभूतान्तरात्मा।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्तिधीरास्तेषांशान्तिःशाश्वतीनेतरेषाम् ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्विभेतिनकुतश्चन ॥
न तत्र सूर्यः प्रतिभातीह चन्द्रो नक्षत्राणां गणो नीत विद्युत् ।
तद्भासितंह्यखिलम्भातिविश्व्यमतीवभासममलंतद्विभाति ॥
न भूमिरापो न मनो न वह्निः प्राणोऽनिलो गगनंनोतबुद्धि ।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाश मध्ये विभातिदेवःशिवएवकेवलः ॥
वेदाहमेतं पुरुषंमहान्तमादित्यवर्णं पुरुषं पुरस्तात् ।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः ॥

अर्थात्—वह एक ही परमात्मा सब भूतों (पदार्थों और प्राणियों) में व्याप्त है, वह सर्व व्यापी और सब का आत्मा है। उसको केवल धीर (सच्चे साधक) ही जानने में समर्थ हो सकते हैं, अन्य कोई नहीं। जिस परमात्म तत्त्व का वर्णन करने में वाणी असमर्थ हो जाती है और जहाँ मन की भी पहुंच नहीं हो सकती, वही वास्तव में आनन्द का आश्रम स्थल है। उसको प्राप्त करके विद्वान् पुरुष अभय हो जाता है। वहाँ पर न सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्रमा, तथा नक्षत्र दिखाई पड़ते हैं, न न विजली चमकती है। इसके विपरीत यह सकल विश्व उसी की आभा (दीप्ति) से भासित होता है। उसका प्रकाश सबसे अद्वितीय और अमल है। भूमि, जल, मन, अग्नि, प्राण, अनिल, गगन, बुद्धि, चेतना शक्ति आदि में से कोई वहाँ नहीं पहुँच पाता, एक मात्र परमात्मा (शिव) ही वहाँ विभासित होता है। मैं ही वेद हूँ, महान् पुरुष हूँ, सूर्य के समान वर्ण वाला पुरुष हूँ। मुझे जान कर ज्ञानीजन ब्रह्म की स्थिति को प्राप्त हो जाते हैं।"

यह वर्णन पूर्णतः उपनिषदों के अनुकूल है और सम्भवतः उन्हीं से प्रेरणा लेकर लिखा गया है। ये सभी श्लोक 'श्वेत श्वतरोपनिषद' में भी दिये गये हैं, केवल कुछ ही शब्दों का अन्तर है—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च ॥

न तत्र सूर्योभातिनचन्द्रतारकंनेमाविद्यतोभान्तिकुतोऽयमग्नि।
तमेव भान्तमनुभान्ति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदंविभाति ॥
वेदाहमेतं पुरुषंमहान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्येतऽयनाम ॥

"एक ही परमेश्वर सब जीवों में स्थित तथा सर्व व्यापी है। वही सब भूतों के अन्तर में निवास करने वाला ब्रह्म है। वह सब के कर्मों का नियामक, सब प्राणियों का आश्रयभूत सब का साक्षी, चेतन स्वरूप, पवित्र एवं निर्गुण है। वह ऐसा तत्त्व है कि वहाँ सूर्य, चन्द्रमा, तारागण और विद्युत किसी का प्रकाश नहीं पहुँच सकता, फिर अग्नि के प्रकाश की तो बात ही क्या है! इसके बजाय सूर्य आदि और समस्त लोक उसी के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। उस अविद्या से परे, सूर्य के समान तेजस्वी, महान् पुरुष को मैं जानता हूँ। जो उसे जान लेता है वह मृत्यु से पार हो जाता है। उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग भव-बंधन से मुक्त होने का नहीं है।"

पाशुपत योग—

'ईश्वर गीता' में परमात्मा की प्राप्ति, का सर्व प्रधान साधन 'पाशुपत योग' बतलाया गया है। उसमें कहा है कि इस योग की अग्नि पाप के बड़े समूह को अविलम्ब जला कर भस्म कर देती है। तब निर्वाण की प्राप्ति कराने वाला श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न होता है। इस योग को दो प्रकार का वर्णन किया गया है, पहला 'अभाव योग' और दूसरा 'महायोग'। जिसमें परमात्मा के शून्य और निराभास रूप का ध्यान करके आत्मा का दर्शन और परमात्मा के साथ उसका एकीभाव अनुभव किया जाता है, वह अभाव योग या ब्रह्म योग है। इसकी तुलना अन्य आचार्यों द्वारा कथित 'ज्ञान योग' से की जा सकती है। दूसरा 'महायोग' है जो 'राज योग' के समकक्ष माना जा सकती है। यही तथ्य 'ईश्वर गीता' के निम्न वर्णन से प्रकट होता है—

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ।।
समाधिश्च मुनि श्रेष्ठा यमश्च नियमासने ।।
अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
यमा संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम् ।।
तपः स्वध्याय सन्तोषौ शौचमीश्वर पूजनम् ।
समासान्नियमा प्रोक्ता योग सिद्धिप्रदायिनः ।।
आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्द्धमथापिवा ।
नासिकाग्रे समांदृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः ।।
कृत्वाथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत् ।
स्वात्मन्यवस्थितन्देवं चिन्तयेत् परमेश्वरम् ।।
ध्यायीत तंन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम् ।
विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुनः ।।
चिन्तयेत् स्वात्मनीशानं परं ज्योति स्वरूपिणम् ।
एष पाशुपतो योगः पशुपाश विमुक्तये ।।

"यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ये योग के आठ अग हैं । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिगृह—इनको पाँच यम कहा गया है, जिनसे मनुष्य का चित्त शुद्ध होता है । तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, ईश्वर प्रणिधान—इनको पाँच नियम बतलाया गया है, जिनके द्वारा योग में सिद्धि प्राप्त होनी संभव होती है । साधन आरंभ करते समय स्वस्तिक अथवा ऊर्द्ध पद्मासन पर बैठ कर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को जमाये और नेत्रों को आधे मुंदे रखे । तब इस मायामय जगत का विचार त्याग कर निर्भय और शान्त मन से अपनी आत्मा में उपस्थित परमेश्वर का ध्यान करे । इस प्रकार शरीर और मन को पूर्ण शुद्ध करके अथवा प्रणवोपासना द्वारा अन्तरात्मा को परमपद में स्थित करके अपनी आत्मा में तन्मय होकर अविनाशी, एकरूप ईशान देव का चिन्तन करना चाहिए । यही पाशुपत योग है जिससे पशु (जीवात्मा) के पाश (कर्म–बन्धन) कट कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है ।"

यह 'पशुपत–योग' ही शैव-मार्ग का सबसे बड़ा साधन है और सभी शैध-पुराणों में इसका विस्तार पूर्वक और विवेचना युक्त वर्णन किया गया है। 'पशु' 'पशुपति' तथा 'पाश' इन तीनों का जो रहस्य 'शिवपुराण' की 'वायु संहिता' में प्रकट किया गया है उसमें कहा है—

"ब्रह्मा से लेकर स्थावर (जड़ पदार्थों) तक की संज्ञा 'पशु' ही है। ये कर्म रूपी पाशों से बँध कर सुख-दुःख भोगते हैं, इसीलिये 'पशु' कहे गये हैं। एक अनन्त रमणीय गुणों का आश्रय जगदीश्वर ही पशु-पाश का विमोचन करने वाला है। उसके विना यह सृष्टि कैसे हो सकती है, क्योंकि 'पशु' और 'पाश' दोनों तो ज्ञान रहित हैं। यह जगत कर्म सापेक्ष है, यह कर्ता के बिना नहीं चल सकता। इसलिये कार्य का कर्तव्य ईश्वर में है, उसे पशु, पाश (जीव और कर्म) में नहीं माना जा सकता। ईश्वर की प्रेरणा से जीव में भी कर्तापन प्रतीत होता है, परन्तु वह यथार्थ नहीं होता। जैसे अन्धा स्वयं नहीं चल सकता दूसरे के सहारे चलता है, वैसे ही जीव का कर्तृत्व समझो—

पशोरपि च कर्तृत्वं पत्युर्न प्रेरण पूर्वकम्।
अयथाकरण ज्ञानमंधस्य गमनं यथा॥

पशु, पाश और पति का जो तत्वयुक्त अन्तर है उसे जानकर ब्रह्म ज्ञानी पुरुष जीवन मुक्त होता है। भोक्ता, भोग्य और प्रेरक—इन तीनों को जानने के उपरान्त और किसी को जानने की आवश्यकता नहीं रहती। जैसे तिलों में तेल, दही में घी, स्रोत में जल, अरणि (काष्ठ) में अग्नि का अस्तित्व है, वैसे ही हमारी आत्मा में परमात्मा भी समाया हुआ हैं। यह तथ्य सत्य को धारण करने और तप द्वारा विदित होसकता है। वह रुद्र ही एक मात्र माया से परे है, दूसरा कोई नहीं। वही इस समस्त विश्व की रचना, रक्षा और संहार करने वाले हैं—

एक एव सदा रुद्रो न द्वितीयोस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्व भुवनं गोप्ता ते संवुकोचयः॥

"यह सब जगत उस रुद्र के हाथ, पैर नेत्र और मुख है। वह एक ही देवता स्वर्ग और पृथ्वी का उत्पन्न करने वाला है, सब देवताओं को वही

उत्पन्न करता है तथा पालन भी करता है जो प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न करता है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान है, यही अविनाशी महेश्वर सब जीवों के हृदयाकाश में स्थित है"—

अणोरणीयान्महतो महीयानयमव्ययः।
गुहायां निहितश्चापि जंतोरस्य महेश्वरः॥

यह उपनिषद्-वाक्य, जो परमेश्वर की सत्ता का स्वरूप वर्णन करने के लिये धार्मिक साहित्य में सर्वत्र प्रयोग में लाया गया है, 'शिव-पुराण' में भी एक दो शब्द बदल कर उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार अन्य पचीसों उपनिषदों के श्लोक इस अध्याय में पाये जाते हैं। इसका आशय यही है कि वैदिक अध्यात्मवाद की जो व्याख्या उपनिषदों में की गई है, वही आगे चल कर शिव, विष्णु, राम, कृष्ण आदि के भक्तिमार्गी उपासकों ने भी अपनाई है। केवल बीच-बीच में उसमें अपने साम्प्रदायिक देव का नाम सम्मिलित कर दिया है। इससे भारतीय अध्यात्म-वाद की एकता पर जो प्रकाश पड़ता है वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

"शिवपुराण" के कथनानुसार जब श्री कृष्ण जामवन्ती के पुत्र होने के लिये तपस्या के निमित्त कैलास पर गये थे तो उन्होंने महर्षि उपमन्यु से शिव-तत्त्व पूछा था। उपमन्यु ने शिव के आध्यात्मिक स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा—''यह चराचर जगत उन्हीं देवदेव शिव का विग्रह है। पर 'पाश' में बंधेहुये जीव उन्हें नहीं जानते। हे कृष्ण! उस एक का ही अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है। अपर ब्रह्मस्वरूप ही पर ब्रह्म है, उसी को महादेव, अनादि निधन कहते हैं। जो अपर ब्रह्म भूतेन्द्रिय अन्तःकरण में प्रधान है वही चिदात्मक परब्रह्म कहा जाता है। वही वृहत और और वृंहण होने के कारण 'परम' कहा जाता है। ये दोनों ही ब्रह्म के स्वरूप हैं, कोई इनको विद्या और अविद्या रूप ईश्वर भी कहते हैं। विद्या चेतना और अविद्या अचेतना है। विश्व-गुरु का यह विद्या-अविद्यात्मक रूप है। यह समस्त संसार उसी के वश में है और निश्चय ही यह सभी शिव का रूप है—

रूपमेव न सन्देहो विश्वं तस्य वशे यतः।
भ्रांतिर्विद्या परा चेति शार्वं रूपं परं विदुः॥

"किसी अर्थ को यथार्थ न समझने को ही भ्रांति कहते हैं, और अर्थाकार संवित्ति को विद्या कहा गया है। तत्वपद विकल्प रहित है तथा उससे विपरीत तत्व को ज्ञानियों ने असत् कहा है। यह सत्-असत् वाला विश्व उस परमेष्ठी का देह है और सत्-असत् का पति होने से शिव को 'सत् असत् पतिं' अथवा 'क्षर-अक्षरात्मक' कहते हैं। पर वास्तव में वह क्षर–अक्षर दोनों से परे हैं। सभी प्राणी क्षर (नाशवान हैं) और कूटस्थ (जीवात्मा) को अक्षर (अविनाशी) कहा गया है। यह दोनों ही उस परमात्मा के अधीन हैं। उससे परे शान्त शिव को क्षराक्षर से पृथक कहा गया है। कोई शिव को परम नारायण कहते हैं, तथा समष्टि को अव्यक्त और व्यष्टि को व्यक्त बताते हैं। ईश्वरेच्छा से यह दोनों रूप उसी के हैं, उनका अन्य कोई कारण न होने से शिव ही परम कारण हैं—

ते रूपें परमेशस्य तदिच्छायाः प्रवर्तनात्।
तयो कारणभावेन शिवं परम कारणम्॥

आगे चलकर पुराणकार ने सांख्य सिद्धान्त को भी शैव सिद्धान्त के साथ समन्वित किया है। वह कहता है—

"विश्व का कारण जानने वालों ने समष्टि-व्यष्टि को कारण कहा है। कोई ईश्वर को जाति और व्यक्ति स्वरूपी बतलाते हैं। पिण्डों में पाई जाने वाली स्थिति को जाति कहा है, और व्यक्ति आवृत्ति रूप से सभी पिण्डों में स्थित है। क्योंकि यह जाति और व्यक्ति शिव की आज्ञा के वश में हैं, इसी से उनको जाति और व्यक्ति के स्वरूप वाला कहा है। प्रधान और पुरुष 'व्यक्त' हैं और शिव 'कालात्मा' है। प्रधान प्रकृति है और पुरुष क्षेत्रज्ञ है। तेईस तत्वों का नाम व्यक्त बताया है। इस प्रपंच का कारण काल को ही बताया गया है। यही प्रवर्त्तन और निवर्तन करता है तथा यही आविर्भाव तथा तिरोभाव का एक कारण है। इससे

प्रधान और पुरुष काल स्वरूपात्मक हैं, उनका कारण तथा अधिपति एक शिव ही है।"

अन्त में महर्षि उपमन्यु ने शिव को सर्वोपरि और सर्वात्मक बताते हुए कहा—"कोई शिव को हिरण्यगर्भात्मा, कोई अन्तर्यामी और विश्वात्मा बतलाते हैं। कोई तुरीय और कोई सौम्य कहते हैं। किसी ने उसे माता, मान, मेय और मति कहा है। कोई कर्त्ता-क्रिया, कारण और कोई जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति वाला कहते हैं। किसी ने तुरीय, किसी ने तुर्यातीत कहा है, कोई निर्गुण तथा कोई सगुण कहते हैं। कोई संसारी कोई असंसारी, कोई स्वतन्त्र कोई अस्वतन्त्र कहते हैं। किसी ने घोर और किसी ने सौम्य कहा है तथा किसी ने रागी और किसी ने विरागी बताया है। कोई क्रिया रूप और कोई निष्क्रिय, कोई इन्द्रिय युक्त और कोई इन्द्रिय रहित कहते हैं। किसी ने उन्हें दृश्य कहा है और किसी ने अदृश्य, कोई वाच्य और कोई अवाच्य, कोई शब्दात्मक और कोई शब्दों से परे बताते हैं। किसी ने चिन्तनीय और किसी ने अचिन्त्य, किसी ने ज्ञान रूप और किसी ने विज्ञान रूप, कोई ज्ञेय और कोई अज्ञेय, कोई एक और कोई अनेक कहते हैं।

इस प्रकार उस परमेष्ठी की अनेक प्रकार से कल्पना की गई है और अनेक प्रकार के मतों के कारण मुनिजन भी उनका यथार्थ निर्णय करने में असमर्थ हैं। परन्तु जो सर्व भाव से उन परमेश्वर शिव की शरण को प्राप्त हो चुके हैं, वे बिना किसी यत्न के ही उन परम कारण को जान लेते हैं। जब तक यह 'पशु' रूपी प्राणी संसार को वश में रखने वाले उन पुराण पुरुष परमेश्वर को नहीं जान लेता तब तक 'पाश' में बँधा हुआ पहिये की नेमि के समान घूमता रहता है। जब वह विश्वकर्त्ता, हिरण्य गर्भ, ईश्वर के ब्रह्म रूप के दर्शन पा जाता है तब पुण्य-पाप से दूर होकर शिव में तादात्म्य हो जाता है।

यावत् पशुर्नैव पशत्यनीशं कविं पुराणं भुवनस्येशितारम्।
तावद् दुःखे वर्तते बद्धपाशः संसारेऽस्मिन् चक्रनेमिक्रमेण ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्म वर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परम मुपैति साम्यम् ॥

पाशुपति योग की महिमा—

'वायु-पुराण' में भी 'पाशुपति योग' का वर्णन विस्तार से किया गया है और उसी को भव-सागर से पार होने का सर्वोत्तम मार्ग बतलाया है। पर उसकी वर्णन शैली सामान्य जनता के अधिक भावानुकूल है। उसमें तत्वज्ञान के साथ ही अष्ट सिद्धियों, पाप पुण्य के फल, गर्भ में जीव की अवस्था, नरकों के कष्ट आदि का वर्णन भी पर्याप्त पाया जाता है—

तत्राष्टगुणमैश्वर्यं योगिनां समुदाहृतम् ।
तत्सर्वं क्रमयोगेन उच्यमानं निबोधत ॥
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तरेव च ।
प्रकाम्यञ्चैव सर्वत्र ईशित्वञ्चैव सर्वतः ॥
वशित्वमथ सर्वत्र यत्र कामावसायिता ।
तच्चापि विविधं ज्ञेयमैश्वर्यं सर्वकामिकम् ॥

"योगियों का जो आठ गुण (सिद्धियों) वाला ऐश्वर्य कहा गया है उसको क्रम से कहा जाता है। अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और काम वसायित्व। ये योग-ऐश्वर्य विविध प्रकार के होते हैं।"

यद्यपि ये सब सब ऐश्वर्य मनुष्य को सामान्य देवताओं की अपेक्षा भी ऊँचे दर्जे में पहुँचा सकते हैं, पर मोक्षाभिलाषियों द्वारा इनको त्याज्य ही बतलाया गया है। अधिकांश साधक इनको पाकर योग के मूल उद्देश्य आत्मा के उद्धार को भूल जाते हैं और प्रायः निर्वाण-मार्ग से हटकर पुनः संसार की ओर लौट आते हैं। इसलिए 'वायु पुराणकार' ने सिद्धियों का वर्णन करके भी भगवद्गीता के 'आत्मयोग' और निष्काम कर्म को ही सर्वश्रेष्ठ और कल्याणकारी बताया है—

न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ।
न दह्यते न मुह्यते हीयते न च लिप्यते ॥

न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन् ।
क्रियते चैव सर्वत्र तथा विक्रयते न च ।।
अगन्धरस रूपस्तु स्पर्शशब्द विवर्ज्जितः ।
अवर्णो ह्यवरश्चैव तथा वणस्य कर्हिचित् ।।
भुंक्तेऽथ विषयांश्चैव विषयैन्न युज्यते ।
ज्ञात्वा तु परमं सूक्ष्मं सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गकः ।।
गुणान्तुरन्तु ऐश्वर्यं सर्वतः सूक्ष्म उच्यते ।
ऐश्वर्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ।
अपवर्गम् ततो गच्छेत् सुसूक्ष्मं परमं पदम् ।।

"यह आत्मा ही ऐसा तत्व है जो न कभी जन्म लेता है, न कभी मरता है, न काटा जा सकता है, न छेदा जा सकता है, न जलाया जा सकता है। यह कभी मोह को प्राप्त नहीं होता, स्वार्थी नहीं बनता, लिप्त नहीं होता। यह न कभी क्षीण होता है, न नष्ट होता है और न दुःखी होता है। यह क्रियाशील रहने पर भी कभी विकारग्रस्त नहीं होता। यह पञ्च भूतों के गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द पाँचों गुणों से पृथक है, इसका कोई रंग भी नहीं है। यह सबसे भिन्न प्रकार का ही एक तत्व है। यह विषयों का भोग करता है पर उनमें आसक्त नहीं होता। ऐसा होने पर यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त करके मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। यह योगैश्वर्य का दूसरा रूप है जो ऋद्धि-सिद्धियों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और महान है। यह ऐसा एश्वर्य है जो कभी नष्ट नहीं होता और अन्त में परम पद को प्राप्त करा देता है।"

पुराणकार का आशय यही है कि जो लोग किसी प्रकार की कामना रखकर चमत्कारी शक्तियाँ प्राप्त करने के उद्देश्य से योग–साधन करते हैं, वे चाहे देवताओं के समान सामर्थ्यवान बन जाँय, पर उनकी सफलता स्थायी नहीं हो सकती। इस प्रकार का साधक शीघ्र या देर में फिर जहाँ का तहाँ पहुंच जाता है—

न चैवमागतो ज्ञानात् रागात् कर्म समाचरेत् ।
राजसं तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ।।

तथा सुकृत कर्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते ।
तस्मात् स्थानात् पुनर्भ्रंषो मानुष्यमनुपद्यते ॥
तस्माद् ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ॥
परिश्रमस्तु यज्ञानां महताऽर्थेन वर्तते ।
भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षं परं सुखम् ॥

"जब इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होजाय तो जान कर या अनजान में अथवा मोहवश विपरीत आचरण न करे। क्योंकि जो पुण्य कर्म राजस या तामस भाव से किये जाते हैं उनका परिणाम अस्थायी ही होता है। वैसा पुण्य करने वाला कुछ समय तक स्वर्गफल भोग कर पुनः मनुष्य योनि को ही प्राप्त होजाता है। इसलिये परम सूक्ष्म शाश्वत ब्रह्म की आराधना करना ही स्थायी परम सुख का कारण होता है। यज्ञादि कर्म काण्ड में तो अत्यन्त परिश्रम तथा धन व्यय करना पड़ता है और फिर भी उनके कर्त्ता जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं। इस लिये मनुष्य को परम सुख रूप मोक्ष के लिये ही प्रयत्न शील रहना चाहिये।" यह मोक्ष–मार्ग कौनसा है इसका वर्णन करते हुये कहते हैं—

"जो ब्रह्म–यज्ञ परायण होकर ध्यान में संलग्न होते हैं उनका नाश सौ मन्वतरों में भी नहीं होता। जो प्रभु विश्वरूप हैं, जिनके पैर, मस्तक, ग्रीवा सभी विश्वमय हैं, जिनकी गन्ध, माला, वस्त्र भी विश्व रूपी हैं, उन प्रभु का दर्शन इस योग साधन द्वारा ही हो सकता है। इन्द्रियों से रहित, महान आत्मा वाले, परम ज्ञान वाले, वरेण्य, कवि, पुराण पुरुष, अनुशासन कर्ता, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान इस प्रभु का दर्शन इन चर्म चक्षुओं से हो सकना संभव नहीं, उसके लिये योग—दृष्टि ही प्राप्त करनी होती है। वे प्रभु बिना लिङ्ग (चिह्न) वाले, हिरण्यमय, सगुण और निर्गुण, चेतन, नित्य, सर्वव्यापी है। उन अचल प्रकाश रूप प्रभु को शुद्धि-बुद्धि वाले पुरुष ही देखने में समर्थ हो सकते हैं। वे भगवान हाथ, पैर, उदर, पार्श्व, जिह्वा और इन्द्रियों से परे केवल दीप्तिमान हैं। वे बिना आँखों के देखते और बिना कानों के ही सुनते हैं। जो योगी उस

सनातन और समस्त भूतों के स्वामी को देख लेते हैं, वे कभी मोह को प्राप्त नहीं होते ।"

अध्यात्म का स्रोत उपनिषद्

इस प्रकार पुराणों में तथा पृथक लिखे गये, 'गीता' ग्रन्थों में आत्मा-परमात्मा, जीव, कर्म, विद्या-अविद्या का जो वर्णन किया गया है, वह मुख्यतः उपनिषदों में पाया जाता है। उनमें भी दस—ग्यारह उपनिषद् मुख्य माने गये हैं। उन सब का सार 'भगवद् गीता' में प्रकट किया गया है। 'भगवत् गीता' की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उसने उपनिषदों में सिद्धान्त रूप से वर्णित अध्यात्म ज्ञान को निष्काम कर्म का स्वरूप दिया और उसका विभिन्न स्तर के मनुष्यों की दृष्टि से ऐसा क्रम पूर्वक वर्णन किया कि ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों मार्गों पर चलने वाले उससे लाभ उठा सकते हैं। ऊपर 'कूर्म पुराण' 'शिव पुराण' तथा 'वायु पुराण' के आधार पर अध्यात्म का जितना वर्णन किया गया है, वह सब 'भगवद् गीता' के क्षेत्र—क्षेत्रज्ञ योग' वाले प्रकरण के कुछ ही श्लोकों में बहुत बोध गम्य रूप से प्रकट कर दिया गया है—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्तितं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥
महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्त मेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रिय गोचराः ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्र समासेन सविकार मुदाहृतम् ॥
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिराजंवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःख दोषानुदर्शनम् ॥

अर्थात् यह मनुष्य का शरीर ही 'क्षेत्र' कहा जाता है और जो इसे जानता है वही 'क्षेत्रज्ञ' है। इसको इस प्रकार समझना चाहिये कि पाँच

महाभूत (आकाश वायु, अग्नि जल और पृथ्वी) अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति, दश इन्द्रियाँ और पाँच इन्द्रियों के विषय—तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, पिण्ड, प्राण और धृति—यह सब क्षेत्र ही माना गया है। इनके अतिरिक्त श्रेष्ठता का अभियान न रखना' दम्भाचरण से बच कर रहना, प्राणी मात्र को किसी प्रकार न सताना और क्षमा भाव, मन तथा वाणी की सरलता, श्रद्धा—भक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर तथा भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह। तथा इह लोक तथा पर लोक के भोगों के प्रति पूर्ण अनासक्ति अहंकार का अभाव एवं जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि दुःख दोषों पर निरन्तर विचार करके इनकी वास्तविकता को हृदयंगम करते रहना चाहिए। यही ज्ञान की सब बातें हैं और इसके विपरीत अज्ञान समझना चाहिये।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादि मत्परं ब्रह्म न सन्तन्नासदुच्यते॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सवतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिकेच तत्
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥

'वह परमात्मा ही जानने योग्य है, क्योंकि उसको जानकर ही मनुष्य 'अमृत' (मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। वही सब से परे 'अनादि' ब्रह्म है। उसे न 'सत्' कहा जा सकता है और न 'असत्' ही। उसके सब ओर हाथ पैर हैं, सब ओर आँखें, सिर और मुँह हैं, सब ओर कान हैं। वही इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त है। उसमें सब इन्द्रियों का आभास

होता है पर उसके कोई भी इन्द्रिय नहीं है। वह सब से असक्त रह कर भी सब का पालन करता है, और निर्गुण होने पर भी गुणों का उपभोग करता है। वह सब भूतों (प्राणियों) के भीतर और बाहर भी है, वह अचर है और चर भी है, सूक्ष्म होने से वह अविज्ञेय (न जाना जा सकने वाला) है, और दूर होकर भी समीप है। वह वास्तव 'अखण्ड' है पर सब प्राणियों में व्याप्त होने से खण्डित—सा लगाता है। सब का उत्पन्न करने वाला पालन करने वाला तथा ग्रसने (संहार) करने वाला भी वही है।"

इस प्रकार 'गीताकार' ने अच्छी तरह समझा कर बता दिया है कि इस जगत में जो कुछ है वह सब परम ब्रह्म ही है। ईश्वर के रूप में 'नित्य' और 'सत्' है और इस पंच भूतात्मक जगत के रूप में वह 'अनित्य' और 'असत्' है। जो कोई तत्त्व को अच्छी तरह समझ लेता है उसको फिर संसार की माया भ्रमित नहीं कर सकती। और यह माया ही मनुष्यों को इस संसार—चक्र में फँसा कर सुख-दुःख का अनुभव कराती रहती है। इस प्रकार एक ही तत्त्व के 'सत्' और 'असत्' होने का ज्ञान प्राप्त कर सकना और फिर उस पर आचरण करना अवश्य ही कठिन है। इसी के लिये योग, वेदान्त, सांख्य आदि विविध महान् शास्त्रों की रचना की गई है। उनके अध्ययन और अभ्यास से मनुष्य संसार के वास्तविक रूप को जान कर इसके बन्धन से छुटकारा पा सकता है। यदि इनको समझ सकने की सामर्थ्य न हो तो 'गीता' के कथनानुसार वे दूसरे ज्ञानी जनों से उपदेश ग्रहण करके और उनके आदेशानुसार परमात्मा की भक्ति और उपासना का साधन करके भी संसार-सागर से पार हो सकते हैं। उनको अपने हृदय में यही निश्चय कर लेना चाहिये कि यह जो कुछ है वह सब परमात्मा का किया है और यदि हम उस पर अन्तःकरण से विश्वास रखेंगे तो हमारा कल्याण ही होगा। यही अध्यात्म ज्ञान 'कूर्म्म पुराण' में भी समझाया गया है।

———








